ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

एम.ए. समाजशास्त्र

पाठ्यक्रम कोड : एम.ए.एस.-015

द्वितीय सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : 07

पाठ्यचर्या का शीर्षक : समाजशास्त्रीय विचारक (II)

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

मार्गदर्शन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
प्रभारी निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. शैलजा दुबे
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग उच्च
शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक मंडल

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य
अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभु जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड -1
इकाई 1 – डॉ. जियाउद्दीन
इकाई 2 - डॉ. जियाउद्दीन
इकाई 3 - डॉ. जियाउद्दीन
इकाई 4 - डॉ. जियाउद्दीन

खंड - 2
इकाई 1- डॉ. प्रतिमा गोंड
इकाई 2- डॉ. प्रतिमा गोंड
इकाई 3- डॉ. प्रतिमा गोंड
इकाई 4- डॉ. प्रतिमा गोंड

खंड - 3
इकाई 1 – डॉ. जियाउद्दीन
इकाई 2 - डॉ. जियाउद्दीन
इकाई 3 - डॉ. जियाउद्दीन

खंड - 4
इकाई 1- डॉ. जियाउद्दीन
इकाई 2 - डॉ. जियाउद्दीन
इकाई 3 - डॉ. जियाउद्दीन
इकाई 4 - डॉ. जियाउद्दीन

कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दू.शि. निदेशालय

श्री अरविन्द कुमार
टेक्निकल असिस्टेंट, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा ठाकरे
टंकण/फार्मेटिंग/इंडिटींग
दू.शि. निदेशालय

श्री सचिन सोनी
सॉफ्टवेयर स्पेशलिस्ट, दू.शि. निदेशालय

श्री गुड्डू यादव
कंप्यूटर ऑपरेटर, दू.शि. निदेशालय

पाठ्यचर्या कोड : एमएएस- 07

पाठ्यचर्या का नाम : समाजशास्त्रीय विचारक (II)

क्रेडिट्स : 04 क्रेडिट

शिक्षण उद्देश्य :

इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के उपरांत छात्र –

- पाश्चात्य पारंपरिक समाजशास्त्रियों से परिचित होंगे।
- कार्ल मार्क्स के सिद्धांतों एवं विचारों से विद्यार्थी परिचित होंगे। विद्यार्थी मार्क्स के सिद्धांत की समालोचना कर सकेंगे।
- समाजशास्त्री विचारक विलफ्रेड़ों परेटो के योगदान से छात्र परिचित होंगे।
- तार्किक-अतार्किक क्रिया एवं सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय सिद्धांतों से छात्र परिचित होंगे।
- पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक क्रिया एवं प्रकार्यात्मक सिद्धांतों से छात्र परिचित होंगे।
- राबर्ट के मर्टन के सिद्धांतों से विद्यार्थी परिचित होंगे।

मूल्यांकन के मानदंड :

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सतत आंतरिक मूल्यांकन : 30 %

पारंपरिक समाजशास्त्रीय विचारक (II)

खण्ड (1) कार्ल मार्क्स

इकाई : 1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई : 2 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद

इकाई : 3 अधिसंरचना, अधोसंरचना एवं अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत

इकाई : 4 वर्ग एवं वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत

खण्ड (2) विलफ्रेडो परेटो

इकाई : 1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई : 2 तार्किक तथा अतार्किक क्रिया

इकाई : 3 विशिष्ट चालक एवं भ्रांत-तर्क

इकाई : 4 अभिजन-वर्ग एवं सामाजिक परिवर्तन का चक्रीय सिद्धांत

खण्ड (3) टालकट पारसंस

इकाई : 1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई : 2 सामाजिक क्रिया एवं सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत

इकाई : 3 प्रकार्यवाद एवं सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत

खण्ड (4) राबर्ट के. मर्टन

इकाई : 1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई : 2 मध्य स्तरीय सिद्धांत

इकाई : 3 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण का पेराडिम

इकाई : 4 संदर्भ समूह, सामाजिक संरचना एवं आदर्श शून्यता का सिद्धांत

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**खंड - 1 – कार्ल मार्क्स**	
	इकाई -1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ	4-20
	इकाई -2 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद	21-42
	इकाई -3 अधिसंरचना, अधोसंरचना एवं अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत	43-61
	इकाई -4 वर्ग एवं वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत	62-78
2	**खंड - 2 – विलफ्रेडो परेटो**	
	इकाई -1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ	79-90
	इकाई -2 तार्किक तथा अतार्किक क्रिया	91-104
	इकाई -3 विशिष्ट चालक एवं भ्रांत-तर्क	105-119
	इकाई -4 अभिजन-वर्ग एवं सामाजिक परिवर्तन का चक्रीय सिद्धांत	120-132
3	**खंड - 3 – टालकट पारसंस**	
	इकाई -1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ	133-149
	इकाई -2 सामाजिक क्रिया एवं सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत	150-168
	इकाई -3 प्रकार्यात्मक एवं सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत	169-198
4	**खंड - 4 – राबर्ट के. मर्टन**	
	इकाई –1 जीवन परिचय एवं कृतियाँ	199-210
	इकाई – 2 मध्य स्तरीय सिद्धांत	211-229
	इकाई – 3 संरचना-प्रकार्यात्मक विश्लेषण	230-242
	इकाई – 4 संदर्भ समूह, सामाजिक संरचना एवं आदर्श शून्यता का सिद्धांत	243-261

खंड-1 : कार्ल मार्क्स

इकाई-1 : जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई की रूपरेखा

1.1.01. उद्देश्य
1.1.02. प्रस्तावना
1.1.03. कार्ल मार्क्स का प्रारंभिक जीवन
1.1.04. प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा
1.1.05. व्यावसायिक जीवन एवं हेगेलियनवाद
1.1.06. शैक्षणिक जीवन
1.1.07. महत्वपूर्ण कृतियाँ
1.1.08. तत्कालीन पृष्ठभूमि
1.1.09. मार्क्स की समाजशास्त्र को देन
1.1.10. सारांश
1.1.11. बोध प्रश्न
1.1.12. संदर्भ ग्रंथ

1.1.01. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

- कार्ल मार्क्स के संपूर्ण जीवन के बारे में जान पाएँगे।
- ऐतिहासिक भौतिकवाद द्वंद्वात्मक भौतिकवाद हीगल के विचारों के प्रति मार्क्स के दृष्टिकोण को आप समझ पाएँगे।
- उन परिस्थितियों को आप समझ पाएँगे जिससे समाजशास्त्रीय विचारों के प्रति मार्क्स का झुकाव था।
- उस समय यूरोप की राजनैतिक परिस्थितियों के बारे में मार्क्स के विचार को समझ पाएँगे।

1.1.02. प्रस्तावना

कार्ल मार्क्स आधुनिक एवं वैज्ञानिक साम्यवाद तथा अधिकांश समाजवादी विचारधाराओं के सर्वमान्य जनक है। वैसे तो साम्यवाद की चर्चा अति प्राचीन है और मार्क्स के पहले प्लेटो, सेंट साइमन, फोरियर, लुई ब्लांक, रॉबर्ट आवेन आदि विद्वानों ने भी राष्ट्रीय संपत्ति के उचित वितरण तथा विभिन्न वर्गों में सहयोगी संबंध, पर बल देते हुए, समाज की नई व्यवस्था की योजना प्रस्तुत की थी(परंतु इन समाजवादी विचारकों के विचार मुख्यतः राजनीतिक अथवा धार्मिक आधारों पर आधारित थे। मार्क्स ने

ही सर्वप्रथम साम्यवाद को न केवल एक नवीन और मौलिक रूप प्रदान किया, बल्कि उसे ऐसे सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया जो कि दिन-प्रतिदिन दृढ़तर ही होता जा रहा है। आज शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ इस 'वाद' के मानने वाले लोग न हो। समग्र संसार के श्रमिक और क्रांतिकारी आंदोलन मार्क्स के प्रभावशाली विचारों से प्रभावित हुए है। इसलिए उन्हें अंतरराष्ट्रीय सर्वहारा के महान शिक्षक और नेता कहा जाता है। इस दृष्टि से मार्क्स संसार के न केवल महान अपितु युग प्रवर्तक विचारकों में से हैं। कार्ल मार्क्स ने ही सर्वप्रथम साम्यवाद की वैज्ञानिक विवेचना करके उसे संपूर्ण विश्व में प्रतिस्थापित करने का प्रयत्न किया। एक विचारक के रूप में मार्क्स का नाम इसलिए भी शीर्ष्थ है कि मार्क्स के चिंतन के कारण वैचारिक आधार पर संपूर्ण विश्व दो भागों में विभाजित हो गया - एक वह जो मार्क्स का समर्थक है तथा दूसरा वह जो मार्क्स का आलोचक है। लेकिन संसार में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल से लेकर आज तक कोई विद्वान ऐसा देखने को नहीं मिलता जिसने किसी न किसी संदर्भ में मार्क्स का उल्लेख न किया हो।

मार्क्स के चिंतन के उदय से लेकर आज तक संपूर्ण विश्व पूँजीवाद तथा साम्यवाद की स्थिति के बीच संघर्ष कर रहा है। आज रूस, जीन, क्यूबा तथा वियतनाम आदि ऐसे राष्ट्र है जो मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा पर आधारित है जबकि अमेरिका, फ्रांस, इंग्लैंड और जापान जेसे देशों में पूँजीवाद व्यवस्था वाले देशों की संख्या कम नहीं है लेकिन कोई भी पूँजीवादी देश ऐसा नहीं है जिसमें मार्क्स की विचारधारा पर आधारित साम्यवादी तत्त्वों का अस्तित्व न हो।

यह सच है कि अधिकांश लोग मार्क्स को एक राजनैतिक विचारक के रूप में जानते हैं लेकिन वास्तव में चिंतन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो किसी न किसी रूप में मार्क्स के विचारों से प्रभावित न हुआ हो। सच तो यह है कि मार्क्स के चिंतन ने राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, समाजशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र आदि सभी विषयों से संबंधित नए सिद्धांत प्रस्तुत किए तथा अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों को चुनौती दी। मार्क्स के विभिन्न लेखों से संपूर्ण बौद्धिक जगत में नए आयाम स्पष्ट होने लगे। इन्हीं विशेषताओं ने मार्क्स को एक अमर विचारक बना दिया। ई.स्तेपानोवा का दावा है कि मार्क्सवाद मानवता को पथ-प्रदर्शक ध्रुव-तारे की भाँति कम्युनिज्म का रास्ता दिखा रहा है।

1.1.03. कार्ल मार्क्स का प्रारंभिक जीवन

कार्ल मार्क्स का पूरा नाम कार्ल हेनरिख मार्क्स था। कार्ल मार्क्स का जन्म 5 मई, सन् 1818 को प्रशा देश के जर्मन भाषी क्षेत्र ट्रीयर में एक यहूदी परिवार में हुआ था। उनके पिता वकील थे, जिन्होंने 1824 में प्रोटेस्टेट ईसाई धर्म अपना लिया था। कार्ल मार्क्स की माँ कर नाम हेनरी प्रेसबर्ग था। कार्ल मार्क्स एक मध्यम श्रेणी के परिवार ट्रायर में जन्मे, मार्क्स ने कानून और हेगेलियन दर्शन का अध्ययन किया। अपने राजनीतिक प्रकाशनों के कारण मार्क्स स्टेटलेस बन गया। और लंदन में निर्वासन में रहा, जहाँ उन्होंने जर्मन विचारक फ्रेडरिक एंगेल्स के सहयोग से अपना विचार विकसित करना जारी रखा और अपने लेख प्रकाशित किए। उनकी सबसे प्रसिद्ध किताब 1848 पुस्तिका, कम्युनिस्ट घोषणापत्र और दास

कैपिटल जो कि तीन खंडों में प्रकाशित है। मार्क्स के रजनीतिक और दार्शनिक विचारों के बाद के बौद्धिक, आर्थिक और राजनीतिक इतिहास पर भारी प्रभाव पड़ा और उनका नाम विशेष एक संज्ञा और सामाजिक सिद्धांत के स्कूल के रूप में उपयोग किया गया है। समाज, अर्थशास्त्र और राजनीति के बारे में मार्क्स के सिद्धांत को सामूहिक रूप से समझा जाता है कि मानव समाज वर्ग संघर्ष के माध्यम से विकसित होता है। पूँजीवाद में यह सत्तारूढ़ वर्गों (बुर्जुआ के रूप में जाना जाता है।) के बीच संघर्ष में प्रकट होता है। जो उत्पादन के साधनों और मजदूर वर्गों (सर्वहारा के रूप में जाना जाता है।) को नियंत्रित करता है। जो मजदूरी के बदले में अपनी श्रम शक्ति बेचकर इन साधनों को सक्षम बनाता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के रूप में जाने वाले एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण को नियोजित करते हुए मार्क्स ने भविष्यवाणी की कि पिछले सामाजिक-आर्थिक प्रणालियों की तरह पूँजीवाद ने आंतरिक तनाव पैदा किए हैं, जो एक नई प्रणाली द्वारा अपने विनाश और प्रतिस्थापन का कारण बनेंगे : समाजवाद। मार्क्स के लिए पूँजीवाद के तहत वर्ग विरोधी प्रतिद्वंदियों, इसकी अस्थिरता और संकट प्रवण प्रकृति के कारण, मजदूर वर्ग के वर्ग चेतना के विकास को प्रेरित करेगा, जिससे राजनीतिक शक्ति पर विजय प्राप्त हो जाएगी और आखिरकार एक वर्गीकृत कम्युनिस्ट समाज की स्थापना होगी उत्पादकों का एक संघ। मार्क्स ने अपने कार्यान्वयन के लिए सक्रिय रूप से दबाया, बहस करते हुए कि मजदूर वर्ग को पूँजीवाद को खत्म करने और सामाजिक आर्थिक मुक्ति लाने के लिए संगठित क्रांतिकारी कार्यवाही करनी चाहिए। मार्क्स को मानव इतिहास में सबसे प्रभावशाली आँकड़ों में से एक रूप में वर्णित किया गया है और मार्क्स के काम की प्रशंसा और आलोचना दोनों की गई है। अर्थशास्त्र में उनके कार्य ने श्रम की वर्तमान समझ और पूँजी से इसके संबंध और बाद के आर्थिक विचारों के आधार पर आधार रखा। दुनिया भर में कई बौद्धिक, श्रमिक संघ, कलाकार और राजनीतिक दल मार्क्स के काम से प्रभावित हुए हैं। जिनमें से कई अपने विचारों को संशोधित या अनुकूलित कर रहे हैं। मार्क्स आमतौर पर आधुनिक सामाजिक विज्ञान के प्रमुख वास्तुकारों में से एक के रूप में उद्धृत किया जाता है।

1.1.04. प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा (1818-1836)

कार्ल मार्क्स जातीय रूप से यहूदी थे, पर उनके दादा एक डच रब्बी थे, जबकि उनकी पैतृक रेखा ने 1723 से ट्रायर्स के खरगोशों की आपूर्ति की थी, उनके दादा मीयर हेलवी मार्क्स ने एक भूमिका निभाई थी। उनके पिता हर्शेल के नाम से जाने वाले बच्चे रूप में धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्राप्त करने के लिए पहली पंक्ति में थे और वह एक वकील बन गए और अपेक्षाकृत अमीर और मध्यम वर्ग के अस्तित्व में रहते थे, उनके परिवार के पास कई मोसेल अंगूर के मालिक थे अपने बेटे के जन्म से पहले और राइनलैंड में यहूदी मुक्ति के निरसन के बाद हर्शेल यहूदी धर्म से परिवर्तित होकर एशिया राज्य के इवैंजेलिकल चर्च में शमिल हो गए जो यिनिश हर्शेल पर हेनरिक के जर्मन उपनाम को लेकर आए। जर्मन रोमांटिक कवि हेनरिक हेन के एक बार हटाए जाने पर मार्क्स तीसरा चचेरा भाई था, जो राइनलैंड में जर्मन यहूदी परिवार में पैदा हुआ था, जिसके साथ वह बाद के जीवन में लगातार संवाददाता बन गया। हेनरिक मार्क्स गैर धार्मिक प्रबुद्ध व्यक्ति थे, जो दार्शनिक इमानुअल कांत और वोल्टायर के विचारों में रुचि रखते थे। इसके पश्चात् सन्

1837 से मार्क्स ने बर्लिन विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करना आरंभ कर दिया। सन् 1841 में उन्होंने जेनेवा विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. की उपाधि ग्रहण की। अपनी विश्वविद्यालय शिक्षा के दौरान मार्क्स पर हीगेल के विचारों का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। इसका कारण यह था कि जिस समय मार्क्स उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहें थे उस समय विश्वविद्यालय में हीगेल के समर्थकों का गुट बहुत प्रभावशाली था। हीगेल के सार्थक दर्शन तथा तर्कपूर्ण विचारों ने मार्क्स को जल्दी ही अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

आरंभ में मार्क्स का विचार किसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में कार्य करने का था लेकिन यह अवसर प्राप्त न हो सकने के कारण मार्क्स ने सन् 1842 में राइन प्रांत (Rhine Province) की एक पत्रिका में संपादक के रूप में कार्य करना आरंभ कर दिया। इस पत्रिका के माध्यम से मार्क्स ने तत्कालीन जर्मनी में पाए जाने वाले राजनैतिक और धार्मिक उत्पीड़न के विरूद्ध क्रांतिकारी विचारक के रूप में मान्यता अवश्य मिलने लगी लेकिन सन् 1843 में उन्हे इस पत्रिका के संपादक पद से इस्तीफा देना पड़ा। इसी वर्ष मार्क्स जर्मनी को छोड़कर पेरिस चले गए। यहीं सन् 1844 में उनकी भेंट फेडरिक एंगिल्स (Friedrich Engels) से हुई। मार्क्स और एंगिल्स का यह वह ऐतिहासिक और बौद्धिक मिलन था जिसने संसार के सामने चिंतन के नए आयाम प्रस्तुत कर दिए।

कार्ल मार्क्स अपने प्रारंभिक जीवन से ही एक क्रांतिकारी विचारक, दार्शनिक लेखक थे। अपनी रचनाओं के द्वारा उन्होंने न केवल इतिहास को एक नया मोड़ दे दिया बल्कि एक ऐसे दृष्टिकोण को भी विकसित किया जिसके द्वारा समाज की संरचना तथा विभन्न वर्गों के संबंधों को नए सिरे से समझा जा सके। अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण उन्हें एक राज्य से दूसरे राज्य में भटकना पड़ा तथा अपने वैयक्तिक तथा पारिवारिक सुखों का त्याग करना पड़ा। असीम निर्धनता के बाद भी मार्क्स अपने उन विचारों को सैद्धांतिक रूप देने में लगे रहे जो उनके व्यावहारिक अनुभवों तथा जीवन के संघर्षो का परिणाम थे। यही कारण है कि मार्क्स के चिंतन में सैद्धांतिकता का पक्ष उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि समाज के पुनर्गठन की एक व्यवस्थित योजना का मार्क्स अपने जीवन पर्यंत कुछ न कुछ लिखते रहें। यह सच है कि पुस्तकों के रूप में उन्होंने अपने विचारों को बहुत कम व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया लेकिन उन्होंने जो लेख, तथा पत्र लिखे वे आज भी मार्क्स के चिंतन के महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। मार्क्स के नाम से जो पुस्तकें प्रकाशित हुई उन्हें पांडुलिपि का रूप देने में एंगेल्स ने ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मार्क्स की रचनाओं में जो कृतियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण है, उनके सार तत्व को इस प्रकार समझा जा सकता है।

1.1.05. व्यावसायिक जीवन एवं हेगेलियनवाद (1836-1843)

ट्रायर में गर्मी और शरद ऋतु 1836 में व्यतीत करते हुए मार्क्स अपने अध्ययन और उनके जीवन के बारे में अधिक गंभीर हो गया। बहु जेनी वॉल वेस्टफलेन से जुड़ गए जो एशिया शासक वर्ग के एक शिक्षित बेरोजगारी थे, जो बचपन में मार्क्स को जानते थे। जैसे ही उन्होंने मार्क्स के साथ रहने के लिए एक युवा अभिजात वर्ग के साथ अपनी तोड़ दी थी, उनके रिश्ते सामाजिक और वर्ग की उत्पत्ति के बीच मतभेदों के कारण सामाजिक रूप से विवादस्पद थे, लेकिन मार्क्स ने अपने पिता लुडविग वॉन वेस्टफलेन

(उदारवादी अभिजात वर्ग) से मित्रता की और बाद में अपने डाक्टरेट को समर्पित किया। 19 जून, 1843 को अपनी सगाई के सात साल बाद उन्होंने क्रैन्जेय में प्रोस्टेस्टेंट चर्च में विवाह किया। अक्टूबर 1836 में मार्क्स बर्लिन पहुँचे, विश्वविद्यालय के संकाय में मैट्रिकुलेटिंग और मिट्टेलस्ट्रैस में एक कमरा किराये पर लिया। कानून का अध्ययन करने के बावजूद भी वे दर्शन विषय के प्रति अति गंभीर थे और दोनों को गठबंधन करने का एक तरीका तलाशते थे, वे मानते थे कि 'दर्शन के बिना कुछ भी पूरा नहीं किया जा सकता'। मार्क्स हाल ही में मृत दार्शनिक जीडब्ल्यूएफ हेगेल में दिलचस्पी लिया, जिनके विचारों का तब यूरोपीय दार्शनिक मंडलियों में व्यापक रूप से बहस की गई। मार्क्स स्टैलाऊ में एक डाक्टर के क्लब में छात्रों के समूह में शामिल हो गए। जिसने हेगेलियन विचारों पर चर्चा की गई और उनके माध्यम से 1837 में युवा हेगेलियन के नाम से जाना जाने वाले कट्टरपंथी विचारकों के समूह के साथ शामिल हो गए। वे लुडविग के आस-पास इकट्ठे हुए और ब्रूनो बाउर, मार्क्स के साथ एडाल्फ स्टेनबर्ग के साथ विशेष रूप से करीबी दोस्ती विकसित कर रहा है। मार्क्स की तरह यंग हेगेलियन हेगेल की आध्यात्मिक मान्यताओं की आलोचना करते थे,

1. हीगल का प्रभाव (Influence of Hegal) - मार्क्स के विचारों पर हीगल के दर्शन का व्यापक प्रभाव पड़ा। उस समय बोन और बर्लिन विश्वविद्यालयों में हीगल के विचारों का बहुत बोल-बाला था। इन विश्वविद्यालयों से संबद्ध रहने के कारण मार्क्स ने यह महसूस करना आरंभ कर दिया कि संसार में घटित होने वाली विभिन्न घटनाएँ एक ऐसे क्रम में घटित होती है जिसे विकास, परिवर्तन तथा विनाश की प्रक्रिया द्वारा समझा जा समता है। हीगल ने इस दशा के लिए कुछ विरोधी शक्तियों के संघर्ष को प्रमुख कारण के रूप में स्पष्ट किया : हीगल के इस विचार ने कि वाद (Thesis) प्रतिवाद (Anti-thesis) तथा समन्वय (Synthesis) के माध्यम से ही विभिन्न घटनाएँ घटित होती है, मार्क्स के विचारों को अत्यधिक प्रभावित किया। यह सच है कि मार्क्स के विचार हीगल से बहुत भिन्न है लेकिन मार्क्स के चिंतन को प्रभावित करने में हीगल का निश्चय दर्शन ही बहुत महत्त्वपूर्ण रहा।

2. फ्रांस का समाजवाद (French Socialism) - जर्मनी छोड़ने के बाद मार्क्स जब पेरिस गए तब उन्होंने पाया कि फ्रांस की क्रांति के फलस्वरूप वहाँ एक ऐसे समाजवाद का प्रभाव बढ़ रहा था जिसमें व्यक्ति तथा सामाजिक संस्थाओं पर समाजवाद से मार्क्स की यह धारणा और अधिक दृढ़ होने लगी कि धनी और निर्धन वर्ग के परस्पर विरोधी स्पार्थ ही वर्ग संघर्ष का कारण है। इस आधार पर बाद में मार्क्स ने वर्ग संघर्ष के एक व्यवस्थित सिद्धांत को प्रस्तुत किया।

3. इंग्लैंड के समाजवादियों का प्रभाव (Influence of English socialists) - मार्क्स के चिंतन को प्रभावित करने का एक प्रमुख स्रोत इंग्लैंड के वे समाजवादी थे जो संपत्ति के समान वितरण की आवाज उठाकर श्रमिकों और किसानों की दशा में सुधार करना चाहते थे। इनमें राबर्ट ओवन, हॉगकिन तथा थॉमसन (Thompson) का नाम प्रमुख है। हॉगकिन तथा थॉमसन का विचार था कि प्रत्येक श्रमिक के श्रम का एक विशेष मूल्य होता है तथा इसकी प्रकृति उन वस्तुओं की तरह होती है जिन्हें एक-दूसरे से बदला जा सकता है। मार्क्स द्वारा प्रस्तुत 'अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत' बहुत बड़ी सीमा तक इसी

विचारधारा से प्रभावित हुआ। कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि रिकार्डो के विचारों ने भी मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत को प्रभावित किया।

4. यूरोप की तत्कालीन दशाएँ (Conditions of Europe) - मार्क्स के चिंतन पर तत्कालीन यूरोप की दशाओं का भी एक स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में यूरोप की अधकचरी औद्योगिक क्रांति के कारण दस्तकारों, किसानों और श्रमिकों की दशा बहुत बिगड़ने लगी थी। इस समय समाज में एक ऐसे श्रमिक वर्ग का निर्माण होने लगा था। जो संपूर्ण उत्पादन करने के बाद भी उत्पादन के लक्ष्यों से वंचित था। यूरोप के अनेक देशों में सामंतों और किसानों के संबंध बहुत कटु हो चुके थे। इसका तात्पर्य है कि यूरोप में एक और मरता हुआ सामंतवाद किसानों के शोषण का प्रमुख कारण था तो दूसरी ओर अधकचरा पूँजीवाद श्रमिकों की दशा को दयनीय बना रहा था। इन सभी दशओं का मार्क्स के चिंतन पर गहरा प्रभाव पड़ा मार्क्स अकादमिक करियर पर विचार कर रहा था, लेकिन इस मार्ग को शास्त्रीय उदारवाद और युवा हेगेलियनों के सरकार के बढ़ते विरोध से रोक दिया गया था। मार्क्स 1842 में कोलोन चले गए, जहाँ वह एक पत्रकार बन गए। कट्टरपंथी अखबार 'रिनिशशे' के लिए लेखन, समाजवाद पर उनके प्रारंभिक विचारों और अर्थशास्त्र में उनके विकासशील हित को व्यक्त करते हुए मार्क्स ने उदारवादी और समाजवादी दोनों आंदोलनों के साथ-साथ अप्रभावी या प्रति उत्पादक विचारों के साथ-साथ उदारवादी और समाजवादी आंदोलनों के आँकड़ों की आलोचना की समाचार पत्र ने प्रशिया सरकार के सेंसर का ध्यान आकर्षित किया, जिन्होंने प्रिंटिग से पहले राजद्रोही सामाग्री के लिए हर मुद्दे की जाँच की, क्योंकि मार्क्स ने शोक व्यक्त किया कि हमारे समाचार पत्र को पुलिस को स्नीफ करने के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए और गैर ईसाई या गैर-प्रशिया समाचार पत्र को प्रकट होने की अनुमति नहीं है। निरीश रूसी राजशाही की दृढ़ता से आलोचना के एक लेख प्रकाशित करने के बाद तेसर निकोलस को मैंने अनुरोध किया कि इसे प्रतिबंधित किया जाए और प्रशिया सरकार ने 1843 में इसका अनुपालन किया।

शैक्षणिक जीवन

1843 में, मार्क्स एक नए कट्टरपंथी वामपंथी पेरिस के अखबार के सह-संस्थापक बने, फिर जर्मन समाजवादी अर्नोल्ड रूज ने जर्मन और फ्रेंच कट्टरपंथियों को एक साथ लाने के लिए स्थापित किया। इस प्रकार मार्क्स और उसकी पत्नी 1843 में पेरिस चले गए। प्रारंभ में रूगे और उनकी पत्नी के साथ 23 रूई वेनों में सांप्रदायिक रूप से रहने के लिए, उन्होंने जीवित स्थितियों को मुश्किल पाया, इसलिए 1844 में उनकी बेटी जेनी के जन्म के बाद बाहर चले गए। हालाँकि फ्रांस जर्मन दोनों राज्यों के लेखकों को आकर्षित करने के लिए जहाँ पर का उत्तराधिकारी था और एकमात्र गैर जर्मन लेखक निर्वासित रूसी अराजकतावादी सामूहिक मिखाइल बाकुनिन था।

मार्क्स ने पेपर में दो निबंधों का योगदान दिया - "हेगेल के फिलॉसफी ऑफ द क्रिटिक ऑफ द क्रिटिक टू द कंटिट्यूशन टू द राइटिक" और यहूदी प्रश्न पर बाद में उन्होंने अपनी धारणा पेश की कि सर्वहारा एक क्रांतिकारी था साम्यवाद के अपने गले को मजबूर करना और चिंहित करना। केवल एक मुद्दा प्रकाशित हुआ था, लेकिन यह काफी हद तक सफल रहा, मुख्य रूप से हेनरिक हेइन की व्यंगात्मक

गंधों को शामिल करने के कारण बावारिया के किंग लुडविल पर जर्मन राज्यों ने इसे प्रतिबंधित करने और आयातित प्रतियों को जब्त करने के लिए प्रेरित किया। पेपर के पतन के बाद, मार्क्स ने एकमात्र बिना सेंसर किए गए जर्मन-भाषा कट्टरपंथी समाचार पत्र के लिए लिखना शुरू किया। पेरिस के आधार पर पेपर लीग ऑफ द जस्ट श्रमिकों और कारीगरों के एक उदारवादी समाजवादी गुप्त समाज से जुड़ा हुआ था। मार्क्स ने अपनी कुछ बैठकों में भाग लिया लेकिन शामिल नहीं हुआ। मार्क्स ने उदारवादी भौतिकवादी के हेगेलियन और फयेरबाचियन के विचारों के आधार पर समाजवाद पर अपने विचारों को परिष्कृत किया, साथ ही उदारवादियों और यूरोप में चल रहे अन्य समाजवादियों की आलोचना करते हुए 28 अगस्त 1844 को मार्क्स ने समाजवादी फ्रेडरिक एंगेल्स से कैफे डे ला रेगेंस में मुलाकात की जो आजीवन दोस्ती शुरू कर दिया।

एंगेल्स ने हाल ही में मार्क्स को 1844 में इंग्लैंड में बर्किंग क्लास की द कंडीशन ऑफ द वर्किंग क्लास प्रकाशित किया, मार्क्स को विश्वास दिलाता है कि मजदूर वर्ग इतिहास में अंतिम क्रांति का एजेंट और साधन होगा। जल्द ही मार्क्स ओर एंगेल्स और पूर्व मित्र ब्रूनो बाउर के दार्शनिक विचारों की आलोचना पर सहयोग कर रहे थे। यह काम 1845 में पवित्र परिवार के रूप में प्रकाशित हुआ था। बाउर की आलोचना हालाँकि मार्क्स यंग हेगेलियन मैक्स स्टिरनर और लुडविग फायरबाख के विचारों से तेजी से प्रभावित था, लेकिन आखिरकार मार्क्स और एंगेल्स ने फेयरबाचयन भौतिकवाद को छोड़ दिया।

उस समय के दौरान वह पेरिस में 38 रूए वार्नो में रहते थे। मार्क्स ने राजनीतिक अर्थव्यवस्था (एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो जेंस मिल इत्यादि) के गहन अध्ययन के दौरान पेरिस में इस समय मार्क्स ने मार्क्सवाद के सभी प्रमुख घटक 1844 के शरद ऋतु में थे। मार्क्स लगातार राजनीतिक अर्थव्यवस्था के अपने अध्ययन से दूर खींच गया था। न केवल समय की सामान्य दैनिक माँगों के साथ बल्कि नागरिकों की संभावित क्रांतिकारी लोकप्रिय विद्रोह के वर्षों के दौरान एक कट्टरपंथी समाचार पत्र और बाद में एक राजनीतिक दल के प्रयासों को व्यवस्थित और निर्देशित करना। फिर भी मार्क्स हमेशा अपने आर्थिक अध्ययनों पर वापस आ गया था।

मार्क्स ने पूँजीवाद के आंतरिक कार्यो को समझने की माँग की 1844 की आर्थिक और दार्शनिक पांडुलिपियों को अप्रैल और अगस्त 1844 के बीच लिखा गया था, लेकिन जल्द ही मार्क्स ने स्वीकार किया कि पांडुलिपियों लुडविग फायरबाक के कुछ असंगत विचारों से प्रभावित था। तदनुसार मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद के पक्ष में फायरबाक के दर्शन के साथ तोड़ने की आवश्कता को पहचाना इस प्रकार पेरिस से ब्रुसेल्स जोन के बाद एक साल बाद (अप्रैल 1845 में) मार्क्स ने अपने ग्यारह फीडबैक पर थीसिस लिखा। जिसमें कहा गया है कि दार्शनिकों ने केवल दुनिया को विभिन्न तरीकों से व्याख्या की है, किंतु इसे बदलना है, इस काम में मार्क्स की भौतिकवादी आलोचना आदर्शवाद समग्र रूप से भौतिक दुनिया के ऊपर अमूर्त वास्तविकता डालने के लिए दर्शन की आलोचना करते हुए इस प्रकार मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद में पहली झलक पेश की गई, यह तर्क है कि दुनिया को विचारों से नहीं बल्कि वास्तविक भौतिक, भौतिक गतिविधि और अभ्यास से बदला जाता है। 1845 में प्रशिया राजा से अनुरोध प्राप्त करने के बाद फ्रांसीसी सरकार ने वोर्वार्ट्स को बंद कर दिया आंतरिक मंत्र फ्रैंकोइस गिजोट के साथ,

फ्रांस से मार्क्स को निष्कासित कर दिया गया। इस बिंदु पर मार्क्स पेरिस से ब्रुसेल्स चले गए, जहाँ मार्क्स ने एक बार फिर पूँजीवाद और राजनीतिक अर्थव्यवस्था का अध्यय जारी रखने की आशा की थी।

ब्रुसेल्स: 1845-1848

फ्रांस में रहने या जर्मनी जाने के लिए असमर्थ, मार्क्स ने फरवरी 1845 में बेल्जियम में ब्रुसेल्स में जाने का फैसला किया। हालाँकि बेल्जियम में रहने के लिए उसे समकालीन राजनीति के विषय पर कुछ भी प्रकाशित न करने का वचन देना पड़ा।

ब्रुसेल्स में मार्क्स पूरे योरोप से अन्य निर्वासित समाजवादियों से जुड़ा हुआ है, जिसमें मूसा, हेस कार्ल हेनजेन और जोसफ वेदमेयर शामिल हैं। अप्रैल 1845 में एंगेल्स जर्मनी में बार्मेन से मार्क्स में शामिल होने और ब्रुसेल्स में घर की तलाश करने के लिए लीग ऑफ द लीग के सदस्यों के बढ़ते कैडर से जुड़ गए। बाद में मैरी बर्स, एंगेल्स के लंबे समय के साथी ब्रुसेल्स में शामिल होने के के लिए मेनचेस्टर इंग्लैंड छोड़ दिया।

जुलाई 1845 के मध्य में मार्क्स और एंगेल्स ने ब्रिटेन में समाजवादी आंदोलन, चाटिस्ट के नेताओं का दौरा करने के लिए इंग्लैंड के लिए ब्रुसेल्स छोड़ दिया।

जुलाई 1845 के मध्य में मार्क्स और एंगेल्स की पहली इंग्लैंड यात्रा थी। एंगेल्स ने नवंबर 1842 से अगस्त 1844 तक मेनचेस्टर में दो साल पहले ही बिताए थे न केवल अँग्रेजी भाषा को ही जानते थे, उन्होंने कई चर्टिस्ट नेताओं के साथ घनिष्ठ संबंध भी विकसित किए थे दरअसल एंगेल्स कई चार्टिस्ट और समाजवादी अँग्रेजी समाचार पत्रों के लिए संवाददाता के रूप में सेवा कर रहे थे। मार्क्स ने यात्रा का इस्तेमाल लंदन और मेनचेस्टर मं विभिन्न पुस्तकालयों में अध्ययन के लिए उपलब्ध आर्थिक संसाधनों की जाँच करने का अवसर के रूप में किया एंगेल्स के सहयोग से मार्क्स ने एक पुस्तक लिखने के बारे में भी सेट किया जिसे अक्सर ऐतिहासिक भौतिकवाद, जर्मन विचारधारा की अवधारण का सबसे अच्छा उपचार माना जाता है। इस काम में मार्क्स ने लुडविग फेयरबाक, ब्रूनो बाउर, मैक्स स्टिरनर और शेष युवा हेगेलियनों के साथ तोड़ दिया, जबकि उन्होंने कार्ल गुरनाम ओर अन्य सच्चे समाजवादियों के साथ भी तोड़ दिया। जिनके आदर्श अभी भी आदर्शवाद पर आधारित थे। जर्मन विचारधारा में मार्क्स और एंगेल्स ने अंततः अपने दर्शन को पूरा किया, जो पूरी तरह भौतिकवाद पर इतिहास में एकमात्र मोटर बल क रूप में आधारित था जर्मन विचारधारा एक विनोदी व्यंगात्मक रूप में लिखी गई है लेकिन यहाँ तक कि इस व्यंगात्मक रूप में सेंसरशिप से काम को बचाया नही है उनके कई अन्य शुरूआती लेखन की तरह जर्मन विचारधारा मार्क्स के जीवनकाल में प्रकाशित नहीं की जाएगी और केवल 1932 में प्रकाशित की जाएगी।

मौत:

दिसंबर 1881 में अपनी पत्नी जेनी की मृत्यु के बाद मार्क्स ने एक कैटर विकसित किया गया वह अपने जीवन के पिछले 15 संग्रहालय से बीमार स्वास्थ्य में रखे थे। अंततः 14 मार्च 1883 (64 वर्ष) को लंदन में उन्हें परिवार और दोस्तों ने अज्ञात और नास्तिकों के लिए आरक्षित क्षेत्र मेहाईगेट कब्रिस्तान

में उनके शरीर को दफन कर दिया 14 मार्च को दोपहर में एक चौथाई से तीन बजे सबसे महान विचारक सोंचने के लिए बंद कर दिया।

1.1.07. महत्वपूर्ण कृतियाँ

कार्ल मार्क्स ने अपने जीवन में खूब लेखन का काम किया। संभवतः उनकी प्रथम गंभीर पुस्तक अर्थशास्त्र एवं दर्शन संबंधी पांडुलिपि 1844 थी जो कुछ समय बाद खो गई वह बाद में मिली एवं 1932 में उसे गुद्रीसे नाम से प्रकाशित किया गया। 1845 में एंगेल्स के साथ मिलकर मार्क्स ने पहले जर्मन दार्शनिकों की आलोचना करते हुए द होली फैमिली और फिर जर्मन आइडियोलॉजी नामक पुस्तकें लिखी। 1847 में उन्होंने प्रुदो की पुस्तक द फिलासफी ऑफ पावर्टी की निर्मम आलोचना करते हुए दि पावर्टी ऑफ फिलासफी पुस्तक लिखी।

1848 में मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिष्ट मैनीफेस्टो लिखा। इसके बाद 1850 में रेवोलुशन ऑफ दि एन्टीथ ब्रुमेयर लिखा।

1859 में उन्होंने द कंट्रीब्यूशन टु दि क्रिटिक आफॅ पोलिटिकल इकोनॉमी लिखी।

इस पुस्तक में उन्होंने समाजशास्त्रीय आधारों की विस्तार से चर्चा की।

1867 में उनकी सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक दास कैपिटल का प्रकाशन हुआ।

उनके जीवनकाल में उनकी कोई अन्य पुस्तक प्रकाशित न हो सकी। उनकी तैयारी पांडुलिपियों के आधार पर उनके मित्र फ्रेडरिक एंगेल्स ने पूँजी का द्वितीय एवं तृतीय खंड प्रकाशित किया। इन्हीं पुस्तकों से जुड़ी हुई मार्क्स की एक पुस्तक दि थियरी ऑफ सरप्लस वैल्यू का प्रकाशन भी एंगेल्स ने करवाया।

1. दर्शन की दरिद्रता (Poverty of Philosophy)- मार्क्स के समकालीन विचारकों में प्रोधों (Prodhon) एक प्रमुख अराजकतावादी विद्वान थे। प्रोधों पर कोपोकिन के विचारों का प्रभाव पड़ा था। अतः प्रोधों तथा दूसरे अराजकतावादी विद्वान सत्ता को एक आवश्यक बुराई के रूप में देखते थे। संभवतः इसीलिए यह विद्वान मार्क्स के इस विचार से सहमत नहीं थे प्रोधों ने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम दरिद्रता का दर्शन (Philosophy of Poverty) था। इस पुस्तक में प्रोधों ने दरिद्रता के बारे में अपने तार्किक विचार प्रस्तुत किए थे। मार्क्स ने यह महसूस किया कि प्रोधों की यह पुस्तक सर्वहारा वर्ग की क्रांति में बाधक हो सकती है। अतः इस पुस्तक के प्रन्युत्तर में उन्होंने 'दर्शन की दरिद्रता' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने न केवल प्रोधों के विचारों का खंडन किया बल्कि यह भी बताया कि प्रोधों का अराजकतावादी दर्शन कितना दुर्बल है। मार्क्स की इस पुस्तक का प्रकाशन सर्वप्रथम सन् **1847** में हुआ।

2. साम्यवादी घोषणा-पत्र (Communist Manifesto) **-** साम्यवादी लोग की दूसरी बैठक सन् **1847** में हुई। इस बैठक में मार्क्स ने कुछ प्रस्ताव रखे जिनका प्रारूप (Draft) मार्क्स तथा ऐंगेल्स ने मिलकर तैयार किया था। बाद में इस प्रस्ताव पत्र को संशोधित रूप में प्रकाशित किया गया। सन् **1848** में प्रकाशित यह लघु पुस्तिका साम्यवादीयों के लिए सबसे प्रमुख मार्गदर्शन है जिसमें अनेक विचारोत्तेजक बातें लिखी हुई हैं। यह विश्व भर के साम्यवादियों के लिए एक आचरण संहिता के समान है तथा पूँजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध एक खुली चुनौती है। रेमंड ऐरों ने लिखा है कि इस पुस्तक के द्वारा मार्क्स के विचार

पहली बार विश्व के सामने स्पष्ट हुए। इस आधार पर ऐरों ने इस पुस्तक को 'प्रचार का मसाजशास्त्रीय साहित्य' के नाम से संबोधित किया। इस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर मार्क्स के विचारों का निचोड़ इस एक वाक्या में अंकित है कि दुनिया का आज तक का इतिहस वर्ग-संर्घष का इतिहास है।'

3. पूँजी (Das Capital)& - 'पूँजी' नाम से प्रकाशित मार्क्स की यह पुस्तक साम्यवादियों की वाइबिल के रूप में प्रतिष्ठित है। रेमंड ऐरों ने इस पुस्तक के बारे में लिखते हुए कहा है कि यह पुस्तक मार्क्स के विचारों का हृदय' है। इस पुस्तक तीन खंडों में प्रकाशित हुई। पहला खंड मार्क्स के जीवन काल में सन् **1867** में ही प्रकाशित हो गया था जबकि दूसरा तथा तीसरा खंड मार्क्स की मृत्यु के बाद सन् **1885** तथा **1894** में ऐंगेल्स द्वारा प्रकारशित करवाया गया। इस पुस्तक में दिए गए सभी विचार स्वयं में दतने सारगर्भित तथा तार्किक है कि केवल कुछ शब्दों में ही उनका उल्लेख नहीं किया जा सकता। इससे संबंधित कुछ अंशों का उल्लेख हम मार्क्स द्वारा प्रस्तुत सिद्धांतों के आगामी विवेचन के अंतर्गत करेंगे।

4. राजनैतिक अर्थ-व्यवस्था की समालोचना में योगदान' (Contribution to Critique of Political Economy) - इस पुस्तक में मार्क्स ने राजनैतिक तथा आर्थिक संरचना के बीच पाए जाने वाले संबंधों की विस्तृत विवेचना की है। पुस्तक में दिए गए सभी विचार मार्क्स के चिंतन को दृढ़ता प्रदान करने वाले महत्त्वपूर्ण आधार सिद्ध हुए। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् **1859** में हुआ था।

उपर्युक्त मुख्य ग्रंथों के अतिरिक्त मार्क्स द्वारा लिखित कुछ अन्य प्रमुख ग्रंथों तथा लेखों में निम्नांकित का नाम अधिक महत्त्वपूर्ण हैः

- पवित्र परिवार (Holy Family)
- जर्मन वैचारिकी (The German Ideology)
- राइन गजट में प्रकाशित लेख (Published matter in Rhine Gudget)
- अराजकतावादियों को लिखे गए पत्र (Letters to anarchists)
- फ्रांस में वर्ग संघर्ष (Class struggle in France)

उपर्युक्त पुस्तकों, लेखों तथा पत्रों के अतिात्त कुछ अन्य कृतियाँ भी मार्क्स के स्प्ष्ट विचारों तथा सशक्त लेखनी को स्पष्ट करती हैं। अपने संपूर्ण जीवन में मार्क्स ने जो कुछ भी कहा और लिखा, वह सब सर्वहारा वर्ग की क्रांति के लिए समर्पित हैं।

मार्क्स के चिंतन के स्रोत **(Sources of Marxian Thought)** मार्क्स का चिंतन किसी एक समाज की दशाओं अथवा चिंतन की किसी विशेष धारा से ही प्रभावित नहीं हुआ बल्कि संसार के विभिन्न समाजों की अनेक दशाओं ने मार्क्स के चिंतन को प्रभावित किया है। इनमें से कुछ प्रमुख स्रोतों को समझकर ही सामाजिक चिंतन में मार्क्स के योगदान का वास्तविक मूल्यांकन किया जा सकता हैं।मार्क्स की वे कृतियाँ जिनका अँग्रेजी में अनुवाद हो चुका है, हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं।:

- Capital ed. Frederick Engles and trans Samual Moore and Edward Aveling. 3 Vols.(London(Lawrence and Wishart, 1954-60.

- A Contribution to the Critique of Political Economy, trans. N.I. Stone, Chicago : Charles M. Kerr, 1904.
- *Economic and Philiosophic Manuscripts of 1844,* ed.Dirk J. Struik and trans. Mart in Milligan. Londonl Lawrence and Wishart, 1959.
- *The Poverty of philosophy,* Londonl Lawrence and Wishart, 1956.
- *Marx Engles, Selected works.* 2 vols(moscow(Foreign Languages Publishing House, 1955.
- Marx Engles, *Selected Correspondence* 1846-1895 Londonl Lawrence and Wishart, 1956.

1.1.08. तत्कालीन बौद्धिक पृष्ठभूमि

मार्क्स के विचारों के प्रेरणा स्त्रोतों के संबंध में यह लोकप्रिय मत है कि उन्होंने तीन स्त्रोतों से अपने विचारों से अपने विचारों को विकसित किया -

1. जर्मन विचारवाद एवं विशेष रूप से फ्रेडरिक हीगल के विचारों को मार्क्स ने ग्रहण कर उन्हें रूपांतरित किया। अनेक विद्वान यह कहते हैं कि यदि हीगल नहीं होते तब मार्क्स भी नहीं होते। कार्ल मार्क्स ने द्वंद्वात्मकता की धारणा को हीगल से अपनाया। उन्होंने इस धारणा का प्रयोग भैतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में किया। इसलिए कहा कि हीगल सर के बल खड़े थे। हमने उन्हें पैरों के बल खड़ा कर दिया है।
2. दूसरी प्रेरणा मार्क्स की फ्रांसीसी समाजवादी परंपरा थी। मार्क्स फ्रांस में आकर एव फ्रांसीसी विचारों के प्रभाव में ही समाजवादी हुए। संभवतः सेंट साइमन से उन्होंने समाजवाद की धारणा को अपना लिया।
3. तीसरी प्रेरणा मार्क्स की ब्रिटिश राजनैतिक अर्थशास्त्र की थी जिसमें उन्होंने एड्म स्मिथ एवं डेविड रिकार्डो के विचारों को पर्याप्त महत्त्व दिया।

व्यापक रूप से मार्क्स के बौद्धिक विकास में ये प्रभाव सबसे महत्वपूर्ण थे। वास्तव में मार्क्स ने बहुत पढ़ा एवं ईसाइया बर्लिन के शब्दों में इन विचारों के समन्वय एवं पुनर्व्याख्या से अपने सैद्धांतिक निष्कर्ष दिए। यह कहना सही है कि न तो मार्क्स आसमान से टपके थे और न ही उनके विचार आकस्मिक थे। मार्क्स यूरोप की बौद्धिक परंपरा की निरंतरता में ही विकसित हुए। स्वयं अपने विचारों को नए प्रमाणों एवं नई परिस्थितियों के आलोक में उन्होंने बार-बार बदला। उपरोक्त गंभीर प्रभावों के अतिरिक्त भी वे

अनेक स्रोतों से प्रभावित हुए। मार्क्स ने भौतिकवाद की धारणा अपने मित्र फायरबाक से अपनाई थी। मार्क्स यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी और उसके पहले भी प्रचलित प्रगति की धारणा से प्रभावित थे। यह प्रगति अनेक विद्वानों की दृष्टि में शांतिपूर्ण एवं अनेक विचारों में संघर्षपूर्ण थी। प्रगति के विचार देने वाले विद्वान थे लाइबनीज, लेसिंग, इमानुअल काम्र, हीगल इत्यादि। स्वयं मार्क्स ने कहा था कि प्रगति का यह रथ संघर्ष के पथ पर ही अग्रसर होता है यूरोप में अलगाव की धारणा भी बहुत प्रचलित थी

फ्रांसीसी दार्शनिक रूसों ने इस स्थिति का विस्तार से वर्णन अपनी पुस्तक सेकेंड डिसकोर्स में किया है। हीगल ने इस शब्दावली का इस्तेमाल किया एवं इसके प्रेरणा स्रातों एवं परिणामों को विचारों के क्षेत्रों में खोजा। स्कीलर ने कहा कि आधुनिक श्रमविभाजन मानव के जीवन को प्रासद बना देता है। मार्क्स ने अलगाव की चर्चा की।

यूरोप में मार्क्स से पहले मानव के संपूर्ण विकास की धारणा प्रचलित थी। मार्क्स इससे प्रभावित हुए उनकी कामना थी कि एक ऐसा समाज होगा जिसमें मानव अपनी तमाम क्षमताओं का विकास कर सकेगा एवं मानव की जीवन सुखी होगा। यह विचार मूलतः ज्ञानोदय का विचार था। यह फ्रांसीसी, ब्रिटिश एवं जर्मन ज्ञानोदय का एक समान विचार था यूरोप के बौद्धिक विकास में समाज की संपूर्णता की धारणा अर्थात् समस्त समाज एवं सामाजिक घटनाओं को एक संपूर्णता में देखा जाए, प्रभावशाली था, यह इतिहास को युगों में बाँटकर देखता था। जार्ज फ्रेडरिक हीगल इस विचार के प्रमुख प्रणेता थे उन्होंने ऐतिहासिक निर्धारणवाद भी कहा जाता है। मार्क्स ऐतिहासिक निर्धारणवाद भी कहा जाता है। मार्क्स ने समाज को संपूर्णता में देखा एवं समस्त ने पक्षों को एक अविभाज्य संपूर्णता में परखा।

मार्क्स की समाजशास्त्र को देन

कार्ल मार्क्स निःसंदेह एक प्रसिद्ध समाजशास्त्री थे तथा उन्होंने समाजशास्त्र के अनेक महत्वपूर्ण तत्त्व प्रदान किए। मार्क्स ने सामाजिक यथार्थता (Social Reality) को देखने का एक विशिष्ट परिप्रेक्ष्य चुना और इसी के आधार पर सामाजिक प्रघटनाओं का निरूपण किया।

मार्क्स ने मानवीय इतिहास के विकास के नियमों का प्रतिपादन कर स्वयं को चार्ल्स डार्विन के समकक्ष ला दिया जिन्होंने प्रकृति के जैविकीय विकास के नियमों की खोज की। उत्पादन के विधि में परिवर्तन, वर्गों का निर्माण एवं वर्ग-संघर्ष के परिणामस्वरूप ऐतिहासिक विकास, पूँजीवाद की उत्पत्ति एवं उसके विकास की व्याख्याओं ने कार्ल मार्क्स को एक प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिक बना दिया।

हेनरी लैफेबर (H. Lefebure) ने लिखा है - "मार्क्स एक समाजशास्त्री नहीं है, लेकिन मार्क्स में समाजशास्त्र।"[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि एक समाजशास्त्री के रूप में मार्क्स का सबसे महत्वपूर्ण योगदान मानवीय संबंधों पर किया गया विवेचन एवं विश्लेषण है। सामाजिक जगत के सृष्टा के रूप में मार्क्स ने मानवीय संबंधों को निरूपित किया है। समस्त अंतर्विरोधों के होते हुए भी मानव समाज वर्ग के एक अंग के रूप में अनवरत संघर्ष करता रहता है। वर्ग संघर्ष के विवेचन के पीछे मार्क्स की विचारधारा का संबंध हीगल के द्वंद्वात्मकता के विचार से हैं। हीगल ने द्वंद्वात्मकता को दार्शनिक रूप दिया मार्क्स ने उस विचार को वास्तविक जगगत के विवेचन में कार्यान्वित किया। मार्क्स के प्रत्येक सिद्धांत का समाज की वास्तविकता से संबंध है, अतः उनमें सामाजिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक विकास की अंतर्विरोधमय प्रकृति देखी जा सकती है। इसी कारण मार्क्स के सिद्धांतों की आलोचना की जा सकती है। मजदूर वर्ग को महत्व प्रदान करते ही मार्क्स की विचारधारा का क्रांतिकारी रूप हमारे सामने आता है। अलगाव के विचार का विवेचन करें तो यह अर्थ निकाला जा सकता है कि अलगावित व्यक्ति के लिए समाज वही है जो शासक विचारधारा की शब्दावली में वह होने का दावा करता है। मार्क्स के सिद्धांत न तो भाग्यवादी हैं और न ही नियतिवादी, वे उस भूमि का वर्णन करते हैं जो समाज के विचार में 'वर्ग चेतना' द्वारा निभाई

जाती हैं। मार्क्स की यह विचारधारा पूँजीवाद के विनाश तथा समाजवाद की प्राप्ति की तरफ की संक्रमण प्रक्रिया को प्रस्तुत करती है। मार्क्स का यह विवेचन समाजशास्त्र को प्रभावित करता है, साथ ही एक ऐसी पद्धति की तरफ संकेत करता है जो समाज के विकास के इतिहास का विवेचन करने में सक्षम है। मार्क्स का सबसे प्रबल विरोध विचारधाराओं के संदर्भ में समाजशास्त्र के पिता एवं संस्थापक अगस्त काम्टे से माना जाता है। अगस्त काम्टे ने समाजशास्त्र में समाज के सहयोग एवं व्यवस्था के संरचनात्मक आधारों को प्रस्तुत किया। सामूहिक हित में कार्यरत सामाजिक वर्गों को इस आधार की सर्वप्रथम इकाई बताया। कार्ल मार्क्स, काम्टे को 'अधकचरा वैज्ञानिक' कहकर संबोधित करते हैं। कार्ल मार्क्स की काम्टे के तीन स्तरों के नियम से पूर्ण असहमति की संभावना का उल्लेख 'टाम बोटोमोर' ने किया है। काम्टे के इस नियम का रूप हीगल के इतिहास दर्शन से मिलता है क्योंकि मानव मस्तिष्क के विकास को ऐतिहासिक परिवर्तन से संबद्ध करने का इन दोनों ही विचारकों ने प्रयास किया है। मार्क्स ने काम्टे की हीगल से तुलना करते समय भी यह कहा कि 'हीगल की तुलना में काम्टे के सिद्धांतों की स्थिति दयनीय है।'[1]

आगे चलकर अनेक समाजशास्त्री भी ऐसे हुए जो मार्क्स की विचारधाराओं से बहुत अधिक प्रभावित हुए। इन समाजशास्त्रियों में मैक्स वैबर, जॉर्ज सिमैल, टॉनिज, विलफ्रेडो पैरेटो, सोबर्ट, मोस्का एवं कार्ल मैनहीम के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। हाल ही में समाजशास्त्रीय जगत में जो विरोध प्रबल रूप से उभर कर सामने आया उसने 'रेडीकल सोशियोलॉजी', 'रिफ्लेसिव सोशियोलॉजी' आदि को जन्म दिया, जिसमें मार्क्स की विचारधाराओं का स्थान अधिक मात्रा में है। साथ ही अमेरिका एवं पश्चिमी देशों का वह समाजशास्त्र जिसमें मार्क्स के सिद्धांतों को संरचनात्मक-प्रकार्यवादी सिद्धांत के माध्यम से असत्य सिद्ध करने का प्रयास किया था, नवीन घटनाक्रमों के कारण अपनी लोकप्रियता खो चुका है। वर्तमान में समाजशास्त्री मार्क्स की विचारधारा के आधार पर अध्ययन कर रहे हैं। वे घटनाओं का तथ्यपरक विवेचन कर रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप अनुभववादी एवं प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण पिछड़ता जा रहा है तथा क्रांतिकारी विचार एवं रेडीकल सोशियोलॉजी का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। **1883** में मार्क्स की मृत्यु से लेकर प्रथम विश्व युद्ध के आरंभ तक की अवधि में मार्क्स के विचारों की विवेचना मार्क्सवाद के रूप में विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में की गई। मार्क्स के सिद्धांतों को औद्योगिक श्रमिकों के संदर्भ में विशिष्ट महत्त्व दिया जाता है। वर्ग-संघर्ष एवं वर्ग-विरोध पर आधारित यह सिद्धांत अपनी विशिष्ट पहचान औद्योगिक श्रमिकों की विवेचना के कारण बनाता है। वर्ग संघर्ष में समझौते को किसी प्रकार का स्थान न देकर कार्ल मार्क्स पूँजीवादी व्यवस्था के मुखर विरोधी के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। कार्ल मार्क्स को ठीक उसी प्रकार एक प्रमुख दार्शनिक एवं समाजशास्त्री माना जाता है जिस प्रकार समाजशास्त्र के संस्थापक 'अगस्त काम्टे' को एक दार्शनिक और समाजशास्त्री माना जाता है। ऐसा इसलिए नहीं है कि मार्क्स ने जिन समस्याओं का अध्ययन किया व जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया वे दर्शनशास्त्र एवं समाजशास्त्र की विषय-वस्तु है, बल्कि यह तर्क सामान्यतया इस आधार पर दिया जाता है कि ये दोनों ही विषय दर्शनशास्त्र एवं समाजशास्त्र अन्वेषण के आधार पर समान है। मार्क्स के विचारों से इस विश्वास की पुष्टि हो जाती है। मार्क्स ने अपने अध्ययनों में समाजशास्त्र को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इकोनॉमिक एवं फिलॉसॉफिकल मैनुस्क्रिप्ट' जो मार्क्स ने **1844** में प्रकाशित की थी उसमें उसने 'सेंट

साइमन' की युक्ति 'मानव के विज्ञान (Science of Man) का उल्लेख किया है और अपनी इसी पुस्तक में मार्क्स ने मानव, समाज, धर्म आदि का विस्तार से विवेचन किया है, जो कि मूलतः समाजशास्त्रीय विषय है। इस प्रकार मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष तथा ऐतिहासिक-भौतिकवाद एवं द्वंद्वात्मक भौतिकवाद तथा सामाजिक परिवर्तन, अलगाव, अतिरिक्त मूल्य एवं अतिरिक्त श्रम, समाजवाद आदि सिद्धांतों की विवेचना की जो निःसंदेह मार्क्स के उत्कृष्ट समाजशास्त्रीय योगदान कहे जा सकते हैं। मार्क्स के दास कैपिटल के ग्रंथ भी निःसंदेह समाजशास्त्रीय ही हैं। दास कैपिटल के प्रथम संस्करण की भूमिका से ही स्पष्ट होता है कि मार्क्स ने समाज विज्ञान की अत्यंत विस्तार से विवेचना की है। मार्क्स के पूर्व के लगभग सभी समाजशास्त्रियों ने समाज की 'सामान्य रूप में' विवेचना की थी। इसके विपरीत मार्क्स ने एक ही समाज को अध्ययन का आधार बनाया जिसे वह आधुनिक पूँजीवाद समाज कहते हैं। मार्क्स ने इसी समाज के विकास के नियमों को स्पष्ट किया है। इसका अर्थ यह है कि मार्क्स रचित 'कैपिटल' समाज का नहीं, केवल एक विशेष समाज का अध्ययन है। समाज विज्ञानों की वैज्ञानिकता भी विशिष्टता पर आधारित होती है न कि सामान्यता पर। कम से कम समाजशास्त्र को तो इसी रूप में देखने का प्रयास कुछ समाजशास्त्री करते हैं। हालाँकि अधिकांश समाजशास्त्री समाजशास्त्र का सामान्य रूप में समाज के अध्ययन से संबंध मानते हैं। हरबर्ट स्पेंसर का प्रयास इसी प्रकार का है परंतु लेनिन ने सामान्य रूप में समाज के अध्ययन को पूँजीवादी समाजशास्त्र से संबद्ध माना है क्योंकि इस प्रकार का अध्ययन समाज की वास्तविकता को नकार कर वैचारिक आदर्शों इत्यादि को आधार बनाकर समाज को अमूर्त रूप में प्रस्तुत कर देता है। विश्लेषण का आधार वास्तविक वस्तु न होकर आदर्श वैषयिकता हो जाती है। लेनिन इस प्रकार के समस्त सिद्धांतों को अस्वीकार करते हैं तथा अनुपयोगी बताते हैं। मार्क्स के द्वारा रचित इस पुस्तक की द्वितीय विशेषता भौतिक कारकों एवं उत्पादन शक्ति का विश्लषण है। कैपिटल के समस्त खंड केवल पूँजीवादी समाज की आर्थिक संरचना उत्पादन के कारकों का इतिहास एवं उनकी गत्यात्मकता का ही विश्लेषण नहीं करते अपितु पूँजीवादी अर्थ राजनीति का भी विश्लेषण करते हैं, जो कि अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। वास्तव में पूँजी ग्रंथ को हम आर्थिक विचारों का इतिहास कह सकते हैं, जिसने आर्थिक विकास के समाजशास्त्र में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। वर्ग के प्रत्यय में अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र विषयों की घनिष्ठता का परिचय मिलता है। 'वर्ग' प्रत्यय को भी दो विशेषताओं के संदर्भ में देखा जा सकता है -

(1) उत्पादन की वैषयिक स्थितियों में कारक के रूप में जिसमें श्रम के विभाजन का ऐतिहासिक विश्लेषण भी सम्मिलित है, एवं

(2) संपूर्ण समाज व समाज की सामाजिक प्रक्रियाओं में राजनीतिक तत्त्वों के रूप में। मार्क्स के समाजशास्त्रीय योगदान कुछ बिंदुओं में बाँटकर समझ सकते हैं, वे हैं -

(1) प्रकृति एवं मानव का अध्ययन **(Study of Nature & Men)** कार्ल मार्क्स ने सर्वप्रथम जगत की प्रकृति का अध्ययन किया। इसके अनंतर उसने उसी में उन तत्त्वों का अन्वेषण किया, जिनके द्वारा समाज की रचना होती है। इस प्रकार के विचार 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह मार्क्स की महान सफलता मानी जाती है। इस दार्शनिक चिंतन के अनुसार प्रकृति की समस्त वस्तुओं में परिवर्तन निरंतर

हुआ करता है। पुरानी वस्तुएँ समाप्त होती हैं, नई उनकी स्थान पूर्ति करती हैं। इस प्रकार समाज का रूप भी निरंतर परिवर्तित हुआ करता है। इस प्रकार के चिंतन को मार्क्स, हीगल की रचनाओं से प्राप्त करता है, तथा मार्क्स यह भी प्रतिपादित करता है कि विश्व का मूलाधार भौतिक पदार्थ ही है। पदार्थ और चेतना दो तथ्य हैं जिनमें पदार्थ पहले विकसित हुआ और बाद में चेतना विकसित हुई। इसके आधार पर वह कहता है कि बाहरी जगत ही वास्तविक और मुख्य है। इस प्रकार मार्क्स का दृष्टिकोण विश्व के प्रति भौतिकवादी है, और इस प्रकार के दृष्टिकोण की प्रणाली द्वंद्वात्मक मानी जाती है। यही मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है।

हैरी एलमर वार्न्स ने लिखा है कि - "मार्क्सवाद इतिहास का अध्ययन इस दृष्टिकोण से करता है कि उन प्राकृतिक नियमों का पतालग सके जो सारे मानव के इतिहास का संचालन करते हैं।"[1] मार्क्स इतिहास का गहन अध्ययन करता है जिसके परिणामस्वरूप वह देखता है कि आदिम काल से ही समाज दो वर्गों में विभाजित किया हुआ मिलता है। ये दोनों अपने-अपने सुख-समृद्धि के लिए खींचातानी करते हैं। सामंती समाज में भी कृषकों और सामंतों के वर्ग थे तथा पूँजीवादी युग में पूँजीपति और मजदूरों का वर्ग उत्पन्न हुआ। इन दोनों वर्गों के हित एक-दूसरे के विरूद्ध थे। फलस्वपरूप दोनों वर्गों में सदैव संघर्ष चलता था। इस प्रकार इतिहास का अध्ययन कर स्पष्ट रूप से मार्क्स कहता है कि इतिहास प्रमुख रूप से वर्ग-संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता है। मार्क्स के अनुसार - "यदि किसी भी प्रकार से समाज से ये वर्ग समाप्त होंगे तभी द्वंद्वात्मक विकास भी खत्म होगा।"

(2) मानव का सामाजिक विवेचन **(Social Study of Man)**

समाजशास्त्र काम्टे, टोनीज, दुर्खीम एवं मैक्स वेबर आदि सभी ने मनुष्य की सामाजिक विवेचना की है। इन समाजशास्त्रियों ने समाज के विज्ञान का अध्ययन इस आधार पर किया कि व्यक्ति स्वयं को सर्वप्रथम समझ सके और फिर सामाजिक समस्या की प्रकृति के विकास एवं परिवर्तन का अध्ययन कर सके। इसी क्रम में मार्क्स को हम सर्वाधिक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली विचारक के रूप में पाते हैं। मानव के विकास में मार्क्स की धारणा का उद्गम दार्शनिक अवश्य है, परंतु उसका मानव का विज्ञान दार्शनिक नहीं है अपितु समाजशास्त्रीय है। मानव सदैव से ही सामाजिक है क्योंकि वह अपने अस्तित्व को बनाए रखने हेतु कार्य करता है तथा अस्तित्व को बनाए रखने के साधनों का उत्पादन एक सामूहिक एवं सामाजिक क्रिया है। मानव के विषय में मार्क्स के यह विचार एडम स्मिथ, रिकार्डो, हॉब्स, रूसो, लॉक एवं बेंथम की व्यक्ति की अवधारणाओं का किसी सीमा तक खंडन करते हैं। परंतु अरस्तु, मॉन्टेस्क्यू एवं फर्ग्यूसन के विचारों का समर्थन भी करते हैं। मार्क्स के मानव के विषय में दिए गए विचार सामाजिक संबंधों के निर्माण की प्रक्रिया का विवेचन भी करते हैं। मार्क्स के अनुसार उत्पादन के लिए व्यक्ति निश्चित सामाजिक संबंधों में प्रवेश करता है। इन्हीं सामाजिक संबंधों में फिर उत्पादन होता है अर्थात्

सामाजिक पर्यावरण का निम्न अंतःक्रिया में निहिति व्यक्तियों द्वारा निर्मित होता है अतः समाज व्यक्तियों के अंतःक्रिया द्वारा निर्मित होता है। समाज के अस्तित्व के विषय में मार्क्स की अवधारणा जॉन स्टुअर्ट मिल एवं हरबर्ट स्पेंसर केक विचारधारा के विपरीत है।

1.1.09. सारांश

इस इकाई में हमने कार्ल मार्क्स के प्रारंभिक जीवन एवं उनकी शिक्षा-दीक्षा का सामाजिक, राजनैतिक तथा शैक्षणिक विचारधाराओं को जाना थ ही यह भी स्पष्ट हुआ कि कार्ल मार्क्स आधुनिक समय के सबसे प्रभावशाली और विवादास्पद विचारकों में से एक हैं। हालाँकि मार्क्स के विचारों को लागू करने के लिए उनका दर्शन न केवल शक्तिशाली और प्रेरक बल्कि हमारे समय के लिए बहुत प्रासंगिक है। मार्क्स को आमतौर पर आर्थिक विचारक के रूप में चित्रित किया जाता है लेकिन वह वास्तव में मानव प्रगति के समय इतिहास और प्रकृति के बहुत सार पर स्पर्श करते हैं। साम्यवाद के बारे में उनके विचार लागू किए जाने के लिए कुछ भी नहीं थे, बल्कि ऐसा कुछ है जो अंततः इतिहास के आदेशों के बाद होता है। वर्ग संघर्ष, विचारधारा और इसके भीतर अलगाव जैसे भूमिकाओं पर समाज कार्य करने के तरीके के बारे में मार्क्स का विश्लेषण अभी भी प्रासंगिक है। मार्क्स के सिद्धांत और विचारों को विस्तारित किया गया है। मार्क्स के सिद्धांत महत्त्वपूर्ण विचारों को समझाते हुए कुछ सारांशों के साथ जर्मन विचारधारा का भी उल्लेख किया गया है। उपर्युक्त सभी दशाओं के अंतर्गत मार्क्स ने विश्व के सामने जो विचारधारा प्रस्तुत की उसे आर्थिक निर्णायकवाद पर आधारित चिंतन कहा जा सकता है। उन्होंने अपने विभिन्न ग्रंथों में आर्थिक संबंधों के आधार पर ही ऐतिहासक, राजनैतिक तथा सामाजिक घटनाओं की विवेचना की। इस दृष्टिकोण से आवश्यक है कि मार्क्स के प्रमुख विचारों के आधार पर उनके चिंतन की प्रकृति को समझने का प्रयत्न किया जाए।

1.1.10. बोध प्रश्न

बहुविकल्पिय प्रश्नः-

1- कार्ल मार्क्स का पूरा नाम क्या है**?**

क) कार्ल हेनरिख मार्क्स

ख) ई. स्तेपानोवा

ग) हीगल

घ) मार्क्सवाद

2- कार्ल मार्क्स का जन्म कब हुआ था**?**

क) **5** मई **1818**

ख) **6** जून **1824**

ग) **8** अगस्त **1848**

घ) **10** दिसंबर **1856**

3- कार्ल मार्क्स पर सबसे अधिक किसका प्रभाव था**?**

क) हीगल

ख) काम्ट

ग) स्पेंसर

घ) दुर्खीम

4- इनमें से कौन-सी कृतियाँ कार्ल मार्क्स की नहीं है**?**

क) साम्यवादी घोषणा-पत्र

ख) दास कैपिटल

ग) जर्मन आइडियोलॉजी

घ) पॉजिटीव फिलॉसफी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स के प्रारंभिक जीवन एवं उनकी शिक्षा-दीक्षा का उल्लेख करें?
2. कार्ल मार्क्स के व्यावसायिक जीवन एवं उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियों का उल्लेख कीजिए?
3. कार्ल मार्क्स के समकालीन परिस्थितियों के बौद्धिक पृष्ठभूमि का विवरण दें?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स को साम्यवाद का जनक क्यों कहा जाता है?
2. कार्ल मार्क्स ने समाजशास्त्र में आर्थिक प्रणाली को अधिक महत्त्व क्यों दिया?
3. मार्क्सवाद के मुख्य सिद्धांत या विशेषताएँ क्या है?

1.1.11. संदर्भ ग्रंथ

- Manuel, Frank E. (1995). *A Requiem for Karl Marx*. Cambridge: Havard Unkiversity Press.
- Hegel, G.W.F. (1969). *Science of Logic*. London: Allen and Unwin.
- Marx, Karl and Engles, Friedrich. (1948). *The Communist Manifesto*. NY: International Publisher.
- Giddens, Anthony. (1995). *A Contemprary Critic of Historical Materialism.* Stanford : University Press.
- Bottomore, T. and Rubel, M. (1965). *Karl Marx:Selected Writing in Sociology and Social Philosophy*. Penguin: Original texts.
- दोशी, एस.एल. एवं जैन, पी.सी. (1997). *सामाजिक विचारक*. दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
- दोशी, एस.एल. एवं जैन, पी.सी. (1997). *प्रमुख सामाजिक विचारक*. दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
- रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्रीय चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.

इकाई: 2 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद

इकाई की रूपरेखा

1.2.1. उद्देश्य

1.2.2. प्रस्तावना

1.2.3. विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम

1.2.4. निषेध के निषेध का नियम

1.2.5. मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन का नियम

1.2.6. द्वंद्वात्मक भौतिकवाद

1.2.7. ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism)

1.2.8. समाज की धारणा

1.2.9. सामाजिक परिवर्तन

1.2.10. पैरकसिस की धारणा

1.2.11. परिवर्तन का क्रम

1.2.12. आदिम समाज (primitive social formation)

1.2.13. एशियाई समाज (Asiatic mode of production)

1.2.14. गुलाम समाज अथवा प्राचीन समाज (slave society or ancient society)

1.2.15. सामंती समाज (feudal society)

1.2.16. पूँजीवादी समाज (capitalist society)

1.2.17. समाजवादी समाज (Socialist Society)

1.2.18. साम्यवादी समाज (Communist Society

1.2.19. सारांश

1.2.20. बोध प्रश्न

1.2.21. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.2.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप समझ पाएँगे-

- कार्ल मार्क्स के विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम।
- निषेध के निषेध का नियम एवं मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तन का नियम समझ पाएँगे।
- आप कार्ल मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांत को समझ पाएँगे।
- इस अध्ययन में आप कार्ल मार्क्स की समाज की धारणा सामाजिक परिवर्तन तथा उसकी प्रक्रिया को जान पाएँगे।

1.2.2. प्रस्तावना

19वीं शताब्दी में दर्शनशास्त्र तथा समाजशास्त्र दोनों ही ज्ञान शाखाओं में संघर्ष सिद्धांत की विवेचना हुई। सिद्धांत और विचारधारा एक-दूसरे के बहुत निकट होते हुए भी भिन्न है। विचारधारा तो एक विचार की व्यवस्था है जिसका उद्देश्य सामाजिक संस्थाओं की सुरक्षा के लिए सामाजिक आंदोलनों को विकसित करना है। इस दृष्टि से विचारधारा का उद्देश्य व्यावहारिक लक्ष्यों को विकसित करने के लिए है। यह निश्चत है कि विचारधारा हमारी बुनियादी समझ को आगे बढ़ाए, लेकिन इसका यह प्राथमिक कार्य नहीं है, दूसरी तरफ सिद्धांत का काम हमारी समझ को तीव्र करना है।

19वीं शताब्दी में जहाँ संघर्ष विचारधारा विकसित हुई, वहीं मार्क्स के संघर्ष सिद्धांत द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवाद आया। विचारधारा में तर्क और विज्ञान का अभाव होता है, सिद्धांत में विज्ञान सर्वोपरि होता है। अतः जब हम 19वीं शताब्दी के संघर्ष सिद्धांत की व्याख्या करते हैं तब हमें इसे संघर्ष विचारधारा से पृथक करके देखना चाहिए वास्तव में इस शताब्दी में संघर्ष विचारधारा ने जिनके प्रतिपादनों में इब्न खालदून, जिनबोडिन, थामस, हाब्स आदि हैं, जो महत्वूपर्ण समस्याएँ रखी उनका निदान हीगल, मार्क्स आदि समाज वैज्ञानिक ने खोजा संघर्ष विचारधारा की यह पूरी यात्रा रूमानी आदर्शवाद से प्रारंभ होती है। इसकी परिणति मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद के आविर्भाव में है। मार्क्स द्वारा विकसित द्वंद्वात्मक भौतिकवाद हीगलवादी द्वंद्वात्मकता के विपरीत प्रत्येक वस्तु की व्याख्या पदार्थ के विरोधाभास के संदर्भ में करता है और प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के लिए अमूर्त नियम प्रदान करता है। द्वद्वात्मक भौतिकवाद की मानता है कि 1. प्रकृति में वस्तुएं अंतरसंबंधित व अंतरनिर्भर होती हैं तथा एक-दूसरे के द्वारा निर्धारित की जाती हैं। 2. वस्तुतः विश्व में कुछ भी शाश्वत रूप में स्थाई नहीं है अपितु प्रत्येक वस्तु निरंतर परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। 3. ये परिवर्तन क्रमिक न होकर एकाएक क्रांतिकारी रूप से होते हैं। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद तीन नियमों पर आधारित है -

1.2.3. विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम

विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम द्वंद्वात्मकता का केंद्रीय पक्ष है। यह नियम भौतिक जगत के विकास तथा शाश्वत परिवर्तन के वास्तविक कारण अर्थात् स्रोतों को उजागर करता है। इसके अनुसार वस्तुओं या प्रघटनाओं में आंतरिक प्रवृत्तियाँ तथा शक्तियाँ होती हैं, जो कि परस्पर विपरीत होती हैं। अर्थात् संसार की प्रत्येक वस्तु परस्पर विरोधी तत्वों से बनी हुई है। इन परस्पर विपरीत प्रवृत्तियों अथवा विरोधाभासों के विभिन्न अंतरसंबंध विपरीत की एकता के लिए उत्तरदाई होते हैं। विश्व की वस्तुओं एवं प्रघटनाओं का यह विरोधाभास सामान्य व सार्वभौमिक प्रकृति का होता है। विश्व की कोई भी वस्तु अथवा प्रघटना ऐसी नहीं है, जिसे कि विपरीत में विभक्त न किया जा सके। परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों अथवा विपरीत में सह-अस्तित्व होता है तथा एक के बिना दूसरे के बारे में सोचा नहीं जा सकता। फिर भी, ये विपरीत शक्तियाँ किसी भी वस्तु में शांति से सह-अस्तित्व में नहीं रह सकती। इन विपरीत शक्तियों की परस्पर विरोधी प्रकृति इनमें अनिवार्यतः संघर्ष पैदा करती है। प्रचीन एवं नवीन, नवोदित एवं पुरातन के मध्य संघर्ष पैदा अनिवार्य हैं विपरीत की एकता संघर्ष की एक आवश्यक दशा है, क्योंकि संघर्ष तब ही

घटित होता है, जब किसी एक वस्तु अथवा प्रघटना में विपरीत शक्तियाँ अस्तित्व में होती हैं। प्रायः इन विरोधी शक्तियों में से एक शक्ति यथास्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहती है। इस संघर्ष के कारण अनेक मात्रात्मक परिवर्तनों के पश्चात जब भी परिपक्व अवस्थाएँ अस्तित्व में आती हैं तो एक नई स्थिति, वस्तु, प्रघटना या अवस्था या परिवर्तन का जन्म होता है। यह क्रांतिकारी गुणात्मक परिवर्तन है।

इस प्रकार सभी प्रकार के परिवर्तनों का स्रोत आंतरिक विरोधाभास है। नए विरोधाभासों का प्रादुर्भाव एक नए प्रकार के परिवर्तन को जन्म देता है जबकि इन विरोधाभासों की विलुप्ति एक और नए प्रकार के परिवर्तन का कारण बनती है। इस नए परिवर्तन के लिए अन्य विरोधाभास उत्तरदाई होते हैं। विपरीत तत्वों में कभी संभावना नहीं आ पाती है। विपरीत तत्वों का समान प्रभाव अस्थाई व सापेक्षिक होता है, जबकि उनके बीच संघर्ष हमेशा चलता रहता है। विपरीत की एकता व संघर्ष के इस अमूर्त नियम को सामाजिक विकास के इतिहास की क्रमिक उत्पादन प्रणाली पर लागू किया जाए तो इसको सरलता से समझा जा सकता है।

1.2.4. निषेध के निषेध का नियम

हीगल की मान्यता थी कि निषेध की अवधारणा विचार तथा चिंतन में उपजती है। मार्क्स ने हीगल की आलोचना की तथा निषेध की भौतिकवादी व्याख्या दी और बताया कि निषेध यथार्थ के विकास का एक अभिन्न अंग है। किसी भी क्षेत्र में कोई भी तत्व अपने पूर्व के अस्तित्व के स्वरूप को नकारे बिना विकसित नहीं हो सकता है। इस प्रकार समाज का इतिहास भी प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में नई व्यवस्था द्वारा निषेधों की एक श्रृंखला है। पूँजीवाद सामंतवादी समाज का निषेध है तथा विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रत्येक नया वैज्ञानिक सिद्धांत प्राचीन सिद्धांतों का निषेध करता है। इस नियम का मूल द्वंद्व है। जब तक पुरानी पद्धति से नई पद्धति संघर्ष नहीं करती, विकास नहीं हो सकता। निषेध किसी वस्तु अथवा प्रघटना में बाहर से प्रविष्ट नहीं करता है, अपितु यह किसी वस्तु अथवा प्रघटना के आंतरिक विकास का ही परिणाम होता हैं वस्तुएँ अथवा प्रघटनाएँ स्वयं में निहित आंतरिक विरोधाभासों के आधार पर विकसित होती हैं वे अपने ही विनाश की दशाएँ उत्पन्न करती हैं इस प्रकार, समाजवाद पूँजीवाद का स्थान इसलिए लेता है, क्योंकि यह पूँजीवाद व्यवस्था के आंतरिक विरोधाभासों का समाधान करता है। नई अवस्था कभी भी पुरानी अवस्था को पूरी तरह से नहीं बदलती है। यह पुरानी अवस्था में से कुछ विशिष्ट तत्वों अथवा पक्षों को अपने में समेट लेती है और यह क्रिया भी इसमें यांत्रिक रूप से घटित नहीं होती, अपितु अपनी स्वयं की प्रकृति के अनुरूप नई अवस्था प्राचीन तत्वों को अपने आप में आत्मसात तथा परिवर्तित करती है।

इन्हीं कारणों से विकास की अवस्थाओं में क्रमिक परिवर्तन होता है। यद्यपि कोई भी अवस्था पूर्ण रूप से पुनर्घटित नहीं होती, फिर भी पिछली अवस्थाओं की कुछ विशेषताएँ, बाद की अवस्थाओं में रूपांतरित स्वरूप से आ जाती हैं इस प्रकार प्राचीन अवस्था का पतन हो जाता है और नई अवस्था का उदय होता है। यह विकास की एक अवस्था मात्र है(अंतिम स्थिति नहीं, क्योंकि विकास कभी नहीं रुकता। कोई भी नई अवस्था सदैव नई और स्थाई नहीं रहती। विकास की प्रक्रिया में और अधिक

प्रगतिशील अवस्था के लिए दशाएँ बनने लगी हैं और जब ये नई दशाएँ परिपक्व हो जाती हैं तो एक बार पुनः निषेध घटित होता है और इसी को निषेध कहते हैं। इसमें पहले निषेध के बाद वाला निषेध उच्चतर स्थिति का होता है यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है।

1.2.5. मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन का नियम

प्रकृति में प्रत्येक वस्तु निरंतर परिवर्तन की स्थिति में हैं। किसी भी नियत समय पर कुछ वस्तुएँ अस्तित्व में रहती हैं, कुछ वस्तुएँ विकसित होती रहती हैं तथा कुछ वस्तुएँ नष्ट होती रहती हैं। मार्क्स की मान्यता थी कि यथार्थ का नियम परिवर्तन का नियम है। परिवर्तन की प्रकृति सरल अथवा क्रमिक नहीं होती, अपितु यह मात्रात्मक परिवर्तनों के रूप में होती रहती है और परिपक्व दशाओं की उपलब्धि होने पर किसी भी निश्चित समय पर अमूर्त गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तित हो जाती है। घटनाओं की पुनरावृत्ति कभी नहीं होती। यह परिवर्तन सदैव निम्न से उच्च की ओर तथा सरल से जटिल की ओर होती है। गुणात्मक परिवर्तन को किसी भी नई अवस्था के उद्भव तथा किसी भी प्राचीन अवस्था की समाप्ति का तार्किक एवं दार्शनिक रूप कहा जा सकता है, जबकि मात्रात्मक परिवर्तनों के अंतर्गत अन्य सभी परिवर्तन जिनमें किसी भी वस्तु के विभिन्न अंग पुनर्व्यवस्थित हो जाते हैं, के रूप में समझा जा सकता है। गुणात्मक परिवर्तनों के दो स्वरूप होते हैं - 1. कोई वस्तु जिसका अस्तित्व नहीं था, किंतु अब वह अस्तित्व में आ गया है तथा 2. कोई वस्तु जो पहले अस्तित्व में थी, लेकिन अब उसका अस्तित्व समाप्त हो गया है। दूसरी ओर मात्रात्मक परिवर्तन असीमित रूप से व्यापक होते हैं। उदाहरणार्थ छोटा-बड़ा, समृद्ध-निर्धन आदि। वस्तुतः प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में मात्रात्मक परिवर्तन निरंतर घटित होते रहते हैं। जब निरंतर परिवर्तन एक विशिष्ट सीमा तक पहुँच जाता है, जिसके बाद और अधिक मात्रात्मक परिवर्तन संभव नहीं है। तब इस बड़े परिवर्तन को गुणात्मक परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है।

1.2.6. द्वंद्वात्मक भौतिकवाद

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद मार्क्स के चिंतन का न केवल एक महत्त्वपूर्ण आधार है बल्कि इसे मार्क्स की सबसे प्रमुख उपलब्धि भी माना जा सकता है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद केवल एक सिद्धांत ही नहीं है बल्कि स्वयं में एक पद्धति भी है जिसका मार्क्स ने अपने चिंतन में व्यापक उपयोग किया है। साधारणतया द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एक कठिन शब्द प्रतीत होता है लेकिन इसके शाब्दिक अर्थ को समझ लेने से इससे संबंधित मार्क्स की विचारधारा को समझना सरल हो जाता है। इस अवधारणा में दो शब्दों का समावेश हैं-'द्वंद्व' तथा 'भौतिकता'। सामान्य रूप से द्वंद्व दो पंक्तियों के बीच विरोध की स्थिति को स्पष्ट करता है। इसमें आक्रामकता तथा संघर्ष के भाव भी निहित है। इस दृष्टिकोण से द्वंद्व एक ऐसी दशा को स्पष्ट करता है। जिनमें दो स्थितियों एक-दूसरे के विरोध में आकर परस्पर संघर्ष करती है। भौतिकवाद एक ऐसी प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है जिसमें व्यक्ति अपने संपूर्ण कार्यो को करने की प्रेरणा भौतिक जगत से प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति जब ईश्वरीय अथवा आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास न करते हुए जगत में उपलब्ध सांसारिक तथ्यों में ही विश्वास करता है तथा इन भौतिक अथवा सांसारिक दशाओं को

ही प्रत्येक घ्ज्ञटना का कारण मानता है तब ऐसे चिंतन को हम भौतिकवादी चिंतन कहते हैं। स्पष्ट है कि शाब्दिक रूप में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद वह दशा है जिसके अंतर्गत भौतिक परिस्थितियों के बीच होने वाले विरोध और संघर्ष को ही विभिन्न घटनाओं के घटित होने का कारण माना जाता है।

शाब्दिक रूप से 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' का अर्थ जितना सरल है, मार्क्स के चिंतन के संदर्भ में यह अवधारणा उतनी सरल नहीं है। मार्क्स ने अनेक विद्वानों के विचारों का गहन अध्ययन करके द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को सामाजिक घटनाओं के अध्ययन ही एक विशेष पद्धति के रूप में प्रस्तुत किया। मार्क्स के चिंतन पर संसार के महान विचारकों का प्रभाव पडा था लेकिन मार्क्स ने उनके विचारों और सिद्धांत में अनेक संशोधन करके द्वंद्वात्मक का प्रतिपादन किया। इसके महत्त्व का उल्लेख करते हुए कपेविन (Krapivin) ने लिखा है - "द्वंद्वात्मक भौतिकवाद दर्शन-प्रणाली का सार है। यह प्रकृति, समाज तथा ज्ञान से संबंधित सार्वभौमिक नियमों तथा विशेषताओं का उच्चतम दार्शनिक सामान्यीकरण है।" कार्ल मार्क्स ने द्वंद्वात्मक सिद्धांत को मुख्यतः हीगलवादी दर्शन से प्राप्त किया था लेकिन मार्क्स का द्वंद्ववाद हीगल से पूर्णतया भिन्न है। इस दृष्टिकोण से मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की विवेचना करने से पहले यह आवश्यक है कि हीगल द्वारा प्रस्तुत द्वंद्ववाद को समझ लिया जय। हीगल की तुलना में ह मार्क्स के विचारों की सार्थकता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

हीगल के विचार (Views fo Hegal)

हीगल एक दार्शनिक विचारक थे। जर्मनी में मार्क्स जब उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, उस समय जर्मनी के बुद्धिजीवियों पर हीगल के दर्शन का विशेष प्रभाव था। उस समय हीगल को एक क्रांतिकारक विचारक के रूप में देखा जाता था। अपने विचारों की लोकप्रियता के काल में ही हीगल ने (Dialetic) विचार प्रस्तुत किए। हीगल ने द्वंद्ववाद (क्पंसमजपबद्ध शब्द को यूनानी भाषा के शब्द 'डायलिगो (Dialego) से ग्रहण किया। ईसा से पूर्व यूनानी राज्यों के राजदरबार में किसी भी घटना से संबंधित वास्तविकता को जानने के लिए वाद-विवाद अथवा तर्क-वितर्क का सहारा लिया जाता था। तर्क-वितर्क की इसी प्रणाली को डायलिगो कहा जाता था। संभवतः इसी अर्थ में प्लेटो तथा अनेक दूसरे दार्शनिकों में द्वंद्ववाद शब्द का उपयोग 'तर्क-वितर्क' करने की कला' के अर्थ में ही किया।

द्वंद्व अथवा डायलेक्ट (Dialect) के अर्थ को स्पष्ट करते हुए हीगल ने यह बतलाया कि विश्व में जड़ और चेतन सभी पदार्थो में कुछ अंतर्विरोध पाया जाता है। प्रत्येक वस्तु की आतंरिक संरचना का निर्माण करने वाले विभिन्न अंगों के बीच जो अंतर्विरोध अथवा द्वंद्व होता है, उसी के परिणामस्वरूप उस वस्तु के बाहरी स्वरूप में परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। हीगल से पहले के विचार को का मत यह था कि केवल कुछ वाह्य दशाएँ ही जड़ पदार्थो को प्रभावित करती है। इसके विपरीत, हीगल ने जड़ पदार्थो में होने वाले परिवर्तन हो भी उनके अंदर विद्यमान द्वंद्ववादी क्रियाओं का परिणाम विद्यमान रहती है।

हीगल ने जिस समय अनर्युक्त विचार प्रस्तुत किए, उस समय वह अपनी युवावस्था में थे। बाद में हीगल का संपूर्ण चिंतन अराजकतावादी दिशा में आगे बढ़ने लगा। इसके फलस्परूप हीगल ने पदार्थ की अपेक्षा विचारों को महत्त्व देना आरंभ कर दिया। हीगल ने कहा कि जगत में 'विचार' महत्त्वपूर्ण है, पदार्थ नहीं। अपने द्वंद्ववाद को स्पष्ट करते हुए हीगल ने बतलाया कि जब हमारे मस्तिष्क में कोई विचार पैदा होता है,

तब उसी समय उसका एक प्रतिवाद अथवा विरोधी विचार हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होने लगता है। इन दोनों तरह के विचारों के बीच द्वंद्व की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। इसका समाधान एक ऐसे विचार के बीच द्वंद्व की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। इसका समाधान एक ऐसे विचार के रूप में होता है जिसे हम संश्लेषण अथवा समन्वय की दशा (Synthesis) कह सकते हैं। हीगल के इस विचार को सामान्य शब्दों में स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है तो वैचारिक आधार पर व्यक्ति का मस्तिष्क उसे समाज द्वारा स्वीकृत मानदंडों का प्रयोग करने का सुझाव देता है। उसी समय उसके मस्तिष्क में सामाजिक मानदंडों का उललंघन करने के विचार भी उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, जब एक व्यक्ति धन अर्जित करने के लिए कठिन परिश्रम करता है तब उसके मस्तिष्क में गलत तरीकों से धन कमाने की इच्छा पैदा होती है। इन दोनों तरह के विचारों के बीच द्वंद्व अथवा संघर्ष होता है। इस द्वंद्व के फलस्वरूप व्यक्ति अपनी तार्किकता और चेतना के आधार पर जिस निष्कर्ष पर पहुँचता है, उसी को हम 'संश्लेषण' अथवा समन्वय कहते हैं। इस आधार पर हीगल ने यह बताया कि समाज में जो भी परिवर्तन उत्पन्न होते हैं वे व्यक्तियों के मस्तिष्क में वाद (thesis) और प्रतिवाद (Anti-thesis) के रूप में होने वाले द्वंद्व तथा उसके फलस्परूप जन्म लेने वाले समन्वय के आधार पर होते हैं। हीगल द्वारा प्रस्तुत इस विचार को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

क्रम	प्रारंभिक विचार	विरोधी विचार	परिणाम
स्थिति	वाद	प्रतिवाद	संश्लेषण अथवा समन्वय

हीगल ने यह स्पष्ट किया कि यद्यपि समन्वय अथवा संश्लेषण में वाद और प्रतिवाद दोनों ही तत्त्वों का समावेश होता है लेकिन समन्वय के यप् में बनने वाली स्थिति भी पूरी तरह स्थाई नहीं होती। कुछ समय बाद समन्वय की दशा का पुनः प्रतिवाद होने लगता है। इस स्थिति में कुछ समय पहले तक हम जिसे 'समन्वय की दशा' कहते थे, वहीं वर्तमान में वाद (thesis) का रूप ले लेता है। एक स्वाभाविक प्रक्रिया के यप् में इसका पुनः प्रतिवाद सामने आने लगता है और बाद तथा प्रतिवाद के बीच संघर्ष होने से समन्वय की एक नई दशा उत्पन्न होती है जो साधारणतया पहले से अधिक अच्छी होती है। इस प्रकार हीगल ने द्वंद्ववाद की विवेचना में विचारों अथवा मानवीय चेतना को अधिक महत्त्व दिया। इस संदर्भ में इतिहास की विवेचना करते हुए हीगल ने लिखा - "इतिहास तर्क से लेकर स्वयं अपनी चेतना की ओर होने वाला विकास है तथा वैधानिक राज्य इतिहास का चरम बिंदु है। इसका तात्पर्य है कि द्वंद्ववाद ही वह प्रक्रिया है जिसके आधार पर विचारों में होने वाले परिवर्तन तथा सामाजिक विकास को समझा जा सकता है।

कार्ल मार्क्स ने हीगल के द्वंद्ववादी विचार को स्वीकार किया लेकिन हीगल की इस धारणा को स्वीकार नहीं किया कि द्वंद्ववाद का प्रमुख आधार विचार है। मार्क्स ने कहा है कि हीगल ने द्वंद्ववादी पद्धति का प्रयोग आदर्शवादी अथ में किया है जिसमें उन्होंने मस्तिष्क को आवश्यकता से अधिक प्रधानता दे दी। मार्क्स ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि उन्होंने हीगल से द्वंद्ववाद के सिद्धांत को अवश्य लिया है लेकिन उनका द्वंद्ववाद भौतिक शक्तियों से संबंधित होने के कारण हीगल के द्वंद्ववाद से भिन्न है। हीगल ने जहाँ

'मस्तिष्क' को सामाजिक घटनाओं के कारण के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार मार्क्स ने सामाजिक तथ्यों का विश्लेषण करने के लिए हीगल द्वारा प्रयुक्त उपागम के तरीके ((Manner of approach) का ही प्रयोग किया यद्यपि उनके द्वंद्ववाद की विषवस्तु हीगल से बिलकुल भिनन रही।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के बारे में मार्क्स का चिंतन फ्यूअरबॉक (Feurback) से भी प्रभावित था। फ्यूअरबॉक मार्क्स ने समकालिन एक भौतिकवादी विचारक थे। उनका एक कथन बहुत प्रचलित है कि 'आलू द्वारा उत्पन्न रक्त से क्रांति नहीं हो सकती।' फ्यूअरबॉक ने इस कथन से स्पष्ट होता है कि वह पदार्थ को बहुत अधिक महत्त्व देते थे। इस कथन को स्पष्ट करते हुए उन्होने बतलाया कि आलू का प्रभाव ठंडा होता है, अतः आलू खाने से बनने वाला रक्त क्रांतिकारियों के रक्त की तरह गहरा नहीं हो सकता। आज के वैज्ञानिक युंग में फ्यूअरबॉक का यह कथन बहुत साधारण अथवा हास्यास्पद प्रतीत हो सकता है किंतु यह केवल पदार्थ अथवा भौतिक शक्ति के महत्त्व को स्पष्ट करने वाला एक सार्थक कथन है। कार्ल मार्क्स फ्यूअरबॉक के भौतिकवादी विचारों से बहुत प्रभावित थे। यही कारण है कि मार्क्स ने जहाँ एक ओर हीगल से द्वंद्ववादी प्रणाली ग्रहण की, वहीं दूसरी ओर उन्होंने फ्यूअरबॉक से भौतिकता का दर्शन लेकर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

मार्क्स के विचार (Views of Marx)

कार्ल मार्क्स ने हीगल के द्वंद्ववाद तथा फ्यूअरबॉक के भौतिकवाद को संशोधित रूप में प्रस्तुत करते हुए उनकी अतिवादिता हो समाप्त किया ता द्वंद्वात्मक भौतिकवाद रूप में एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया। मार्क्स ने कहा कि हीगल के लिए मस्तिष्क की कार्य प्रणाली ही चिंतन की प्रक्रिया है जो विचारों के रूप में कार्य करती है। दूसरे शब्दों में हीगल ने यह मान लिया था कि मनुष्य का बाह्य संसार द्वंद्वात्मक प्रणाली से विकसित होने वाले विचारों का ही परिणाम होता है। इसके विपरीत, मार्क्स के लिए यह आदर्श भौतिक जगत के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मार्क्स का कथन है कि यह भौतिक जगत ही मनुष्य के मस्तिष्क में पैदा होता है और विचारों के रूप में हमारे सामने आता है। इसका तात्पर्य है कि विचार कभी निर्पेक्ष (non-relative) नहीं होते बल्कि वे स्वयं भौतिक दशाओं से प्रभावित होते हैं। इस प्रकार मार्क्स के अनुसार विचारों से भौतिक जगत का निर्माण नहीं होता बल्कि भौतिक जगत ही मनुष्य के विचारों को प्रभावित करता है। इस प्रकार मार्क्स द्वारा द्वंद्वात्मक प्रणाली को भौतिक आधार पर स्पष्ट करने के कारण ही इसे 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' का नाम दिया गया।

द्वंद्वात्मक प्रणाली को भौतिक आधार स्पष्ट करने के लिए मार्क्स ने यह तर्क दिया कि संसार में पदार्थ (Matter) ही एक एसी वास्तविकता है जिसका एक वस्तुनिष्ठ रूप होता है। पदार्थ ही हमारी चेतना और विचारों का स्रोत है। इस प्रकार परस्पर विरोधी शक्तियों के प्रभाव को पदार्थ के आधार पर समझा जाना चाहिए, विचारों के आधार पर नहीं मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की प्रमुख मान्यता यह है कि विश्व का आधर अनेक भौतक पदार्थ ही है जो अपने छिपे हुए अनेक आतंरिक विरोधों के कारण होता है। इस परिवर्तन में वाद, प्रतिवाद तथा समन्वय जैसी तीनों अवस्थाओं का समावेश रहता है। इसके वाद भी वाद, प्रतिवाद तथा समन्वय या संश्लेषण के रूप में चलने वाली विकास की यह प्रक्रिया सरल नहीं होती बल्कि एक बिंदु पर पहुँचकर इसमें तेजी से परिवर्तन होने लगता है। इसी को हम 'क्रांति' की दशा कहते

हैं। मार्क्स ने स्पष्ट किया कि संपूर्ण भौतिक जगत में कुछ प्रतिवादी दशाएँ सदैव उत्पन्न होती रहती है जिनके फलस्वरूप एक नई दशा का जन्म होता है। अधिक स्पष्ट रूप में, प्रत्येक समाज में वाद और प्रतिवाद के रूप में दो विराधी शक्तियाँ दो वर्गों के रूप में देखने की मिलती है जिनके बीच सदैव संघर्ष उत्पादन के तरीके में परिवर्तन हाता है, वैसे ही संश्लेषण के रूप में एक नया वर्ग पैदा हो जाता है। संघर्ष की निरंतर चलती रहने वाली यह प्रक्रिया ही सामाजिक विकास का वास्तविक आधार है।

लॉरसन **(Larson)** ने अपनी पुस्तक 'मेजर थीम्स इन सोशियोलॉजिकल थॉट' में मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को बहुत सरल ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है। लारसन के अनुसार मार्क्स की द्वंद्ववादी पद्धति को चार प्रमुख तत्त्वों के आधार पर समझा जा सकता है जो इस प्रकार है :

- प्रकृति के सभी तत्त्व सुसंबद्ध समग्रता के अंग है। (All the phenomena of nature are part of an integrated whole.)
- प्रकृति में सदैव गतिशीलता तथा परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है। (Nature ns in a continuous state of movement and change.)
- विकास की प्रक्रिया संख्यात्मक वृद्धि की व्युत्पत्ति है जिसका चरम बिंदु गुणात्मक परिवर्तन में स्पष्ट होता है। (The developmental process is a product of quantitative advances which culminate in a abrupt qualitative change.)
- प्रकृति तथा मुख्यत : मानव समाज के प्रत्येक भाग में अंतर्विरोध निहित होते हैं। (Contradictions are inherent in all realms of nature but partiicularly in human society.)

लॉरसन ने इन विशेषताओं के आधार पर मार्क्स की द्वंद्वात्मक प्रणाली से संबंधित प्रमुख मान्यताओं पर प्रकाश डाला है। इसके बाद भी यह विशेषताएँ उस भौतिकवादी आधार को स्पष्ट नहीं करतीं जिसे मार्क्स ने द्वंद्वात्मक प्रणाली के संदर्भ में प्रस्तुत किया। इस दृष्टिकोण से कार्ल मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतकरवाद को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम मार्क्स द्वारा प्रस्तुत भौतिकवाद के ऐतिहासिक स्परूप को समझने का प्रयत्न करें।

मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की विशेषताएँ

मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की कुछ आधारभूत विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें मार्क्स ने तत्त्वशास्त्र का विशेष उल्लेख किया है। तत्त्व-शास्त्र भाववादी दर्शन का एक प्रमुख अंग है और प्रकृति जगत सत्ता आत्मा तथा विचार चेतना की उत्पत्ति आधार और स्वरूप आदि की विवेचना इसकी प्रमुख वस्तु है। मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद इससे ठीक विपरीत है। मार्क्स के अनुसार जीवन और जगत का परम सत्य भौतिकवाद है आत्मा और ईश्वर का अस्तित्व नहीं है इनका विचार केवल कपोल-कल्पित है। चेतना का आधार भौतिक है। बिना भौतिक चेतना का आधार भौतिक है। बिना भौतिक के चेतना अस्तित्व में नहीं आ सकती। मार्क्स के अनुसार राज्य और संगठित धर्म शोषण और उत्पीड़न के हथियार है और भाववादी दर्शन ने उन्हें पुष्ट बनाया है।

(1) तत्वशास्त्र के विपरीत मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद प्रकृति अथवा ब्रह्मांड की वस्तुओं और घटनाओं को आकस्मिक मात्र नहीं मानता। ये घटना प्रवाह विच्छिन्न पृथक और स्वतंत्र नहीं है परंतु एक सुसंबद्ध तथा पूर्णतया समग्र और अविछिन्न इकाई है। विभिन्न घटनाएँ और वस्तुएँ आतंरिक रूप से एक-दूसरे से सावयवी रूप से संयुक्त संबंधित और एक-दूसरे पर निर्भर है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रकृति और मानव समाज की वस्तुएँ और घटनाएँ अचानक ही अथवा किसी विशेष आध्यात्मिक शाक्ति द्वारा नहीं घटती किंतु वे निश्चित वस्तुगत नियमों के द्वारा संचालित होती है। प्रकृति में जब ज्वालामुखी का विस्फोट होता है। तो ऐसा निश्चित प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही होता है। उसी प्रकार जब समाज में कोई जबरदस्त प्रक्रिया के नियमों के अंतर्गत होता है। विज्ञान और दर्शन का एक प्रमुख कार्य प्राकृतिक और सामाजिक घटनाओं के नियमों को खोज करके उन्हें मानव के उपयोग में लाना है। इस प्रकार मार्क्स की द्वंद्वात्मक प्रणाली के अनुसार प्रकृति की किसी भी वस्तु अथवा घटना को अन्य वस्तुओं या घटनाओं से पृथक असंबद्धित तथा स्वतंत्र रूप से कभी नहीं समक्ता जा सकता है। प्रत्येक वस्तु दूसरी वस्तु से संबंधित होती है और प्रत्येक घटना दूसरी घटनाओं के चक्र से घिरी रहती है। उन सबका प्रभाव प्रत्येक पर, और प्रत्येक का प्रभाव सब पर होता है घटना-प्रवाह का समक्ता जाना अथवा उसकी व्याख्या करना इस अटूट संदर्भ में ही हो सकता है। इसके बिना घटना अर्थहीन ही रहती है और उसके बारे में जानकारी प्राप्त करना संभव नही हो पाता।

(2) तत्वशास्त्र के विपरीत द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की मान्यता है कि प्रकृति सएक स्थिर गतिहीन अपरिवर्तनशील और चिंतन अवस्था नही है वरन् प्रकृति सतत् गतिशाल परिवर्तनशील और नवीन विकास की दशा है प्रकृति परिवर्तित तथा परिमार्जित अवस्था है जिसमें कुछ वस्तुओं का सदैव उद्भव और विकास और कुछ की अवनति और विनाश होता रहता है सबसे महत्व की वस्तु उदभुत और विकसित होती वस्तु है जन्म और निर्वारण की निरंतर दशा ही प्रकृति है। स्टालिन के अनुसार - "द्वंद्वात्मक प्रणाली उसी को अजेय मानती है जो उग रहा हो और विकासमान हो। द्वंद्वात्मक प्ररणाली के अनुसार घटनाओं और वस्तुओं की विवेचना न केवल उनके अंतः संबंध और अंतः निर्भरता को ध्यान में रखकर की जानी जाए अपितु उसमें उनके गति परिवर्तन उदभुव और विकास तथा विनाश को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। वास्तव में संसार में कोई भी वस्तु या घटना शाश्वत चिर अथवा स्थाई नहीं है एंजिल्स ने लिखा है कि समस्त प्रकृति छोटे से लेकर बड़े तक बालू करण से लेकर सूर्य तक **बाह्याड** से लेकर व्यक्ति तक आने और चले जाने की एक निरंतर स्थिति में निरंतर प्रवाह में अनवरत गति तथा परिवर्तन की स्थिति में है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि इस संसार और प्रकृति में सब कुछ अस्थाई गतिशील तथा परिवर्तनशील है। एंजिल्स के अनुसार मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद वस्तुओं और उनके गोचर प्रतिरूपों को तत्वरूप से एक-दूसरे से संबंधित उनके संयोग उनकी गतिशीलता और उनके जन्म और निर्वारण की दशा में देखता है।

(3) तत्वशास्त्र के ग्राम विद्वान प्रकृति के विकास की प्रक्रिया को सरल और किसी आध्यात्मिक तत्व के द्वारा किसी ने किसी रूप में निर्धारित मानते हैं इसके विपरीत द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार विकास

की प्रक्रिया सरल और सीधी रेखा की भाँति नही होती। परिमारणात्मक परिवर्तनों से गुणात्मक परिवर्तन उत्पन्न होती है। छोटे से छोटे परिमारणात्मक परिवर्तन से बड़े से बड़ा गुणात्मक परिवर्तन संभव है। इस प्रकार का विकास या परिवर्तन धीरे-धीरे अथवा सरल तरीके से नहीं होता लेकिन शीघ्रता से और एकाएक होता है और यह धीरे-धीरे होते रहने वाले संचय का ही स्वाभाविक फल है। ये परिवर्तन एक स्थिति से दूसरी में छलाँग की तरह होते हैं ऐसा आकस्मिक नहीं होता वरन परिमाराणात्मक परिवर्तनों के संचित होने के स्वाभाविक परिणाम स्वरूप होता है। तेजी से होने वाले यह परिवर्तन किसी चक्र में ही घुमने वाली गति की तरह नही होती द्वंद्ववाद के अनुसार विकास की गति निरंतर आगे बढ़ती हुई होती है। पुरानी गुरणात्मक दशा में एक नई गुणात्मक दिशा की ओर आगे बढ़ते रहना ही विकास का सिलसिला है यह एक ऐसा विकास है जो सरल से जटिल निम्न से उच्च स्तर और साधारण से संश्लिष्ट की ओर होता है। परिमाण का परिवर्तन युग के परिवर्तन की ओर बढ़ता है। परिमाण के गुण में बदलते ही छलाँग पूरी हो जाती है।

(4) तत्वशास्त्र ईश्वर आत्मा और प्रकृति को निश्चल, विरोधरहित तथा शुद्ध मानता है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार सभी प्राकृतिक और सामाजिक वस्तुओं तथा घटनाओं में आतंरिक विरोध निहित है। और ये इनमें अंत निष्ठ होते हैं। प्रत्येक वस्तु अथवा घटना का निषेधात्मक और सकारात्मक वाद और प्रतिवाद विकास और विनाश पक्ष होता है। विकास आतंरिक विरोध या संघर्ष द्वारा ही संचालित होता है। लेनिन के अनुसार अपने सही अर्थो में द्वंद्ववाद वस्तुओं के मूल तत्व में असंगतियों का एक अध्ययन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कार्ल मार्क्स के अनुसार नवीन और पुरातन का चिर संघर्ष विकास क्रम की आतंरिक अंतर्वस्तु है। प्रगति शांतिमय नही होती। प्रत्येक विकास की प्रक्रिया में वाद प्रतिवाद और संवाद की तीनों की अवस्थाएँ होती है एक अवस्था अपनी पूर्ववर्ती अवस्था का निषेघ होती है और फिर धीरे-धीरे उसमें भी विरोध सक्रिय हो जाता है उसका भी निषेध करके एक और नई अवस्था को जन्म देते हैं इस प्रकार निषेध का निषेध के नियम की प्रक्रिया चलती रहती है।

(5) भौतिक आदर्शवाद की भाँति यह विश्वास नही करता की संसार निरपेक्ष विचार विश्वात्मा का मूर्त रूप है। इसके विपरीत मार्क्सवादी भौतिकवाद के अनुसार संसार स्वय अपनी प्रकृति से भौतिक है संसार की अगणित घटनाओं का आधार गतिशील भौतिक तत्व अथवा पदार्थ है जो कि अपने आतंरिक स्वभाव द्वारा विकसित होकर आदि रूप में प्रकट होता है यह विकास भौतिक पदार्थ में नही एकान्तरिक विरोध द्वारा संचालित होता है।

आदर्शवाद के अनुसार हमारी चेतना विचार प्रत्यक्ष दर्शन उपलब्धि और अनुभूति में ही भौतिक जगत प्रकृति और जीव का अस्तित्व है। इसके विपरित मार्क्सवाद के अनुसार पदार्थ प्रकृति और जीव वैषयिक वास्तविकता है जिसका कि अस्तित्व हमारी चेतना आदि से बाहर और उससे परे है। पदार्थ प्रमुख है क्योंकि यह अनुभूति विचार चेतना का स्त्रोत है। चेतना गौण है। क्योंकि यह पदार्थ का ही प्रतिबिंब मात्र है। मार्क्स ने स्वय लिखा है पदार्थ चेतना की उपज नहीं है वरन चेतना स्वय पदार्थ की ही सर्वश्रेष्ठ उपज मात्र है। विचार को पदार्थ से जो सोचता है पृथक करना असंभव है पदार्थ प्रत्येक प्रकार के परिवर्तनीय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की मूल मान्यता यह है कि विश्व का आधार भौतिक तत्व या पदार्थ है जो कि अपने आतंरिक स्वभाव द्वारा विकसित होकर आदि रूप धारण कर लेता है। यह विकास भौतिक पदार्थ में स्वाभाविक रूप से ही निहीत एक आतंरिक विरोध द्वारा संचालित होता है और इसमें वाद प्रतिवाद और संवाद में तीन अवस्थाएँ होती है। विकास की यह प्रक्रिया सार्वभौमिक और निरंतरण है साथ ही विकास की प्रक्रिया सरल और सीधी नहीं होती। बल्कि एक बिंदु पर आकर एकाएक तीव्रता से विस्फोट की भाँति होती है। यही सामाजिक परिवर्तन में क्रांति की स्थिति होती है। क्रांति न टाली जा सकने वाली एक सामाजिक घटना है और प्रत्येक क्रांति के पश्चात एक नवीन सामाजिक अवस्था का जन्म होता है। प्रत्येक भौतिक पदार्थ अपने आतंरिक स्वभाव द्वारा ही अपने प्रतिवाद को जन्म देता है। इसके फलस्वरूप जो संघर्ष वाद प्रतिवाद में होता है। उसमें ही प्रत्येक प्रकार के परिवर्तन या विकास का समस्त रहस्य छिपा हुआ है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का क्रांतिकारी स्वरूप इसी से स्पष्ट हो जाता है। क्योंकि इसमें इस बात पर अत्यधिक बल दिया गया है कि जो कुछ भी परिवर्तन या विकास होता है। वह आतंरिक विरोध व संघर्ष द्वारा ही होता है यही प्रक्रति का विकास या परिवर्तन का चाहे वह सामाजिक हो या प्राक्रतिक अटूट नियम है।

इसमें प्रकार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सामान्य महत्व हमें परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों और उनके पारस्परिक संबंधों में ही नहीं बल्कि इन परिवर्तन के आतंरिक कारणों में भी दिखाई देता है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद हमें यह स्पष्ट करता है। कि संसार की कोई भी प्रघटना अलग-अलग नहीं है श्रपितु समस्त घटनाओं के बीच अंत संबंध पाया जाता है और वे आपस में अंत निर्भर भी होती है। मार्क्स ने स्वयं इस बात की विवेचना की कि हीगल के समय में द्वंद्वात्मक अपने रहस्यात्मक अर्थात् **अटकलपच्चू** रूप में एक फैशन की तरह इसे द्वंद्ववाद को हर चीज में लागू कर दिया जाता था परंतु अपने वास्तविक स्वरूप में अर्थात् वैज्ञानिक भौतिकवाद रूप में वह पूँजीपतियों और उनके समर्थकों के बीच एक चेतावनी के रूप में काम करने लगा था क्योंकि उसकी सहायता से जहाँ हम एक और विद्यमान सभी चीजों के विषय में प्रत्यक्ष बोध को संपन्न बनाते हैं वहीं दूसरी ओर यह भी स्पष्ट होता है कि प्रत्येक वस्तु का एक विरोधी तत्व पाया जाता है जो निश्चित स्तर आने पर प्रस्फुटित होता है और उसके बाद एक नई वस्तु का जन्म होता है इस नई वस्तु में पुरानें और नए दोनों का समन्वय होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्स ने अपने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद सिद्धांत को हीगल के आदर्शवाद और भाववादी विचारों के खिलाफ अपने भौतिकवादी सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया जिसमें उन्होनें वाद प्रतिवाद और सवांद की विवेचना के द्वारा द्वंद्व की विस्तार से व्याखा की। भौतिक पदार्थ ही मार्क्स के लिए सर्वेसर्वा थे। मार्क्स की यह दृढ़ मान्यता थी कि इन भौतिक पदार्थ में एक प्रकार का आतंरिक विरोध होता है। जिसमें वाद प्रतिवाद के बाद संवाद की अवस्था आती है और प्रत्येक प्रकार के परिवर्तन या विकास में यह रहस्य छुपा रहता है मार्क्स ने अपने सिद्धांत की पुष्टि अनेक ऐतिहासिक तथ्यों के द्वारा की हैं इस प्रकार मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत एक अनुपम सिद्धांत है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism)

कार्ल मार्क्स के समाज संबंधी विचारों का अधिकांश विद्वानों ने विशेष रूप से **लेफेब्रे** ने ऐतिहासिक भौतिकवाद शीर्षक से विश्लेषण किया है। यह शब्दावली कार्ल मार्क्स ने कभी प्रयोग नहीं की। समाज एवं सामाजिक घटनाओं की व्याख्या के लिए इतिहास की व्याख्या जरूरी है। इतिहास की व्याख्या द्वंद्वात्मकता के आधार पर हो। मूल सिद्धांत द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है। इसके आधार पर मार्क्स ने भौतिक जगत एवं सामाजिक जगत, दोनों का ही विश्लेषण किया। इन दोनों विश्लेषणों एवं अध्ययनों का चरित्र जरूर अलग है। भौतिक जगत का विश्लेषण प्राकृतिक विज्ञानों के आधार पर ठोस, वस्तुनिष्ठ एवं मूल्य निरपेक्ष ढंग से होता है। सामाजिक जगत का विश्लेषण सुसंगत एवं ठोस तो होता है, परंतु यह मूल्य निरपेक्ष नहीं हो सकता है।

सामाजिक जगत के विश्लेषण एवं अध्ययन का सिद्धांत ऐतिहासिक भौतिकवाद है। द्वंद्वात्मकता का अर्थ है यथार्थ संपूर्ण होता है एवं इसका आकलन संपूर्णता में ही संभव है। मार्क्स ने समाज का अध्ययन संपूर्णता में किया है। यथार्थ जटिल है। इसके तत्वों को अलग करना संभव नहीं है। समाज के तत्वों को भी अलग करना संभव नहीं है। सामाजिक जगत का एक स्थिति नहीं प्रक्रिया है। यह स्थिर नहीं होता। इसमें जो स्थिरता दिखती है वह सापेक्षित स्थिरता है। द्वंद्वात्मकता का अर्थ है दो विरोधी शक्तियों में संघर्ष एवं सहयोग की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया। संघर्ष का पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है। यही परिवर्तन का कारण है। परिवर्तन आरंभ में बहुत ही सामान्य अर्थात् संख्यात्मक होते हैं। परिवर्तन के संग्रह एवं पकने से गंभीर एवं गुणात्मक परिवर्तन होते हैं। परिवर्तन क्रमिक नहीं, उछाल वाला होता है। परिवर्तन असमान, ऊबड़-खाबड़ और हिंसक होता है एक समाज में सबसे गंभीर परिवर्तन सामाजिक क्रांति होती है। प्रत्येक व्यवस्था को समाप्त होना है। हर चीज पुरानी होकर खत्म होती है। कार्ल मार्क्स की शब्दावली में इसे नकारात्मकता की नकारात्मकता (Negation of negation) कहते हैं।

1.2.8. समाज की धारणा

मार्क्स की सैद्धांतिक दृष्टि से समाज या सामाजिक जगत की चर्चा ऐतिहासिक भौतिकवाद का अंग है। समाज व्यक्तियों का संग्रह है जो एक निश्चित स्थान या भू-भाग पर बसा होता है। समाज के सदस्य अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए श्रम के द्वारा उत्पादन करते हैं। यह मानव की प्रथम एवं सर्व महत्वपूर्ण ऐतिहासिक क्रिया है। प्रत्येक समाज में उत्पादन की एक शैली होती है। इस शैली के दो पक्ष हैं - प्रथम उत्पादन के साधन एवं शक्तियाँ एवं दूसरा, इनसे लोगों के संबंध एवं लोगों का आपस में संबंध, जो चाहे या अनचाहे बनाना ही पड़ता है। समाज में शक्ति एवं श्रृंखला की राजनैतिक व्यवस्था होती है। मानव संगठन होते हैं। विश्वास, विचार, मूल्य एवं नैतिकता की व्यवस्था होती है। ये सभी तत्व महत्वपूर्ण हैं परंतु उत्पादन की शैली सबसे महत्वपूर्ण है, इसी से समाज का चरित्र तय होता है। मानव की प्रथम ऐतिहासिक घटना भौतिक वस्तुओं का उत्पादन है। ये जरूरी है, अनिवार्य हैं। इसके लिए मानव जो तरीके और कौशल अपनाता है, उसे ही प्रौद्योगिकी (Technology) कहते हैं। मानव प्रौद्योगिकी के

कारण ही मानव है। सभी अन्य पशु प्रकृति से अपनी आवश्यकताओं की वस्तुएँ उसी रूप में अपना लेते हैं।

समाज, विरोधी शक्तियों का गत्यात्मक संतुलन है। समाज में अनेक पक्ष हैं, परंतु विश्लेषण की दृष्टि से दो पक्षों के अलग कर सकते हैं। एक पक्ष समाज की आधार संरचना है, जिसके अंतर्गत उत्पादन की शैली सम्मिलित है और दूसरा पक्ष अधिरचना (super structure) है, जिसमें राजनैतिक संस्थाएँ, विचारधारा, धर्म, मूल्य, परिवार, नातेदारी, नियम, जीवन शैली आदि होती हैं। आधार रचना एवं अधिरचना में द्वंद्वात्मक संबंध होते हैं। मानव जीवन एवं समाज का आधार मानव द्वारा अपने जीवन के साधनों के उत्पन्न करने से बनता है। इस उत्पादन के लिए मानव एक-दूसरे से चाहे या अनचाहे संबंध स्थापित करता है। सामूहिक उत्पादन से एक जीवन शैली उत्पन्न होती है जो मानव के चरित्र और स्वभाव को निर्धारण करती है। मार्क्स के अनुसार जीवन के भौतिक साधनों के उत्पादन से मानव समाज एवं मानव जीवन बनता एवं सँवरता है।

1.2.9. सामाजिक परिवर्तन

समाज में परिवर्तन के मूल कारण अंतर्विरोध हैं। यह द्वंद्वात्मकता का मूल तत्व है। मानव जीवन के आरंभ में यह अंतर्विरोध मानव और प्रकृति के बीच था। प्रकृति से संघर्ष और सहयोग परिवर्तन के मूल स्रोत थे। यह एक कारण अभी भी है। आदिम समाज में सामूहिक जीवन था। भौतिक हितों एवं साधनों का असमान वितरण उस समय नहीं था। मानव ने प्रकृति से संघर्ष और सहयोग करके अधिक संसाधन उत्पादित करना आरंभ किया, जिससे तत्काल उपभोग के बाद कुछ अधिशेष बचने लगा। इस अधिशेष पर नियंत्रण के लिए मानव समाज में ही गंभीर अंतर्विरोध उत्पन्न हो गए। इस संघर्ष से निजी संपत्ति, वर्ग एवं वर्ग से जुड़ी अन्य संस्थाओं का उदय हो गया। लंबे समय तक मानव अपने समाज के अंतर्विरोधों से अनभिज्ञ होता है। मानव की समझदारी या ज्ञान उसके सामाजिक अस्तित्व से बनती है। मानव का सामाजिक अस्तित्व भौतिक जीवन के उत्पादन में जो संबंध हैं, वह बनाता है, उनसे ही तय होता है। मार्क्स ने कहा समाज व्यक्तियों से नहीं अंतरसंबंधों से बना है। इन अंतरसंबंधों में व्यक्ति कहीं न कहीं अवस्थित होता है। ये अंतरसंबंध विचारों, धारणाओं और कानून में अभिव्यक्त होते हैं। ये सामान्य और स्वभाविक समझे जाते हैं। इसीलिए जब कानून निजी संपत्ति को वैध बनाता है, जब धर्म आर्थिक मामलों को तय करता है, तब लोगों को यह अस्वाभाविक नहीं लगता है। वे उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं। मानव की जो चेतना है और जो उसकी वास्तविक स्थिति है उसमें एक अंतर्विरोध होता है।

समाज में परिवर्तन अंतर्विरोध से होता है एवं इसका एक निश्चित क्रम भी है, परंतु मार्क्स ने द्वंद्वात्मकता के सिद्धांत के आधार पर कहा कि मानवीय प्रयास अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वास्तविक प्रयास और संघर्ष के अभाव में परिवर्तन नहीं होता है। जर्मन विद्वान कार्ल **काउतोस्की** और एडवर्ड बर्नस्टीन ने कहा कि एक क्रम में मानव समाज बदलेगा ही। मार्क्सवादी साहित्य में इन्हे 'संशोधनवाद का कुतुबमीनार' कहा जाता है। इसी प्रकार जो यह समझते हैं कि पश्चिम के लोकतांत्रिक माडल से ही शांतिपूर्ण तरीके से समाजवाद आ जाएगा, उन्हें भी संशोधनवादी कहा जाता है।

1.2.10. पैरकसिस की धारणा

मानव अपने इतिहास का निर्माण स्वयं करता है, परंतु यह निर्माण वह अपनी इच्छा से जैसा चाहे वैसा नहीं कर सकता है। यह एक परिस्थिति विशेष में होता है, जो स्वयं उसके द्वारा बनाई नहीं जाती है। इस सिलसिले में मार्क्सवादियों में क्रियात्मकता की धारणा प्रचलित है। पैरकसिस शब्दावली का प्रयोग मार्क्स ने नहीं किया। इसका अर्थ है सिद्धांत एवं कार्य की एकरूपता। केवल सिद्धांत से कुछ नहीं होता है, प्रयास, व्यवहार और सक्रिय कार्य अनिवार्य है। दूसरी ओर प्रयास को सिद्धांत निष्ठ होना चाहिए। मार्क्स ने कहा ऐसा कार्य जो सिद्धांत द्वारा निदेशित नहीं है वह अंधा कार्य है और ऐसा सिद्धांत जो व्यवहार से लैस नहीं है वह लंगड़ा सिद्धांत है। द्वंद्वात्मकता के अनुसार यह माना जाता है कि परिणामों में अनिश्चितता होती है। इसका अर्थ है कि सामंतवादी संघर्ष में यह तो तय है कि अंततः सामंत पराजित होंगे, परंतु अंतर्वर्ती संघर्षों में कभी सामंत और कभी नई शक्तियाँ जीत सकती हैं। यह उनकी तैयारी, संगठन, प्रयास, नेतृत्व की क्षमताओं एवं परिस्थितियों के उपयोग पर निर्भर करता है।

इस अनिश्चितता एवं उठा-पटक के साथ, यह भी हो सकता है, मार्क्स ने यह भी कहा कि प्रत्येक परिवर्तन अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं होता है। द्वंद्वात्मकता के संदर्भ में मार्क्स ने कहा हम अपने तात्कालिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में तत्काल सफल हो सकते हैं, परंतु हम न तो लंबी अवधि में होने वाले अनपेक्षित परिणामों को रोक सकते हैं और न ही उनका पूर्वानुमान कर सकते हैं। पूँजीवाद के संदर्भ में मार्क्स ने कहा कि यह अनेक व्यक्तियों को क्रियाओं का ऐसा परिणाम है, जिसका पूर्वानुमान उन्हें नहीं था। पूँजीपति वर्ग अधिक-से-अधिक मुनाफा एवं धन संग्रह के क्रम में यह अनुमान नहीं कर सका कि वह एक मजदूर वर्ग का भी निर्माण कर रहा है जो उसके विनाश का कारण होगा। मार्क्स ने कहा समाज में परिवर्तन का क्रम भी बहुधा अवक्रमित हो जाता है। वर्तमान समय में अफ्रीकी देश एक ही उछाल से आदिवासी स्थिति में आ रहे हैं। गैर अनुमानित परिणामों की चर्चा मैक्स बेबर ने बहुत अधिक की है। वर्नान वेनेवल के अनुसार मार्क्स ने द्वंद्ववाद के आधार पर यह कहा कि हम अपनी चेतन इच्छाओं को तत्काल सामने लाने में सफल हो जाते हैं, परंतु हम लंबी अवधि के परिणामों को सही-सही नहीं जान पाते और वे अनपेक्षित होते हैं। उनके अनुसार आगामी युग के बीज यानी प्रौद्योगिकी के अंश पुराने युग के गर्भ में ही उत्पन्न हो जाते हैं। इनका विकास इस युग में संभव नहीं है।

1.2.11. परिवर्तन का क्रम

मार्क्स ने परिवर्तन के क्रम के संबंध में समय-समय पर अलग-अलग धारणाएँ दीं, परंतु मूल रूप से जिस क्रम की चर्चा उन्होंने की एवं जिसे वह अंत तक प्रास्तावित करते रहे वह क्रम था, आदिम समाज, एशियाई समाज या एशियाई उत्पादन प्रणाली, प्राचीन समाज या गुलाम समाज, सामंती समाज, पूँजीवादी समाज, समाजवादी समाज एवं साम्यवादी समाज मार्क्स ने समाज की एक अवस्था को एक युग (epoch) कहा है। युग कोई निश्चित समय अवधि पर निर्धारित नहीं है। इसका आधार उत्पादन की शैली है। जब तक समाज में एक उत्पादन की शैली प्रचलित होती है तब तक एक युग होता है। किसी समाज में कोई युग बहुत लंबा हो सकता है और किसी समाज में यह युग बहुत कम चल सकता है।

1.2.12. आदिम समाज (primitive social formation)

यह मानव समाज का सबसे आरंभिक युग है। ऐसे समाज में उत्पादन के साधन एवं स्रोत सामूहिक नियंत्रण में होते हैं। निजी संपत्ति नहीं होती है। वर्ग नहीं होता है। इसीलिए वर्गीय संस्थाएँ यानी राज्य, सरकार, कानून भी नहीं होता है। इन्हें राज्य विहीन समाज कहते हैं। इनमें परिवार का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता है। नातेदारी होती है। आदिवासी समाजों में नातेदारी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन का मूल आधार होता है। मानव समाज में अफ्रीका, एशिया, अमेरिका में आज भी ऐसे समाज हैं। भारत में झारखंड के असुर, उत्तराखंड के राजी ऐसे ही हैं। ये भी परिवर्तन एवं संपर्क के कारण अपनी शुद्ध अवस्था में नहीं रह गए हैं।

1.2.13 एशियाई समाज (Asiatic mode of production)

कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स ने संभवतः 1853 में एशियाई समाज की धारणा दी। इनके अनुसार मिस्र से लेकर चीन तक एशियाई समाज एक भिन्न और विचित्र उत्पादन प्रणाली को प्रस्तुत करते हैं। इन समाजों में पथरीली मिट्टी के चलते राज्य निर्धारित और निर्देशित सिंचाई व्यवस्था की आवश्यकता थी। एशियाई समाज में निजी संपत्ति नहीं होती है। संपूर्ण समाज आत्मनिर्भर ग्राम समुदायों के आधार पर संगठित होता है। ग्राम समुदाय में एक सरदार होता है, जो सुविधाओं का सामूहिक प्रबंध करता है। एक मार्क्सवादी विद्वान विंटफोजेल ने ग्रामीण सरदारों को पूर्व का तानाशाह (oriental despot) कहा है। ये शक्तिशाली होते हैं, परंतु कल्याणकारी होते हैं एशियाई उत्पादन की प्रणाली की धारण बहुत अधिक विवादास्पद है। सैद्धांतिक रूप से यह मार्क्स की स्थिति को प्रकट करता है। बेरी हिंडेस और पॉल हर्स्ट ने कहा कि यह धारणा सैद्धांतिक रूप से असंगत है। मार्क्सवादी इतिहासकार स्टीफन हिल के अनुसार बहुत पहले से ही चीन, ईरान, मिस्र आदि में गंभीर सामाजिक और वर्गी विभेद रहे हैं। विद्वानों ने यह भी कहा कि इस धारणा से साम्राज्यवाद को जाएज ठहराया जा सकता है, क्योंकि यह मान्यता थी कि यूरोप के देशों ने एशियाई देशों पर शासन करके उन्हें एशिया की जड़ता से मुक्त किया। मार्क्स के शिष्यों ने इस धारणा को अनेक प्रकार के तर्क देकर सिद्ध करने का प्रयास किया है, परंतु यह एक कमजोर कड़ी है जिसे उचित ठहराना कठिन है।

1.2.14. गुलाम समाज अथवा प्राचीन समाज (slave society or ancient society)

इस समाज में सबसे पहले वर्गों का उदय हुआ। गुलाम उत्पादन के सबसे महत्वपूर्ण साधन थे। गुलामों के मालिकों ने यानी शासक वर्ग ने राज्य और सरकार का गठन किया। इस समाज में गुलाम सबसे अधिक थे, जो अमानवीय जीवन जीते थे। गुलामों के मालिक शासक वर्ग थे। इनके अतिरिक्त गुलाम अधिकारी, गुलामों के व्यापारी, कर्मचारी, सेवक और स्वतंत्र लोगों के वर्ग मौजूद थे। गुलाम समाज के अस्तित्व और इसके चरित्र के संबंध में भी बड़ा विवाद है। अनेक विद्वान यह मानने को तैयार नहीं हैं कि भारत में भी कभी गुलाम समाज था। डी.डी. कौशांबी ने कहा सिंधु संस्कृति गुलाम संस्कृति थी। देवराज चनाना ने प्रचीन भारत में दास प्रथा के अस्तित्व को ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध किया है। उन्होंने कहा

आर्यों के आगमन के बाद आरंभिक काल में आर्य शब्द का परिचायक था और दास शब्द गुलामों का परिचायक था।

1.2.15. सामंती समाज (feudal society)

सामंती समाज गुलाम समाज के बाद उभरता है। प्रौद्योगिकी विकसित हो जाती है। कृषि कार्य के लिए चेन में बँधे गुलामों की आवश्यकता नहीं होती है। किसानों के परिवार, भूमि से जुड़े मजदूर कृषि कार्य करने के लिए पर्याप्त थे। इस युग में राजा, सामंत, पुरोहित, व्यापारी, शिल्पकार, सेवक, किसान और जमीन से जुड़े मजदूर अथवा भूदास वर्ग थे। जमीन के मालिक शासक वर्ग थे। इस युग में धर्म बड़ा शक्तिशाली हुआ। इसलिए पुरोहित शक्तिशाली हो गए। भारत में पुरोहित वर्ग लंबे समय से शक्तिशाली रहा है। अधिकतर भारतीय पुरोहित वर्ग ने भू-संपत्ति पर भी नियंत्रण किया। आरंभिक मध्य काल में यूरोप में अनेक राज्यों में पुरोहित वर्ग ने राज्य पर नियंत्रण कर लिया और निरंकुश राज की स्थापना की। सामंतवाद के संबंध में भी बड़ा विवाद है। भारत में सामंतवाद के संबंध में रामशरण शर्मा ने भारतीय सामंतवाद नामक पुस्तक लिखी। विवाद इस बात पर है कि सामंतवाद का आरंभ किस संस्था को माना जाए। शास्त्रीय दृष्टि से भू-राजस्व सामंतवाद का आधार है। आर.एस. शर्मा ने कहा कि भूमिदान सामंतवाद का आधार था। यूरोप में कार्ल मार्क्स के पहले भी इतिहास के युगों का वर्णन इस रूप में किया जा रहा था। मार्क्स की विशेषता यह थी कि उन्होंने इतिहास की व्याख्या आर्थिक आधार पर की। फ्रेडरिक एंगेल्स ने कहा कि इतिहास की आर्थिक व्याख्या मार्क्स का सबसे महत्वपूर्ण योगदान है। इस संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि जार्ज हीगल ने इतिहास के दर्शन की चर्चा इतिहास के युगों के आधार पर की। हीगल ने कहा कि एक युग एक विचार अथवा एक वाद अथवा एक थीसिस से प्रभावित और निर्देशित होता है। मार्क्स ने कहा इतिहास का एक युग उत्पादन की एक शैली से प्रभावित और निर्देशित होता है।

1.2.16. पूँजीवादी समाज (capitalist society)

मार्क्स ने मानव समाज के गठन एवं उसमें परिवर्तन की एक योजना प्रस्तुत की। उन्होंने कहा इतिहास के क्रमों की चर्चा एक योजना मात्र है। अलग-अलग समाजों में उनके विशिष्ट संदर्भ में वास्तविक इतिहास इसी योजना के अनुरूप परंतु वास्तविक घटनाओं में अलग इतिहास होता है। मार्क्स ने सबसे अधिक पूँजीवादी समाजों के बारे में लिखा। यह स्वाभाविक भी था। मार्क्स यूरोप के पूँजीवादी समाज में रह रहे थे एवं पूँजी की समस्याओं एवं विशेष रूप से मजदूर वर्ग की स्थिति और भूमिका की व्यापक चर्चा करना चाहते थे। मानव इतिहास में औद्योगिक पूँजीवाद एक अलग एवं युगांतकारी विकास का समाज था। **एमिल दुर्खीम**, मैक्स वेबर आदि भी इसी समाज का विश्लेषण कर रहे थे। इसीलिए एंथनी गिडेंस ने इनमें समानता की चर्चा की है। मार्क्स ने कहा उत्पादन की मशीनी शैली एवं मजदूरों द्वारा उत्पादित अधिशेष मूल्य (surplus value) का पूँजीपतियों के द्वारा नियंत्रण ही पूँजीवाद की विशेषता है। निजी संपत्ति, मुनाफा कमाने की प्रेरणा एवं धन-संग्रह ही पूँजीवाद के लक्षण हैं। मैक्स बेबर के अनुसर युक्तिपूर्ण क्रिया एवं संगठन पूँजीवाद के आधार हैं। दुर्खीम के अनुसार,"व्यक्तिगत श्रमविभाजन पूँजीवाद

का आधार है।" मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी समाज किसी सोची-समझी योजना का परिणाम नहीं था। व्यापार ने जिस बेशुमार धन का पैदा किया एवं व्यापार में अधिक लाभ की आकांक्षा से प्रौद्योगिकी या वस्तु उत्पादन की शैली जिस रूप में विकसित हुई उससे ही औद्योगिक पूँजीवाद का उदय हुआ। मैक्स वेबर ने इसे प्रोटेस्टेट नीतिशास्त्र के कारण उत्पन्न होने वाली व्यवस्था कहा एवं एमिल दुर्खीम के अनुसार समाज में भौतिक घनत्व यानी जनसंख्या के बढ़ने से एवं नैतिक घनत्व यानी सामाजिक एकता के बढ़ने से औद्योगिक पूँजीवाद का उदय हुआ। मानव अपनी आवश्यकताओं के लिए जब वस्तु का उत्पादन करता है तब वह वस्तु का उपयोगिता मूल्य होता है। पूँजीवाद में मानव पूँजीपति के लिए उत्पादन करता है, मुद्रा और बाजार के लिए उत्पादन करता है। इसीलिए उसे विनिमय मूल्य कहते हैं। पूँजीवाद में मजदूर यह समझते हैं कि वस्तुओं का उत्पादन जो बाजार के लिए होता है, वह स्वाभाविक है। मार्क्स ने इसे वस्तुकरण कहा है। इसका अर्थ है कि मजदूर यह नहीं समझता है कि जिस वस्तु का उत्पादन उसने किया, वह उसकी मेहनत का परिणाम है। वह समझता है कि वस्तुओं का मूल्य बाजार द्वारा निर्धारित होता है। यह एक अवास्तविक चेतना है। मजदूर जो कार्य स्वयं करता है उसे वह बाजार और वस्तु का चरित्र समझता है। पूँजीवाद में मजदूर या उत्पादक का वस्तु पर नियंत्रण समाप्त हो जाता है। उत्पादक अपने सृजनशील दिमाग से दूसरे उत्पादकों से सहयोग करके जो उत्पादन करते हैं। उसे वे बाजार की प्रक्रिया मान लेते हैं वे बाजार को एक स्वतंत्र एवं वस्तुनिष्ठ वास्तविकता मान लेते हैं जो व्यक्ति से अलग हैं और जो व्यक्ति का नियंत्रण करता है।

हंगरी के मार्क्सवादी विद्वान **ग्यार्ग (जार्ज) लुकाच** ने वस्तुकरण को दैवीकरण कहा है। इस उत्पादन में केवल वस्तुओं का उत्पादन शामिल नहीं है, बल्कि सामाजिक संबंधी और सामाजिक संरचनाओं का उत्पादन भी शामिल है। दैवीकरण का अर्थ है मानव जिन सामाजिक स्वरूपों को पैदा करता है उन्हें प्राकृतिक, सार्वभौमिक और संपूर्ण समझ लेता है। मानव सामाजिक संरचना की पूजा करने लगता है। मार्क्स ने कहा पूँजीवाद में वस्तु के उत्पादन का चरित्र तो बदलता है, परंतु सबसे बड़ी बात वस्तुओं का दैवीकरण है। इसके मूल में वह प्रक्रिया है जिससे वस्तुओं का मूल्य श्रम के आधार पर तय होता है। इस दैवीकरण का अर्थ है कि मजदूर यह नहीं समझता कि उसके श्रम से ही वस्तुओं में मूल्य का सृजन होता है। मजदूर यह समझता है कि यह वस्तु का स्वाभाविक लक्षण है अथवा यह बाजार है जिससे मूल्य तय होता है। मार्क्स ने कहा यह मानवीय संबंध हैं जो श्रम में निहित हैं और जो सबसे महत्वपूर्ण हैं। जार्ज रीजर के अनुसार मार्क्स की यह खोज कि मानवीय संबंध ही मानवीय श्रम का आधार हैं, मार्क्स की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मजदूर इस वास्वतिकता को नहीं समझता है। इससे वह अपने श्रम पर नियंत्रण खो देता है।

1867 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'दास कैपिटल' में मार्क्स ने लिखा कि वस्तु एक रहस्यमय चीज है, क्योंकि वस्तु में जो मानव का श्रम है वह उस उत्पादन पर एक वस्तुनिष्ठ लक्षण के रूप में स्वीकार किया जाता है। उत्पादकों के मानवीय संबंध के आधार पर इसे उस उत्पादन और व्यक्ति के श्रम के बीच का संबंध समझ लिया जाता है। एक प्राकृतिक एवं स्वाभाविक प्रक्रिया पूँजीवाद में एक विशिष्ट रूप अपना लेती है। वस्तुओं का दैवीकरण बाजार को एक स्वतंत्र वस्तुनिष्ठ वास्तविकता प्रदान करता है, जो

व्यक्तियों से अलग है और जो व्यक्ति का नियंत्रण करता है। मार्क्स ने कहा पूँजीवाद में पूँजी एक स्वतंत्र संरचना के रूप में और उसे चलाने वाले पूँजीपति भी स्वाभाविक समझे जाते हैं। मजदूर भी इन्हें स्वाभाविक समझता है और यह भूल जाता है कि इन दोनों को उसी ने बनाया है। इसीलिए मार्क्स ने कहा पूँजीवाद एक उल्टी संरचना है, यह एक अस्वाभाविक संरचना है, जिसे मजदूरों के विरुद्ध संघर्ष में पूँजीपतियों ने बड़ी ही बुद्धिमानी से विकसित किया है। सामंतवाद कैसे पूँजीवाद समाज में विकसित हुआ यह एक जटिल प्रश्न है? मार्क्स ने कहा पूँजीवादी समाज पिछले युगों से अनेक कारणों से एक भिन्न समाज होता है पूँजी अथवा वह आर्थिक संशोधन जो उत्पादक प्रक्रिया में लगा रहता है, सबसे महत्वपूर्ण हो जाता है। पूँजीपति और उद्योगपति शासक वर्ग होता है। उद्योग में कार्य करने वाले मजदूर वर्ग होते हैं। व्यापारी, महाजन, बैंकर, वित्त के मालिक, तकनीकी विशेषज्ञ अन्य वर्ग होते हैं। पूँजीपतियों में आपसी प्रतियोगिता बढ़ जाती है। मजदूर अलगाव के शिकार होने लगते हैं। जिंदा रहने के लिए मजदूर को मजदूरी करनी पड़ती है। पूँजीवाद में उत्पादन के साधन बहुत विकसित हो जाते हैं। मुनाफा और धन-संग्रह उत्पादन की चाल की शक्ति होती हैं सामाजिक असमानताएँ बहुत बढ़ जाती हैं। यह व्यवस्था कुछ लोगों के लिए समृद्धि एवं अनेक लोगों के लिए अभाव की स्थिति पैदा करती है। पूँजीवाद में अति उत्पादन एवं जबर्दस्त प्रतियोगिता के कारण बार-बार उत्कर्ष एवं संकट की अवस्थाएँ आती हैं।

मार्क्स ने पूँजीवाद का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह एक ऐसे समाज का चित्र है, जिसमें अमानवीयता है। जिन्हें शक्तिशाली होना चाहिए। वे सामान्य सुविधाओं के लिए परेशान हैं। पूँजवादी समाज में अधिकांश जनता की स्थिति त्रासद होती है। जॉर्ज रीजर ने कहा मार्क्स की यह टिप्पणी गलत है। आम लोग खुश हैं। सामान्य सुविधाएँ बढ़ी हैं। इसी क्रम में अनेक विद्वानों ने कहा कुछ मजदूरों का पूँजीपतिकरण (embourgeoisement) हो गया है। किसी खास विद्वान का नाम इस धारणा के साथ नहीं जुड़ा है। इंग्लैंड के. जे. एच. गोलडथोर्पे (J.H. Goldthorpe) और डेविड लाकवूड (David Lockwood) आदि ने अध्ययनों के बाद कहा ऐसा व्यापक रूप नहीं हुआ है। मजदूर वर्ग में जो कुछ बड़े कुशल होते हैं, वे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में ही अधिक सुविधा पाते हैं। इसकी चर्चा स्वयं फ्रेडेरिक एंगेल्स ने की। ऐसे मजदूरों को एंगेल्स ने संभ्रांत मजदूर श्रेणी कहा। पूँजीवाद अपनी तमाम ऊर्जा, इच्छा, कोशिश और प्रयास के बावजूद गरीबी को दूर नहीं कर सका है। सी. राईट मिल्स ने अपनी पुस्तक 'साशियोलॉजिकल इमेजिनेश' में लिखा कि पूँजीवाद ने भूख पर नियंत्रण पा लिया है, परंतु दरिद्रता पर नियंत्रण नहीं पा सका है। फ्रैंक पार्किन, राल्फ डहरेनडॉर्फ आदि विद्वानों ने पूँजीवादी समाजों में एक निम्न वर्ग या अंडरक्लास की चर्चा की है। संयुक्त राज्य अमेरिका में नवसंरक्षणवादी विद्वान ने बार-बार यह माँग की है कि अविवाहित माताओं को सरकार से मिलने वाला अनुदान बंद हो जाना चाहिए। यह पूँजीवाद के उत्कर्ष पर एक नकारात्मक टिप्पणी है।

1.2.17. समाजवादी समाज (Socialist Society)

मार्क्स ने कहा पूँजीवाद के बाद स्वाभाविक रूप से एक साम्यवादी समाज का उदय होना चाहिए, परंतु समाज के लिए इतनी लंबी छलाँग लगाना संभव नहीं है। इसलिए यह अंतरवर्ती युग का उदय होगा जो समाजवाद होगा। समाजवाद शब्द का प्रयोग सबसे पहले रॉबर्ट ओवेन (Robert Owen) ने किया। स्वयं मार्क्स ने यह शब्द हेनरी दी सेंत साइमन से अपनाया। समाजवाद की चर्चा मार्क्स ने बहुत पहले से पूँजीवाद समाज की समस्याओं के हल के रूप में की जा रही थी। मार्क्स की धारणा में उत्पादन के साधनों पर राज्य का नियंत्रण होगा, राज्य मजदूर वर्ग का होगा, मजदूर वर्ग की तानाशाही होगी, मजदूर वर्ग राज्य के माध्यम से अपने नेतृत्व में समाज की उत्पादक शक्तियों को बढ़ाएगा। इसके चलते साम्यवादी समाज का निर्माण होगा। समाज में निजी संपत्ति होगी, वर्ग होंगे, वर्गीय संस्थाएँ होंगी, यानी राज्य सरकार और कानून होगा। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमता और उपलब्धि के आधार पर सुविधाएँ दी जाएँगी। विश्व के एक या दो देशों में समाजवाद का उदय हो सकता है, साम्यवाद एक ही साथ पूरी दुनिया में उद्विकास होगा।

मार्क्स ने कहा अपने आप कुछ भी नहीं होता है। वस्तुनिष्ठ परिस्थितियों में विषयनिष्ठ प्रयासों का योग जरूरी है। ऐसा नहीं होने पर एक समाज लंबे समय तक एक ही स्थिति में बना रह सकता है। मजदूर वर्ग को अथवा सर्वहारा वर्ग को इसके लिए संगठित एवं गंभीर प्रयास करना होगा। समाजवाद के अनेक प्रकार हैं जैसे लोकतांत्रिक समाजवाद, फैबियन समाजवाद, संघ समाजवाद इत्यादि। मार्क्स ने समाजवाद की जो धारणा दी है उसे उन्होंने वैज्ञानिक समाजवाद कहा है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि ऐसा समाजवाद मेहनतकशों द्वारा संगठित सामाजिक क्रांति से उत्पन्न होगा। मार्क्स ने कहा समाजवाद एक संक्रमणशील व्यवस्था है। इसमें उठा-पटक होती रहेगी। वर्ग रहेंगे, परंतु मजदूर वर्ग के अतिरिक्त दूसरे वर्गों के पास आर्थिक संसाधन नहीं होंगे, इसलिए वर्ग संघर्ष हिंसात्मक नहीं होगा। उत्पादन की शक्तियों पर निजी संपत्ति और मुनाफे का अंकुश नहीं होगा। ये तेजी से विकसित होंगी, जिससे अंततः साम्यवाद का मार्ग प्रशस्त होगा। वास्तविक इतिहास में सोवियत यूनियन और पूर्व यूरोपीय देशों में समाजवाद के हाथों पराजित हो गया है। फ्राँसीसी फूकोयामा जैसे विद्वान यह कहते हैं कि पूँजीवादी समाज-व्यवस्था ही शास्वत समाज है। अमेरिका और पश्चिमी देशों में नवसंरक्षणवादी (neo conservative) विद्वान पहले से ही ऐसा कहते रहे हैं। ब्रिटिश विद्वान हैप्सबर्ग ने कहा कि कार्ल मार्क्स की द्वंद्वात्मकता और समाजवाद की जो धारणाएँ है, उनके अनुसार समाजवाद का पतन एक स्वाभाविक घटना है। फ्रांस में 1789 की क्रांति के बाद पूँजीवाद का उदय हुआ। उसे नेपोलियन ने पराजित किया। उसे एक बार नहीं अनेकों बार पराजित किया गया और सामंतवाद की पुर्नवापसी होती रही। इसका यह अर्थ नहीं कि सामंतवाद बराबर बना रहा।

1.2.18. साम्यवादी समाज (Communist Society)

साम्यवाद की चर्चा मार्क्स नें बहुत कम की है। उन्होंने अनेक विद्वानों के विपरीत भविष्य के साम्यवादी समाज का कोई रूमानी चित्र प्रस्तुत नहीं किया है। साम्यवाद में वर्ग नहीं रहेंगे, इसलिए वर्गीय संस्थाएँ, जैसे राज्य सरकार और कानून, भी नहीं होगा। मानव समाज पुराने आदिवासी स्वायत्त समुदायों के समान सगठित होगा। एक बड़ी भिन्नता यह होगी कि आदिवासी समाज अभावग्रस्त थे, साम्यवादी समाज समृद्ध होगा मार्क्स ने पूँजीवाद में मजदूरों की शोचनीय अवस्था को देखकर, उनकी मुक्ति के लिए एक साम्यवादी समाज का सुसंगत पूर्वानुमान किया। इस मामले में मार्क्स अकेले विद्वान नहीं थे। मार्क्स के पहले से ही मजदूरों ने कम्यूनिस्ट लीग नामक संगठन बनाया हुआ था। साम्यवाद में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार सुविधाएँ प्राप्त होंगी। ऐसे समाज में मुख्य अंतर्विरोध पुनः मानव और प्रकृति के बीच होगा। यह अंतर्विरोध साम्यवाद के बाद भी परिवर्तन का स्रोत बना रहेगा। समाज स्थिर नहीं रह सकता है। समाज में परिवर्तन होते रहेंगे।

1.2.19. सारांश

मार्क्स ने द्वंद्वात्मकता के आधार पर यह कहा कि परिवर्तन दो विरोधी शक्तियों के संघर्ष एवं सहयोग से होता है। मानव समाज में विरोधी वर्ग, संघर्ष एवं सहयोग से परिवर्तन करते हैं। यह संघर्ष और सहयोग एवं संरचनात्मक अवस्था यानी अर्थव्यवस्था राजनीति की अवस्था में तो होता है, परंतु एक परिस्थिति भी होती है। मसलन एक समाज में कभी फसल अच्छी हुई कभी अकाल पड़ गया। संघर्ष और सहयोग से संख्यात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन में बदलते हैं। सामान्य परिवर्तन गंभीर परिवर्तनों में बदलते हैं। हर नई चीज पुरानी होती है और अंततः समाप्त हो जाती है। सामाजिक क्रांति एक समाज विशेष में सबसे गंभीर परिवर्तन है। इससे उत्पादन की शैली और आर्थिक प्रणाली बदलती है, शक्ति की संरचना और वितरण बदलता है, प्रभावी विचारधारा बदलती है यानी संपूर्ण व्यवस्था बदल जाती है। परिवर्तन की प्रक्रिया क्रमिक नहीं होती है, यह उछाल वाली होती है, अमिक होती है। मार्क्स ने कहा इतिहास कभी भी अपने को नहीं दोहराता है और यदि दोहराता है तब प्रहसन के रूप में ही दोहराते हैं। मार्क्स ने परिवर्तन की प्रक्रिया की चर्चा उद्विकासवादी परिप्रेक्ष्य में ही की है। उन्होंने इसे सामाजिक प्रगति कहा है। मार्क्स के द्वारा वर्णित उद्विकास की प्रक्रिया अक्रमिक है और उछाल वाली है।

1.2.20 . बोध प्रश्न

बहुविल्पिय प्रश्न

1.द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत किसने दिया**?**

(क) कार्ल मार्क्स

(ख) हीगल

(ग) दुर्खीम

(घ) वेबर

2.ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धांत किसने दिया**?**

(क) कार्ल मार्क्स

(ख) स्पेंसर

(ग) पैरेटो

(घ) मर्टन

3.इनमें से कौन-सी अवधारणा कार्ल मार्क्स की नहीं है**?**

(क) आदिम समाज

(ख) सामंती समाज

(ग) पूँजीवादी समाज

(घ) एनोमी

4. धर्म जनता के लिए अफीम है किसने कहा**?**

(क) कार्ल मार्क्स

(ख) दुर्खीम

(ग) वेबर

(घ) काम्टे

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद प्रणाली का वर्णन कीजिए?
2. कार्ल मार्क्स के उत्पादन पद्धति का वर्णन कीजिए?
3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
4. कार्ल मार्क्स के एतिहासिकि भौतिकवाद की व्याख्या कीजिए?
5. कार्ल मार्क्स के ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए?

1.2.21 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ सूची

- Manuel, Frank E. (1995). *A Requiem for Karl Marx*. Cambridge: Havard Unkiversity Press.
- Hegel, G.W.F. (1969). *Science of Logic*. London: Allen and Unwin.
- Marx, Karl and Engles, Friedrich. (1948). *The Communist Manifesto*. NY: International Publisher.
- Giddens, Anthony. (1995). *A Contemprary Critic of Historical Materialism.* Stanford : University Press.
- Bottomore, T. and Rubel, M. (1965). *Karl Marx:Selected Writing in Sociology and Social Philosophy.* Penguin: Original texts.
- दोशी, एस.एल. एवं जैन, पी.सी. (1997). *सामाजिक विचारक*. दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
- दोशी, एस.एल. एवं जैन, पी.सी. (1997). *प्रमुख सामाजिक विचारक*. दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
- रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्रीय चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.

इकाई-3 : अधिसंरचना एवं अधोसंरचना तथा अधिशेष (अतिरिक्त) मूल्य का सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

1.3.1. उद्देश्य
1.3.2. प्रस्तावना
1.3.3. अधिसंरचना एवं अधोसंरचना
1.3.4. अधिसंरचना-अधोसंरचना के उत्पादन के साधन एवं शक्तियों में संबंध
1.3.5. अधिसंरचना-अधोसंरचना का आर्थिक निर्धारणवाद
1.3.6. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत
1.3.7. अतिरिक्त मूल्य का उत्पादन
1.3.8. सारांश
1.3.9. बोध प्रश्न
1.3.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.3.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप समझ पाएँगे-

- कार्ल मार्क्स के अधिसंरचना एवं अधोसंरचना।
- कार्ल मार्क्स के अधिसंरचना अधिसंरचना के साधन एवं शक्तियों के संबंध में आप समझ पाएँगे।
- कार्ल मार्क्स के अधिसंरचना एवं अधोसंरचना के आर्थिक निर्धारणवाद को आप समझ पाएँगे।
- कार्ल मार्क्स के अतिरिक्त मूलय का सिद्धांत एवं उसका उत्पादन।

1.3.2. प्रस्तावना

सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत मार्क्सवाद का आधारभूत सिद्धांत है। मार्क्स की द्वंद्वात्मक प्रणाली सब प्रकार के परिवर्तनों-सामाजिक, आर्थिक तथा प्राकृतिक आदि का मूल सूत्र है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रकृति और समाज दोनों सतत् परिवर्तनशील है। इनमें होते रहने वाले परिवर्तन मनुष्य की शक्ति से बाहर इस रूप में होते हैं कि उनके उद्गम के स्त्रोत मानवीय शक्ति की पहुँच के बाहर हैं। इसके अतिरिक्त ऊट-पटाँग न होकर किन्ही निश्चित नियमों के द्वारा संचालित होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं जैसा कुछ समाजशास्त्री कहते हैं कि मार्क्स ने इस 'भौतिक अथवा नियतिवाद' के सिद्धांत की रचना करके मानव को परिस्थितियों का दास मात्र बना दिया है। परिस्थितियों के स्वरूप की विवेचना करते समय मार्क्स ने यह स्पष्ट रूप से कहा कि यद्यपि मनुष्य सामाजिक अथवा प्राकृतिक परिवर्तन को पूर्ण रूप

से नियंत्रित नहीं कर सकता है। किंतु वह प्राकृतिक और सामाजिक नियमों का गहन अध्ययन करके उनकी दिशा को परिवर्तित कर सकता है। कार्ल मार्क्स ने परिवर्तन की व्याख्या मुख्यतः आर्थिक आधार पर की है और उनके सामाजिक परिवर्तन की विवेचना में आर्थिक आधार ही प्रमुख रूप से परिवर्तन का कारण होता है। पी.एस. कोहेन ने बताया कि सामान्यतः समाज में होने वाले छोटे-छोटे परिवर्तन एवं मौलिक परिवर्तनों में अंतर है। पी.एस. कोहेन अपनी पुस्तक में परिवर्तन से संबधित दो बिंदुओं की ओर इशारा करते हैं, वे हैं -

(1) ऐसे कौन से कारक या कौन सी प्रक्रियाएँ है जिनके द्वारा परिवर्तन उत्पन्न होते हैं।

(2) सामाजिक परिवर्तन किस प्रकार आते हैं और किस दिशा में आते हैं।

अधिकांश समाज वैज्ञानिकों ने सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या सामान्यतः किसी न किसी एक कारक को लेकर की है। मोटे तौर पर परिवर्तन की विवेचना करने वाले विद्वानों में दो तरह की विचारधाराओं के लोग दिखाई देते हैं। एक तो वे जिन्होंने परिवर्तन के लिए 'ब्राह्य प्रक्रियाओं' अथवा कारकों को महत्वपूर्ण माना है और दूसरे वे लोग हैं जो परिवर्तन के लिए 'आतंरिक प्रक्रियाओं' अथवा कारकों को उत्तरदाई मानते हैं। कार्ल मार्क्स ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने सामाजिक परिवर्तन से संबंधित उपरोक्त प्रश्नों को अपने विश्लेषण में शामिल किया है। यही कारण है जिसकी वजह से मार्क्स का सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत अत्यंत प्रतिष्ठित है। कार्ल मार्क्स के पहले अपने विद्वानों ने समूचे परिवर्तन के सिद्धांत को समझाया है। इन विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन की विवेचना या तो दैवी आधार पर अथवा आध्यात्मिक आधार पर की है। शायद ही किसी विचारक ने अपने सामाजिक सिद्धांतों को व्यावहारिकता की कसौटी पर खरा उतारने की चेष्टा की हो। इसके विपरित मार्क्स ने ही सबसे पहले सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप और कारणों की सर्वागीण व्याख्या की और केवल यही नहीं, उन्होंने इन सामाजिक परिवर्तनों को सही दिशा देने का मार्ग भी बताया। भयंकर आर्थिक कष्ट उठाते हुए भी उन्होंने जीवनभर अपने सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देने के लिए महान संघर्ष किया।

मार्क्स का सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत मूलतः ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा पर आधारित है। इनका यह सिद्धांत काल्पनिक या दार्शनिक मात्र नहीं, किंतु उन नियमों की व्याख्या है जो मानव इतिहास की संपूर्ण गतिविधि को निर्धारित करते हैं। मार्क्स के पूर्व आदर्शवादी जर्मन दार्शनिकों ने सामिजक परिवर्तनों का संबंध तात्विक Metaphysical और व्यक्तिनिष्ठ Subject कारणों में ढूँढने का प्रयत्न किया। प्रसिद्ध दार्शनिक कान्ट और हीगल इसी श्रेणी के विचारक थे। मार्क्स ने हीगल द्वारा प्रतिपादित इतिहास की आदर्शात्मक व्याख्या के स्थान पर अपनी भौतिकवादी द्वंद्वात्मक प्रणाली को सामाजिक परिवर्तन और विकास के नियमों की खोज करने के लिए प्रयुक्त किया। हमें ध्यान रखना चाहिए कि हीगल ने समाज और प्रकृति का विकास समझाने के लिए द्वंद्वात्मक पद्धति का सहारा लिया है। हीगल के अनुसार इस विकास का कारण विचार या विश्वास होता है तथा वाद-प्रतिवाद के द्वंद्व के कारण संवाद की स्थिति उत्पन्न होती है और इस संवाद की स्थिति में अंतविरोधें के कारणा पुनः द्वंद्व प्रारंभ हो जाता है। इस प्रकार समाज और प्रकृति का विकास होता रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्स की विचारधार पर हीगल का प्रभाव स्पष्ट है। हम पहले लिख आए है कि मार्क्स अपने प्रारंभिक जीवन में 'यंग हीगेलियन' ही थे। यद्यपि बाद में मार्क्स ने हीगल के विचारों का विरोध किया और आदर्शवादी (Idealisth) से बदलकर भौतिकवादी (Materialistic) हो गए। उन्होंने हीगल की द्वंद्वात्मक प्रणाली को तो गहरा किया लेकिन उसकी अंतर्वस्तु को परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि कार्ल मार्क्स के सामाजिक परितर्वन का आधार मूल में हीगल की द्वंद्वात्मक प्रणाली ही था, हालाँकि बाद में उन्होंने उसमें काफी परिवर्तन किए।

1.3.3. अधिसंरचना एवं अधोसंरचना

कार्ल मार्क्स ने अने इस सिद्धांत की व्याख्या के लिए समाज को दो मूल भागों मे बाँटा है। इसे मार्क्स 'अधिसंरचना' Super Structure) 'अधोसंरचना' (Sub-Structure) कहते हैं। यहाँ हम इन संरचनाओं की व्याख्या पूरे विस्तार से करेंगे। मार्क्स के अनुसार संपूर्ण समाज के ऊपरी भागा के अधिसंरचना (Super Structure) कहा गया है जबकि समाज के बुनियादी भाग को या निचले भाग को अधो-संरचना (Sub-Structure) कहा जाता है। इन दोनों संरचनाओं के सम्मिलित रूप को मार्क्स (समाज) मानते हैं।

(1) अधोसरंचना - मार्क्स के अनुसार अधोसंरचना समाज का आधार या केंद्रीय भाग है जिसमें श्रमिक, उत्पादन, उत्पादन के अनुभव, उत्पादन के साधन श्रम कौशल एवं उत्पादन के संबंधों को शामिल किया जा सकता है। इस प्रकार यह एक प्रकार की आर्थिक संरचना हैं और यही वह वास्तविक नींव है जिस पर समाज की अधिसंरचना टिकी होती है।

(2) अधिसंरचना - अधिसंरचना मे समाज का बाहरी भाग आता है। इसके भीतर सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष जैसे राजनीतिक, बौद्धिक, वैधानिक सांस्कृतिक आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। मार्क्स का मानना है कि अधोसंरचना के अनुरूप ही अधिसंरचना की प्रकृति निश्चित होती है। दूसरे शब्द में ये दोनों एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप में अंतरसंबंधित हैं।

1.3.4. अधिसंरचना-अधोसंरचना के उत्पादन के साधन एवं शक्तियों में संबंध

स्वयं कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि - "मनुष्य सामाजिक उत्पादन का जो कार्य करते हैं उसके दौरान वे आपस में एक निश्चित प्रकार के संबंध कायम कर लेते हैं। इन संबंधों के बिना उनका काम नहीं चल सकता अतः वे अपरिहार्य होते हैं और मनुष्यों की इच्छाओं से स्वतंत्र होते हैं। उत्पादन के ये संबंध उत्पादनों के भौतिक तत्वों के विकास की विशिष्ट अवस्था के अनुरूप होते हैं। इन उत्पादन के संबंधों के संपूर्ण येग से ही समाज का आर्थिक ढाँचा बनता है और वहीं ढाँचा असली नींव होता है जिस पर वैधिक (स्महंस) और राजनीतिक व्यवस्थाओं का निर्माण होता है। भौतिक जीवन में उत्पादन की जो पद्धति होती है उसी से जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का सामान्य रूप निर्धारित होता है। समाज के विकास में एक ऐसी व्यवस्था आ जाती है जबकि उत्पादन के भौतिक तत्वों और विद्यमान उत्पादन के संबंधों अर्थात् संपति विषयक के संबंधों, जिनके अंतर्गत वे तत्व पहले से कार्य करते

आए हैं, के बीच संघर्ष उठ खड़ा होता है। दूसरे शब्दों में ये संबंध उत्पादन के तत्वों के विकास में बाधा डालते हैं, तब सामाजिक क्रांति का युग प्रारंभ होता है। इस प्रकार आर्थिक नीवं के बदलने से संपूर्ण व्यवस्था शीघ्र ही बदल जाती है।" मार्क्स के सामाजिक परिवर्तन के विचारों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम मार्क्स के द्वारा प्रयुक्त कुछ अवधारणाओं की व्याख्या थोड़े विस्तार से करें। प्रमुख अवधारणाएँ ये हैं।

(1) श्रम एवं श्रमिक - मार्क्स ने श्रम एवं श्रमिक शब्द का बहुतायत से प्रयोग किया है। (श्रम(ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने क्रियाकलाप द्वारा स्वयं अपने और प्रकृति के बीच पदार्थों के विनियमय में दखल देना है, उसका नियम और नियंत्रण करता है। मनुष्य प्रकृति की एक शक्ति के रूप में प्रकृति के पदार्थों का विरोध है। मनुष्य प्रकृति के पदार्थों को ऐसे रूप में प्राप्त करने के लिए जो उसकी आवश्यकताओं के उपयुक्त हो, अपने शरीर की प्राकृतिक शक्तियों-हाथ और पैर, मस्तिष्क और उँगलियों को गतिशील बनाता है। (श्रमिक(के रूप में मनुष्य किसी भी उत्पादन-प्रक्रिया की अनिवार्य और वस्तुतः पहली मुख्य शर्त है। बढ़ई के बगैर फर्नीचर, किसान के बगैर अनाज, खनिक के बगैर कोयला हो ही नहीं सकता। यह उल्लेखनीय है कि संजीव श्रम हमेशा एक मूर्त रूप ग्रहण करता है। एक श्रमिक का श्रम, दूसरे के श्रम से श्रम की परिस्थितियों, उससे संबद्ध कौशल और विधियों के स्वरूप, उपयोग में लाई जाने वाली प्रविधि तथा श्रम-यंत्रों के प्रकार-भेद की दृष्टि से काफी भिन्न हो सकता है।

(2) उत्पादन - मार्क्स के अनुसार (उत्पादन) वह है जो प्रकृति के भौतिक पर्यावरण एवं विभिन्न साधनों या उपकरणों के द्वारा शोषण करके प्राप्त किया जाता है। मनुष्य इन साधनों के द्वारा प्रकृति में प्रदत्त वस्तुओं को प्राप्त करता है उसे ही मार्क्स उत्पादन कहते हैं।

(3) उत्पादन के साधन - वे साधन जो उत्पादन को प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं (उत्पादन के साधन) के रूपम मेंजाने जाते हैं। आदिम मानव के धारदार छड़ी, पत्थर की कुदाली जैसी कुल्हाडी, लोहे की कुदाल, लकड़ी का हल और अंत में आधुनिक किसा का फौलाद का हल एवं अत्याधुनिक रूप में ट्रेक्टर आदि उन यंत्रों में से कुछ एक हैं जिनका विविध युगों में जीनम की बुवाई के लिए उसे तैयार करने हेतु उपयोग किया जाता था या किया जाता था।

(4) उत्पादन की शक्तियाँ - मनुष्य उत्पादन के साधनों का प्रयोग अपने वर्तमान उत्पादन-अनुभव तथा श्रम-कौशन के आधार पर ही करके भौतिक वस्तुओं का उत्पादन करता है। ये सब तत्व एक साथ मिलकर ही उत्पादन-शक्तियों का निर्माण करते हैं और भी स्पष्ट रूप से हम कह सकते हैं कि किसी समाज-विशेष की उत्पादक शक्ति के तीन तत्व का अंग होते हैं। मनुष्य, उत्पादन के साधन तथा उत्पादन अनुभव व श्रम-क शल।

(5) उत्पादन-संबंध - अपने आप में उत्पादन नहीं बल्कि उत्पादन संबंध किसी भी समाज की विशेषता होते हैं। मार्क्स के अनुसार किसी भौतिक उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान विकसित होने वाले सामाजिक संबंध ही उत्पादन के संबंध कहे जाते हैं। उत्पादन के इन्हीं संबंधों से संपत्ति संबंधों का निर्माण होता है जो कालान्तर में वर्गों को जन्म देते हैं।

मार्क्स के अनुसार उत्पादन-शक्तियाँ या उत्पादन-संबंधों के संपूर्ण योग से ही समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण होता है। इसी को अधोसंरचना कहा गया है, क्योंकि यही वास्तविक नीव है जिस पर कि समाज की अधिसंरचना खड़ी होती है। अधिसंरचना के अंतर्गत सामाजिक जीवन के अन्य पक्ष, जैसे सामाजिक राजनीतिक, बौद्धिक, वैधानिक, सांस्कृतिक आदि आते हैं। मार्क्स के मतानुसार अधोसंरचना के अनुरूप ही अधिसंरचना की प्रकृति निश्चित होती है।

मार्क्स के अनुसार सामाजिक परिवर्तन कुछ निश्चित वस्तुगत नियमों (Objective Rules) के अंतर्गत ही होते हैं। किसी काल्पनिक विश्वात्मा अथवा आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा नहीं होते। इन्हीं निमयों के अनुसार एक सामाजिक आर्थिक व्यवस्था दूसरी का स्थान लेती है। मार्क्स के अनुसार अपन जीवन की आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के लिए मनुष्य निरंत संघर्ष करता रहता है। अपने जन्म के समय मनुष्य जिस प्रकार के उत्पादन के साधन समाज से विरासत में पाता है, उन्हें प्रयोग में लाते हुए ही वह उनमें इसलिए परिवर्तन करता है जिससे उसका श्रम अधिक उत्पादक और कम कष्टप्रद हो सके। इसके लिए वह अपने उत्पादन के साधनों मे निरंतर सुधार और परिवर्तन करता रहता है। जैसे-जैसे उत्पादन के साधन परिवर्तित होते जाते हैं, सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में भी परिवर्तन होता जाता है। उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के साथ ही उत्पादन के संबंधें में भी परिवर्तन आ जाते हैं और पूरा सामाजिक ढाँचा बदल जाता है। इसीलिए मार्क्स के अनुसार सामाजिक परिवर्तन और विकास का मुख्य और अंतिम कारण उत्पादन की भौतिक परिस्थितियाँ होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्स के अनुसार सभी परिवर्तन उत्पादन-प्रणाली में होने वाले परिवर्तन परिणामस्वरूप ही होते हैं। भौतिक परिस्थितियाँ, जनसंख्या-वृद्धि एवं अन्य कारकों का मनुष्य के जीवन पर प्रभाव अवश्य पड़ता है लेकिन ये कारक सामाजिक परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण नहीं है। सामाजिक परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण कारक उत्पादन-प्रणाली ही है।

मनुष्य को अपनी दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन करना होता है और उत्पादन करने के लिए उत्पादन-शक्तियों की आवश्यकता होती है और उत्पादन के सिलसिले में वह अन्य व्यक्तियों के साथ उत्पादन-संबंध (Producation-Relation) स्थापित करता है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन की प्रणाली उत्पादन के कुछ निश्चित संबंधों (जैसे, जीमंदार और किसान, स्वामी और दास, पूँजीपति और मजदूर के बीच पाए जाए वाले उत्पादन संबंध) को उत्पन्न करती है। ये उत्पादन के संबंध व्यक्ति की स्वेच्छा पर आश्रित नहीं होते, वरन् उत्पादन-शक्तियों के अनुसार अनिवार्य होते हैं। ये उत्पादन संबंध किसी भी युग की सांस्कृतिक व्यवस्था, उसके नैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विचार एवं संस्थाओं का मुख्यतः निर्धारण करते हैं। जब समाज की उत्पादक-शक्ति में काई परिवर्तन होता है, तो उसी के साथ-साथ उत्पादन संबंध बदलता है और उत्पादन के संबंधों में परिवर्तन होने से सामाजिक परिवर्तन घटित होता है। मार्क्स की उत्पादन-प्रणाली को तीन भागों में बाँट कर समझा जा सकता है -

(1) उत्पादन - प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह किसी भी अवस्था में अधिक समय तक स्थिर नहीं रहती, अपितु सदा परिवर्तन तथा विकास की दिशा में उन्मुख रहती है। साथ ही, उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन होने से संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था, विचारों में परिवर्तन आता है। क्योंकि उत्पादन-

प्रणाली में परिवर्तन होने से समग्र सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था का भी पुनर्निर्माण (Reconstruction) अनिवार्य होता है।

(2) उत्पादन - प्रणाली की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें परिवर्तन और विकास तभी होता है जब उत्पादन-शक्तियों (Productin-Forces) में परिवर्तन वे विकास होता है और इससे भी पहले उत्पादन के साधनों (Means of Production) औजार, यंत्र आदि - में परिवर्तन व विकास होता है। इस प्रकार उत्पादन के साधनों में परिवर्तन व विकास सबसे पहले होता है, जिसके फलस्वरूप उत्पादन-शक्तियों में भी परिवर्तन व विकास होता है। समाज की उत्पादक-शक्तियों में परिवर्तन का परिणाम यह होता है कि इन उत्पादक-शक्तियों से संबंधित और इन पर आधारित मनुष्यों के उत्पादन-संबंधों में भी परिवर्तन हो जाता है परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उत्पादन-संबंध का कोई प्रभाव उत्पादक-शक्ति उत्पादन-संबंधों पर निर्भर नहीं है। यद्यपि उत्पादन-संबंधें का विकास उत्पादन-शक्ति के विकास पर ही निर्भर है, फिर भी उत्पादन-संबंध उत्पादक-शक्ति के विकास की गति को धीमी या तीव्र करते हैं। ये दोनों एक-दूसरे से एक निश्चित ढंग से जुड़े हुए है और इनसे जुड़ा हुआ है मनुष्य का संपूर्ण सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन और संबंध। मार्क्स ने स्पष्ट ही लिखा है कि - "सामाजिक संबध उत्पादक-शक्तियों से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए है। नई उत्पादक-शक्तियों के प्राप्त होने पर मनुष्य अपनी अत्पादन-प्रणाली बदल देते हैं और अपनी उत्पादन-प्रणाली तथा अपनी जीविका-उर्पाजन की प्रणाली बदलने से वे अपने समस्त सामाजिक संबंध को परिवर्तित करते हैं। "जब हाथ ही चक्की (Hand Mill) थी तथा तब सामंतवादी समाज था, भाव से चलने वाली चक्की (Steam Mill) वह समाज बनाती है जिसमें प्रभुत्व औद्योगिक पूँजीपति का होता है।"[1] अतः उत्पादन-प्रणाली में ही सामाजिक परिवर्तन का रहस्य छिपा हुआ है।

(3) उत्पादन-प्रणाली की तीसरी विशेषता यह है कि नवीन उत्पादक - शक्तियों तथा उनसे संबंधित उत्पादन के संबंधों का उद्भव पुरानी व्यवस्था से पृथक या पुरानी व्यवस्था के लोप (Disapperance) हो जाने के बाद नहीं बल्कि पुरानी व्यवस्था के अंतर्गत ही होता है। दूसरे शब्दों में, नवीन व्यवस्था का बीज पुरानी व्यवस्था में ही अंतर्विहिन या छिपा होता है अतः सामाजिक परिवर्तन एक अनोखी नहीं, वरन् एक स्वाभाविक घटना है, यही प्रकृति का नियम है कि सब कुद अपने आतंरिक स्वभाव द्वारा विकसित व परिवर्तित होगा। इतना ही नहीं, नवीन उत्पादक-शक्तियों का जन्म मनुष्य की विचारपूर्वक तथा सचेत क्रिया के फलस्वरूप नहीं, बल्कि आपसे आप या स्वतः अचेत रूप में तथा मानव इच्छा से स्वतंत्र रहकर होता है।

1.3.5.अधिसंरचना-अधोसंरचना का आर्थिक निर्धारणवाद

राजनैतिक अर्थव्यवस्था की समालोचना (Critique of political Economy) मार्क्स की वह प्रमुख रचना है जिसमें उन्होंने मानवीय संबंधों तथा राजनैतिक संरचना पर आर्थिक व्यवस्था की प्राथमिकता को स्वीकार किया। यह सच है कि राजनैतिक अर्थव्यवस्था से संबंधित विचार भी मार्क्स को एक आर्थिक निर्णायकवादी के रूप में स्पष्ट करते हैं लेकिन यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मार्क्स का आर्थिक निर्णायकवाद निरपेक्ष न होकर बहुत कुछ सापेक्षिक है। इस पुस्तक में मार्क्स का आर्थिक ने जहाँ

एक ओर समाज की संरचना तथा वैचारिकी पर आर्थिक व्यवस्था के प्रभावों को स्पष्ट किया है वहीं दूसरी और उनका उद्देश्य शक्ति तथा राज्य के स्परूप का निर्धारण करने में आर्थिक कारकों के प्रभाव को स्पष्ट करना रहा है। इस पुस्तक में मार्क्स ने बतलाया कि उत्पादन और वितरण की आर्थिक प्रणाली अथवा उत्पादन के संबंध ही किसी समाज की मूल संरचना (Infra-Structure) का निर्माण करते हैं। समाज की इस मूल संरचना के अनुसार ही अन्य सामाजिक संस्थाओं के स्वरूप का निर्धारण होता है। इन सामाजिक संस्थाओं में राज्य तथा वैज्ञानिक संस्थाओं का प्रमुख स्थान है। मार्क्स के इस विचार को और अधिक स्पष्ट करते हुए उनके मित्र तथा सह-लेखक फ्रोडरिक ऐंजल्स ने लिखा है कि "आर्थिक विकास की दशा में राज्य में अनेक संस्थाओं का रूप बदलने लगता है बल्कि समाज में धर्म और कला से संबंधित विचारों में भी परिवर्तन होने लगता है।" इस प्रकार मार्क्स ने सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाओं पर आर्थिक कारकों के जिस प्रभाव को स्पष्ट किया उन्हें निम्नांकित चार भागों में विभाजित करके स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) आर्थिक व्यवस्था एवं समाज (Economic System and Society)

मार्क्स ने यह स्पष्ट किया भी समाज में विद्यमान आर्थिक व्यवस्था ही उस समाज की वास्तविक नींव होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आर्थिक व्यवस्था समाज की मूल संरचना (Infra-Structure) होती है। उस समाज में पाएँ जाने वाले मूल्य, रीति-रिवाज, संस्कृति, कानून, नियम तथा सामाजिक मानदंड आदि वे अधि-संरचनाएँ (Super-Structures) हैं जिनका विकास मूल संरचना की प्रकृति के अनुसार ही होता है।

मार्क्स का कथन है कि समाज की मूल संरचना का निर्माण जिन आर्थिक दशाओं के आधार पर होता है उनमें उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन के तरीकों का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि उत्पादन के साधनों के स्वामित्व तथा श्रम-संबंधों के आधार पर ही समाज की उस अधो-संरचना का निर्माण होता है जिसमें सामाजिक मूल्य, रीति-रिवाज, धर्म, कानून, शिक्षा तथा राजनीति आदि का समावेश होता है। इसे स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने बताया कि जब समाज में आदिम साम्यवाद की दशा विद्यमान थी तब वह मूलतः एक अनुत्पादक समाज था। उस समय व्यक्ति पशुओं की तरह प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं का उपभोग किया करते थे। इस स्तर में हथियार मनुष्य की पहली संपत्ति बने जिसका उपयोग शक्तिशाली लोगों ने दुर्बल लोगों का शोषण करने के लिए किया। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उस समय के हथियार तथा औजार ही उत्पादन के साधन थे जिन्होंने समाज में एक विशेष प्रकार ही मूलसंरचना का निर्माण किया। इनके आधार पर तत्कालीन समाज में जिन सामाजिक मूल्यों के स्थापना हुई वे वर्तमान समाज के मूल्यों से बिलकुल भिन्न थी।

सामंतवादी अर्थव्यवस्था तथा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन के तरीकों में एक आधार भूत अंतर देखने को मिलता है। यही कारण हुआ उनका रूप भी एक-दूसरे से काफी भिन्न है। सामंतवादी आर्थिक व्यवस्था में बनने वाली समाज की अधो-संरचना में परंपरागत सत्ता अर्थ-दास प्रथा अथवा बंधुआ मजदूरों का समावेश था। दूसरी ओर पूँजीवादी अर्द्धव्यवस्था ने एक ऐसी अधो-संरचना का निर्माण किया जिसमें वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा संपत्ति के संचय को विशेष महत्व दिया जाने

लगा। इस आधार पर बनने वाली मूल संरचना तथा उसकी अधो-संरचना के बीच द्वंद्व होता है। इसी द्वंद्व के परिणामस्वरूप ऐसी दशा उत्पन्न होती है जिसे हम क्रांति कहते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक समाज दो मूख्य भागों में विभक्त होता है जिनमें से एक को हम इसकी मूल संरचना और दूसरे को इसकी अधो-संरचना कहते हैं। मूल संरचना का निर्माण आर्थिक अन्य संबंधों का समावेश होता है। समाज की इस मूल संरचना और अधो-संरचना के बीच जो अंतर्विरोध बने रहते हैं उसी के फलस्वरूप क्रांति का जन्म होता है।

(2) अर्थिक व्यवस्था एवां विचार (Economic System and Ideas)

राजनैतिक अर्थव्यवस्था की समालोचना में मार्क्स ने विचारों के निर्माण की प्रक्रिया को भी आर्थिक व्यवस्था के आधार पर ही समझने का प्रयत्न किया है। उनका कथन है कि दर्शन, राजनीति, मूल्यों एवं धर्म से संबंधित वैचारिकी का रूप आर्थिक व्यवस्था के आधार पर ही निर्धारित होता है। मार्क्स ने **कॉम्टे** तथा हीगल की आलोचना करते हुए बतलाया कि सामाजिक संरचना में होने वाला विकास विचारों के फलस्वरूप नहीं होता बल्कि परिवर्तनशील भौतिक दशाएँ ही नए विचारों को जन्म देकर विकास के रूप में होने वाले परिवर्तनों की उत्पन्न करती है। इस दृष्टिकोण से विचारों का संबंध समाज की अधो-संरचना से होता है जबकि समाज की मूल संरचना का निर्माण आर्थिक दशाओं के द्वारा ही होता है।

मार्क्स ने यह स्पष्ट किया कि एक विशेष अवधि में समाज की वैचारिकी अथवा आदर्श उस काल के प्रभुतासंपन्न वर्ग के विचारों का ही प्रतिबिंब होते हैं। अपने कथन को स्प्ष्ट करते हुए मार्क्स ने लिखा है कि - "प्रत्येक युग में लोगों पर नियंत्रण रखने वाले विचार अथवा समाज को संचालित करने वाले नियम उसी वर्ग से संबंधित होते हैं जो एक ही समय में न केवल भौतिक शक्तियों का स्वामी होता है। बल्कि साथ ही उसका बौद्धिक शक्तियों पर भी नियंत्रण होता है।" दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि पूँजीपति वर्ग जिसके पास आर्थिक साधनों का स्वामित्व होता है, वह पूँजी की शक्ति से बौद्धिक शक्ति को भीर खरीद लेता है। समाज में जो वर्ग आर्थिक रूप से प्रभुतासंपन्न होता है वह एक ऐसी वैचारिकी को विकसित करने में सफल हो जाता है जो उसी के हितों के अनुकूल हो। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भौतिक शक्ति ही वह बाधार है जो विचारों को नियंत्रित करती है।

स्पष्ट है कि मार्क्स ने आर्थिक कारकों को ही समाज में पाई जाने वाली वैचारिकी के निर्णायक कारक के रूप में स्वीकार किया है। इस संदर्भ में अपने अनुयायियों को सचेत करते हुए मार्क्स ने लिखा कि - "यदि हम ऐसा मानने लगेंगे कि शासक वर्ग का एक पृथक अस्तित्व है तथा वह समाज की वैचारिकी को अपनी सत्ता से पृथक रखता है, तो हम ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को उचित ढंग से नहीं समझ सकेंगे।" इस प्रकार मार्क्स ने अनुसार आर्थिक कारकों तथा वैचारिकी के बीचएक घनिष्ठ संबंध है तथा प्रत्येक आर्थिक सत्ता अपने हितों के अनुसार ही वैचारिकी को एक विशेष रूप देमें का प्रयत्न करती है।

(3) आर्थिक कारक एवं शक्ति (Economic Factors and Power)

शक्ति राजनैतिक व्यवस्था का एक प्रमुख आधार है। बॉटोमोर ने भी शक्ति को (राजनीति के केंद्र बिंदु) के रूप में स्पष्ट किया है। पारसन्स शक्ति को एक ऐसे तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं जो शासक और शासितों के बीच संतुलन बनाए रखता है। आपके अनुसार शक्ति ही वह आधार है जिसके कारण शासक और शासित दोनों समाज के हित को ध्यान में रखते हुए कार्य करते हैं। इन विचारों के ठीक विपरित, कार्ल मार्क्स ने यह स्पष्ट किया कि शक्ति एक ऐसा तत्त्व है जिसका उपयोग आर्थिक रूप में प्रभुतासंपन्न वर्ग अपने हितों के लिए करता है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण से समाज में शक्ति का स्रोत समाज की आर्थिक मूल संरचना में निहित होता है। इसे स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने बताया कि स्तरों में विभाजित प्रत्येक समाज में उत्पादन की शक्तियाँ कुंछ लोगों ने हाथ में ही केंद्रित होती है। यही लाग सत्ता वर्ग के प्रतिनिधि भी होते हैं। उत्पादन की शक्तियों के कारण समाज में जिस उच्च वर्ग का निर्माण होता है। उसकी प्रभुता अथवा शक्ति का कारण उत्पादन की शक्तियों पर उनका अधिकार होना ही है। इस दृष्टिकोण से शक्ति की विवेचना केवल आर्थिक आधार पर ही की जा सकती है। सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिस वग्र के पास पूँजी होती है, वही वर्ग समाज में शक्तिशाली होता है। इस आधार पर मार्क्स ने लिखा है कि - "यदि सत्ता को पुनः जनसाधारण में स्थानांतरित करना है तो जनसामान्य को सामूहिक रूप से उत्पादन की शक्तियाँ अपने हाथों में लेनी होंगी।

एक पूँजीवादी समाज में सत्ता वर्ग के द्वारा अपनी शक्ति का उपयोग समाज के अन्य वर्गों का शोषण करने के लिए ही किया जाता है। शोषण की इसी प्रक्रिया में बुर्जुआ वर्ग सर्वहारा वर्ग से अधिक उत्पादन करवाता है और उसे कम से कम मजदूरी देता है। मार्क्स का कथन है कि शक्तिशाली वर्ग द्वारा किए जाने वाले शोषण को बल-प्रयोग का ही एक विशेष स्वरूप कहा जा सकता है। समाज का सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ वर्ग के शोषण को अपने हितों के विरूद्ध होने के बाद भी यदि स्वीकार कर लेता है तो इस दशा में यह स्वीकार करना आवश्यक है कि समाज की अधो-संरचना बल-प्रयोग पर आधारित है। इस दशा की इस रूप में भी समझा जा सकता है कि यदि सामाजिक संरचना द्वारा छिपे तौर पर बल-प्रयोग को मान्यता न दी जा रही हो तो सर्वहारा वर्ग उस शोषण को कभी स्वीकार नहीं करेगो जो बुर्जुआ अथवा प्रभुतासंपन्न वर्ग द्वारा किया जाता है। मार्क्स ने लिखा है कि यदि बुर्जुआ वर्ग की शक्ति के समाज उसकी वैधानिक शक्ति के रूप में स्वीकार कर लेता है तो इस दशा को केवल एक झूठी वर्ग-चेतना ही कहा जा सकता है।

मार्क्स ने स्पष्ट किया कि समाज की मूल संरचना अथवा अर्थिक संरचना में शोषण और दमन के रूप में प्रभुत्त के जो संबंध विकसित होते हैं, वे धीरे-धीरे समाज की अधो-संरचना (Super-structure) में स्पष्ट रूप से दिखलाई देने लगते हैं। उदाहरण के लिए, एक पूँजीवादी समाज में नियोजक (Employer) तथा कर्मचारी (Employee) के बीच पाए जाने वाले असमानतापूर्ण संबंधों का प्रतिबिंब वहाँ की वैधानिक व्यवस्था में दिखलाई देता है। इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक पूँजीवादी समाज में विधायिका तथा कानूनों के द्वारा संपत्ति के स्वामियों के हितों काही संरक्षण किया जाता है। मार्क्स के इस कथन से स्पष्ट

होता है कि पूँजीवादी समान की आर्थिक व्यवस्था में पाए जाने वाले असमानताकारी संबंधों के फलस्परूप ही एक ऐसी असमानता को प्रोत्साहन मिलता है जिसे वैधानिक मान्यता मिली होती है। इस प्रकार समाज के उच्च वर्ग को जब वैधानिक रूप से जनसामान्य का शोषण करने की अनुमति मिल जाती है तब उसकी शक्ति का विस्तार होने लगता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि मार्क्स आर्थिक शक्तियों, अर्थात् उत्पादन की शक्तियाँ को ही सामाजिक शक्ति का प्रमुख आधार पर मानते हैं। साथ ही मार्क्स यह भी स्वीकार करते हैं कि आर्थिक आधार पर प्राप्त होने वाली शक्ति ही समाज की अन्य संस्थाओं को भी प्रभावित करती है।

(4) आर्थिक कारक एवं राज्य (Econimic Factors and State)

हम जानते हैं कि मार्क्स ने इंग्लैंड की तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था के आधार पर ही अपने विचार प्रस्तुत किए। अपने आर्थिक सिद्धांतों की विवेचना के लिए मार्क्स ने उस समय के कुछ विचारों को मान्यता प्रदान की तो अनेक दूसरे विचारों का दृढ़तापूर्वक खंडन भी किया। मार्क्स के समकालीन विचारकों में प्रोधों (Prodhon) तथा बकुनिन (Bakunin) प्रमुख अराजकतावादी विचारक थे। इन विद्वानों ने तत्कालीन सामाजिक चिंतन को प्रभावि करने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया था। यह अराजकतावादी विचारक (Anarchsists) जहाँ राज्य को एक आवश्यक बुराई के रूप में देखते थे, वही मार्क्स ने आर्थिक-राजनैतिक विचारों के द्वारा राज्य की अवधारणा को एक भिन्न रूप से स्पष्ट किया। इस संबंध में रेमंड ऐरों (Ramond Aron) ने लिखा है कि एक सद्भावनापूर्ण समाज में मार्क्स द्वारा प्रस्तुत राजनीति की अवधारणा तथा राज्य के लुप्त हो जाने से संबंधित विचारों ने मुझे उनके अन्य सामाजिक विचारों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावित किया। रेमंड ऐरों के इस कथन से रानैतिक अर्थ-व्यवस्था से संबंधित मार्क्स के विचारों का महत्व स्पष्ट हो जाता है। इस दृष्टिकोण से आवश्यक है कि राज्य के बारे में मार्क्स के विचारों के प्रमुख अंशो को संक्षेप में समझ लिया जाए।

आरंभ में ही यह अमझ लेना आवश्यक है कि मार्क्स राज्य की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। मार्क्स ने बतलाया कि आधुनिक युग में कुछ प्रशासनिक कार्य ऐसे हैं जो प्रत्येक समाज के लिए अनिवार्य होते हैं। कोई भी व्यक्ति इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकता कि औद्योगिक समाजों में प्रशासनिक संरचना के बिना कोई काम नहीं चल सकता। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक समाजों में भी एक विशेष प्रकार के केंद्रीकृत प्रशानत का होना अनिवार्य होता है। केंद्रीकृत प्रशासनिक संरचना समाज के आर्थिक विकास की योजनाओं के लिए भी आवश्यक है। मार्क्स का विचार है कि राज्य समाज के प्रशासनिक तथा दिशा-निर्देश देने वाले कार्यो का सम्मिलित रूप है अतः किसी भी समाज में राज्य को समाप्त नहीं किया जा सकता। इसके बाद भी मार्क्स राज्य के वर्तमान रूप को एक बुराई के रूप में देखते हैं। यही कारण है कि सद्भावनापूर्ण समाजों (Nonantagonist Societees) में मार्क्स ने राज्य का लोप हो जाने से संबंधित अपने जो विचार प्रस्तुत किए है, उनका अर्थ प्रतीकात्मक है। वास्तव में मार्क्स यह नहीं मानते कि क्रांति के बाद बनने वाले साम्यवादी समाज में राज्य पूर्णतया समाप्त हो जाएगा बल्कि मार्क्स के अनुसार साम्यवादी समाज में राज्य तो रहेगा लेकिन वर्गो पर आधारित उसका चरित्र नष्ट हो जाएगा। यही राज्य के लुप्त हो जाने का प्रतीकात्मक अर्थ है।

मार्क्स के अनुसार राजनैतिक व्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था के बीच आदान-प्रदान का एक गहरा संबंध है। साम्यवादी समाजों में राजनैतिक व्यवस्था का स्वरूप आर्थिक व्यवस्था की ही तरह स्वयत्ततापूर्ण होना चाहिए। मार्क्स का विचार है कि जिस तरह उत्पादन और वितरण का एक पृथक संगठन होता है तथा जिस प्रकार उत्पादन की समस्याओं का निदान आर्थिक व्यवस्था में ही खोजा जाता है उसी तरह राजनैतिक व्यवस्था को भी एक ऐसे तंत्र के रूप में होना चाहिए जिसके द्वारा जनसाधारण की समस्याओं का समाधान किया जा सके। इसका तात्पर्य है कि राजनीति को सत्ता से पृथक करना आवश्यक है। राज्य की सत्ता का विरोध करते हुए मार्क्स ने लिखा है कि - "राज्य के लुप्त होने का अर्थ यह है कि राज्य का अस्तित्व केवल उत्पादन और वितरण के स्रोतों को खोजने तथा इनसे संबंधित समस्याओं का विदान करने तक ही सीमित होगा।" इस प्रकार पूँजीवादी समाजों में राज्य की शक्ति के चुनौति देते हुए मार्क्स ने उन प्रयत्नों पर बल दिया जिनके द्वारा क्रांति के माध्यम से राज्य की परंपरागत सत्ता को नष्ट किया जा सके।

मार्क्स द्वारा प्रस्तुत विभिन्न विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्धिक पृष्ठभुमि में मार्क्स सबसे अधिक प्रभावपूर्ण लेकिन सबसे अधिक विवादपूर्ण विचारक रहे है। उनके विचारों की जो भी आलोचनाएँ की गई है। वे मल्यू रूप से इसी बिंदु पर आधारित है कि मार्क्स ने आर्थिक कारकों तथा श्रमिक वर्ग के अधिनायकत्व को ही अपने चिंतन का आधार माना। इसके बाद भी यह सच है कि मार्क्स ने अपने विचारों के द्वारा दुनिया की जनसंख्या के जिनते बड़े भाग को प्रभावित किया, उतना प्रभाव आज तक कोई दूसरा विद्वान जन-मानस पर नहीं डाल सका। सच तो यह है कि मार्क्स केवल एक विचारक ही नहीं थे, बल्कि वह संसार के कामगरों के एक महान नेता भी थे। इस दशा में उनके द्वारा एक ऐसी विचारधारा को विकसित करना बहुत स्वाभाविक था जो कामगरों में नई आशा का संचार करकें उन्हें संगठित होने की प्रेरणा दे पाती। अपने इस विशन को पूरा करने के लिए मार्क्स नें संवेगात्मक अपील का भी सहारा लिया लेकिन आज उन्हीं के चिंतन के प्रभाव से श्रमिक वर्ग के सामाजिक-आर्थिक महत्त्व को हर कहीं स्वीकार किया जाने लगा है।

1.3.6. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत

मार्क्स ने अपने इस सिद्धांत की विस्तृत विवेचना अपने प्रमुख ग्रंथ (पूँजी) (Das Capital) के प्रथम भाग में की है। मार्क्स ने इस सिद्धांत को कितना महत्त्व दिया, यह इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि इस पुस्तक के लगभग 300 पृष्ठों में मार्क्स ने इस सिद्धांत का विशद विवेचन किया है। इस सिद्धांत के द्वांरा मार्क्स ने इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया कि पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति श्रमिकों का शोषण क्यों करते हैं? इस सिद्धांत का सार यह है कि - "पूँजीवादी समाज का ढाँचा अतिरिक्त मूल्य के उत्पादन पर ही निर्मित होता है।" यह सच है कि इस सिद्धांत की विवेचना मार्क्स ने अर्थशास्त्र के संदर्भ तथा उसकी शब्दावली में कि है लेकिन समाजशास्त्रीय अध्ययनों में भी इसे एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत को समझने से पहले यह आवश्यक है कि हम उन शब्दों के अर्थ को समझ लें जिनका प्रयोग इस सिद्धांत में प्रचुरता के साथ किया गया है। इनमें मूल्य (Value)] श्रम (Labour) तथा लाभ (Profit) प्रमुख अवधारणाएँ है।

(1) मूल्य (Value) - मार्क्स ने यह स्पष्ट किया कि (मूल्य) तथा (कीमत) (Price) एक-दूसरे से भिन्न अवधारणाएँ है। किसी वस्तु का मूल्य दो तरह के मालों (Goods) के बीच स्थापित होने वाले मूल्य संबंध पर निर्भर होता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए मार्क्स ने मूल्य के दी रूपों का उल्लेख किया- सापेक्ष मूल्य तथा सम मूल्य। उनके अनुसार किसी माल (वस्तु) का मूल्य दो रूपों में हो सकता है, सापेक्ष मूल्य और दुसरा सम-मूल्य। किसी वस्तु का मूल्य सापेक्ष होगा अथवा सम-मूल्य, यह इस बात पर निर्भर करता है कि एक वस्तु का मूल्य केवल व्यक्त किया जा रहा है अथवा उसका मूल्य किसी विशेष वस्तु के संदर्भ में व्यक्त किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, जब किसी कपड़े का एक विशेष मूल्य व्यक्त जाता है तो इसे हम सापेक्ष मूल्य कहते हैं लेकिन जब कपड़े से बने एक कोट का कोई मूल्य व्यक्त किया जाता है तब यह एक बड़ी सीमा तक उस कपड़े के मूल्य के समरूप होगा जिससे वह कोट बनाया गया है। मार्क्स ने स्पष्ट किया कि किसी वस्तु का मूल्य उसमें लगने वाले सामाजिक श्रम के आधार पर निर्धारित होता है। इसका तात्पर्य है कि किसी माल अथवा वस्तु को बनाने में जितना श्रम, समय तथा सामान लगता है, इसी के अनुसार उस माल का मूल्य निर्धारित होता है। इस संबंध में यह ध्यान रखना आवश्यक ही कि व्यक्ति द्वारा बनाई जाने वाली प्रत्येक वस्तु को मार्क्स (माल) नहीं मानते। उनके अनुसार यदि कोई व्यक्ति स्वयं अपने उपयोग के लिए कोई वस्तु बनाता है तो उसे माल नहीं कहा जा सकता। (माल) केवल वह वस्तु है जिसका उत्पादन समाज में अन्य व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है। इस दृष्टिकोण से मूल्य का संबंध (माल) से है, प्रत्येक वस्तु से नहीं।

(2) श्रम (Labour) - कार्ल मार्क्स के अनुसार श्रम एक वस्तु की तरह है। पूँजीवादी समाज में श्रम के मूल्य का निर्धारण उसकी माँग तथा पूर्ति के आधार पर ही होता है। श्रम-प्रक्रिया की चर्चा करते हुए मार्क्स ने बताया कि पूँजीपति श्रम-शक्ति को अपने उपयोग में लाने के लिए खरीदता है। श्रम-शक्ति को खरीदने वाला व्यक्ति (पूँजीपति) उसके विक्रेता (श्रमिक) को काम में लगाकर उसके श्रम का उपभोग करता है। इस प्रकार जो व्यक्ति अपने श्रम को बेचना हैं, वह मजदूर बन जाता है। मार्क्स के अनुसार -"मजदूर को यदि अपने श्रम को एक खरीदे जाने वाले माल के रूप में पुनः प्रकट करना हो तो उसके लिए यह जरूरी है कि वह किसी ऐसी पस्तु के उत्पादन पर अपना श्रम खर्च करे जिसमें अन्य लेगों की आवश्यकताओं को पूरा करने की सामर्थ्य हो।" श्रम की सरल विवेचना प्रस्तुत करते हुए मार्क्स ने लिखा है कि श्रम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य अपनी इच्छा से प्रकृति की ही एक शक्ति के रूप में प्रकृति के मूकाबले खडा होता है। वह अपनी शारीरिक क्रियाओं के द्वारा प्रकृति की पैदावार को एक ऐसे रूप में बदलने का प्रयत्न करता है जो लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप होती है। मार्क्स के अनुसार श्रम की प्रक्रिया में तीन तत्वों का होना आवश्यक है -

(1) मनुष्य की वैयक्तिक क्रियाशीलता - श्रम के लिए व्यक्ति की शारीरिक क्रियाशीलता का होना इसका पहला तत्त्व है। इसका तात्पर्य है कि बिना हाथ-पैरों का उपयोग किए कोई श्रम नहीं किया जा सकता।

(2) काम की वस्तु - व्यक्ति जब श्रम करता है तो इसके लिए किसी वस्तु (Object) का होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति पत्थर को तराश कर एक मूर्ति बना रहा हो तो इसके लिए पत्थ का होना अनिवार्य है।

(3) काम के उपकरण - प्रत्येक प्रकार के श्रम के लिए किसी न किसी तरह के औजारों या उपकरणों क आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, एक मूर्तिकार पत्थर को तभी तराश सकता है जब उसके पास छैनी तथा हथौड़े जैसे उपकरण हो।

(4) लाभ (Profit) - लाभ किसी वस्तु की उत्पादन लागत तथा उसके विनिमय मूल्य के बीच पाया जाने वाला अंतर है। इसका तात्पर्य है कि किसी वस्तु के उत्पादन में कच्चे माल, श्रम तथा मशीनों आदि के चलाने पर जो कुल व्यय होता है, उसे उस वस्तु का लागत-मूल्य कहा जाता है। इस तैयार वस्तु के बदले व्यक्ति को जो धन प्राप्त होता है, उसे उस वस्तु का विनिमय-मूल्य कहा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी वस्तु को बनाने में सौ रूपये का कच्चा माल प्रयुक्त हुआ बीस रूपये श्रम पर व्यय किए गए तथा तीस रूपये मशीनों की घिसाई, रख-रखाव तथा प्रबंध पर खर्च हुए तो उस वस्तु का कुल लागत-मूल्य 150.00 रु. होगा। यदि उस वस्तु को 200.00 रूपये में बेचा जाए अथवा उतने ही मूल्य की किसी अन्य से बदला जाए तो यह 200.00 रूपये उस वस्तु का विनिमय-मूल्य होगा। इस प्रकार लागत मूल्य तथा विनिमय मूल्य के अंतर को ही लाभ कहा जाता है। सरल शब्दों में लाभ को ही मार्क्स ने (अतिरिक्त मूल्य) का नाम दिया यद्यपि जैसा कि आगामी विवेचन से स्पष्ट होगा, अतिरिक्त मूल्य की प्रकृति पूर्णतया लाभ के समान नहीं है।

एक पूँजीवाद व्यवस्था में पूँजीपति का उद्देश्य अधिक अतिरिक्त मूल्य का उत्पादन करना होता है। अतिरिक्त मूल्य के उत्पादन की विवेचना करते हुए मार्क्स का कथन है कि पूँजीपति उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं को उसी सीमा तक बनाने के लिए तैयार रहते हैं जिस सीमा तक उसका विनिमय मूल्य उन्हें अतिरिक्त मूल्य प्रदान कर सके। इसका तात्पर्य है कि किसी वस्तु का मूल्य एक बड़ी सीमा तक उसके उपयोग से ही संबंधित होता है। जिस वस्तु का उपयोग जितना अधिक होगा उसका मूल्य भी उतना ही अधिक हो सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि किसी वस्तु का कोई उपयोग नहीं होता तो उसका कोई मूल्य भी नहीं हो सकता। इसलिए पूँजीपति द्वारा प्रथम तो ऐसी वस्तुओं का निर्माण किया जाता है, जिनमें लाकगों की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता हो तथा दूसरे, वे उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन उसी मात्रा में करना चाहते हैं जिससे उसके विनिमय मूल्य से उन्हें कुछ लाभ मिलता रहे। मार्क्स के शब्दों में - "पूँजीवादी समाज में पूँजीपति केवल वहीं माल तैयार करना चाहता है जिसका विनिमय-मूल्य उसके उत्पादन में लगने वाले मालों के मूल्य से अधिक हो।" इसे पुनः स्पष्ट करते हुए मार्क्स का कथन है कि पूँजीपति का उद्देश्य केवल उपयोग में लाई जाने वाली पस्तु का निर्माण करना ही नहीं होता, बल्कि किसी माल का उत्पादन करना होता है। साथ ही उसका उद्देश्य केवल मूल्य का

उत्पादन करना ही नहीं हाता बल्कि अतिरिक्त मूल्य का भी उत्पादन करना होता है। इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि मार्क्स के विचारों के संदर्भ में अतिरिक्त मूल्य की प्रकृति तथ्य अतिरिक्त मूल्य के उत्पादन की प्रक्रिया के स्पष्ट किया जाए।

1.3.7. अतिरिक्त मूल्य का उत्पादन

अतिरिक्त मूल्य के उत्पादन की चर्चा करते हुए मार्क्स ने बताया कि पूँजीवादी, सामाजों में श्रमिक, उद्योगपतियों के लिए काम करते हैं। उद्योगपति श्रमिकों से दैनिक मजदूरी पर काम लेते हैं अथवा उनका श्रम खरीदते हैं। जब कोई मजदूर स्वयं को मिलने वाली मजदूरी से अधिक श्रम करता है तब इसे हम मजदूर का (अतिरिक्त श्रम मजदूर द्वारा किया जाने वाला वह कार्य है जो उसे प्राप्त होने वाली मजदूरी की तुलना से अधिक या अतिरिक्त होता है तथा जिसके लिए उसे किसी तरह की मजदूरी नहीं मिलती। दूसरे शब्दों में, श्रमिक द्वारा किए जाने वाले श्रम का मूल्य उसे प्राप्त होने वाली मजदूरी के मूल्य से जितना अधिक होता है उसी को अतिरिक्त श्रम कहा जाता है।

मार्क्स का कथन है कि पूँजीवादी समाजों में पूँजीपति का प्रयत्न मजदूरों से अधिक से अधिक अतिरिक्त श्रम लेना होता है। समाज में जब अतिरिक्त श्रम होने लगता है तब पूँजीपतियों के अतिरिक्त लाभ में भी वृद्धि होने लगती है। मार्क्स का विचार है कि पूँजीपतियों को प्राप्त होने वाला अतिरिक्त मूल्य अथवा लाभ मजदूरी के शोषण से ही संभव होता है तथा धीरे-धीरे यह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की स्थाई विशेषता बन जाती है। पूँजीपतियों को प्राप्त होने वाले इस अतिरिक्त मूल्य के फलस्वरूप ही वे अधिक अमीर होते जाते हैं जबकि इसी के कारण मजदूर वर्ग के शोषण और उनकी गरीबी में निरंतर वृद्धि होने लगती है। अतिरिक्त मूल्य के उत्पादन की इस प्रक्रिया को एक विशेष उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। यदि किसी साड़ी उद्योग में एक श्रमिक दिन में दो साड़ी बना सकता है तो पहली और दूसरी साड़ी के निर्माण पर होने वाला कुल व्यय तथा उससे प्राप्त होने वाला अतिरिक्त लाभ इस प्रकार होगा :

पहली साड़ी के निर्माण पर होने वाला कुल व्यय
कच्चे माल का मूल्य 40.00 रूपये
उद्योग की मशीनों को चलाने, उनकी मरम्मत तथा अन्य व्यय 20.00 रूपये
श्रमिक को दी जाने वाली मजदूरी 20.00 रूपये
कुल लागत मूल्य 80.00 रूपये
साड़ी का विक्रय अथवा विनिमय-मूल्य 100.00 रूपये
लाभ 20.00 रूपये
दूसरी साड़ी के निर्माण पर होने वाला कुल व्यय
कच्चे माल का मूल्य 40.00 रूपये
उद्योग की मशीनों को चलाने, उनकी मरम्मत तथा अन्य व्यय 20.00 रूपये
कुल लागत मूल्य 60.00 रूपये

साड़ी का विक्रय अथवा विनिमय-मूल्य 100.00 रूपये
लाभ 40.00 रूपये

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि किसी माल के उत्पादन पर कच्चे माल मशीनों की घिसाई, रख-रखाव तथा प्रबंध आदि पर होने वाले व्यय की लागत प्रत्येक इकाई पर समान अथवा लगभग समान होती है। इस स्थिति में पूँजीपति द्वारा श्रमिकों से अतिरिक्त श्रम लेकर ही अपने लाभ को बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में उद्योगपति द्वारा जिस तरह की साड़ियों का निर्माण किया जाता है, यदि उसका विक्रय-मूल्य प्रति साड़ी 100.00 है तो मजदूर को प्रति साड़ी 20.00 रूपये की दर से मजदूरी देकर भी उद्योगपति को प्रति साड़ी 20.00 रूपये का लाभ प्राप्त हो जाता है। इस तरह एक मजदूर यदि चार घंटें में एक साड़ी बनाता है तो इसका तात्पर्य है कि उसने मजदूरी के आाधार पर अपना दिनभर का काम पूरा कर लिया है। किंतु अपने काम के शेष चार घंटें में जब वह दूसरी साड़ी बनाता है तो इसके लिए उसे कोई अतिरिक्त मजदूरी प्राप्त नहीं होती। इस प्रकार दूसरी साड़ी के लिए श्रमिक को बिना मजदूरी दिए ही उससे जो कार्य लिया जाता है वह श्रमिक द्वारा किया गया अतिरिक्त कार्य है तथा उसके द्वारा उद्योगपति को जो अतिरिक्त लाभ प्राप्त हो जाता है वह उसे मिलने वाला (अतिरिक्त मूल्य) है। उपर्युक्त उदाहरण में उद्योगपति को पहली साड़ी पर प्राप्त होने वाला शुद्ध लाभ 20.00 रूपया है जबकि दूसरी साड़ी पर वह 40.00 रूपये प्राप्त करता है। इस प्रकार 40-20 या 20 रूपये उद्योगपति को प्राप्त होने वाला अतिरिक्त मूल्य है।

मार्क्स ने बतलाया कि जब मजदूर काम के निश्चित घंटों के आधार पर कार्य करते हैं, जब उद्योवादी समाज में श्रमिकों से अतिरिक्त श्रम करवाने की प्रवृत्ति के आधार पर पूँजीवादी समाज की अधो-संरचना का निर्माण होता है। इसके अंतर्गत श्रमिकों से वे कार्य भी करवाये जाने लगते हैं जिन्हें करने के लिए वे बाध्य नहीं होते। पूँजीपतियों का उद्देश्य कभी श्रमिकों की प्रशंसा करके तो कभी उन्हें कोई सामान्य प्रलोभन देकर उनसे अतिरिक्त श्रम करवाना होता है। इस आधार पर मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य के दो स्वरूपों की से है जिनके द्वारा वे मजदूरों से अतिरिक्त श्रम लेकर अपने अतिरिक्त लाभ को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं।

(1) निरपेक्ष अतिरिक्त मूल्य (Non-relatie Surplus Value) - कार्य मार्क्स के अनुसार निरपेक्ष अतिरिक्त मूल्य एक एकसी दशा को स्पष्ट करता है जिसमें उद्योगपति श्रमिक में चेतना का स्तर निम्न होता है तब पूँजीपति श्रमिकों के काम के घंटों को बढ़ाकर जो अतिरिक्त मूल्य उत्पन्न किया जाता है, उसे मैंने निरपेक्ष अतिरिक्त मूल्य का नाम दिया है।" मार्क्स का कथन है कि पूँजीवाद की प्रारंभिक अवस्था में जब श्रमिकों में चेतना का स्तर निम्न होता है तब पूँजीपति श्रमिकों के काम के घंटों को बढ़ा देते हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक कारखाने में श्रमिक की दैनिक कार्यक्षमता 6 घंटें काम करने की है। तो उद्योगपति द्वारा एक दिन में काम के 8 घंटें निर्धारित करके श्रमिकों से अतिरिक्त मूल्य उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। स्पष्ट है कि काम के घंटें बढ़ जाने से उद्योगपति श्रमिकों से अधिक काम ले सकेगा। इस स्थिति में श्रमिक जो अतिरिक्त श्रम करेंगे उससे होने वाले अतिरिक्त लाभ के द्वारा उद्योगपति बिना किसी लगाव के

सभी मजदूरों के काम के घंटों को बढ़ा देता है। इसीलिए मार्क्स ने इससे पैदा होने वाले अतिरिक्त मूल्य को निरपेक्ष अतिरिक्त मूल्य का नाम दिया है।

(2) सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य(Relative Surplus Value) - मार्क्स ने लिखा है - "जो अतिरिक्त मूल्य श्रम के घंटों को कम कर देने तथा काम के दिन को दो हिस्सों में विभाजित कर देने के फलस्वरूप उत्पन्न होता है, उसे मैं सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य की संज्ञा देता हूँ।" मार्क्स के इस कथन से स्पष्ट होता है कि सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य के द्वारा अपने लाभ में बृद्धि करना उद्योगपतियों का दूसरा तरीका है। साधारणतया जब श्रमिकों के कल्याण की बात उठती है अथवा श्रमिक स्वयं काम की दशाओं में सुधार करने की माँग करते हैं तब पूँजीपतियों द्वा उनके काम के कुल घंटें तो कम कर दिए जाते हैं लेकिन एक कार्य-दिवस को दो समान भागों में बाँट दिया जाता है। इससे भी उन्हें अपने अतिरिक्त मूल्य को बढ़ाने का अवसर मिल जाता है। एक उदाहरण के द्वारा सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य की प्रकृति को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। यदि किसी उद्योग में मजदूर से लगातार आठ घंटे तक काम लिया जाता हो तो श्रमिकों के कार्य-दिवस की अवधि आठ घंटा होगी। इस अवधि में उद्योगपति द्वारा प्रत्येक घंटे में मजदूर के श्रम की उत्पादकता का आकलन किया जाता है। साधारणतया उद्योगपति यह जान लेते हैं कि एक श्रमिक पहले तीन या चार घंटों में जितनी तेजी से काम करता है, बाद के घंटों में उत्पादकता की दर कम होने लगती है। पूँजीपति का उद्देश्य सदैव श्रम की उत्पादकता के बढ़ाना होता है। इस दशा में पूँजीपति श्रमिक द्वारा किए जाने वाले काम के घंटों को कम करके कार्य-दिवस को दो भागों में बाँट देता है। इसका तात्पर्य है कि वह आठ घंटे के स्थान पर कार्य-दिवस सात घंटे का निर्धारित करके पहले चार घंटे का काम लेने के बाद एक घंटे का अवकाश देकर बाद में पुनः तीन घंटे का काम ले सकता है। इस एक घंटे में श्रमिक अपनी सारी थकान मिटा लेता है। इसके फलस्वरूप अवकाश के बाद दिन के दूसरे भाग में भी श्रमिक उतनी ही तेजी से काम करता है जितनी तेजी से वह दिन के पहले घंटों में काम कर सकता था। इस प्रकार पूँजीपति द्वारा जब काम के कुल घंटों को कम करके परिस्थितियों में ऐसा गुणात्मक परिवर्तन किया जाता है जिससे श्रमिक के अतिरिक्त श्रम में वृद्धि हो सके तब इस प्रकार बढ़ने वाले अतिरिक्त मूल्य को हम सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य कहते हैं।

मार्क्स ने यह स्पष्ट किया कि सापेक्ष और निपेक्ष अतिरिक्त मूल्य के आधार पर ही पूँजीपति श्रमिक वर्ग का निरंतर शोषण करते रहते हैं। मार्क्स का कथन है कि जिस दिन दुनियाँ के मजदूर इस बात को जान लेंगे कि पूँजीपति किस प्रकार उनसे अतिरिक्त मूल्य पैदा करते हैं, उस दिन श्रमिकों के लिए क्रांति का रास्ता खुल जाएगा। स्पष्ट है कि अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत के द्वारा मार्क्स ने जहाँ एक ओर श्रमिकों के शोषण की प्रक्रिया को बहुत गहराई से समझाने का प्रकाश डाला जो उन्हें श्रमिकों का शोषण करने की प्रेरणा देती है।

1.3.8. सारांश

सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य (Relative Surplus Value) के संबंध में मार्क्स का कहना है कि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के तीन स्तर होते हैं। पहला सहज सहयोग युग (Sumple Co-operation), इसके बाद श्रम विाग और शिल्प यंत्र विहीन कारखाना का युग (Division of Labour and Manufacture) और तीसरे बड़े-बड़े व्यवसायों का युग (Large Scale Industry)। मार्क्स ने दिखाया है कि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में मजदूरों को अतिरिक्त समय तक मालिकों के कारखानें में काम करके अतिरिक्त मूल्य की सृष्टि करनी पड़ती है। इस अतिरिक्त मूल्य का ही एक अंश पूँजी में मिल कर उसकी वृद्धि करता है, जिससे एक ओर कल-पुर्जो की उन्नति होती है, व्यक्तिगत संपत्ति में वृद्धि होती है और दूसरी ओर यंत्रों की उन्नति के साथ-साथ श्रमिकों की आवश्यकता कम होती जाती है। श्रमिकों में बेकारों की संख्या बढ़ती है। अतिरिक्त मूल्य के रूप में जो क्रमशः मूल धन में वृद्धि होती रहती है उसकी नींव पर ही पूँजीवादी समाज व्यवस्था की इमारत खड़ी है। आरंभ में मूलधन का जो संचय हुआ उसमें कारीगरों को उत्पादन के यंत्रों से और किसानों को जीमन से वंचित करके यंत्र और जीमन पर अधिकार कर लिया गया। इसके बाद उपनिवेश स्थापन करके वहाँ के समृद्धि साधनों का शोषण किया गया और फिर प्रतियोगिता से बचने के लिए स्वदेशी माल पर संरख्ज्ञणात्मक कर लगाया गया। प्रारंभ में इन्हीं सब उपायों द्वारा मूलधन में वृद्धि की गई। शुरू में धन-संचय का जो रूप था, उसमें एक ओर सर्वस्वहीन श्रमिक और दूसरी ओर धन और कल-कारधानों के मालिक इन दो वर्गो की सृष्टि हुई।

पूँजीवादी उत्पादन प्रथा के पूर्व जो लोग परिश्रम करते थे वही अपने परिश्रम द्वारा उत्पन्न वस्तुओं के मालिक भी होते थे। जरूरत से फाजिल जो अपनी तैयार की हुई चीज उकने पास होती थी उनकी वे बिक्री खुद करते थे। इसके बाद जब वस्तु उत्पादित करने के साधनों से वे वंचित कर दिए गए तब उन्हें मजबूर होकर अपनी श्रमशक्ति को धनिकों के हाथ बेचना पड़ा। इस समय श्रमिकों की श्रमशक्ति खरीदकर तथा उसका उपयोग करके पूँजीपति कारखानो में माल तैयार करा लेता है। इस माल का मालिक श्रमिक नहीं पूँजीपति होता है। पूँजीपति इस माल को लागत खर्च से अधिक मूल्य में बेचकर मालामाल होता है। श्रमिक यदि अपने परिश्रम से उत्पन्न वस्तुओं का आप मालिक होता और उन्हें बाजार में बेच सकता तो फिर वह पूँजीपति की दासता क्यों स्वीकार करता?

मार्क्स ने अपने कैपिटल ग्रंथ में एक स्थान पर ठीक ही लिखा है - "रूपया जिस समय इस पृथ्वी पर आया उस समय उसके एक गाल पर जन्म से ही रक्त का चिन्ह था...। हमारा कहना है कि मूलधन का जिस समय अविर्भाव हुआ, उस समय उसके सिर से पाँव तक एक-एक लोम कूप से लहू और पसीना बह रहा था।" सचमुच धन-संचय का इतिहास आरंभ से लेकर अब तक सर्वहारा के खून और पसीने से सना हुआ है।

1.3.9. बोध प्रश्न

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. किसने अधिसंरचना एवं अधोसंरचना का सिद्धांत दिया?

(क) कार्ल मार्क्स

(ख) हीगल

(ग) रेडक्लीफ ब्राउन

(घ) स्पेंसर

2. अधिसंरचना एवं अधोसंरचना में उत्पादन का आधार कौन है?

(क) अधिसंरचना

(ख) अधोसंरचना

(ग) उत्पादन

(घ) आर्थिक निर्धारणवाद

3. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत किससे संबंधित है?

(क) कार्ल मार्क्स

(ख) हीगल

(ग) पी.एस. कोहेन

(घ) वेबर

4. अतिरिक्त मूल्य सिद्धांत में इनमें से प्रमुख है?

(क) मूल्य

(ख) श्रम

(ग) लाभ

(घ) सभी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स के अधिसंरचना-अधोसंरचना का वर्णन कीजिए।
2. कार्ल मार्क्स के अधिसंरचना-अधोसंरचना के उत्पादन के साधान तथा शक्तियों के संबंध की व्याख्या कीजिए।
3. कार्ल मार्क्स के अधिसंरचना-अधोसंरचना आर्थिक निर्धारणवाद का मूल्यांकन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
2. कार्ल मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य सिद्धांत का उत्पादन से संबंध बताइए।

1.3.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

- Manuel, Frank E. (1995). *A Requiem for Karl Marx*. Cambridge: Havard Unkiversity Press.
- Hegel, G.W.F. (1969). *Science of Logic*. London: Allen and Unwin.
- Marx, Karl and Engles, Friedrich. (1948). *The Communist Manifesto*. NY: International Publisher.
- Giddens, Anthony. (1995). *A Contemprary Critic of Historical Materialism.* Stanford : University Press.
- Bottomore, T. and Rubel, M. (1965). *Karl Marx:Selected Writing in Sociology and Social Philosophy.* Penguin: Original texts.
- दोशी, एस.एल. एवं जैन, पी.सी. (1997). *सामाजिक विचारक*. दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
- दोशी, एस.एल. एवं जैन, पी.सी. (1997). *प्रमुख सामाजिक विचारक*. दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
- रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्रीय चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.

इकाई-4 : वर्ग एवं वर्ग संघर्ष का सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

1.1.1. उद्देश्य
1.1.2. प्रस्तावना
1.1.3. वर्ग चेतना
1.1.4. मूल वर्ग
1.1.5. वर्ग का उदय क्यों होता है
1.1.6. वर्ग सिद्धांत (Class theory)
1.1.7. पूँजीपतिकरण किस प्रकार वर्ग से संबध है
1.1.8. वर्ग संघर्ष
1.1.9. वर्ग संघर्ष का विचारधारा से संबध
1.1.10. वर्ग संघर्ष में विचारधारा की भूमिका
1.1.11. वर्ग संघर्ष एवं वर्ग युद्ध
1.1.12. वर्ग एवं वर्ग संघर्ष की समीक्षा
1.1.13. सारांश
1.1.14. बोध प्रश्न
1.1.15. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप समझ पाएँगे -

- मूल वर्ग क्या है, वर्ग का उदय क्यों और कैसे होता है?
- कार्ल मार्क्स के वर्ग सिद्धांत एवं वर्ग संघर्ष की विचारधारा में संबंध।
- पूँजीपतिकरण किस प्रकार वर्ग से संबद्ध।
- कार्ल मार्क्स के वर्ग संघर्ष एवं वर्ग युद्ध की समीक्षा को समझ पाएँगे।
- कार्ल मार्क्स के विचरों का मूल्यांकन।

1.1.2. प्रस्तावना

मार्क्स की उन्नत वैज्ञानिक प्रस्थापना में एक बात यह भी शामिल है कि उन्होंने विभिन्न सामाजिक समूहों और सबसे पहले वर्गों के अस्तित्व की व्याख्या की। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मार्क्स ने वर्गों की सर्वांगिण व्याख्या की। मार्क्स की वैचारिक खोज का एक मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना था कि यह मानव समाज जिसमें हम रह रहे हैं और इसका जो रूप दिखाई देता है वह ऐसा क्यों है? उसमें परिवर्तन क्यों और किन शक्तियों के द्वारा होते हैं? साथ ही उन्होंने इसका भी स्पष्ट विश्लेषण और गहन विवेचन किया था कि आगे चलकर इस समाज कैसे परिवर्तन होंगे। अपनी खोज से मार्क्स और उनके अन्य सहयोगी एंजिल्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि समाज ने घोर अमानवीय शोषण व्याप्त है। समाज की स्थापना करने का सैद्धांतिक रास्ता ढूँढ निकालना बताया।

मार्क्स ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह बताया कि बाह्य प्रकृति और मानवीय समाज दोनों में होने वाले परिवर्तन अकस्मात नहीं हो जाते। प्रकृति और समाज में एक आतंरिक द्वंद्वात्मक संघर्ष चलता रहता है। इस सतत् संघर्ष से ही घटनाओं की प्रगति होती हैं और प्राकृतिक तथा सामाजिक विकसा का चक्र चलता रहता है। मार्क्स कास मूल दार्शनिक सिद्धांत द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहलाता है। इस द्वंद्वात्मक प्रणाली द्वारा की गई समाज की व्याख्या ऐतिहासिक भौतिकवाद कहलाती है। इसके अनुसार समाज में विकास और परिवर्तन किसी देवता सम्राट अथवा नेता की बुद्धिमानी या वीरता के कारण नहीं, अपितु किसी विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक कारणों से होते हैं। मनुष्यों के सोचने, समझने तथा कार्य करने का रूप और प्रणाली उनके समय के उत्पादन के साधनों के विकास स्तर और विनिमय के तरीकों से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य निरंतर अपने धर्म को कम कष्टदायक और अधिक उत्पादन बनाने का प्रयत्न करता है। मनुष्य समाज के अंदर-बाहर प्रकृति में विरोधी तत्त्वों और शक्तियों का निरंतर संघर्ष होता रहता है और मनुष्य और प्रकृति का द्वंद्वात्मक संघर्ष भी चलता है। इसी प्रक्रिया में मनुष्य नया प्राकृतिक तथा सामाजिक ज्ञान प्राप्त करके पुरानी उत्पादन प्रणाली को बदल देता है और उसके साथ ही आर्थिक ढाँचे के ऊपर खड़ा हुआ सामाजिक ढाँचा भी बदल जाता है इसलिए किसी भी युग के समाज की समस्याओं को समझने और उन्हें हल करने के लिए हमें उस युग के सामाजिक-आर्थिक ढाँचे के आतंरिक द्वन्द्वों और विरोधों का अध्ययन करना चाहिए।

1.1.3. वर्ग चेतना

वर्ग चेतना की चर्चा एवं विश्लेषण बहुत अधिक होता है। मार्क्स की इस धारणा में वर्ग की संरचनात्मक स्थिति एवं वैचारिकी या चेतनात्मक समझ का संतुलन है। मार्क्स ने कहा वर्ग में वर्ग चेतना स्वतः नहीं आती है, यह विषयनिष्ठ रूप से विकसित होती है। इस संबंध में हंगरी के मार्क्सवादी विद्वान जिन्हें युवा मार्क्स कहा जाता है, उस पर ग्यार्ग लूकाच (जॉर्ज लूकाच) ने इतिहास एवं वर्ग चेतना नामक पुस्तक में विस्तृत चर्चा की। लूकाच ने लिखा कि पूँजीवाद से पहले जो वर्ग समाज में विभक्त थे उनके वर्गों में बहुत स्पष्ट वर्ग चेतना नहीं थी। पूँजीवाद में मजदूरों में वर्ग चेतना सही-सही रूप से पैदा होती है। बहुधा यह वर्ग चेतना उनमें स्वतः पैदा नहीं होती है, बल्कि प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के द्वारा बाहर से

लाई जाती है, परंतु मजदूर वर्ग ही वस्तुनिष्ठ रूप से उस अवस्था में होता है कि वह वास्तविक वर्ग चेतना विकसित कर सके। इसका कारण है कि मजदूर अपने पारंपरिक उपकरणों से वंचित हो जाते हैं, उनकी व्यक्तिगत विशिष्टता का आधार छूट जाता है, वे अपनी पारंपरिक जगहों से टूट जाते हैं एवं वे एक समूह में साथ-साथ कार्य करते हैं। उनके हित वास्तव में एक जैसे होते हैं। कार्ल गार्क्स ने अपनी पुस्तक आर्थिक एवं दार्शनिक पांडुलिपियों में इसके संबंध में लिखा था। इस दृष्टि से देखने पर वर्ग चेतना का अर्थ होता है।

- एक वर्ग को यह अनुभव हो कि वे एक विशेष वर्ग के सदस्य हैं।
- वे आपस में सार्थक एकता स्थापित करते हैं इसलिए वर्ग के सदस्य समझ जाते हैं और उनके वर्गीय हित एक हैं। इटली के अंतोनीयो ग्रामची ने भी यह स्वीकार किया कि हितों की समानता का अनुभव और एक जुटता का अनुभव वर्ग चेतना के अनिवार्य तत्व हैं।
- वर्ग के सदस्यों को यह अनुभव होता है कि उनके हित, दूसरे वर्ग एवं वर्गों के हितों से अलग हैं। यह भी कि उनके वर्गों के हित एवं दूसरे के हित आपस में टकराते हैं।
- वर्ग चेतना का अर्थ यह भी है कि वर्ग के सदस्य यह भी अनुभव करें कि अपने वर्ग हितों को पूरा करने के लिए उन्हें संघर्ष करना होगा। इसका अर्थ यह भी है कि एक वर्ग चेतना के अभाव में आप में वर्ग होता है वह वर्ग चेतना उत्पन्न कर लेने पर अपने लिए वर्ग बन जाता है।

वर्ग चेतना एक विषयनिष्ठ अथवा व्यक्तिनिष्ठ विशेषता और लक्षण है। कार्ल मार्क्स ने वर्ग चेतना के संबंध में यह कहा है कि पूँजीपति वर्ग उद्योगपति वर्ग कभी भी वास्तविक वर्ग चेतना विकसित नहीं कर पाता है। उनकी वर्ग चेतना अवास्तविक वर्ग चेतना (False class consciousness) होती है। इसका कारण है कि पूँजीपति मुनाफे के लिए बराबर एक-दूसरे से प्रतियोगिता करते हैं । उनमें सार्थक एकता नहीं पाती है।

इस धारण के संबंध में बहुत विवाद है। वास्तविक अवस्थाओं में यह देखा गया कि मजदूर वर्ग अपनी एकता स्थापित नहीं कर पाते हैं। इनके बहुत अधिक संगठन यह कहते हैं कि मजदूर वर्ग में एकता स्थापित करना है। इसके विपरीत पूँजीपति वर्ग बहुत आसानी से संकट के समय अपनी एकता स्थापित कर लेते हैं। कोका कोला और पेप्सी कोला शीतल पेय बनाने वाली विश्व की दो बड़ी अमेरिकी कंपनियाँ हैं। विश्व पैमाने पर इसमें प्रतियोगिता है। भारत में एक स्वयंसेवी संगठन ने श्रम साध्य परीक्षणों से जब यह सिद्ध कर दिया कि इन दोनों शीतल पेयों में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तत्व हैं तब ये दोनों कंपनियाँ, जो एक-दूसरे से जबरदस्त प्रतियोगिता करती हैं, तत्काल अपनी व्यापारिक हितों की सुरक्षा के लिए एकजुट हो गई।

1.1.4. मूल वर्ग

मार्क्स ने यह स्वीकार किया कि वर्ग विभाजित समाजों में अनेक होते हैं। पूँजीवादी समाज के संबंध में भी उन्होंने कहा कि पूँजीपति वर्ग के अतिरिक्त एक निम्न पूँजीपति वर्ग होता है, सर्वहारा के अतिरिक्त एक निम्न सर्वहारा वर्ग होता है। इन सबके बावजूद प्रत्येक वर्ग विभाजित समाज में मूलतः दो वर्ग (Basic classes) होते हैं - एक वर्ग जो उत्पादन की शक्तियों का सबसे प्रभावी मालिक और नियंत्रक होता है और दूसरा वह जो उत्पादन की प्रक्रिया में अपना श्रम प्रदान करता है। यही दोनों प्रभावी वर्ग होते हैं। मूल वर्गों के कारण समाज के चरित्र का पता चलता है। समाज को बनाने और चलाने में इन्हीं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इस आलोचना का मुख्य स्रोत मैक्स वेबर की दृष्टि है जिन्होंने कहा कि औद्योगिक समाजों में उद्योगपतियों एवं मजदूर वर्ग के बीच पेशेवर लोग एवं निम्न मध्यवर्ग के लोग होते हैं। मार्क्स के आलोचकों ने कहा कि गैर श्रमिक एवं गैर उद्योगपति वर्ग का जीवन अक्सर बेहतर होता है। इस मध्यवर्ग में जो उच्च मध्यवर्ग है उसकी सामाजिक स्थिति भी अच्छी होती है एवं उसकी भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। इसमें आमतौर पर प्रबंधकों को सम्मिलित किया जाता है। एंथनी गिडेंस ने यह कहा कि मध्यवर्ग एक ही है और वह अपने बौद्धिक एवं शैक्षिक क्षमताओं के कारण अपनी जीविका का उपार्जन करता है। मार्क्स की मजदूर वर्ग की धारणा के संबंध में भी अनेक आलोचनाएँ हैं। राल्फ डहरेनडार्फ ने कहा कि मजदूर वर्ग का विभेदीकरण हो गया है। अब मजदूर वर्ग स्पष्ट रूप से तीन श्रेणियों अकुशल, अर्ध एवं कुशल मजदूरों में विभाजित है। रोजर पेन (Roger Penn) ने कहा कि मजदूर वर्ग में ऐसा विभाजन मार्क्स के समय भी था। यह बीसवीं शताब्दी की विशेषता नहीं है।

1.1.5. वर्ग का उदय क्यों होता है

मार्क्स ने कहा वर्ग एक ऐतिहासिक कोटि है अर्थात् वर्गों का उदय इतिहास के एक विशेष चरण में होता है एवं इतिहास के युगानुसार अर्थात् उत्पादन की शैली के अनुसार वर्गों का चरित्र बदल जाता है। अलग-अलग समाजों में वर्गों का उदय अलग-अलग समय में हुआ है। आदिवासी समाज में स्थानों पर अभी भी नहीं हैं। मार्क्स के अनुसार जब प्रकृति से संघर्ष एवं सहयोग के कारण एक समाज में संसाधन अधिक बढ़ जाते हैं एवं तत्काल उपभोग के बाद भी अधिशेष बचता है, तब इस अधिशेष के लिए समाज में संघर्ष होता है। संघर्ष में वे विजय प्राप्त करते हैं, जिनके पास वह अधिशेष होता है। थोड़े से लोग प्रकृति के साधनों एवं मानव निर्मित साधनों पर नियंत्रण कर लेते हैं और शेष लोगों को भी नियंत्रित कर लेते हैं। मानव समाज में मार्क्स के अनुसार वर्ग विभाजन का आरंभ गुलाम समाज अथवा प्राचीन समाज में हुआ। एशियाई समाजों में न तो निजी संपत्ति की व्यवस्था थी और न ही वर्ग विभाजन था। सार्वजानिक संगठन थे एवं सामूहिक समुदाय जैसी राजनैतिक संस्था थी।

मार्क्स ने कहा हक समाज में वर्ग विभाजन का आरंभ होने पर वर्गीय संस्थाएँ जैसे राज्य, सरकार और कानून भी विकसित होते हैं। वास्तव में इन संस्थाओं का उपयोग शासक वर्ग के वर्चस्व को बनाए रखने में होता है। समाज में वर्ग विभाजन का आरंभ होने पर अथवा इसके साथ ही साथ परिवार और इसके आधार के रूप में निजी संपत्ति का उदय होता है। समाज में वर्गों के उदय से पहले धर्म प्रचलित था।

वर्ग समाज में धर्म शासक वर्ग का सहायक हो जाता है। मार्क्स ने कहा धर्म आत्माहीनों की आत्मा है, यह बेसहारों का सहारा है, यह हृदयहीनों का हृदय है, यह जनता की अफीम है। धर्म जनता की चेतना को विकसित होने से रोकता हैं, धर्म वास्तविक जीवन से मानव का अलगाव कर देता है। समाज में वर्गों का उदय होने से सभी संगठन एवं संस्थाएँ भी एक वर्गीय स्वरूप अपना लेती हैं।

1.1.6. वर्ग सिद्धांत (Class theory)

वर्ग सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण अंग यह है कि वर्ग के आधार पर संस्थाओं, संगठनों, सृजन की विधाओं और मूल्यों का वर्गीय विभाजन हो जाता है। अनेक संगठन और संस्थाएँ शुद्ध रूप से वर्गीय संगठन और संस्थाएँ शुद्ध रूप से वर्गीय संगठन और संस्थाएँ हैं। संभवतः हर्बर्ट स्पेंसर ने पहले ही कहा था कि आदिवासी समाजों में राज्य और सरकार नहीं थे, इसलिए स्पेंसर के अनुसार वे मस्तक विहीन समाज (Acephalous Society) थे। मार्क्स ने कहा जो वर्ग अथवा वर्गों का गठबंधन उत्पादन के साधनों का नियंत्रण करता है, राज्य उसी वर्ग का होता है। शासक वर्ग इन वर्गीय संस्थाओं के वर्गीय स्वरूप को छिपाना चाहता है। इस छिपाने के प्रयास में वह शिक्षा, धर्म और नैतिकता का प्रयोग करता है। इन्हें मानव ने ही विकसित किया है, परंतु शासक वर्गों की चाल एवं चतुराई से आम जनता इन्हें शाश्वत एवं स्वाभाविक समझते हैं। इन संस्थाओं एवं स्वरूपों के हाथों मानव अपने को असहाय एवं बेबस समझने लगता है।

वर्ग सिद्धांत के अंतर्गत मार्क्स ने कहा अलग-अलग वर्गों की संरचनाएँ, समूह और संगठन अलग-अलग होते हैं। मुख्य रूप से जो आधारभूत वर्ग हैं उनके संगठन और समूह तो निश्चित रूप से अलग-अलग होते हैं, जैसे पूँजीवादी में पूँजीवादियों के परिवार अलग होते हैं एवं मजदूर वर्ग के परिवार अलग होते हैं। बीच के वर्गों की स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं होती है। इनमें पुराने समाज के अंश बने रहते हैं। इनके विवाह संबंध और सामाजिक संबंध अलग-अलग वर्गों से होते हैं, यानी मध्यवर्ग की किसी कन्या की शादी किसी धनकुबेर के बेटे से हो सकती है। **एलीन ओकले राइट** ने इसे ही विरोधी वर्ग स्थिति (Coutractiory class location) कहा है। मार्क्स ने कहा कि संरचनाओं और समूहों के समान अलग-अलग वर्गों के नियम, मूल्य, विश्वास और आदर्श भी अलग-अलग होते हैं। मार्क्स ने इस पर जोर दिया कि हम जब भी सामाजिक संबंधों एवं सामाजिक घटनाओं का विश्लषण करें तब अनिवार्य रूप से वर्गीय आधारों की जरूर चर्चा करें। मार्क्स के विचारों की एक विशेषता यह भी है कि वे समाज को संपूर्णता में ही देखते हैं। समाज के अलग-अलग अंशों का स्वायत और पृथक रूप में विश्लेषण संभव ही नहीं है। यथार्थ एक परिप्रेक्ष्य में ही होता है। यह द्वंद्वात्मकता का आवश्यक परिप्रेक्ष्य है। मार्क्स के अनुसार वर्ग की सदस्यता के अनुसार ही वर्ग के सदस्यों की मानसिकता तय होती है। उनका दृष्टिकोण तय होता है। सृजन और साहित्य, नृत्य और संगीत भी वर्ग विभाजित समाजों में वर्गीय चरित्र वाले होते हैं। मूल्य निरपेक्षता मार्क्स के अनुसार एक मिथक है। मैक्स वेबर ने मार्क्स की इस धारणा का बड़ा विरोध किया है। वास्तविक में मैक्स वेबर ने औद्योगिक पूँजीवादी समाजों का जो विश्लेषण किया है, उनमें वर्गीय दृष्टि एवं वर्गीय प्राथमिकताएँ जुड़ी हैं।

1.1.7. पूँजीपतिकरण किस प्रकार वर्ग से संबध है

मार्क्स के संबंध में एक लोकप्रिय आलोचना है कि हाल के दशकों में मजदूर वर्ग में एक श्रेणी धनी हो गई है, जिनके पास अपना मकान है, मोटर कार है। वास्तव में वे पूँजीपति हो गए हैं। इसे मजदूरों का पूँजीपतीकरण कहा गया। इसे किसी खास विद्वान ने प्रस्तुत नहीं किया। ऐसी प्रतीत होता है कि हेरी बेकमन (Hary Baverman) जैसे मार्क्सवादी विद्वानों की इस राय के विरुद्ध कि सफेदपोश कर्मचारियों का सर्वहाराकरण हो रहा है, यह विचार दिया गया। मार्क्स ने परोक्ष रूप से एवं उनके मित्र एंगेल्स ने प्रत्यक्ष रूप से कहा था कि मजदूरों की एक श्रेणी अभिजात मजदूर (Labour Aristocray) की होती है, जो अधिक कुशल होते हैं, जो अधिक तनख्वाह पाते हैं एवं जिनकी जीवन शैली आम मजदूरों से अच्छी है। इंग्लैड में लूटन शहर में जे.एच. गोल्ड थोर्पे, डेविड लावूड आदि ने 1963-64 में एक अध्ययन किया एवं जानना चाहा कि क्यों वाकई ऐसा ही है? उनका निष्कर्ष था कि आर्थिक दृष्टि से अनेक मजदूर सफेदपोश लोगों के समान तनख्वाह पाते हैं, परंतु उनकी श्रम स्थिति और मानसिकता नहीं बदली है।

1.1.8. वर्ग संघर्ष

मार्क्स की रचनाओं में वर्ग के समान वर्ग संघर्ष भी एक केंद्रीय धारणा है। द्वंद्वात्मकता के सार्वभौमिक नियम के अनुसार मार्क्स ने कहा वर्ग विभाजित समाजों में वर्गों में संघर्ष एवं एकता होती है। एल.ए. कोजर ने कहा कि वर्गों की मार्क्स की संपूर्ण चर्चा इस प्रतिमान पर आधारित है कि अब तक के मानव का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब से कोई समाज आदिवासी समाज की अवस्था से परिवर्तित होकर वर्ग विभाजित समाज में रूपांतरित हुआ तब से वर्ग संघर्ष हो रहा है। वर्ग एक ऐतिहासिक कोटि है, इसलिए वर्ग संघर्ष भी ऐतिहासिक कोटि है। ऐतिहासिक कोटि का अर्थ है इनका उदय इतिहास के एक चरण में हुआ एवं ये उत्पादन की शैलियों के आधार पर उभरने वाले इतिहास के चरणों के अनुसार बदलते हैं। अलग-अलग युगों में इनकी संरचना और चरित्र अलग-अलग होते हैं। वर्गों का उदय होने पर अनिवार्य रूप से वर्ग संघर्ष भी उभरते हैं। यह मशीनी रूप से नहीं होता है। वर्ग विभाजित समाजों में एक वर्ग वह होता है जो उत्पादन के साधनों का मालिक एवं नियंत्रक होता है। अन्य वर्ग इनके नियंत्रक नहीं होते हैं। इन अनियंत्रकों में एक वर्ग वह होता है जो उत्पादन में श्रम शक्ति प्रदान करता है, चाहे वे दास हों, किसान अथवा औद्योगिक मजदूर हो। नियंत्रक वर्ग का अंतर्विरोध अन्य सभी वर्गों से होता है, परंतु उस वर्ग से निर्णायक अंतर्विरोध होता है, जो श्रम प्रदान करते हैं। इनके हित एवं स्वार्थ एक-दूसरे से एकदम अलग होते हैं। इनमें एकता भी होती है, क्योंकि ये एक ही समाज के सदस्य हैं।

वर्ग संघर्ष इसलिए होता है, क्योंकि एक छोटा समूह एक समाज में उत्पादन की शक्तियों पर, प्रकृति के स्त्रोतों पर एवं अन्य सुविधाओं पर नियंत्रण कर लेता है। शेष सभी लोग बंचितों की श्रेणी में होते हैं। इनमें उनकी स्थिति सबसे खराब होती है जो कठिन परिश्रम करते हैं, परंतु बदले में जीवित रहने के साधन ही पाते हैं। द्वंद्वात्मकता के सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक तथ्य दूसरे तथ्यों से जुड़ा है एवं प्रत्येक तथ्य गत्यात्मक होता है, एक-दूसरे को बराबर ही संघर्ष एवं सहयोग की प्रक्रिया से प्रभावित करता है।

अंतर्विरोध आर्थिक क्षेत्र में पहले फूट पड़ते हैं। वर्ग संघर्ष के लिए यह जरूरी है कि वर्ग चेतना उत्पन्न हो। मालिक वर्ग अथवा शासक वर्ग संपत्ति का मालिक होता है इसलिए उसकी संवेदनशीलता अधिक होती है, गँवाने की चिंता, पाने की चिंता से अधिक तीव्र होती है। मार्क्स ने प्रत्यक्ष रूप से ऐसा विश्लेषण नहीं किया है। सामान्यतः वर्ग संघर्ष की एक शर्त वर्ग चेतना नहीं है। हमने पहले लिखा है कि जब तक वर्ग में वर्ग चेतना होती है तब तक वह वर्ग अपने आप में वर्ग होता है परंतु वर्ग चेतना उत्पन्न होने पर वह वर्ग अपने लिए यानी अपने हितों को पूरा करने के लिए वर्ग हो जाता है। वर्ग संघर्ष अधिकतर पहले आर्थिक क्षेत्र में आरंभ होते हैं, क्योकि इस क्षेत्र में वर्गीय शोषण आसानी से स्पष्ट हो जाता है। द्वंद्वात्मकता के सिद्धांत के अनुसार ऐसा होना मशीनी रूप से जरूरी नहीं है। वर्ग संघर्ष के अनेक रूप हैं। अर्थव्यवस्था के क्षेत्र संघर्ष, विचारों के क्षेत्र में संघर्ष, राजनीति के क्षेत्र में संघर्ष होता है। मार्क्स ने कहा एक वर्ग की प्रभुता आर्थिक संसाधनों के नियंत्रण पर आधारित है और अंततः इसकी रक्षा राज्य की दमनकारी शक्तियों से होती है। इस सिलसिले में अंतोनियो ग्राम्शी ने कहा शासक वर्ग के पास उत्पादन की शक्तियों का नियंत्रण होता है, परंतु वर्चस्व का आधार सांस्कृतिक नेतृत्व से लोगों के दिमागों पर कब्जा करना है। इसे ग्रामची ने हेजीमोनी कहा है। इसी प्रकार का तर्क फ्राँसीसी पियरे बोर्डियू ने सांस्कृतिक पूँजी की धारणा से देना चाहा है। वर्ग संघर्ष की चर्चा कार्ल मार्क्स ने दो स्तरों पर की, एक दमित लोगों को उत्साहित एवं प्रेरित करने के लिए लोकप्रिय शैली में और दूसरा सैद्धांतिक एवं गंभीर शैली में। कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो में 1848 में उन्होंने लिखा। इसका कारण यह है कि अनेक देशों में मार्क्स की वर्ग संघर्ष की धारणा के आधार पर वस्तुनिष्ठ कार्यक्रम बनाए गए और संघर्ष को संगठित किया गया। इस संबंध में जहाँ एक ओर राजनैतिक संघर्ष की बात हुई वहीं वैचारिक संघर्ष एवं विचारधारा की बात हुई। कार्ल मार्क्स ने आर्थिक-राजनैतिक कारणों पर बल दिया पर वर्ग चेतना और अवास्तविक चेतना की बात उन्होंने बार-बार की। वर्ग चेतना न केवल सांस्कृतिक संदर्भ में सम्मिलित है, बल्कि यह विचारधारा से भी जुड़ी है। फ्रांस के एक विद्वान लुई अल्थूसर ने विचारधारा पर बहुत बल दिया है। उनके अनुसार मार्क्स की यदि सही व्याख्या की जाए तब विचाधारा रचना अथवा सामाजिक संरचना का तत्व है।

वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत

मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के लिए वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। यही कारण है कि मार्क्स के चिंतन के प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी रूप में वर्ग-संघर्ष का अस्तित्व अवश्य देखने को मिलता है। मार्क्स का कथन है कि दुनियाँ में आज तक जो भी परिवर्तन हुए है उनके लिए वर्ग संघर्ष ही उत्तरदाई रहा है। यह सच है कि मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष की प्रकृति तथा इसकी प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए किसी पृथक पुस्तक की रचना नहीं की लेकिन जिन पुस्तकों में मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष संबंधी अपने विचारों को अभिव्यक्त किया, उनमें (साम्यवादी घोषणा-पत्र(, (पूँजी(, (राजनैतिक अर्थव्यवस्था की समालेचना(तथा (फ्रांस में वर्ग-संघर्ष(आदि पुस्तकें प्रमुख है। इनमें मार्क्स ने उन दशाओं को भी विस्तृत विवेचना की है जो वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देती है।

बेंडिक्स तथा लिप्सेट **(R. Bendix and S. M. Lipset)** ने अपनी पुस्तक (वर्ग, प्रस्थिति तथा शक्ति) (Class, Status and Power) में उन महत्वपूर्ण तत्त्वों की सरल रूप में विवेचना की है जिन्हें मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष के आवश्यक तत्त्वों के रूप में स्वीकार किया। यही तत्त्व उन दशाओं को स्पष्ट करते हैं जो पूँजीवादी समाजों में वर्ग-संघर्ष के लिए उत्तरदाई होती है। वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया को समझने से पहले संक्षेप में इन दशाओं को समझना आवश्यक है :

(1) वितरण में द्वंद्व (Conflict Over Distribution) - बेंडिक्स तथा लिप्सेट का कथन है कि मार्क्स द्वारा समाज में वर्ग-संघर्ष के जिन तत्त्वों की चर्चा की गई है उनमें पहला तत्त्व यह है कि समाज में वर्गों का निर्माण उत्पादन के वितरण में होने वाले द्वंद्व के फलस्वरूप होता है। किसी समाज में जो भी उत्पादन होता है उसका वितरण समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों में किया जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन के वितरण का एक बड़ा भाग पूँजीपति वर्ग को मिल जाता है जबकि संख्या बहुत अधिक होने के बाद भी सर्वहारा वर्ग के लोगों की उत्पादन का बहुत कम भाग प्राप्त हो पाता है। यहीं वह तत्त्व है जो श्रमिकों की वर्ग-चेतना में वृद्धि करता है।

(2) संचार (Communication) - मार्क्स ने संचार को वर्ग-संघर्ष के दूसरे प्रमुख तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। मार्क्स का कथन है - "समान वर्ग के लोगों के बीच सहजता से संचार होने लगता है जिसके कारण एक वर्ग के लोगों में विचारों और कार्यक्रमों का तेजी से प्रसार होता है।" इस प्रकार संचार भी वर्ग-संघर्ष में वृद्धि करने वाली एक प्रमुख दशा है।

(3) वर्ग-चेतना का विकास (Development of Class-consciousness) - वर्ग-संघर्ष का संभवतः सबसे प्रमुख तत्त्व विभिन्न वर्गों में वर्ग-चेतना का विकास होना है। वर्ग-चेतना की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए मार्क्स का कथन है कि एक वर्ग के लोग जब अपनी शक्ति और एकता के बारे में जागरूक हो जाते हैं तथा अपने वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका को समझने लगते हैं तब इसी भावना को हम वर्ग-चेतना कहते हैं। विभिन्न वर्गों तथा मूख्यतः सर्वहारा वर्ग में वर्ग-चेतना का विकास ही संघर्ष की जन्म देता है।

(4) असंतोष (Dissatisfaction) - मार्क्स का कथन है कि जब समाज का निम्न वर्ग अर्थिक संरचना पर नियंत्रण रखने में कोई उपयोगी भूमिका नहीं निभा पाता तथा यह समझने लगता है कि उस आर्थिक संरचना में उसका शोषण हो रहा है। तब उसमें असंतोष में जितनी वृद्धि होती है, उस वर्ग का संगठन उतना ही सुदृढ़ होता जाता है।

(5) राजनैतिक संगठन (Political Organization) - मार्क्स के अनुसार वर्ग-निर्माण की अंतिम दशा यह है कि एक वर्ग के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति मिलकर एक राजनैतिक संगठन का निर्माण कर लें। बेंडिक्स तथा लिप्सेट ने लिखा है कि मार्क्स के दृष्टिकोण से समान वर्ग के लोगों का राजनैतिक संगठन एक विशेष आर्थिक संरचना, ऐतिहासिक परिस्थितियों तथा वर्ग-चेतना की वृद्धि का ही परिणाम होता है।

फ्रांसिस अब्राहम तथा मॉर्गन (Abraham and Morgan) ने लिखा है कि मार्क्स के अनुसार सामाजिक वर्गों के विकास के लिए उत्पादन की एक विशेष संरचना ही पर्याप्त नहीं है। सामाजिक वर्गों के निर्माण के लिए व्यक्तियों का एक-दूसरे के समीप होना उनके बीच विचारों का संवहन होना तथा वर्ग-

चेतना का विकास होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, एक छोटे ग्रामीण क्षेत्र में बहुत से लोग समान परिस्थितियों में रहते हैं किंतु उनके एक-दूसरे से अलग होने के साथ ही उनमें समान हितों से संबंधित होई चेतना भी नहीं होती। यहीं कारण है कि ऐसे लोग एक वर्ग का निर्माण नहीं कर पाते। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि केवल शारीरिक निकटता अथवा समान परिस्थितियाँ ही वर्ग-निर्माण का एकमात्र आधार नहीं है। इस संदर्भ में कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि वर्गों के निर्माण के लिए सामाजिक परिस्थितियों के प्रति असंतोष एवं वर्ग-चेतना का होना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना महत्वपूर्ण तथ्य समान वर्ग के लोगों के बीच शारीरिक निकटता तथा संचार का होना है।

वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया (Process of Class-Struggle)

संसार में वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने कहा है कि - "दुनिया के आज तक के समाजों का इतिहसा वर्ग संघर्ष का इतिहास है।" यह स्वतंत्र व्यक्ति और दास, उच्च तथा सामान्य वर्ग, जमीदार एवं अर्द्ध-दास, उद्योगपति एवं श्रमिक-वर्ग के बीच चलने वाले संघर्ष का इतिहास है। दूसरे शब्दों में यह शासक तथा शोषित वर्ग का इतिहास है जो आज तक बिना किसी व्यवधान के एक-दूसरे के विरोध में खड़े हुए है।

कार्ल मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष के संबंध में अपने विचारों में वर्गों की उत्पत्ति के विश्लेषण पर उतना अधिक ध्यान नहीं दिया जितना कि भविष्य में निर्मित होने वाले वर्गों के विश्लेषण पर विचार किया। इस संदर्भ में मार्क्स ने यह स्पष्ट किया कि एक विशेष वर्ग में सामान्य हितों के लिए संघर्ष करने की दशा ही उसमें वर्ग-चेतना को विकसित करती है जो वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया का प्रमुख आधार है। जब एक वर्ग सामान्य हितों को लेकर संगठित होने लगता है तब वह वर्ग एक सामाजिक शक्ति के रूप में उदित होता है। मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष को एक प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट किया है जो अनेक दशाओं के प्रभाव से आगे बढ़ती है। इन दशाओं के संदर्भ में ही वर्ग-संघर्ष की संपूर्ण प्रक्रिया को समझा जा सकता है।

(1) सर्वहारा वर्ग का विकास (Development of Proletariate) - मार्क्स का कथन है कि वर्ग-संघर्ष की प्रथम घटना वह है जिसमें श्रमिक एक-दूसरे से संबद्ध होकर किसी संगठन का निर्माण करने लगते हैं। बड़े-बड़े उद्योगों में मजदूरों की एक बड़ी भीड़ अवश्य होती है लेकिन इस भीड़ के लाग एक-दूसरे से अपरिचित होते हैं। आरंभ में व्यक्तिगत हितों के कारण श्रमिक एक-दूसरे से अलग रहते हैं किंतु मजदूरी की सामान्य समस्याओं को लेकर उनके हित सामान्य बन जाते हैं किंतु मजदूरी की सामान्य समस्यओं को लेकर उनके हित सामान्य बन जाते हैं और इस तरह वे संगठित होकर उद्योग के प्रबंधकों से अपने अधिकारों की माँग करने लगते हैं। इस दशा में उनकी एकता विचारों पर आधारित होती है। मार्क्स के अनुसार - "इस एकता या गठबंधन में दो विशेषताएँ निहत होती है। पहली कि श्रमिकों की आपसी प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है तथा दूसरी यह कि उनमें पूँजीपति से की जाने वाली एक सामान्य प्रतियोगिता का उदय होता है।" इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था जनसाधारण को श्रमिक वर्ग के रूप में स्थानांतरित करती है तथा उन परिस्थितियों को जन्म देती है जिनमें सामान्य हितों के लिए श्रमिकों की चेतना विकसित होने लगती है। पूँजीवादी समाज की यह विशेषता वह है जो दास युग तथा सामान्तवादी युग के समाजों में नहीं पाई जाती थी।

(2) संपत्ति का बढ़ना हुआ महत्त्व (Increasing Importance of Property) - मार्क्स ने यह स्पष्ट किया कि किसी भी समाज की विशिष्टता को जानने के लिए उस समाज में संपत्ति के रूप को समझना एक महत्त्वपूण आधार पर सरलतापूर्वक समझा जा सकता है कि संपत्ति के प्रति व्यक्ति अथवा वर्ग की मनोवृत्ति क्या है? दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वर्गो का निर्धारण एक बड़ी सीमा तक संपत्ति के स्वरूप के आधार पर होता है। मार्क्स का कथन है कि वर्गो का निर्धारण करने में व्यक्ति के उत्पादन संबंधों का विशेष महत्त्व होता है। इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने बतलाया कि किसी भी समाज में वर्गों के विभाजन का आधार व्यवसाय नहीं है बल्कि उत्पादन के उपकरणों से बनने वाले संबंध ही वर्ग-विभाजन का आधार है। उदाहरण के लिए, मजदूर उत्पादन के जिस उपकरण अर्थात् मशीन पर श्रम करता है, वह मशीन उसकी नहीं होती। दूसरी ओर दूसरी और दूसरा व्यक्ति जो उस मशीन पर श्रम नहीं करता वह उसका स्वामी होता है। इस प्रकार मार्क्स के दृष्टिकोण से जिस वर्ग के पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व है वह पूँजीपति वर्ग बन जाता है तथा जो वर्ग उत्पादन के साधनों का स्वामी नहीं है वह सर्वहारा वर्ग के अंतर्गत आता है। इस तरह वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया में संपत्ति के महत्त्व को स्पष्ट उत्पादन के साधनों का स्वामित्व ही है।

(3) आर्थिक शक्ति से राजनैतिक शक्ति का उदय (Emergence of polotical Power from Economic Power) - उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व तथा कुछ व्यक्तियों के हाथ में वितरण प्रणाली का केंद्रीकरण पूँजीवाद की प्रमुख विशेषताएँ है। उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व होने के कारण उच्च वर्ग (पूँजीपति वर्ग) की राजनैतिक शक्ति बढ़ने लगती है तथा वह इसका उपयोग सामान्य जनता के शोषण के लिए करने लगता है। मार्क्स का कथन है कि जिन लोगों का प्रभावशाली संपत्ति पर एकाधिकार होता है वे राजनैतिक तंत्र को नियंत्रित करने लगते हैं जिसके फलस्वरूप उनके राजनैतिक हितों एवं मानदंडों का संरक्षण होने लगता है। मार्क्स के शब्दों में - "राजनैतिक शक्ति कए बड़ी सीमा तक एक वर्ग द्वारा दूसरों का शोषण करने के लिए संगठित शक्ति की तरह है।" पूँजीपति वर्ग भी राज्य का उपयोग अपने हितों के लिए ही करते हैं। इस प्रकार पूँजीवादी समाज में बुर्जुआ वर्ग अपनी राजनैतिक और सत्तात्मक पहचान स्थापित कर लेता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि बुर्जुआ वर्ग को आर्थिक शक्ति धीरे-धीरे राजनैतिक शक्ति के रूप में बदलने लगती है। मार्क्स ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है कि तब आर्थिक शक्ति राजनैतिक शक्ति का स्थान लेने लगती है तब समस्त रानैतिक प्रक्रियाएँ एवं संस्थाएँ जिनमें न्यायालय, पुलिस, सेना तथा प्रशासनिक अभिजन-वर्ग सम्मिलित है, पूँजीपतियों के हितों के लिए ही कार्य करने लगती है। इस प्रकार वर्ग-संघर्ष के इस स्तर को स्पष्ट करते हुए मार्क्स का कथन है कि आर्थिक शक्ति से ही रानैतिक शक्ति अथवा प्रभुता का उदय होता है।

(4) वर्गो का ध्रुवीकरण (Polarization of Classes) - मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया में धुरवीकरण की दशा को विशेष महत्त्व दिया है। इसका कारण यह है कि संपूर्ण समाज में वर्ग विभाजन दो धुर्वों के रूप में स्थापित हो जाना ही वर्ग-संघर्ष की प्रारंभिक अवस्था को स्पष्ट करता है। मार्क्स है कि जब समाज में पूँजीवाद का विकास होने तलता है। मार्क्स का कथन है कि जब समाज में पूँजीवाद का विकास होने लगता है तब बड़े उद्योगपति अधिक पूँजी एकत्रित करने के लिए छोटे उद्योगपतियों (Petty

Bourgeosie) तथा आकारहीन सर्वहारा वर्ग (Lumpen Proletariate) को संपत्ति से वंचित करने लगते हैं। वास्तव में यह प्रक्रिया बहुत स्पष्ट रूप में घटित नहीं होती क्योंकि व्यावसायिक प्रतियोगिता तथा महँगाई बढ़ने के कारण समाज के वे लोग धीरे-धीरे अपनी संपत्ति से वंचित होने लगते हैं जो न तो पूरी तरह सर्वहारा वर्ग के अंतर्गत आते हैं और न ही बड़े उद्योगपति होते हैं। मार्क्स का कथन है कि वर्ग-चेतना में वृद्धि तथा वर्ग-संघर्ष बढ़ने के स्तर पर यह छोटे पूँजीपति अपनी संपत्ति से पूर्णतया वंचित हो जाते हैं तथा वे सर्वहारा वर्ग का अंग बन जाते हैं। रेमंड ऐरां ने इस स्थिति को (सर्वहाराकरण(के नाम से सम्बाधित किया है। सर्वहाराकरण की इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप समाज में एक ओर सर्वहारा वर्ग की सदस्य-संख्या बढ़ने लगती है तो दूसरी ओर पूँजी का केंद्रीयकरण बहुत थोड़े से हाथों में बढ़ता चला जाता है। इस स्थिति को निम्नांकित चित्र के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

वर्गो के धुर्वीकरण में वृद्धि होने से पूँजीपति तथा सर्वहारा वर्ग के बीच संघर्ष की गति तेज होने लगती है। यह दोनों वर्ग अपनी राजनैतिक प्रभुता स्थापित करने के लिए संघर्ष करने लगते हैं। यह द्वंद्व एक स्तर पर निर्णायक रूप ले लेता है जिसमें समाज का प्रत्येक व्यक्ति किसी व किसी वर्ग के साथ होकर संघर्ष में हिस्सा लेने लगता है।

(5) दरिद्रीकरण में वृद्धि (Increase in Pauperization) - मार्क्स का विचार है कि पूँजीपति वर्ग द्वारा श्रमिकों के आर्थिक शोषण के कारण से उनकी आर्थिक दशा निरंतर बिगड़ती चली जाती है। दूसरी ओर पूँजीपति वर्ग श्रमिकों से अतिरिक्त श्रम लेकर अपने अतिरिक्त मूल्य में वृद्धि करता रहता है। समाज में जैसे-जैसे पूँजीपतियों के पास संपत्ति का एकत्रीकरण बढ़ता है, वैसे ही वैसे समाज में दरिद्रता बढ़ने लगती है। इसके अतिरिक्त, छोटे पूँजीपतियों द्वारा बड़े पूँजीपतियों से प्रतियोगिता न कर सकने के कारण वे भी निर्धन बनने लगते हैं। इससे भी समाज में दरिद्रता में वृद्धि होती है। इस संबंध में मार्क्स ने लिखा है - "उत्पादन का कोई भी वह तरीका जिसमें मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण निहित होता है, उसमें सामाजिक उत्पादन का इस तरह वितरण किया जाता है कि समाज के अधिकांश लोग अर्थात् शारीरिक श्रम करने वाले लोग, जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते।" मार्क्स का कथन है कि कुछ परिस्थितियाँ ऐसी हो सकती है जिनमें श्रमिकों को कुछ सुविधाएँ मिलने लगें लेकिन साधारणतया पूँजीवादी व्यवस्था श्रमिकों को उनकी अनिवार्य आवश्यकताओं से ही वंचित कर देती है और इस प्रकार संपूर्ण समाज धनी और निर्धन जैसे दो भागों में विभाजित हो जाता है। मार्क्स के अनुसार समाज की दरिद्रता शोषण का परिणाम है। पूँजीवादी समाज में दरिद्रता इसलिए नहीं पाई जाती कि वहाँ वस्तुओं की कभी है बल्कि ऐसे समाज में गरीब लोग वस्तुएँ इसलिए प्राप्त नहीं कर पाते क्योंकि पूँजीपति अपनी विलासिता के लिए अधिकांश वस्तुओं का उपयोग स्वयं कर लेते हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि करोड़ों लोगों को सोने के लिए स्थान इसलिए नहीं मिल पाता क्योंकि धनी लोग बहुत बड़ी भूमि पर अपने लिए बड़े-बड़े भवनों का निर्माण कर लेते हैं। यह भी शोषण का एक विशेष रूप है जो दरिद्रता के लिए उत्तरदाई होता है।

(6) अलगाव (Alienation) - शोषण तथा कार्य की अमानवीय दशाओं के कारण श्रमिकों तथा जन-साधारण में जिस मानसिक दशा का निर्माण होता है, मार्क्स ने (अलगाव(का नाम दिया है। अलगाव की दशा का निर्माण होता है, उसे मार्क्स ने बतलाय कि पूँजीवादी अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए एक ओर श्रमिक को उसके काम के लिए बहुत कम मजदूरी देता है तो दूसरी ओर श्रमिक द्वारा जिन मशीनों पर काम किया जाता है, उनके रख-रखव पर भी पूँजीवति अधिक ध्यान नहीं देते। इंग्लैंड की औद्यौगिक क्रांति की चर्चा करते हुए मार्क्स ने अनेक ऐसे उद्योगों का उल्लेख किया जिनमें मशीनों की स्थिति बहुत खराब थी। इस प्रकार मार्क्स ने मजदुरों में बढ़ते हुए अलगाव के लिए काम करने की उन सभी दशाओं को उत्तरदाई माना है जो मजदूरों में शारीरिक और मानसिक थकान पैदा करती है। औद्यौगिक समाजशास्त्र से संबंधित अध्ययनों से भी स्पष्ट हे चुका है कि जब मशीनें खराब होती है अथवा मजदूरों के काम करने की दशाएँ असुरक्षा से भरी हुई होती है तब मजदूरों में अपने काम के प्रति एक तरह कि विमूखता तथा निराशा उत्पन्न होने लगती है। अलगाव की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए मार्क्स का कथन है कि पूँजीवादी व्यवस्था में सभी पद्धतियों को इस तरह उपयोग में लाया जाता है जिससे व्यक्तिगत श्रम के द्वारा सामाजिक उत्पादकता को बढ़ाया जा सके। इस प्रक्रिया में उत्पादन के समस्त साधनों का काम पूँजीपतियों के प्रभुत्व को बढ़ाना ही होता है। उत्पादन की इस प्रक्रिया में श्रमिक स्वयं एक मशीन बन जाता है। इसके फलस्वरूप अपने मशीनों जीवन में श्रमिकों का अपने काम के प्रति लगाव कम होने लगता है। जब उसकी दशाओं में कोई सुधार नहीं हो पाता तब धीरे-धीरे वह उत्पादन की व्यवस्था में अपने आपको असहाय और असमर्थ समझने लगता है। उसमें यह धारण प्रबल होने लगती है कि वह अपनी दशाओं से परिवर्तन नहीं कर सकता। इसी प्रक्रिया को मार्क्स ने (अलगाव(के नाम से संबंधित कि है।

(7) वर्ग-एकता एवं विरोध (Class Solidarity and Antagonism) - मार्क्स का कथन है कि औद्योगिक विकास के अगले स्तर में न केवल सर्वहारा वर्ग की सदस्य-संख्या बहुत बढ़ जाती है बल्कि यह वर्ग एक बहुत बड़े जनसमूह के रूप में परिवर्तित होने लगता है। जब इस वर्ग की सदस्य-संख्या बढ़ती है तब वह अपने आपको अधिक शक्तिशाली अनुभव करने लगता है। इस स्त्र में श्रमिक अपने ही वर्ग से दूसरे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करने लगते हैं तथा समान परिस्थितियों में काम करने के कारण सर्वहारा वर्ग के सभी लोगों के हित समान हो जाते हैं। यह दशा सर्वहारा पर्ग में एक नई चेतना उत्पन्न करती है तथा इस प्रकार सर्वहारा वर्ग में एकता स्थापित होने लगती है। दूसरी बुर्जुआ वर्ग के बीच प्रतियोगिता बढ़ने के कारण बड़े उद्योगपति छोटे उद्योगपतियों को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप पूँजीवादी समाज में व्यावसायिक संकट की दशा उप्तन्न हो जाती है। संकट की इस दशा में मजदूरों की मजदूरी कभी घटती है तो कभी बढ़ती है। मार्क्स के अनुसार यही वह दशा है जब श्रमिक संगठित होकर समूचित मजदूरी की माँग करने के लिए पूँजीपतियों का विरोध करना आरंभ कर देते हैं। यह क्रांति की प्रारंभिक अवस्था है जिसमें मजदूर आगे होने वाली क्रांति के लिए अपने को तैयार करना आरंभ कर देते हैं।

(8) क्रांति (Revolution) - मार्क्स का कथन है कि क्रांति वर्ग-संघर्ष की चरम स्थिति है। यह उस दशा को स्पष्ट करती है जिसमें श्रमिक संगठित होकर पूँजीपतियों के विरूद्ध हिंसक संघर्ष आरंभ करते हैं तथा समाज की संपूर्ण आर्थिक संरचना को बलद देते हैं। क्रांति आर्थिक संकट की उस दशा में उत्पन्न होती है जिसमें पूँजीवादी व्यवस्था के दोष अपनी चरम सीमा पर स्पष्ट होने लगते हैं। इसका तात्पर्य है कि जब पूँजीपति अधिकाधिक लाभ कमाने के लिए शोषण को अमानवीय स्तर तक पहुँचा देते हैं तथा प्रत्येक अनुचित साधन के द्वारा धन का संचय करना आरंभ कर देते हैं तब सर्वहारा वर्ग की क्रांति का होना आवश्यक हो जाता है। क्रांति की दशा का गहन विवेचन करते हुए मार्क्स ने लिखा है कि जब क्रांति अपने निर्णायक स्तर पर होती है तब सत्ता में भी विघटन की स्थितियों का जन्म होने लगता है। उस समय सत्ता वर्ग का एक छोटा हिस्सा भी अपने आपको सत्ता से अलग कर लेता है और क्रांति करने वाले सर्वहारा वर्ग से मिल जाता है। मार्क्स का कथन है कि क्रांतिकारी वर्ग के हाथों में ही संपूर्ण समाज का भविष्य होता है। यही वर्ग पूँजीवादी सामाजिक ढ़ाँचे को नष्ट करके एक नई वैचारिकी के आधार पर सामाजिक संरचना का नए सिरे से निर्माण करता है।

(9) सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद (Dictatorship of the proletariatc) - मार्क्स के अनुसारा सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व वर्ग-संघर्ष का अंतिम स्तर है। उनका कथन है कि सर्वहारा वर्ग द्वारा जब क्रांति की जाती है तो इससे पूँजीवादी व्यवस्था नष्ट होकर समाज की संपूर्ण शक्ति सर्वहारा वर्ग को प्राप्त हो जरूरी नहीं होता कि समस्त पूँजीपतियों को समाप्त कर दिया जाए। क्रांति का प्रमुख उद्देश्य सर्वहारा वर्ग द्वारा समाज की संपूर्ण संपत्ति, उत्पादन के साधनों तथा सत्ता पर अपना अधिकार कर लेना है। जब उत्पादन के साधनों तथा सत्ता पर श्रमिकों का अधिकार हो जाएगा तब किसी के द्वारा किसी का शोषण करने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। मार्क्स ने यह भी स्पष्ट किया कि इस क्रांति से सामान्य लोगों को भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है यह तो श्रमिकों का शोषण करने वाले पूँजीपतियों को ही समाप्त करने के लिए होगी, अपने (साम्यवादी घोषणा-पत्र(के अंत में मार्क्स ने लिखा है - "साम्यूवादी क्रांति के भय से शासको (पूँजीपतियों) को काँपने दो... सर्वहारा वर्ग के पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जबकि जीतने के लिए उनके सामने पूरी दुनिया पड़ी है।" इस प्रकार अंतिम परिणति के रूप में स्पष्ट किया।

1.1.10. वर्ग संघर्ष में विचारधारा की भूमिका

लेफेब्रे ने कहा कि विचारधाराएँ बराबर ही वास्तविकता का एक उल्टा अथवा टेढ़ा-मेढ़ा प्रस्तुत करती हैं। विचारधाराओं का स्वतंत्र अस्तित्व होता है, यह आम लोगों को प्रभावित करती है। इससे आम लोग दबाए जा सकते हैं। लेफेब्रे ने अंतोनियो ग्राम्शी के समान कहा कि विचारधारा की भूमिका यह होती है कि शासक वर्ग के लिए वह मजदूर वर्ग एवं आम जनता से उसके शासन के लिए सहमति प्राप्त करती है। ग्रामची ने शासक वर्ग के वैचारिक वर्चस्व को हेजीमोनी कहा है।

1968 में लेफेब्रे ने मार्क्स का समाजशास्त्र नामक पुस्तक में इस बात को लिखा। उन्होंने कहा विचारधाराएँ आम जनता के सामने अपने को इस रूप में प्रस्तुत करती हैं, जिसमें वे वर्ग शोषण की

अवस्था के लिए आध्यात्मिक स्वीकृति और यहाँ तक कि उनका समर्थन प्राप्त करती हैं। विचारधारा का प्रसार शिक्षा से, मीडिया से रात-दिन होता है। वह शोषित वर्ग के कार्य एवं विचार को प्रभावित करती हैं। संरचनावादी मार्क्सवादी विद्वान लूई अल्थुसर के अनुसार विचारधारा सामाजिक संरचना का एक स्वायत्त तत्व है।

वर्ग संघर्ष के बढ़ने या तीव्र होने से राजनैतिक संघर्ष की संभावना बनती है। ऐसा संघर्ष निश्चित रूप से अधिक तीव्र और व्यापक होता है। ग्यार्ग (जॉर्ज) लूकाच ने यह सही कहा है कि मार्क्स एक ही रचना में और क्रमिक रूप से वर्ग संघर्ष की बात नहीं करते हैं। मार्क्स की रचनाओं से इसके संबंध में स्पष्ट निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। यह जरूरी नहीं कि वर्ग संघर्ष हिंसात्मक हो। यह चुनाव के माध्यम से भी हो सकता है। ऐसे संघर्ष की चर्चा संरचनात्मक मार्क्सवादियों ने भी की है। पूँजीवाद में वर्ग संघर्ष में हिंसा होती है।

1.1.11. वर्ग संघर्ष एवं वर्ग युद्ध

वर्ग संघर्ष का तीव्रतम रूप वर्ग युद्ध है। मार्क्स ने कहा कि विरोधी वर्गों के हित समन्वय के लायक नहीं होते हैं। वर्ग संघर्ष के आरंभ होने के बाद यह लगातार अक्रमिक रूप से तीव्र होता जाता है। अंततः पूरा समाज ही दो विरोधी खेमों में विभाजित हो जाता है। इन खेमों में हिंसात्मक संघर्ष होता है जिसे वर्ग युद्ध कहते हैं। वर्ग युद्ध सामाजिक क्रांति का आवश्यक अंग है। वर्ग संघर्ष एवं वर्ग युद्ध मार्क्स के अनुसार इतिहास की चालक शक्ति है। वर्ग संघर्ष से परिवर्तन होता है। समाज के वर्गों की स्थिति, उनका महत्व, उनकी भूमिका बदल जाती है। वर्ग संघर्ष सामान्यतः तीव्रतर होते जाते हैं। ऐसा होना मशीनी नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी में अमेरिका में बड़े वर्ग संघर्ष हुए। शिकागों में मजदरों के संघर्ष की याद में पूरी दुनिया में मजदूर पहली मई को मजदूर दिवस मनाते हैं। अब लंबे समय से अमेरिका में वर्ग संघर्ष की बात नहीं सुनी जाती है। द्वंद्ववाद के सिद्धांत के अनुसार वर्ग संघर्ष कभी अधिक परिवर्तन करते हैं एवं कभी कम करते हैं। मार्क्स ने वर्ग विभाजित समाजों के इतिहास को वर्ग संघर्ष का इतिहास कहा है। मार्क्स ने सबसे अधिक पूँजीवादी समाज के वर्ग संघर्ष की चर्चा की है। वर्ग युद्ध क्रांति का वाहक है। उत्पादन की शैली जब एक ठहराव की स्थिति में आ जाती है तब उत्पादन के संबंधों को बदले बिना उनमें परिवर्तन नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में वर्ग संघर्ष अपनी चरम अवस्था में पहुँच जाता है और वर्ग युद्ध की स्थिति आ जाती है, परंतु यह मशीनी रूप से नहीं होता है। यदि वर्ग युद्ध होता है तब क्रांति होती है। यह सफल भी हो सकती है और असफल भी। सामाजिक क्रांति एक समाज को आमूल चूल बदल देती है।

1.1.12. वर्ग एवं वर्ग संघर्ष की समीक्षा

वर्ग की धारणा का विरोध अनेक विद्वानों ने वैचारिक आधार पर अधिक किया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में संभवतः **लायड** वार्नर का उनकी स्टडीज के पहले वर्ग का कोई आनुभविक अध्ययन नहीं हुआ। सी. राइट मिल्स ने इसके बाद अमेरिकी मध्य वर्ग का अध्ययन किया। मैक्स वेबर ने मार्क्स की यह कह कर आलोचना की कि आर्थिक रूप से बंद वर्ग सभी असमानताओं की व्याख्या नहीं कर सकता है।

असमानताएँ, प्रतिष्ठा, शक्ति एवं उत्पादन की शक्तियों पर नियंत्रण की होती हैं। संघर्ष के बारे में वेबर ने कहा कि यह केवल उद्योगपतियों एवं मजदूरों में नहीं होता है, स्वयं उद्योगपति एवं मजदूर तथा मध्य वर्ग के लोग भी आपस में संघर्ष करते हैं। वेबर की लीक पर चलते हुए **डहरेतडार्फ** ने मार्क्स की समीक्षा करते हुए एक पुस्तक लिखी (क्लास एंड क्लास कनफ्लिक्ट इन इंडस्ट्रियल सोसाइटी((1958) जिसमें उन्होंने कहा मार्क्स के विचारों के विपरीत औद्योगिक समाज में संघर्ष व्यावसायिक समूहों में होता है। यह संघर्ष आर्थिक हितों के नहीं बल्कि सत्ता एवं परिस्थिति की असमानता के कारण होता है। रेमंड एरॉ के अनुसार अनेक वर्ग विभाजित समाजों में संघर्ष नहीं होता है।

जार्ज रीजर ने कहा कि हाल के दशकों में कम-से-कम पश्चिमी देशों में वर्ग संघर्ष अगोचर है। मजदूर वर्ग संतुष्ट है। थेडा सकोपाल (Theda Skocpol) ने कहा यदि वर्ग युद्ध सामाजिक क्रांति की आवश्यक शर्त है तब जैसे सामाजिक क्रांति सभी देशों में होती हैं उसी तरह प्रत्येक देश में वर्ग-युद्ध होगा, यह जरूरी नहीं है। उन्होंने कहा फ्रांस, रूस, चीन में क्रांतियाँ हुई, परंतु इंग्लैंड, जर्मनी, अमेरिका आदि में क्रांतियाँ नहीं हैं। इसलिए वर्ग संघर्ष एवं वर्ग युद्ध की अनिवार्यता को सिद्ध नहीं किया जा सकता है। ऐतिहासिक रूप से जैसा कि टी.बी. बोटोमोर ने कहा कि वर्ग संघर्ष होता हैं द्वंद्ववाद के सिद्धांत के अनुसार ही कहीं परिस्थितियाँ, कहीं शासक वर्ग कहीं मजदूर वर्ग की निष्क्रियता इसे अभिव्यक्त नहीं होने हैं। इंग्लैंड, अमेरिका एवं जर्मनी में तीव्र वर्ग संघर्ष हुए। पश्चिम के उद्योगपति पूरी दुनिया पर हावी हो गए। साम्राज्यवाद ने उन्हें यह अवसर दिया, जिससे वे पूरी दुनिया के संसाधनों का दोहन कर सकें। इस दोहन एवं शोषण का एक अंश विकसित देशों के उद्योगपतियों ने अपने देशों के मजदूरों को भी दिया। वर्ग संघर्ष हो रहे हैं। इनमें वह व्यापकता नहीं है। मजदूरों की छंटनी हो रही है। कार्यस्थल का चरित्र बदल गया है। प्रौद्योगिकी बदल गई है। असमानता के आर्थिक संबंध नहीं बदले हैं। इस नवीन परिप्रेक्ष्य में मजदूर संगठित नहीं हो पा रहे हैं।

1.1.13. सारांश

मार्क्स के विचारों के साथ एक विशेष बात यह है कि वैचारिक आग्रहों के कारण अनेक विद्वान उनकी खूब निंदा करते हैं एवं इसी प्रकार के कारणों से अनेक विद्वान उनकी खूब प्रशंसा करते हैं। मार्क्स के विरोध की परंपरा के सबसे प्रमुख समाजशास्त्रीय हस्ताक्षर मैक्स वेबर थे। वेबर जर्मन दार्शनिक इमानुएल कांट से प्रेरित थे, जबकि मार्क्स हीगल से प्रेरित थे। दोनों ने ही अपने प्रेरक स्रोतों के विचारों को रूपांतरित किया। परंतु दोनों अलग धरातल पर खड़े रहे। दस सिलसिले में मैक्स वेबर की शक्ति संबंधी धारणा अधिक उपयुक्त जान पड़ती है। प्रत्येक विद्वान के विचार विश्व की परिस्थिति के अनुसार प्रभावी और अप्रभावी होते हैं। सोवियत यूनियन एवं पूर्वी यूरोप के देशों में समाजवाद के पतन के बाद मार्क्स के विचारों का प्रभाव बहुत घट गया है। जार्ज रीजर ने कहा ऐसा अप्रभाव अस्थाई भी हो सकता है, परंतु वर्तमान संदर्भ में मार्क्सवाद का यह पराभाव बहुत ही गुणात्मक एवं व्यापक है। मार्क्स की वैचारिक दृष्टि के आधार पर जो समाज विज्ञानी विश्व और विशेष समाजों का विश्लेषण करते रहे हैं, वे अभी तक ऐसा कर रहे हैं। इनके अनुसार समाजवाद का जो पराभाव हुआ है उसकी व्याख्या भी मार्क्स के विचारों के

आधार पर की जा सकती हैं। अभी भी समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि के क्षेत्र में मार्क्स की दृष्टि के आधार पर बहुत अधिक अध्ययन किया जा रहा है। स्वयं भारत में मार्क्सवादी चर्चाओं की एक विस्तृत श्रृंखला है। मार्क्स के विचारों के आधार पर अनेक आंदोलन और क्रांतियाँ चल रही हैं। भारत के पड़ोसी नेपाल में मार्क्स के विचारों पर आधारित हिंसात्मक क्रांति की प्रक्रिया चल रही है। विश्व के अधिकतर देशों में कोई-न-कोई दल ऐसा है, जो अपने को मार्क्स का अनुयायी कहता है। विश्व के अनेक देशों में और विशेष रूप से उन देशों में जहाँ पश्चिम के साम्राज्यवाद का वर्चस्व है अनेक मार्क्सवादी दल और समूह शांतिपूर्ण और हिंसात्मक आंदोलन में लगे हुए हैं। बौद्धिक विमर्श में भी मार्क्सवादी विचार खत्म होने का नाम नहीं ले रहे हैं। भारत में एक समय में समाजशास्त्र में डी.पी. मुखर्जी, ए.आर. देसाई, पी.सी. जोशी आदि विद्वानों का मार्क्सवादी दृष्टिकोण के संदर्भ में नाम लिया जाता था, अब समाजशास्त्र में अनेक विद्वान मार्क्स की दृष्टि के आधार पर अपने विचार विकसित कर रहे हैं। समाजशास्त्र की मुख्य धारा में प्रकार्यवाद का वर्चस्व समाप्त हो गया है एवं इसके स्थान पर द्वंद्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि प्रचलित हुई है। यह नहीं कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र की मुख्यधारा का प्रमुख स्रोत मार्क्सवादी दृष्टि है, परंतु इतना जरूर है कि कार्ल मार्क्स के विचार महत्त्वपूर्ण हैं। संभवतः **लेफेब्रे** का यह कहना सही है कि कार्ल मार्क्स के विचारों की निंदा की जा सकती है या उनकी प्रशंसा, परंतु किसी भी हालत में उन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

1.1.14. बोध प्रश्न

बहुविल्पिय प्रश्न

1. वर्ग एवं वर्ग संघर्ष का सिद्धांत किसने दिया?

(क) कार्ल मार्क्स

(ख) बेंडिक्स तथा लिप्सेट

(ग) फ्रांसिस अब्राहम

(घ) मॉर्गन

2. वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया का प्रमुख आधार क्या है?

(क) मूल वर्ग

(ख) वर्ग-चेतना

(ग) उद्योगपति

(घ) श्रमिक

3. अलगाववाद का सिद्धांत किसने दिया?

(क) मार्क्स

(ख) लेफेब्रे

(ग) जॉर्ज लूकाच

(घ) हीगल

4. मार्क्स के अनुसार वर्ग संघर्ष के क्या कारण है**?**

(क) वितरण में द्वंद्व

(ख) संचार

(ग) वर्ग-चेतना का विकास

(घ) उपरोक्त सभी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स के वर्ग एवं वर्ग संघर्ष सिद्धांत की विवेचना कीजिए।

2. कार्ल मार्क्स समाज में वर्ग संघर्ष का क्या कारण मानता है इसका विवरण दीजिए**?**

3. कार्ल मार्क्स के वर्ग चेतना की व्याख्या कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स के पूँजीपतिकरण के विचरों का मूल्यांकन कीजिए।

2. कार्ल मार्क्स के वर्ग संघर्ष एवं वर्ग युद्ध की व्याख्या कीजिए।

1.1.15. संदर्भ ग्रंथ सूची

- Manuel, Frank E. (1995). *A Requiem for Karl Marx*. Cambridge: Havard Unkiversity Press.
- Hegel, G.W.F. (1969). *Science of Logic*. London: Allen and Unwin.
- Marx, Karl and Engles, Friedrich. (1948). *The Communist Manifesto*. NY: International Publisher.
- Giddens, Anthony. (1995). *A Contemprary Critic of Historical Materialism.* Stanford : University Press.
- Bottomore, T. and Rubel, M. (1965). *Karl Marx:Selected Writing in Sociology and Social Philosophy*. Penguin: Original texts.
- दोशी, एस.एल. एवं जैन, पी.सी. (1997). *सामाजिक विचारक*. दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
- दोशी, एस.एल. एवं जैन, पी.सी. (1997). *प्रमुख सामाजिक विचारक*. दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
- रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्रीय चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.

खंड-2 : विल्फ्रेडो परेटो

इकाई-1 : जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई की रूपरेखा

2.1.1. उद्देश्य
2.1.2. प्रस्तावना
2.1.3. विल्फ्रेडो परेटो का प्रारंभिक जीवन
2.1.4. प्रारंभिक शिक्षा दीक्षा
2.1.5. व्यावसायिक जीवन
2.1.6. शैक्षणिक जीवन
2.1.7. महत्वपूर्ण कृतियाँ
2.1.8. तत्कालीन बौद्धिक पृष्ठभूमि
2.1.9. सारांश
2.1.10. बोध प्रश्न
2.1.11. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.1.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. पैरेटो के संपूर्ण जीवन के बारे में विस्तार पूर्वक जान सकेंगे।
2. सत्ता, मानव समाज एवं मानवीय क्रियाओं के प्रति पैरेटो के दृष्टिकोण को समझ सकेंगे।
3. उन परिस्थितियों को विस्तारपूर्वक समझ पाएंगे, जिससे समाजशास्त्र के प्रति विल्फ्रेडो पैरेटो का झुकाव हुआ।
4. उस समय इटली की राजनैतिक परिस्थितियों के बारे में भी एक समझ विकसित कर सकेंगे।

2.1.2. प्रस्तावना

जब-जब सामाजिक आधुनिक विचारधारा का इतिहास लिखा जाएगा, तब तब उसमें इटालियन सामाजिक विचारक विल्फ्रेडो परेटो के नाम को भी सम्मानित स्थान अवश्य ही मिलता रहेगा, क्योंकि उनके बिना इतिहास सदैव ही अधूरा होगा। आप अर्थशास्त्री व समाजशास्त्री दोनों ही थे और दोनों ही क्षेत्रों में आपका अनुदान वास्तव में अनूठा है। ऐसा जाना जाता है कि महान समाज वैज्ञानिक विल्फ्रेडो परेटो एक भौतिक विज्ञानी से अर्थशास्त्री तथा बाद में समाजशास्त्री के रूप में इनका चिंतन अतुलनीय है। इन्होंने न केवल बहुमुखी, अपितु विभिन्न विज्ञानों के बीच एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए इन्होंने अपना जो विचार प्रस्तुत किया उनमें तार्किकता और व्यवहारवाद का एक कुशल समन्वय देखने

को मिलता है। अर्थशास्त्र के इतिहास में पैरेटो का नाम एक ऐसे विद्वान के रूप में दर्ज है, जिसने इस अनुशासन को पहले तो गणितीय और वैज्ञानिक आधार देने की भूमिका निभायी और फिर उसे ऐतिहासिक तथा समाजशास्त्रीय अन्तःदृष्टियों से संपन्न करने का कार्य किया। अर्थशास्त्र में कई तात्त्विक योगदान करने वाले परेटो के बौद्धिक जीवन का यह उल्लेखनीय तथ्य है कि गणितीय रूपों को आर्थिक विश्लेषण में स्थापित करने के बाद वे खुद उन विधियों से असंतुष्ट हो गए। अमूर्त आर्थिक सिद्धांतों को छोड़कर इन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक व राजनैतिक संदर्भों की जमीन पर अर्थव्यवस्थाओं के प्रदर्शन को समझने की कोशिश की। इन पहलुओं को व्यापार चक्रों के विश्लेषण में इस्तेमाल करते हुए दिखाया कि सामाजिक कारक किस तरह बचत, श्रम और उपभोग को प्रभावित करते हैं, जिससे अंत में पूरी अर्थव्यवस्था पर असर पड़ता है। इस तरह इन्होंने आर्थिक जड़ता व वृद्धि का समाजशास्त्रीय सिद्धांत विकसित किया।

अपने आरंभिक चिंतन से ही परेटो फासिज्म अथवा अधिनायकवाद (Facism) के दृढ़ समर्थक थे। इसलिए इटालियन फासिस्टवाद को भी परेटो के लेखों या सिद्धांतों से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त हुई थी। प्रायः वहाँ के फासिस्ट आंदोलनों के साथ इनका नाम अति घनिष्ट रूप से जोड़ दिया जाता है। फासिस्टवाद के इतिहास से स्पष्ट है कि आरंभ में फासिस्टवाद एक सिद्धांत अथवा कार्यक्रम न होकर एक प्रेरणा मात्र ही था। यह देश के युवकों के लिए राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा देने वाला एक संदेश था। कहा जाता है कि यह प्रेरणा परेटो की कृतियों से प्रचुर मात्रा में इटली की जनता को प्राप्त हुई थी। यही कारण है कि जिस प्रकार **कार्ल मार्क्स** को (सर्वहारा वर्ग का पैगंबर) कहा जाता है उसी तरह इटली में **परेटो** को (फासीवाद का पैगंबर) (Prophet of facism) माना जाता है। इसका एक कारण तो यह है कि इनकी विचारधारा में दृढ़ अधिनायकवाद के पक्ष में एक विशेष झुकाव देखने को मिलता है दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि मुसोलिनी के प्राध्यापक होने के नाते उन्होंने मुसोलिनी पर जो प्रभाव डाला उससे इटली में फासिस्ट शासन को और अधिक बल मिला, परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि परेटो पूरी तरह से फासिस्टवाद के पोषक थे। वास्तविकता यह है कि विल्फ्रेडो पैरेटो का चिंतन और कृतित्व इतना व्यापक रहा है कि उन्हें केवल (फासीवाद का जनक) या पोषक कह देने से ही उनके चिंतन की वास्तविकता को नहीं समझा जा सकता। जिन विद्वानों ने पैरेटो के जीवन तथा कृतियों का सावधानी पूर्वक गहन अध्ययन किया है उनका निश्चित मत है कि पैरेटो को फासिस्टवाद का समर्थक या प्रवर्तक मान लेना अतार्किक तथा अनुचित दोनों ही है। इसके अलावा इनका जीवन बहुत से उतार-चढ़ावों से युक्त रहा है, जिन्हें समझे बिना उनके विचारों की मौलिकता और वैज्ञानिकता को नहीं समझा जा सकता।

2.1.3. विल्फ्रेडो परेटो का प्रारंभिक जीवन

प्रख्यात अर्थशास्त्री तथा समाजशास्त्री विल्फ्रेडो फेडेरिको दामासो पैरेटो का जन्म 15 जुलाई, 1848 को पेरिस में हुआ था। पैरेटो का परिवार मूलतः इटली में जेनेवा का निवासी एक संपन्न परिवार था। इनके पिता जिनेवा तथा माता पेरिस की नागरिक थी। इनके पिता मार्केट रॉफेल परेटो (Marvius Raphael Pareto) मेज्जिनी (Mazzini) के विचारों के प्रशंसक व समर्थक होने के साथ-साथ एवं

जनतांत्रिक या प्रजातांत्रिक न्याय व विचारधारा के सदा पक्षपाती रहे। अपने क्रांतिकारी व न्यायिक विचारधारा के कारण युवावस्था में ही परेटो के पिता को अपनी मातृभूमि इटली को छोड़कर 1935 ई. में जाना पड़ा। इसलिए इनका अधिकतर समय इटली से बाहर बीता। इटली छोड़कर पैरेटो के पिता ने फ्रांस में शरण लिया। यहीं पर उन्होंने नागरिक अभियंता के पद पर कार्य किया एवं फ्रांसिसी महिला मेरी मेटेनियर (Marie Metenier) से विवाह कर लिया। इनकी तीन संतानें हुई जिसमें दो पुत्रियाँ व एक पुत्र पैरेटो थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा पेरिस में ही हुई। पैरेटो के जन्म के लगभग 9 वर्ष के उपरांत जब इटली की राजनीतिक उथल-पुथल कम हुई तथा इटली के सरकार की नीति बदली तब सन् 1857-58 तक पैरेटो के पिता परिवार समेत इटली वापस आ गए और फ्लोरेन्स शहर में बस गए।

2.1.4. प्रारंभिक शिक्षा दीक्षा

पिता के इटली वापस आने के समय विल्फ्रेडो पैरेटो की उम्र लगभग 10 वर्ष की थी। इनकी प्रारंभिक शिक्षा इटली में संपन्न हुई। अपनी सेकेंडरी स्तर तक की शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात उन्होंने प्रख्यात ट्यूरिन विश्वविद्यालय (Turin University) के इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी तथा बाद में पॉलीटैक्नीकल स्कूल में शिक्षा पूर्ण की। इस संस्था में उन्होंने पाँच वर्ष तक अध्ययन किया। यहाँ पर उन्होंने भौतिकशास्त्र तथा गणितशास्त्र का विशेष अध्ययन किया क्योंकि उस समय उनके जीवन का उद्देश्य इंजीनियर बनना था। उस अवस्था में पैरेटो शायद सपने में भी कभी यह नहीं सोचे होंगे कि एक समय ऐसा भी आएगा, जबकि उनका नाम एक इंजीनियर के रूप में नहीं बल्कि एक प्रख्यात अर्थशास्त्री व समाजशास्त्री के रूप में सम्मानित होगा।

पैरेटो ने इस समय गणित, भौतिकविज्ञान तथा इंजीनियरिंग की शिक्षा ग्रहण करते रहे। इसी कोर्स के दौरान इन्होंने (ठोस वस्तु में संतुलन के आधारभूत सिद्धांत) (The fundamental Principles of Equilibrium in solid Bodies) पर अपनी थिसिस प्रस्तुत की जो उनकी अर्थशास्त्रीय तथा समाजवैज्ञानिक परिकल्पनाओं को आधारभूत स्वरूप प्रदान किया साथ ही इनका यह अध्ययन आगे चलकर इनके समाज संबंधी अध्ययन की आधाशिला सिद्ध हुई।

2.1.5. व्यावसायिक जीवन

सन् 1871 में अपनी शिक्षा समाप्त करने के पश्चात इन्होंने अपना व्यावसायिक जीवन रेल-रोड कंपनी में निदेशक के पद पर नियुक्त होकर आरंभ किया। यद्यपि कुछ समय बाद ही इस पद को छोड़कर सन् 1874 में फ्लोरेंस में एक लौह उद्योग में मैनेजिंग-डायरेक्टर के रूप में कार्य करना आरंभ किया। इस पद पर कार्य करते समय पैरेटो को सभ्रांत परिवारों तथा बुर्जुआ वर्ग के उच्च परिवारों के संपर्क में रहने का प्रचुर अवसर प्राप्त हुआ। यहीं से वे जनतांत्रिक और उतारतावादी विचारों के दृढ़ समर्थक और प्रचारक बनने लगे। प्रबंधकारी निर्देशक के रूप में इन्हें इग्लैंड तथा यूरोप के अन्य देशों में यात्रा करने का अवसर प्राप्त हुआ और साथ ही उस समय के अनेक प्रख्यात विद्वानों के संपर्क में आने का भी अवसर प्राप्त हुआ। केवल इतना ही नहीं, विभिन्न देशों में घूमने के दौरान उन देशों की प्रमुख आर्थिक समस्याओं तथा उनके

स्वरूपों के प्रति भी उनकी दृष्टि आकर्षित हुई और पैरेटो उन समस्याओं के विषय में सोचने लगे। इन सबका प्रभाव यह हुआ कि सामाजिक विज्ञान विशेषकर अर्थशास्त्र आदि का गंभीर अध्ययन किया। कुछ ही समय में इन्होंने अपने समय से पहले के अनेक प्रमुख विद्वानों जैसे- अगस्त, कॉस्ट, हरवर्ट स्पेंसर, डार्विन आदि की कृतियों को पढ़ डाला, परंतु इन सभी कार्यों के करते हुए भी ये वर्षों तक निदेशक के पद पर बने रहे।

निदेशक का यह पद पैरेटो के अत्यधिक परिवर्तनशील जीवन का प्रथम चरण मात्र था, द्वितीय चरण था अर्थशास्त्री विल्फ्रेडो पैरेटो और अंतिम चरण था समाजशास्त्री विल्फ्रेडो पैरेटो। निदेशक के पद पर कार्य करते समय ही अपनी विशेष रुचि के कारण पैरेटो अपने समाज की विभिन्न समस्याओं के संबंध में पत्रिकाओं में लेख लिखा करते थे। मजदूरों का वेतन, सरकारी अधिकार, स्वतंत्र व्यापार आदि समस्याओं से संबंधित उनके अनेक लेख भी प्रकाशित हुए। इन समस्याओं के संबंध, विशेषकर स्वतंत्र व्यापार के विषय में पैरेटो ने उदार नीति अपनाने के पक्ष में राय दिया था।

सन् 1876 में स्वतंत्र व्यापार का समर्थन करने वाला दक्षिणपंथी दल जब सत्ता से हट गया तथा उसके स्थान पर वामपंथी नीतियों का समर्थन करने वाला दल सत्तारूढ़ हो गया तब पैरेटो के विचारों का विरोध किया जाने लगा। इनके द्वारा स्वतंत्र व्यापार में उदार नीति का समर्थन इटली सरकार को अच्छा नहीं लगा और सरकार ने भविष्य में ऐसे लेख न लिखने के लिए उन्हें चेतावनी भी दी। इन्हीं कारणों से उन्हें लेखनी का कार्य स्थगित करना पड़ा पर वो इससे संतुष्ट नहीं थे। ऐसा माना जाता है कि शायद यही कारण रहा होगा, जिसकी वजह से पैरेटो अपने पिता की भाँति आदर्शवादी और प्रजातांत्रिक न्याय के पक्ष पोषक न बन सके। फिलहाल सन् 1882 में तत्कालीन सरकारी नीतियों का विरोध करने के लिए तथा ऐसी अवस्था को समाप्त करने के लिए पैरेटो सक्रिय राजनीति में उतरने का फैसला लिए जिसकी वजह से सन् 1882 में ही सरकार के एक विरोधी प्रत्याशी के रूप में फ्लोरेन्स चुनाव क्षेत्र में चुनाव लड़े, परंतु वे चुनाव में असफल रहे। दुर्भाग्यवश इसी वर्ष इनके पिता का देहांत हो गया। पिता के देहांत का इनके मन-मस्तिष्क पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इस समय तक भी ये फ्लोरेंस के लौह-उद्योग में कार्यरत रहें।

2.1.6. शैक्षणिक जीवन

इनके जीवन की परिस्थितियाँ कुछ भी रहीं हो, परंतु इन्होंने अपने अध्ययन के कार्य को जारी रखा। अर्थशास्त्र में इनकी रुचि उत्पन्न करने का श्रेय रोम विश्वविद्यालय के राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर पैंटालिवोनी को था। प्रोफेसर पैंटालिवोनी उस समय के प्रख्यात अर्थशास्त्री वालरस के सच्चे प्रशंसक तथा भक्त थे और उन्होंने वालरस के सिद्धांतों पैरेटो बिल्कुल भी प्रभावित नहीं थे, परंतु जब उन्होंने प्रो. पैंटालिवोनी के लेखों को पढ़ा तो पैरेटो वालरस के प्रति अत्यधिक आकर्षित हुए, विशेषकर उनके (आर्थिक संतुलन के सिद्धांत) (Theory of Economic Equilibrium) से वे बहुत प्रभावित थे। वालरस के प्रति अपने विचारों में इस प्रकार के परिवर्तन के बारे में स्वयं पैरेटो ने लिखा है, "मैने वालरस को पढ़ा परंतु, उनकी कृतियों में मुझे तात्विक तर्कों के अतिरिक्त और कुछ भी न मिल सका, इस कारण निराश होकर मुझे उनका परित्याग करना पड़ा, परंतु फिर जब मैंने पैंटालिवोनी की पुस्तक में उनके बारे में

पढ़ा तो मुझे अपना पहले वाला विचार बदलना पड़ा मैंने वालरस की कृतियों का फिर से अध्ययन किया और इस बार मुझे उसमें सोने का श्रोत मिला।"

इस समय सन् 1889 में माँ की मृत्यु ने पैरेटो के जीवन में अप्रत्याशित परिवर्तन ला दिया था। माँ एवं चाचा की मृत्यु के बाद पैरेटो को पर्याप्त धन उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुआ, जिसके कारण इन्होंने लौह-उद्योग में प्रबंध निदेशक के पद का इस्तीफा दिया और जीजान से अध्ययन कार्य में लग गए। इसी बीच इन्होंने रूसी मूल कि युवती एलेसान्द्रिता से विवाह कर लिया तथा फीजोल (Fiesole) में जाकर बस गए। यहाँ उन्होंने न केवल विभिन्न भाषाओं के प्रमुख ग्रथों का अध्ययन आरंभ किया, बल्कि वह अर्थशास्त्र के गंभीर अध्ययन में लग गए। इस अवधि में पैरेटो के गणितीय तथा सैद्धांतिक अर्थशास्त्र पर कुछ शोध पत्र भी प्रकाशित हुए। इनकी बहुत इच्छा थी कि ये इटली में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर हो जाएँ और इसलिए भी ये इन विषयों का गहन अध्ययन आरंभ कर दिए थे। कुछ संयोग भी ऐसा हुआ कि उनकी यह इच्छा बहुत दिनों तक अपूर्ण न रही। इस समय स्वीजरलैंड के तयुसाँना विश्वविद्यालय (Lausanne University) में वालरस राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर थे, परंतु अपनी अत्यधिक अस्वस्थता के कारण उन्हें बाध्य होकर अवकाश ग्रहण करना पड़ा। वे पहले से ही पैरेटो के गुणों से प्रभावित थे, इस कारण उन्होंने अपने पद पर पैरेटो को नियुक्त करने की सिफारिश की यह बात पैरेटो के अनुकूल थी, क्योंकि जैसा इनका अतीत रहा है कि इनका और इटली सरकार के मध्य संपर्क पर्याप्त कटु था और दोनों ही एक दूसरे से छुटकारा पाना चाहते थे। इस कारण प्रो. वालरस के स्थान पर स्विजरलैंड के ल्युसाँना विश्वविद्यालय में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के पद के लिए पैरेटो की नियुक्ति से इटली की सरकार तथा पैरेटो दोनों को ही राहत मिली। इस प्रकार सन् 1893 में उन्हें ल्युसाँना विश्वविद्यालय में राजनीतिक अर्थशास्त्र के अवशिष्ट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति दे दी गई। इससे इनके जीवन को नई दिशा मिली। एक तो वे इटली सरकार के विरोध से बच गए और दूसरे यहाँ इन्हें अर्थशास्त्र के सिद्धांतों का अध्ययन करने का व्यापक अवसर मिला यहीं मुसोलिनी एक विद्यार्थी के रूप में पैरेटो के संपर्क में आए थे। यह वही मुसोलिनी थे, जो कि आगे चलकर इटली के भाग्य विधाता-फासिस्ट शासक बने थे।

इस प्रकार इंजीनियर पैरेटो अर्थशास्त्री पैरेटो बन गए। इस जीवन में इन्हें अत्यधिक सुख व शांति का अनुभव हुआ तथा इन्होंने स्वयं को पूरी तरह से अध्ययन व अध्यापन कार्य के प्रति समर्पित कर दिया। इनका यह बौद्धिक परिश्रम सफल भी हुआ। अगले ही वर्ष अर्थात् सन् 1894 में इन्हें स्थायी प्रोफेसर बना दिया गया। पहले पहल एक वर्ष तक ये विशुद्ध अर्थशास्त्र (Pure Economics) व्याख्यान देते रहे, उसके पश्चात (Applied Economics) व्यावहारिक अर्थशास्त्र के विषय को पढ़ाते रहे। सन् 1896 में जब उनकी पुस्तक (कोर्स डि इकॉनोमी पॉलिटिक) (Course D Economics Politics) प्रकाशित हुई तब उन्हें इस विषय में संसार के प्रमुख विद्वानों में गिना जाने लगा। सन् 1887 से लेकर सन् 1898 तक इन्होंने अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र दोनों ही विषय को पढ़ाया।

समाजशास्त्र संबंधी पैरेटो के विचार सर्वप्रथम सन् 1900 में रिविस्ता इटालियाना सोशियोलोजिया (Rivista Italiana Sociologia) में लिखे एक लंबे लेख में प्रकट हुए मिला। इनके

इस लेखक को पढ़ने के पश्चात यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार सामाजिक क्रिया आर्थिक परिप्रेक्ष्य को प्रभावित करती है।

अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में पैरेटो यद्यपि उदारतावादी नीतियों के समर्थक रहे, लेकिन इस दौरान इनके जीवन में घटित अनेक घटनाओं के कारण वे स्वयं अपने विचारों को एकांकी समझने लगे। इसी बीच इन्हें दूसरा गहरा आघात तब पहुँचा जब एक भ्रमण से वापस लौटने पर इन्हें ज्ञात हुआ कि इनकी पत्नी बहुत से बहुमूल्य सामानों के साथ घर छोड़कर जा चुकी थी। संभवत: इस घटना के प्रभाव से मनुष्य के बारे में इनकी भावना कुछ कठोर बनने लगी थी। इस आधार से पैरेटो 1890 में गंभीर रूप से विमार पड़े और लगातार चार वर्षों तक शारीरिक व मानसिक रूप से बीमार रहें।

इस गंभीर अस्वस्थता के पश्चात ये स्वस्थ होकर वापस लौटे तथा पुनः ल्युसॉना विश्वविद्यालय में अपना कार्यभार ग्रहण किए। वापस आने के पश्चात इनकी विचार करने व समझने की प्रवृति में काफी परिवर्तन आ चुका था। ये मानव व्यवहार की विविधता को स्वीकार करते हुए इन्होंने सामाजिक अर्थशास्त्र (Social Economcis) विषय पर व्याख्यान देना प्रारंभ किए परंतु धीरे-धीरे इनके व्याख्यानों का मुख्य विषय अर्थशास्त्र से हटकर समाजशास्त्र पर केन्द्रित होता चला गया इसी बीच इनका यह भी प्रयत्न रहा कि सामाजिक अध्ययनों के पाठ्यक्रम में सुधार करने के साथ ही उसे इस तरह संयोजित किया जाये जिससे व्यक्ति का ध्यान उन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों की ओर भी आकर्षित हो जो आर्थिक व्यवहारों के श्रोत हैं। इस समय अर्थशास्त्र के बारे में उन्होंने एक अवसर पर कहा कि, (एक ही विषय वस्तु को बार-बार पढ़ने से मुझे लगता है कि जैसे मैं एक रटने वाला तोता बन गया हूँ(यही से पैरेटो का जीवन अर्थशास्त्र से समाजशास्त्र की ओर बढ़ने लगा। अपनी इस स्थिति एवं परिवर्तन के कारणों को समझाते हुए पैरेटो ने लिखा है कि, (राजनीतिक अर्थशास्त्र में शोध कार्य को कुछ सीमा तक करने के पश्चात मुझे प्रतीत हुआ कि अब मैं आगे नहीं बढ़ सकता है। अनेक बाधाएँ मेरे सम्मुख थी और उनमें से सर्वप्रमुख बाधा समस्त प्रकार की सामाजिक घटनाओं में पाई जाने वाली अंतर निर्भरता और अन्तः संबंध थी। जिस प्रकार आज यह अनुभव किया जाता है कि रसायनशास्त्र और विद्युत-विज्ञान के सिद्धांतों में अन्तः संबंध है उसी प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी भी एक सामाजिक घटना का अध्ययन दूसरों से पृथक करके नहीं किया जा सकता। तथा किसी एक कारक के आधार पर ही समाज की विवेचना नहीं की जा सकती।(दूसरे शब्दों में, किसी भी सामाजिक घटना का वास्तविक अध्ययन तभी सम्भव है जबकि दूसरी घटनाओं से संबंधित मानकर उसका अध्ययन किया जाये। इस प्रकार पैरेटो के बौद्धिक जीवन ने एक करवट बदली और अर्थशास्त्री विल्फ्रेडो पैरेटो समाजशास्त्री विल्फ्रेडो पैरेटो में परिवर्तित हो गए।

इस प्रकार उपर्युक्त परिवर्तन के पश्चात पैरेटो ने (राजनीतिक समाजशास्त्र) के क्षेत्र में अध्ययन आरंभ किया, यद्यपि कुछ सीमा तक उनकी रुचि आर्थिक और सामाजिक सिद्धांतों के इतिहास में भी बनी रही। इस समय तक पैरेटो की यह धारणा बनने लगी कि मानव व्यवहारों का अधिकांश भाग विवेक से संचालित न होकर अनेक भावनाओं, संवेगों, अन्ध विश्वासों और इसी तरह के अतार्किक विचारों से प्रभावित होता है। उन्होंने यह अनुभव किया कि आर्थिक उदारतावाद के प्रति उसके परिवार तथा मित्रों द्वारा जिन तर्कों पर उनका विरोध किया जाता रहा, वे पूरी तरह से अतार्किक है। साथ ही जनसाधारण के

व्यवहार जिन तर्कों पर आधारित होता है वे अनेक अतार्किक विश्वासों, भावनाओं, भय और इसी तरह के संवेगों से प्रभावित होते हैं।

पैरेटो के इन कथनों व विचारों की संपुष्टि तथा इन धारणाओं का स्पष्ट रूप इनकी पुस्तक (सामाजिक व्यवस्था) (Le systems Socialist) द सोशल, सिस्टम में देखने को मिलता है जो सन् 1802 में प्रकाशित हुई थी। अपनी बिमारी से पुनः विश्वविद्यालय लौटने पर इन्होंने एक अन्य पुस्तक (मैनुअल ऑफ पॉलिटिकल इकॉनमी) (Manual of Political Economy) लिखना प्रारंभ किया जो सन् 1906 मे प्रकाशित हुई, जिसका सन् 1909 में फ्रैंच भाषा में अनुवाद कर प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक में भी पैरेटो ने अतार्किक भावनाओं, विश्वासों व अंधविश्वासों के संदर्भ में लिखा है।

समय बीतने के साथ पैरेटो बहुत ज्यादा कमजोर हो गए तथा अस्वस्थ रहने लगे। शारीरिक कमजोरी के कारण आखिरकार 1909 में उन्हें ल्युसॉना विश्वविद्यालय से प्रोफेसर पद से इस्तीफा देना पड़ा। उन्होंने ल्युसाँना नगर के पास ही सेलिगनी (Celigny) में जिस ग्रामीण ढंग के बंगले का निर्माण कराया था, उसी में जाकर रहना आरंभ कर दिया। यही उनकी रुचि निरंतर समाजशास्त्र के अध्ययन की ओर अग्रसरित होती गई। इस समय इन्होंने समाजशास्त्रीय चिंतन में जो योगदान किया वह 1915 में प्रकाशित उनकी पुस्तक (ट्रीटीज इन जनरल सोशियोलॉजी) (Treatise on General Sociology) यानि सामान्य समाजशास्त्र पर लेख में देखने को मिलता है। बाद में अंग्रेजी भाषा में यह पुस्तक (The Mind and Society) के नाम से सन् 1935 में प्रकाशित हुई।

अपने जीवन के अंतिम दिनों में पैरेटो व्यक्तिगत समस्याओं में ज्यादा उलझे रहें। सन् 1900 में पैरेटो की प्रथम पत्नी उन्हें छोड़कर चली गई थी। उस समय इटली के कानून के अनुसार विवाह-विच्छेद को मान्यता नहीं प्राप्त था। अतः इन्होंने न्यायायिक पृथक्करण प्राप्त किया। तब उनके जीवन में एक नई स्त्री

जेन रेगिस (Jane Regis) आई। उसी के स्नेहपूर्ण देखभाल के उपलक्ष्य में पैरेटो ने (ट्रीसीज) उसे समर्पित किया। अपने इस नये संबंध को वैधानिकता देने के लिए पैरेटो ने नगर राज्य (सिटी-स्टेट) फियूम (Fiume) की नागरिकता ग्रहण की, क्योंकि वहाँ विवाह-विच्छेद स्वीकृत था। इस प्रकार 1923 में इन्होंने जेन रेगिस को अपनी पत्नी बना लिया। अन्ततः 75 वर्ष की आयु में, रोम में फासिस्टो के प्रवेश के दस माह बाद 1923 में ही इनकी मृत्यु हो गई।

2.1.7. महत्वपूर्ण कृतियाँ

विल्फ्रेडो पैरेटो ने बहुत कुछ लिखा है- अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र में। प्रारंभ उनके कुछ फुटकर निबंध अर्थशास्त्र में थे। इन्हीं कारणों से वे सन् 1892 में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर हुए। उन्होंने इटली का एक वाकया अपनी (ट्रिटाइज) में लिखा है। वे इटली में आयोजित एक सेमिनार में भाग लेने गए थे। उस समय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री उस बैठक में उपस्थित थे। यहाँ पैरेटो ने कहा कि अर्थशास्त्र एक प्रत्यक्षवादी समाज विज्ञान (Paritine Social Science) है। उनका यह कहना था कि बैठक के कई सदस्यों ने उनकी इस बात का उपहास बनाना प्रारंभ कर दिया। अन्ततः जैसा कि बैठकों में होता है। स्थिति विपरीत होता देख पैरेटों शांत हो गए। इसी बैठक के बाद शाम को पैरेटो भोजन प्राप्त करने के लिए

वे किसी होटल की तलाश में निकलें। बैठक में उपस्थित एक भागीदार से उनकी मुलाकात हो गई। पैरेटो ने बैठक के भागीदार से पूछा कि क्या वे उन्हें ऐसा कोई होटल बता सकते हैं, जहाँ मुफ्त में खाना मिले। पैरेटो ने यह इसलिए पूछा क्योंकि वे इस शहर में अजनबी थे। भागीदार ने टपाक से उत्तर दिया की कहीं भी ऐसा होटल नहीं मिलोगा जो मुफ्त में खाना दे, हाँ यह अवश्य है कि किसी होटल में सस्ता खाना मिल जाएगा और किसी में महँगा। अब बारी पैरेटो के बोलने की थी, उन्होंने कहा, "यही तो अर्थशास्त्र का सिद्धांत है।" कहने का तात्पर्य है कि अर्थशास्त्र को एक प्रत्यक्षवादी विज्ञान बनाने में पैरेटो का अमूल्य योगदन है।

कालांतर में व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में इसी परिवर्तन ने पैरेटो को धीरे-धीरे मानवीय व्यवहार व समाजशास्त्र से जोड़ना प्रारंभ किया। हालॉकि वे किसी भी मायने में जितना वो अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उच्च कोटि के ज्ञाता वक्ता थे उसी प्रकार समाजशास्त्र के क्षेत्र में भी इनको विचार बहूमुल्य है। जब ये समाजशास्त्र के प्रोफेसर थे तब मुसोलिनी उनका विद्यार्थी था और वह फासीवाद की लड़ाई में परचे बाँटते थे तो वे पैरेटो के कोटेशन देना नहीं भूलते थे। पैरेटो ऊँचे दर्जे के तार्किक थे। समाजशास्त्र के निर्माण में इन्होंने अपनी तर्क शक्ति का पूरा इस्तेमाल किया है। जो भी समाजशास्त्री इनकी (ट्रिटाइज) पढ़ता है वह यह स्वीकार करता है। तर्क से अतिरिक्त इनकी दूसरी विशेषण गणित है। उन्होंने अर्थशास्त्र ही नहीं समाजशास्त्र में भी गणित का प्रयोग किया है।

पैरेटो की कृतियों में यूरोप की दो परंपराओं का निर्वाह है। एक तो फ्रांस व दूसरे इटली की परंपरा। इनके व्यक्तित्व के विकास में दोनों परंपराएँ स्पष्ट रूप से उभरकर आती हैं। इटली के बौद्धिक समाज में मैकियावली (Mechivavelli) का बड़ा आदर था। मेकियावली राजनीति के विशेषज्ञ थे व इनका झुकाव फासीवाद की ओर था। पैरेटो इन्हें अपना आदर्श मानते थे। अतः इनका झुकाव भी फांसीवाद की तरफ गया। पैरेटो के कारण मुसोलिनी का झुकाव हुआ।

पैरोटो डार्विन से भी बहुत प्रभावित थे। इन्होंने हरबर्ट स्पेन्सर के उद्विकास का भी अध्ययन किया था। उस युग में मीड का बड़ा नाम था। मीड ने अपनी कृतियों में व्यक्ति और समाज के संबंधों को देखा है। उनका कहना था कि व्यक्ति के लिए समाज सबसे ऊपर है। व्यक्ति तो समाज की प्रतिकृति मात्र है। इस विचार धारा ने भी पैरेटो को प्रभावित किया। पैरेटो पर शायद उस समय के फासीवादी लेखक मोस्का (Mosca) का भी प्रभाव था।

एक स्थान पर मुसोलिनी ने पैरेटो के लिए यह टिप्पणी दी थी कि (पैरेटो बुर्जुआ कार्ल मार्क्स है)। इसका अर्थ है जिस तरह मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग की हिमायत की कुछ उसी तरह से पैरेटो ने बुर्जुआ वर्ग भी किया। पैरेटो ने अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिए जो अमूल्य ग्रंथ लिखे जो इस प्रकार है-

Cours d (Economic Politive) Lausanne, Vol.I, 1896 (Vol.II. 1897), Les Systems Socialiestes (Paris, 1903) Manuale d (Economia Politica (Milan, 1906), Trattato d (Socilogia generale (Paris and Lausanne, 1919, tranlated "Mind and Society", uvols, New Yard 1935).

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त पैरेटो ने अपने जीवनकाल में सन् 1890 के पूर्व (इटली का सतारूढ़ वर्ग(पर भी एक पुस्तक लिखी थी जो उनकी मृत्यु के बाद सन् 1950 में प्रकाशित हुई। इन सभी पुस्तकों से स्पष्ट होता है कि अपनी पहली रचना को छोड़कर बाद की सभी पुस्तकों में पैरेटो का चिंतन मुख्यतः समाजशास्त्र की ओर उन्मुख रहा। (ट्रीटीज ऑन जनरल सोशियोलॉजी) वह सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक है, जिसमें पैरेटो ने समाजशास्त्र की अवधारणाएँ प्रस्तुत की तथा समाजिक घटनाओं के विवेचन को अनेक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारकों के संदर्भ में स्पष्ट किया। फ्रैच तथा इटालियन भाषा में उन्होंने लगभग 100 से भी अधिक लेख लिखकर समय-समय पर अपने विचार व्यक्त किए। इन सभी से पैरेटो का प्रतिभाशाली और मौलिक चिंतन स्पष्ट होता है।

2.1.8. तत्कालीन बौद्धिक पृष्ठभूमि

पैरेटो के काल में हुए (भौतिक तथा सामाजिक प्रकृति), (मानवीय पूर्णता)और (वैज्ञानिकता) की विचारधारा की प्रधानता थी। लापोज तथा अमोन (Lapouge and Ammon) इस बात पर जोर दे रहे थे कि गुण तथा क्षमता समाज में असमान रूप से वितरित हैं। इसी से यह तर्क निकाला गया कि इन गुणों तथा क्षमताओं से युक्त अल्पसंख्यक लोगों को ही शेष समाज पर शासन करना चाहिए। दोनों ही दशाओं में भीम का (मात्स्य न्याय) तथा डार्विन का (जीवन के लिए संघर्ष) का सिद्धांत शक्तिशाली का कमजोर पर शासन के पक्ष में एक तर्क के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता था। यद्यपि हीगलवाद का योग राष्ट्रवाद के साथ तथा मार्क्सवाद का योग सामाजिक युद्ध के साथ मिलकर स्वतंत्र प्रजातांत्रिक राज्य के लिए हानिकारक थे परंतु फिर भी तत्कालीन वातावरण में इन्होंने भी मानव प्रगति में विश्वास तथा विवेक को ओर दृढ़ विचार प्रदान किए। हीगल के अनुसार निरंतर विवेक को और दृढ़ विचार प्रदान किए। हीगल के अनुसार निरंतर विवेक में वृद्धि के कारण मानवता अपने निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ रही है। मार्क्स के अनुसार भी मानवता प्रगति के पथ पर है। केवल वर्ग स्वार्थों के द्वंद्ववाय का सिद्धांत इसे हीगल के सिद्धांत से पृथक करता है।

शताब्दी के अंत में प्रगतिवादी कही जाने वाली सभी विचारधाराओं की कटु आलोचना प्रारंभ हुई। स्वतंत्र प्रजातांत्रिक गठबंधन टूटने लगे। स्वतंत्रता के नाम पर धनी तथा सुसंस्कृत लोग राजकीय हस्तक्षेप के विरोधी हो गए। परंतु समाजवादी प्रजातंत्र के नाम पर इसकी माँग करने लगे। अतः समूहवाद का रास्ता अपनाया गया। एक ओर उत्पादनकर्ता को सुरक्षा मिली, दूसरी ओर श्रमिक को कल्याणकारी सेवाएँ प्राप्त हुई।

स्वतंत्र प्रजातांत्रिक राज्य की राजनीतिक संस्थाएँ भी टुट रही थी। संसदीय प्रणाली को पश्चिमी देशों की भौतिक समृद्धि की सूचक के उपकरण के रूप में स्वीकार किया जा रहा था, परंतु रिपब्लिकन फ्रांस तथा राजतंत्र शासित इटली जो स्वतंत्रवाद की विजय के प्रतीक रूप में था, संसदीय व्यवस्था से विरत हो रहा था। फ्रांस का शासन असुरक्षित था। आए दिन वित्तीय उलट-फेर हो रहे थे। राजनीतिक तथा व्यक्तिगत स्वार्थों से प्रेरित थोड़े से लोगों ने अपनी चतुराई, प्रचलित गरीबी तथा अशिक्षा का लाभ उठाकर देश के एकीकरण तथा सुधार के नाम पर देश के अंदर कृषि को सुरक्षा दी। उन लोगों ने जीवन-

यापन महँगा बना दिया तथा देश के बाहर मुद्दों में उलझ गए। इसकी वजह से प्रमुख बुद्धिवादी पूर्णतया विरसित हो गए। यह जब स्वतंत्र प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली, प्रचलित उद्विकासीय विचारधारा तथा प्रगति संबंधी सिद्धांतों क्रियान्वयन का ही परिणाम था।

19वीं शताब्दी में विवेक तथा प्रगति के सिद्धांतों पर प्रहार होना प्रारंभ हुआ। यह विरक्ति उन सभी क्षेत्रों में लक्षित हुई जिनमें पहले वैज्ञानिकता तथा विवेक का बोलबाला था। भिन्न-भिन्न प्रकार के तर्क तथा विचार करने के सभी प्रयासों में एक मूलभूत प्रश्न पर समानता थी। इसे बहुत से नाम दिए गए है- जैसे- अविवेकवाद (Irrationalism) या विवेकवाद विरोध (Anti-Rationalism) या विवेक के विरुद्ध क्रांति या अवैज्ञानिकवाद (Anti-Positivism) इन सबको व्यक्तिवाद या आत्मावाद (Subjectivism) का नाम भी दिया जा सकता है। प्रगति के सभी नियमों के बारे में वैषयिकता की वस्तुनिष्ठवाद को अब स्वीकार किया गया है। इन सभी के क्रियान्वयन की क्रिया में व्यक्ति की मनोवैज्ञानिकता प्रवेश कर जाती है। इस प्रकार के प्रश्नों ने प्रकृति के नियमों की तार्किकता के संबंध में नवीन जिज्ञासाओं को जन्म दिया।

फ्रायड के अनुसार- (अधिकांश प्रकट व्यवहार, हमारे अचेतन मन में दबी हुई इच्छाओं के विभिन्न परिणाम है।) सामाजिक विज्ञानों में फ्रायड का उक्त सिद्धांत बहुत ही व्यावहारिक सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार वर्गसाँ ने प्रकृति के रहस्यों को जानने के लिए (अंतर्ज्ञान) या (अंर्तदृष्टि) पर बल दिया। दुर्खीम ने (सामूहिक प्रतिनिधित्व) अथवा समाज एवं संस्कृति की व्यापकता के प्रसंग में विचारों एवं मूल्यों की उत्पत्ति पर बल दिया है। बेबर ने वर्स्टहीन (Verstehen) अर्थात समझ पर अत्यधिक बल दिया है। विलियम जेम्स का कथन था कि कुछ सत्य नहीं है। व्यक्तिगत उपयोगिता के अनुसार तथ्य सत्य अथवा असत्य होते हैं। पैरेटो फ्रायड, दुर्खीम, वर्गसाँ तथा बेबर से लगभग 15 वर्ष बड़े थें, परंतु इनका झुकाव सामाजिक विज्ञानों की तरफ देर से हुआ। अतः अवस्था में बड़े होने पर भी वे सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में इन सभी को समकालीन अर्थात 1890 में ही गिने जाते हैं।

प्रारंभ से ही पैरेटो के विचार प्रजातंत्र तथा रिपब्लिकनवाद एवं स्वतंत्र व्यापार के पक्ष में गहरे थे। इन्हें इटली के श्रेष्ठ वर्ग से नफरत थी तथा मिरफिन के शब्दों में उसे इटली के गरीबों का खून चूसने वाला समझा जाता था। 1876 में (स्वतंत्र व्यापार अधिकार) सत्ता से गिर गया तथा दक्षिण पंथी पार्टी के सुधारवाद के नाम पर राजकीय हस्तक्षेप की नीति को जन्म मिला। पैरेटो इसके घोर विरोधी थे। इसी समय से पैरेटो इटली के प्रशासक वर्ग को राजनीतिक सत्ता से आर्थिक लाभ उठाने वाला तथा आर्थिक लाभों को राजनीतिक सत्ता के लिए प्रयोग करने वाला वर्ग मानने लगा, जो ये सारे काम चुनाव तथा सांविधान की आड़ में चला रहे थे। 1889 तथा 1893 के मध्य, उसने लगभग 167 लेख लिखें, उनमें से अधिकांश सरकार विरोधी थे। पुलिस ने उनके कर्मचारी संस्थानों में भाषणों पर प्रतिबंध लगा दिया। जब 1898 में सिलान में दंगे प्रारंभ हुए तो पैरेटो ने उनका दायित्व सरकार की सुरक्षात्मक नीति पर डाला।

सन् 1900 में पैरेटो प्रजातंत्र विरोधी विचारों के हो गए। पैरेटो अत्यंत अहंवादी थे। वे स्वयं बहुत अधिक सामाजिक नहीं थे हस्तक्षेप कैसा भी हो, सहनशीलता से बाहर था। ट्रेड यूनियनों द्वारा अपने अधिकारों का दुरुपयोग होते देखकर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि धनिक वर्ग के शोषण का स्थान श्रमिक वर्ग की यूनियनों ने अपनी हठवादिता के कारण ले लिया है। अतः दोनों ही बुराइयों से मुख मोड़कर पैरेटो

ने इनकी कटु आलोचना की सौभाग्यवश 1898 में पैरेटो को असीम पैतृक संपत्ति मिली जिसके कारण इन्हें संसार व नियमों की मुक्त आलोचना करने में किसी प्रकार की संसारिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। इटली में युवकों में मार्क्सवाद के प्रति बढ़ती आस्था ने 1897 में इस विचार को जन्म दिया कि अधिकांश मानव क्रियाएँ विवेक की नहीं, भावनाओं की उत्पत्ति है।

2.1.9. सारांश

इस इकाई में हमने विल्फ्रेडो फेडेरिको दामासो पैरेटो के जीवन परिचय, उनकी सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक विचारधाराओं को जाना। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट हुआ कि किसी प्रकार इनके जीवन की बदलती परिस्थितियों एवं समकालीन सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण शनैः-शनैः इंजीनियर पैरेटो सर्वप्रथम अर्थशास्त्री पैरेटो बने फिर अर्थशास्त्री पैरेटो समाजशास्त्री पैरोटे के रूप में परिवर्तित होते चले गए। इन्होंने सत्ता परिवर्तन की परिस्थितियों के साथ-साथ मानवीय व्यवहारों का भी गहन अध्ययन किया तथा निष्कर्ष यह निकाला कि वास्तव में मनुष्य अपने जीवन तार्किक व्यवहार की जगह अतार्किक व्यवहार को ज्यादा महत्व देता है तथा उन अतार्किकताओं को स्वयं के द्वारा तर्कपूर्ण भी सिद्ध करता है। इस रूप में इनका महत्वपूर्ण योगदान है जिसे मानव समाज सर्वदा याद रखेगा।

2.1.10. बोध प्रश्न

1. पैरेटो के जन्म के पूर्व उनकी पारिवारिक परिस्थितियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए?
2. पैरेटो के प्रारंभिक जीवन एवं शिक्षा-दीक्षा का उल्लेख कीजिए?
3. पैरेटो एक इंजीनियर से अर्थशास्त्री और अर्थशास्त्री से समाजशास्त्री बने। इस कथन की समीक्षा कीजिए?
4. पैरेटो के समकालीन परिस्थितियों के बौद्धिक पृष्ठभूमि का विवरण दीजिए?
5. विल्फ्रेडो पैरेटो को फासीवाद का पैगंबर क्यों माना जाता हैं?
6. विल्फ्रेडो पैरेटो की महत्वपूर्ण कृतियों का उल्लेख कीजिए?
7. पैरेटो ने अर्थशास्त्र की तुलना में समाजशास्त्र को अधिक महत्व क्यों दिया?

2.1.11. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस.
2. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ. (2008). *उत्कृष्ट समाजशास्त्रीय परंपराएँ*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
3. शर्मा, वीरेन्द्र प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
4. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ. (2016). *सामाजिक विचारधारा*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
5. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्रीय चिंतन एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
6. अग्रवाल, डॉ. गोपाल कृष्ण. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाऊस.
7. मुखर्जी, रवीन्द्र. नाथ. एवं घोषाल, अरूणान्सु. (2014). *सोशल थॉट (फ्राम कॉम्ट टू मुखर्जी)*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

इकाई-2 : तार्किक तथा अतार्किक क्रिया

इकाई की रूपरेखा

2.2.1. उद्देश्य

2.2.2. प्रस्तावना

2.2.3. तार्किक क्रिया: अर्थ एवं परिभाषा

2.2.4. अतार्किक क्रिया

2.2.5. तार्किक एवं अतार्किक क्रियाओं का अवधारणात्मक विवेचन

2.2.6. अतार्किक क्रिया के अध्ययन की विधियाँ

2.2.7. सारांश

2.2.8. बोध प्रश्न

2.2.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.2.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात विद्यार्थी जान सकेंगे-

1. पैरेटो के तार्किक क्रिया की व्याख्या
2. पैरेटो के अतार्किक क्रिया
3. पैरेटो के अनुसार अतार्किक क्रिया किस प्रकार समाजशास्त्र की अध्ययन वस्तु है, इस पर एक समझ विकसित होगी।
4. अतार्किक क्रिया की अध्ययन पद्धति
5. मानव व्यवहार का वह पक्ष जो अवचेतन मस्तिष्क द्वारा निर्धारित होता है, के बारे में विस्तार से जान पाएंगें।

2.2.2. प्रस्तावना

पैरेटो ने समाजशास्त्र को वैज्ञानिक आधार प्रदार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी पद्धति को तार्किक प्रयोगात्मक पद्धति (Logico-Experimental Science) के नाम से जाना जाता है। पैरेटो ने समाजशास्त्र को एक- अतार्किक प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में स्थापित करके तार्किक क्रियाओं तथा उससे संबंधित विभिन्न प्रकार के मानव व्यवहारों को ही समाजशास्त्र की मुख्य अध्ययन-वस्तु के रूप में स्वीकार किया है। पैरेटो का पद्धतिशास्त्र विशुद्ध वैज्ञानिक एवं यथार्थ है। यही कारण है कि उन्होंने अपने चिंतन में अतार्किक क्रियाओं की तुलना में इन तार्किक क्रियाओं की प्रकृति को विस्तार से स्पष्ट किया है। पैरेटो का विचार है कि सभी मानवीय क्रियाओं को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- (क) तार्किक क्रियाएँ (Logical Action) तथा (ख) अतार्किक क्रियाएँ (Non - Logical Action) यदि सामान्य शब्दों में इनकी प्रकृति को समझा जाय तो यह कहा जा सकता है कि तार्किक

क्रियाएँ वस्तुनिष्ठ (Objecive) होती है, जबकि अतार्किक क्रियाओं का आधार भावनात्मक (Subjecive) होता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब कोई क्रिया कर्ता और दूसरे व्यक्तियों के दृष्टिकोण से यथार्थ होती है तब उसे तार्किक क्रिया कहा जाता है, लेकिन जब कोई क्रिया कुछ भ्रांत तर्कों, भावनाओं अथवा संवेगों पर आधारित होती है तब इसे अतार्किक क्रिया कहा जा सकता है।

इनका मानना था कि सामाजिक व्यवस्था समयानुकूलन होता है। इसकी संरचना व्यक्तियों से बनी होती है। इन व्यक्तियों की गतिविधियों पर कई शक्तिशाली कारक काम करते हैं। इन शक्तिशाली कारकों में मुख्य रूप से मनोभाव यानी अवशिष्ट और भ्रांत तर्क होते हैं। मनुष्य के संपूर्ण व्यवहार का एक भाग अतार्किक होता है। इस अतार्किक व्यवहार का निर्धारण अवशिष्टों और भ्रांत तर्कों द्वारा होते हैं। अतार्किक क्रिया का अध्ययन ही समाजशास्त्र करता है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। कि समाजशास्त्र की अध्ययन विधि तार्किक है। पैरेटो का तर्क आगमनात्मक (Inductive) है। ये वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ के समायोजन के परिणामस्वरूप जो क्रिया होती है, उसका अध्ययन करते हैं। उन्होंने इस अवधारणात्मक योजना के अनुसार कई समाजशास्त्रीय सिद्धांत रखें हैं। इन अनेक समाजशास्त्रीय सिद्धांतों में सामाजिक क्रियाओं का वर्गीकरण समाजशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसी सिद्धांत के कारण विल्फ्रेडो पैरेटो पारसन्स, बेवर और मर्टन के समकक्ष व समान रूप में प्रतिष्ठित है।

2.2.3. तार्किक क्रिया: अर्थ एवं परिभाषा

पैरेटो के हिसाब से अर्थशास्त्र में जो सिद्धांत होते हैं, वे सभी तार्किक क्रिया की श्रेणी में आते हैं। होता यह है कि तथ्यों के अंदर कुछ ऐसे चर (Variables) और तत्व होते हैं, जिन्हें आर्थिक सिद्धांत मूर्त रूप से रखता है और यही उनके लिए तार्किक क्रिया है। लेकिन जब पैरेटो सामाजिक प्रघटनाओं की अध्ययन विधियों का उल्लेख करते हैं तो कहते हैं कि आर्थिक प्रघटनाओं की तरह सामाजिक प्रघटनाओं का अध्ययन नहीं किया जा सकता। पैरेटो ने समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए दो अवधारणाओं को प्रस्तावित किया है- तार्किक क्रिया व अतार्किक क्रिया। इसके अलावा सामाजिक प्रघटनाओं को समझने के लिए पैरेटो कुछ अन्य दृष्टिकोणों का भी उल्लेख करते हैं जैसे-वस्तुनिष्ठ (Objective) व व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) वस्तुपरक दृष्टिकोण वह होता है जो सामाजिक प्रघटना को उसकी वास्तविकता या यथार्थता में देखता है जबकि व्यक्तिनिष्ठ वह दृष्टिकोण है जो यथार्थ में न होकर व्यक्ति के मस्तिष्क में होता है। अर्थात् व्यक्ति जिस तरह से किसी घटना को देखता और क्रिया करता है तो इन्हीं दोनों अवधारणाओं के अंतर्गत अपने निर्णय लेता है। पैरेटो विस्तार से वस्तुपरक एवं व्यक्तिपरक सामाजिक प्रघटनाओं में अंतर देखते हैं। इनका कहना है कि वस्तुपरक सामाजिक प्रघटाएँ जब व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से जुड़ जाती है तो यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। दूसरे शब्दों में व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से सामाजिक प्रघटनाओं की यथार्थता यदि वस्तुपरक यथार्थता के अनुरूप हो जाती है तो वह वैज्ञानिक सिद्धांत है।

तार्किक क्रिया किसे कहते है?

पैरेटो का कहना है कि "किसी भी विशुद्ध विज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति किसी प्रघटना के बारे में अपने मस्तिष्क में जो कुछ सोचता है वह सामान्य सोच के अनुरूप बैठ जाता है, तार्किक क्रिया कहलाता है।"

उदाहरण- यदि कोई व्यक्ति यानि कर्ता (Actor) यह सोचता है कि साइनाइड खाने से तुरंत मृत्यु हो जाती है और वस्तुपरकता भी यही है तो वह वैज्ञानिक अवलोकन है। इसको पैरेटो तार्किक क्रिया कहते इसे परिभाषित करते हुए ये लिखते हैं कि "तार्किक क्रियाएँ वे हैं जिनमें वस्तुपरकता व व्यक्तिपरकता एक साथ होती है।"

एक अन्य स्थान पर पैरेटो तार्किक क्रिया की परिभाषा देते हुए एक और बिंदु पर वस्तुपरकता व व्यक्तिपरकता के अंतर को स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि व्यक्ति अपने स्वयं के उद्देश्य की दृष्टि से लक्ष्य निश्चित करता है। यह लक्ष्य उसके लिए वस्तुपरक है। उसने तो सामाजिक घटना के विषय में पहले से ही अपने मस्तिष्क में एक निश्चित सोच या समझ बना रखी है। अब इस व्यक्तिपरक सोच के माध्यम से वह समझता है कि जो कुछ प्रयास उसके द्वारा किया जा रहा है वह वस्तुपरक है। अपने इस वस्तुपरक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किन्हीं साधनों को काम में लाता है। उदाहरण- यदि व्यक्ति यानि कर्ता ऐसा सोचता है कि वह जीवन में डाक्टर बनने के लिए कोचिंग कक्षाओं मे जाता है, पुस्तकालय में बैठता है। यह सब क्रियाएँ साधन है जिनके माध्यम से वह वस्तुपरक लक्ष्यों यानि डॉक्टर बनने के उद्देश्य को प्राप्त करना चाहता है। दूसरे शब्दों में व्यक्तिपरकता द्वारा निर्धारित वस्तुपरक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वह कदम उठाता है। इस तरह का उसका प्रयास तब सही निकलेगा जब लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयास सही होंगे। इस परिभाषा में पैरेटो ने व्यक्तिपरक और वस्तुपरक दोनों को अनुरूप बनाने के लिए तार्किक संबंधों पर जोर दिया है। डॉक्टर बनने के लिए कर्ता जिन-जिन साधनों को उपयोग में लेता है, यदि वह तार्किक रूप से ये साधन डॉक्टर बनने के लक्ष्य के अनुरूप है, तो यह क्रिया तार्किक होगी।

इस दूसरी परिभाषा में पैरेटों ने तार्किक क्रिया के लिए एक और दिशा जोड़ दी है। पहले जब उन्होंने तार्किक क्रिया की परिभाषा दी तब कहा कि यह वह क्रिया है जहाँ व्यक्तिपरक साधन और वस्तुपरक साधन एक होते हैं। पैरेटो के दृष्टिकोण को सूत्र के रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है -

तार्किक क्रिया = व्यक्तिपरकता + वस्तुपरकता

Logical Action = Subjectivity + Objectivity

तार्किक क्रिया की दूसरी परिभाषा में पैरेटो ने वस्तुपरकता और व्यक्तिपरकता में तार्किक आधार को महत्वपूर्ण बताया है। इसके लिए वे कहते हैं कि लय को प्राप्त करने के लिए साधन जितने अधिक उचित व सही होंगे, उसी अनुपात में लक्ष्य प्राप्ति होंगी। इस परिभाषा में महत्वपूर्ण दशा तर्क संगति है। इस सूत्र के रूप में निम्न प्रकार रख सकते हैं।

तार्किक क्रिया = व्यक्तिपरकता + वस्तुपरकता + तर्क संगति

Logical Action = Subjectivity + Objectivity + Logicality

लेविस कोजर के अनुसार, (तार्किक क्रियाएँ वे हैं जो साधन प्राप्त करने के लिए उपयुक्त साधनों को काम में लाती है। ये क्रियाएँ साधन व साध्य को तार्किक रूप से जोड़ती है।)

कोजर ने तार्किक क्रिया की जो व्याख्या की है उसके अनुसार यह बहुत स्पष्ट है कि व्यक्ति किसी भी क्रिया के करने से पहले अपने उद्देश्य निश्चित करता है। यह उसका साध्य है। साध्य निश्चित होने के बाद वह तार्किक रूप से यह देखता है कि इसे प्राप्त करने का उचित साधन क्या है? लेकिन जब वह साधन के बारे में सोचता है तब दुविधा में पड़ जाता है।

उदाहरण-विश्वविद्यालय का छात्र अपनी परीक्षा को उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण करना चाहता है। वह उसका साध्य है। यहाँ तक तो सब सही है। अब दुविधा आती है कि यह उच्च श्रेणी कैसे प्राप्त किया जाय? उसका मन कहता है कि वह परीक्षा में नकल कर ले, परीक्षकों तक अपनी पहुँच करे और उच्च श्रेणी प्राप्त कर ले। उसका यह विकल्प साधन है। इसे व्यक्तिनिष्ठ क्रिया (Subjective Action) कहेंगे लेकिन वह समाज की ओर देखता है। समाज तो कहता है कि उच्च श्रेणी पाने के लिए अधिकतम मेहनत करनी चाहिए। समाज का यह कहना वस्तुनिष्ठ (Objective) है। अब छात्र क्या करे? यदि इस दुविधा को पार करने के लिए वह अपने मन को यानि स्वयं के विकल्प को छोड़ दे और वस्तुनिष्ठ विकल्प को अपना ले तो यह उसकी तार्किक क्रिया होगी।

टॉलकट पारसन्स के अनुसार कोई भी क्रिया तार्किक क्रिया तब होगी जब वह समाज द्वारा निर्धारित मानकों ने एक प्रकार को स्वीकार करती है। यहाँ पारसन्स स्पष्ट रूप से साध्य साधन की बात नहीं करते। लेकिन जब वे निश्चित प्रकार के मानकों को स्वीकार करने की चर्चा करते हैं तो इससे स्पष्ट है कि वे समाज द्वारा स्वीकृत मानकों को महत्व देते हैं। देखा जाय तो पारसन्स और मर्टन के क्रिया सिद्धांत के बजाय साधन-साध्य की बात अधिक आग्रहपूर्वक उठाई गई है। मर्टन ने एनोमी (Anomie) की अवधारणा को रखा है। उनका कहना है कि समाज में नियमहीनता तब आती है जब एक व्यक्ति अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समाज के नियमों को नहीं मानता है।

यदि मर्टन को पैरेटो की साध्य-साधन की अवधारणा पर ढ़ाला जाये तब कहना होगा कि मर्टन एनोमी से युक्ति की बात मानते हैं जब व्यक्ति समाज द्वारा स्वीकृत लक्ष्यों और साधनों दोनों को अपनाता है। साधन-साध्य की बात हमारे देश में गाँधी जी ने भी उठायी है। उनका कहना है कि व्यक्ति को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में जुट जाना चाहिए लेकिन वह जिन साधनों को काम में लाता है वह पवित्र होने चाहिए। करोड़पति बनने के लिए यदि कोई व्यक्ति ड्रग की तस्करी करता है और रातो-रात अपने अमीर बनने के लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है तब गाँधी ही कहते हैं कि उसके लक्ष्य पवित्र नहीं है। वह करोड़पति बन गया तो क्या हुआ, उसने जो तरीके अपनाये है वह गंदे हैं।

संक्षेप में तार्किक क्रिया को उस क्रिया के रूप में माना जा सकता है जिसमे साध्य-साधन तार्किक आधार पर जुड़े हों यानि साधन ऐसे हों जो साध्य तक पहुँचा दे इसके अलावा साधन ऐसे होने चाहिए जो उपयुक्तत हों। यहाँ उपयुक्त का तात्पर्य जो समाज द्वारा स्वीकृत हो।

तार्किक क्रिया के लक्षण:-

1. तार्किक क्रिया कार्य कारण से जुड़ी होती है। कोई भी क्रिया तार्किक तभी बनती हैं जब उसके पीछे कार्य-कारण संबंध हो। अनिवार्य रूप से तार्किक क्रिया संवेगात्मक नहीं होती। यह तो गणितीय रूप में होती है। दो और दो चार। ऐसा नहीं है कि पिता द्वारा किये गये अपने बेटे को दो

और दो चार रूपये पाँच हो जाये और पराये व्यक्ति के लिए तीन हो जाये। यह अंक तो बराबर चार ही रहता है। पैरेटो इसे तर्क कहते हैं।

2. वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ मानकों में समायोजन होता है। व्यक्ति कुछ सोचे और समाज कुछ और इससे तार्किक क्रिया नहीं बनती। तार्किक क्रिया के लिए वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ मानकों में समायोजन होना आवश्यक है।

वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ मानक

किसी भी सामाजिक क्रिया को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक वस्तुनिष्ठ एवं व्यक्तिनिष्ठ मानकों को ढ़ंग से समझा न जाये। तार्किक क्रिया में वस्तुनिष्ठता और व्यक्तिनिष्ठता में गहन संबंध की बात पैरेटो ही नहीं उनके बाद के समाजशास्त्रियों ने भी की है। रेमण्ड एराँ ने पैरेटो की जो व्याख्या रखी है उसमें वे इन दोनों प्रकार के मानको की चर्चा विस्तार से करते हैं। क्रिया कि ये दो अवधारणाएं (तार्किक एवं अतार्किक क्रियाओं को समझने के लिए अनिवार्य है कि इन मानकों को थोडा समझा जाये। जब व्यक्ति किसी क्रिया को करता है तब क्रिया के बारे में उसके मस्तिष्क में कुछ बातें होती हैं। व्यक्ति के मस्तिष्क में मनोभाव होते हैं। वह अचेतन अवस्था में भी अपने मस्तिष्क से कुछ न कुछ गतिविधि करता रहता है।) पैरेटो इसे मस्तिष्क की अवस्था (State of Mind) कहते हैं। जब पैरेटों व्यक्तिनिष्ठ मानकों की बात करते हैं तो इस संदर्भ में विचारकों के इस युग में एक बहुत बड़ा द्वन्द था। कुछ विचारक समाजशास्त्र को मनोविज्ञान से पृथक करना नहीं चाहते थे। बेबर ने जब क्रिया के आदर्श प्रारूप बनाये तब उन्होंने कहा कि क्रिया वह है जो व्यक्ति स्वयं परिभाषित करता है। यहाँ उन्होंने मनोविज्ञान की भूमिका को रखा। पैरेटो जब व्यक्तिनिष्ठ क्रिया कि बात करते हैं तो स्पष्ट है कि उनके मस्तिष्क में व्यक्ति की क्रिया मानसिक अवस्था का विचार है।

व्यक्ति के सामने वस्तुनिष्ठ स्थिति भी होती हैं। वह वस्तुनिष्ठ से अपनी आँख नहीं मूँद सकता। पिछले दृष्टान्त की बात करें तो कहेंगे कि किसी भी व्यक्ति का करोड़पति बनने का सपना कोई गलत नहीं है। वस्तुनिष्ठता भी इसे स्वीकार करती है। समाज चाहता है कि लोग सम्पन्न रहे। लेकिन जब व्यक्तिनिश्ठ अपना मुँह वस्तुनिष्ठता से फेर लेता है तो समाज की व्यवस्था बिगड़ जाती है। अपराध व अपराधिक गतिविधियाँ किसी को भी समाज द्वारा मान्यता प्राप्त करोड़पति नहीं बनाती। पैरेटो कहते हैं कि तर्क संगत क्रिया तभी होगी जब इसमें व्यक्तिनिष्ठा और वस्तुनिष्ठा का समायोजन होगा।

रेमण्ड एराँ द्वारा दी गयी तालिका जो व्यक्तिनिष्ठा और वस्तुनिष्ठा का समायोजन बताती है, हम यहाँ देंगे-

वस्तुनिष्ठा	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ
व्यक्तिनिष्ठ	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ

अब इस तालिका को थोड़ा समझते हैं। जहाँ और वस्तुनिष्ठा और व्यक्तिनिष्ठा (नहीं) (नहीं) श्रेणी है इसका मतलब है कि क्रिया तार्किक नहीं है। इसका मतलब हुआ कि ये न तो वास्तविकता में साधन लक्ष्यों से जुड़े है और न व्यक्ति के मस्तिष्क में इन साध्यों का समायोजन है। (नहीं) (नहीं) की श्रेणी

वास्तव में काम में आती नहीं है। आदमी विवेकपूर्ण है वह सोचता है और इसलिए व्यवहारिक जीवन में (नहीं) (नहीं) की स्थिति नहीं आती।

अब हम दूसरी श्रेणी को लें। इसमें व्यक्ति के कार्यो को वस्तुनिष्ठा (नहीं) कहती है लेकिन व्यक्तिनिष्ठा के आधार पर (हाँ) कहता है। बढ़ते हुए समाज में आज जनसंख्या का एक बड़ा भाग वस्तुनिष्ठा की उपेक्षा करके हर चीज प्राप्त कर लेना चाहता है। वह बड़ा अफसर बनना चाहता है, अव्वल दर्जे का प्रोफेसर होना चाहता है। और इनकी प्राप्ति के लिए जिन साधनों को अपनाता है वस्तुनिष्ठा उन्हें मान्यता नहीं देती है। यह भी तर्कसंगत क्रिया नहीं है।

अब हम तीसरी श्रेणी को देखते हैं। यहाँ वस्तुनिष्ठा तो साध्य प्राप्त करने की स्वीकृति देती है लेकिन व्यक्ति इसकी सुविधा नहीं अपनाता या अपनाने में सक्षम नहीं है उदाहरण के तौर पर आदिवासियों को विकास योजना के अंतर्गत कोई विकास सुविधाएँ दी गयी हैं। यह वस्तुनिष्ठ है। लेकिन आदिवासी इसका साथ नहीं ले पाता।

तालिका की चौथी श्रेणी वह है जिसमें वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ दोनों में (हाँ-हाँ(है। यानी यहाँ इन दोनों में समायोजन है। यह क्रिया तर्कसंगत क्रिया है।

2.2.4. अतार्किक क्रिया

पैरेटो की सैद्धान्तिक व्यवस्था में तार्किक क्रिया का कोई स्थान नहीं है। जब वे तार्किक क्रिया का उल्लेख करते हैं तो उनका उद्देश्य यह बताना है कि सामाजिक यथार्थता को जानने के लिए मनुष्य की संपूर्ण क्रियाओं में से पहले हम तार्किक क्रिया को निकाल लें। उनकी व्याख्या में तार्किक क्रिया वह है जिसमें वस्तुपरक व व्यक्तिपरक दोनो उद्देश्य समान हो जाये। यहीं नहीं इन दोनों के संबंध भी तर्कपूर्ण होने चाहिए। यह कहने के बाद ये अतार्किक क्रिया को परिभाषित करते हैं। वास्तव में वे समाजशास्त्र की परिभाषा को अतार्किक क्रिया द्वारा समझाते हैं। इसकी परिभाषा इन्होंने नकारात्मक रूप में दी है। (पैरेटों के अतार्किक क्रिया से तात्पर्य उन सभी क्रियाओं से है जो तार्किक नहीं है। दूसरे शब्दों में संपूर्ण क्रिया में से तार्किक क्रिया को घटा देते हैं जो शेष बचता है वह अतार्किक क्रिया है।) सूत्र रूप में वे कहते है कि यदि संपूर्ण प्रकार की क्रिया में से तार्किक क्रिया को हटा दे तो शेष अतार्किक क्रिया होगी। इन्होंने गणितीय सूत्र में इसे इस तरह से लिखा है। अतार्किक क्रिया = संपूर्ण क्रिया - तार्किक क्रिया।

यद्यपि उन्होंने संपूर्ण क्रिया को कही परिभाषित नहीं किया है। फिर भी इसका अर्थ यह है कि समाज की मूर्त प्रघटनाओं के बारे में जो भी क्रियाएँ हैं, वे सभी संपूर्ण क्रिया की श्रेणी में आते हैं
इस संपूर्ण क्रिया में व्यक्तिपरक और वस्तुपरक दोनों प्रकार की क्रियाएँ सम्मिलित है। प्राथमिक विश्लेषण के लिए तार्किक क्रियाओं से पैरेटों का कोई सरोकार नहीं है। ये तो अतार्किक क्रियाओं की पहचान करने के बाद अपना विश्लेषण कर देते हैं।

सिद्धांत निर्माण की इस प्रक्रिया में पहुँचकर वे अतार्किक क्रिया की परिभाषा इस तरह से देते हैं कि तार्किक क्रियाएँ कम से कम अपने मुख्य लक्षण में तार्किकता की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप पैदा

होती है। जबकि अतार्किक क्रियाएँ मस्तिष्क की दशा-संवेग तथा अचेतन में अवस्था प्रारम्भ होती है। मस्तिष्क की इस दशा का सरोकार मनोवैज्ञानिक से है।

पैरेटो ने तार्किक क्रियाओं को तो बड़े ही स्पष्ट और सुदृढ़ आधार पर रखा है। ये क्रियाएँ तर्क पर खड़ी होती हैं। लेकिन जब वे अतार्किक क्रियाओं की परिभाषा देते हैं तब कहते हैं कि मनुष्य की जो भी मानसिक दशा होती है- भावात्मकता, संवेगात्मक, हर्ष, क्रोध यह सभी अतार्किक क्रियाओं का अध्ययन मनोविज्ञान के क्षेत्र में आता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि पैरेटो समाजशास्त्र व मनोविज्ञान में कोई अंतर नहीं करते। टॉलकट पारसन्स इस संदर्भ में पैरेटो के इस मनोविश्लेषण पर टिप्पणी करते हुये कहते हैं कि ऐसा लगता है कि ये केवल आर्थिक सिद्धांत को ही तार्किक व वैज्ञानिक मानते हैं। अर्थशास्त्र के अतिरिक्तत जो भी अन्य समाजविज्ञान है, पैरेटों की दृष्टि में सभी एक श्रेणी में आते हैं। उनकी समझ के अनुसार आर्थिक सिद्धांत एक तरफ है और शेष सिद्धांत चाहे समाजशास्त्र, मनोविज्ञान या इतिहास हो, दूसरी श्रेणी में आते हैं। इस दृष्टि से यह विवाद उठाना कि अतार्किक क्रियाएँ जब मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र है तो उन्हें समाजशास्त्र के साथ पैरेटों ने क्यों जोड़ा। पैरेटों की दृष्टि में यही मानकर चलना चाहिए कि अतार्किक क्रिया का अध्ययन चाहे मनोविज्ञान ही क्यों न करता हो समाजशश्त्री है ।

लेविस कोजर के अनुसार अतार्किक क्रिया:-(अतार्किक क्रिया केवल वह क्रिया है जो पैरेटों की परिभाषा में तार्किक नहीं है। संपूर्ण क्रिया से तार्किक क्रिया निकाल दीजिए, जो अवशिष्ट है वही अतार्किक क्रिया है।)

पारसन्स ने अतार्किक क्रिया को अत्यधिक बृहद पृष्ठभूमि में रखा है। वे कहते हैं कि मनुष्य की सभी क्रियाआं को हम (I) कहते हैं। ये क्रियाएँ बहुत विस्तृत और विशाल है।इन क्रियाओं में हम रोजी-रोटी के लिए सुबह से शाम तक जुटे रहते हैं। इसी तरह लोग विभिन्न क्रियाओं में संलग्न रहते हैं। इन सभी क्रियाओं को हम (I) की श्रेणी में रखते है। अब इस संपूर्ण क्रिया (I) में से तार्किक क्रिया जिसका नाम (S) है, निकाल देते हैं,तो शेष बचता है यानी जो अवशिष्ट है, वह अतार्किक क्रिया है।इसे इस प्रकार से समझा जा सकता है कि हम अपने व्यवसाय, परिवार, समुदाय, वर्ग आदि में कई क्रियाएँ करते हैं। इनमें अधिकांश क्रियाएँ तार्किक है। लेकिन जब हम मनोरंजन करते है, लिखते हैं, चित्र बनाते हैं, तथा साहित्य, कला आदि से संबंधित क्रियाएँ करते हैं वह ही अतार्किक क्रिया है।

पैरेटो की परिभाषा में समाजशास्त्र एक ऐसा समाजविज्ञान है जो मनुष्य की अतार्किक अन्तः क्रिया का अध्ययन करता है। तार्किक अन्तः क्रियाओं का अध्ययन तो अर्थशास्त्र करता है एवं अतार्किक क्रियाओं का अध्ययन समाजशास्त्र की विषयवस्तु है। पैरेटों कहते हैं कि क्रिया तो अतार्किक है परन्तु इसको अध्ययन करने की पद्धति तार्किक है।

2.2.5. तार्किक एवं अतार्किक क्रियाओं का अवधारणात्मक विवेचन

विल्फ्रेडो पैरेटो ने सामाजिक व मानवीय क्रियाओं सम्बन्धी अपने विचार अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक (माइन्ड एण्ड सोसायटी) में प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने सामाजिक घटनाओं के अपने अध्ययन में समाज में पायी जाने वाली मानवीय क्रियाओं का वर्गीकरण दो भागों में किया है-

(1) तार्किक क्रियाएँ,

(2) अतार्किक क्रियाएँ।

इनके मतानुसार तार्किक क्रियाओं का आधार सामान्यतः वैषयिक या वस्तुपरक होता है जबकि अतार्किक क्रियाओं का आधार प्रतीतिक या व्यक्तिपरक होता है। (यद्यपि पैरेटो ने सामाजिक क्रियाएँ के एक तीसरे प्रकार तर्क विरोधी क्रियाएँ का भी उल्लेख किया है किन्तु इन क्रियाओं के अवैज्ञानिक व तर्क विरोधी होने के कारण पैरेटो ने अपने विवेचन में इन क्रियाओं की व्याख्या नहीं की है।) जैसा कि उपरोक्त वर्णन में बताया जा चुका है कि प्रत्येक सामाजिक घटना के दो पहलू हो सकते हैं-

(1) जैसा कि घटना वास्तव में है

(2) जैसा की घटना व्यक्ति विशेष के मन मस्तिष्क में है।

प्रथम को पैरेटो ने वस्तुनिष्ठ व दूसरे को व्यक्तिनिष्ठ कहा है। इनके अनुसार वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ आधारों का भेद महत्वपूर्ण, उपयोगी तथा उचित है फिर भी इन दोनों के बीच कोई दृढ़ विभाजक रेखा खींचना सम्भव नहीं है।

पैरेटो ने वैषायिक तथा प्रतीतिक आधारों पर आधारित क्रियाओं का और भी स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है कि प्रत्येक सामाजिक या व्यक्तिगत क्रिया के दो पक्ष होते हैं- प्रथम लक्ष्य और द्वितीय साधन। हम किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ साधनों का प्रयोग करते हैं। परन्तु ये साधन किस प्रकार के होंगे या उनकी प्रकृति क्या होगी, वह उन कार्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है जिन्हें हम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए काम में लाते हैं। उदाहरणार्थ- कुछ ऐसे होते हैं जो कि लक्ष्य तथा साधन दोनों ही दृष्टि से उचित होते हैं। दूसरे शब्दों में ऐसे कार्य जो ठीक तथा अनुभव सिद्ध होते हैं एवं तार्किक आधार पर लक्ष्य और साधन के मध्य सामंजस्य करते है। इस प्रकार के यथार्थता एवं तर्कयुक्तता को वैषयिक कहते हैं। इसके विपरीत ऐसे भी कार्य होते है जिनमें लक्ष्य और साधन के बीच तार्किकता का अभाव होता है। अर्थात् ऐसे कार्य जो कि यथार्थ, अनुभवसिद्ध तथा तर्कयुक्त नहीं होते है उनको प्रातीतिक कहते हैं। अतः स्पष्ट है कि पैरेटो के अनुसार वे क्रियाएँ (तार्किक क्रियाएँ) है जोकि तर्कपूर्ण रीति से साधन को लक्ष्य से जोड़ता है। केवल उस क्रिया को करने वाले व्यक्ति के दृष्टिकोण से नहीं वरन् उन व्यक्तियों के दृष्टिकोण से भी जिन्हें कि उनके विषय में अधिक व्यापक ज्ञान प्राप्त है को भी जोडता है। इसके विपरीत उन क्रियाओं को जिनमें इस विशेषता का अभाव है, अतार्किक क्रियाएँ कहा जायेगा।

इस प्रकार पैरेटो के अनुसार मानवीय क्रियाएँ तर्कसंगत हो सकती है और अतर्कसंगत भी। तर्कसंगत क्रियाएँ ही वास्तव में प्रमाणित होती है क्योंकि इस प्रकार की क्रियाएँ प्रयोग और अनुभव के क्षेत्र के अंतर्गत होती हैं। ये इस अर्थ में भी वास्तविक तथा प्रमाणिक होती हैं कि ये कभी भी काल्पनिक नहीं होती और न ही ये अनुमान और अतार्किक आधारों पर आधारित होती है। इस प्रकार तर्क संगत

क्रियाएँ विज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत आती हैं। जबकि अतर्कसंगत क्रियाएँ काल्पनिक होने तथा अनुभवसिद्ध न होने के कारण विज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आती है, यद्यपि इनका भी अध्ययन विज्ञान के द्वारा ही होता है। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है, जैसा कि उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि तर्कसंगत क्रियाएँ वास्तविकता में तर्क सिद्ध होनी चाहिए साथ ही उन क्रियाओं की तर्क-सिद्धता केवल उस व्यक्ति के द्वारा ही मान्य न हो जो उस क्रिया को कर रहा है बल्कि अन्य विद्वानों द्वारा भी स्वीकृत होनी चाहिए।

साथ ही साथ इस संदर्भ में सामाजिक क्रिया से संबंधित तीन समस्याएं भी उल्लेखनीय हैं जो कि निम्नलिखित है-

1. किसी एक सामाजिक क्रिया विशेष के तर्क संगत साधन क्या है? इसका निर्णय तभी हो सकता है जबकि वह आवश्यकता कर्ता के सामाजिक जीवन से संबंधित या संसारिक हो। अगर वह क्रिया किसी घटना आदि से संबंधित है तो साधन और लक्ष्य दोनों के ही संबंध में ज्ञान होना आवश्यक है। उदाहरण किसी निष्चित स्थान की दूरी के निर्धारण के लिए क्या उचित साधन है और उनमें से कौन सा साधन सबसे उपयुक्त है- इनका निर्णयकर्ता या उनके लिए अन्य लोग भी कर सकते है परन्तु उस निर्धारित साधन के द्वारा किये गये कर्ता के सभी कार्य तर्क संगत है या नहीं इसको प्रमाणित करने के लिए केवल साधन के संबंध में ही नहीं वरन् अन्तिम लक्ष्य के संबंध में भी जानना आवश्यक है। समाजशास्त्रीय अध्ययन की विशेषता यह है कि यह किसी भी मानवीय क्रिया को तब तक तर्कपूर्ण और उचित नहीं मानता जब तक यह प्रमाणित न हो जाये कि जो कुछ भी वह कर रहा है उस क्रिया के अर्न्तनिहित लक्ष्य व साधन के बीच तार्किकता विद्यमान है। यही बात अर्थशास्त्र आदि अन्य विज्ञानों के अध्ययन में भी उतनी ही स्पष्ट है। अर्थशास्त्र मानवीय आवश्यकताओं को उचित और तर्कपूर्ण मानकर ही अध्ययन करता है।

2. सामाजिक या वैयक्तिक क्रियाओं में लक्ष्य और साधन के बीच तार्किक संबंध है या नहीं। इस बात का निर्धारण उस व्यवस्था में ठीक-ठाक नहीं हो पाता है, जिस व्यवस्था में क्रिया का अन्तिम लक्ष्य परलौकिक है क्योंकि उस अवस्था में कुछ भी निश्चित रूप से देखा या माना नहीं जा सकता। वास्तव में परलोक का अस्तित्व ही काल्पनिक है जो की परीक्षण, निरीक्षण तथा अनुभव के दायरे में नहीं आता। अतः ऐसी सभी क्रियाओं का अतर्कसंगत क्रियाओं के अंतर्गत सम्मिलित करना ही उचित होगा। यह सम्भव है कि परलौकिक लक्ष्य की एक सामाजिक परिभाषा समाज में विद्यमान हो, परन्तु उस परिभाषा का समाज के सदस्य अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार पृथक-पृथक अर्थ लगाये, यह भी समान रूप से सम्भव है। ऐसी आस्था में साधनों में भी विविधता उत्पन्न होना अस्वाभाविक न होगा। ऐसी अवस्था में लक्ष्य और साधन के बीच तर्क संगत संबंध की आशा करना व्यर्थ ही है।

3. इस संबंध में तीसरी समस्या अधिकतम उपयोगिता की धारणा है। पैरोटो के मतानुसार अधिकतम उपयोगिता के प्रश्न का उत्तर व्यक्तिगत स्तर पर तो है लेकिन सामूहिक स्तर पर विचार करने से कई कठिनाईयाँ उठती हैं। कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिनसे सभी समूहों का लाभ होता है लेकिन कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं जिनसे समाज के कुछ समूहों का लाभ होता है परन्तु कुछ समूहों को हानी पहुँचती है। अतः ऐसी अवस्था में यह निश्चित करना कठिन होता है कि वह कार्य वास्तव में उचित है या नहीं।

पैरेटो के मतानुसार मानव-क्रियाओं के संबंध में एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि सर्वत्र और सभी कालों में तर्क संगत क्रियाओं का नहीं बल्कि अतर्कसंगत क्रियाओं का ही बोलबाला रहा है। दूसरे शब्दों में मानव की अधिकतर क्रियाएँ अतर्कसंगत होती है। ये क्रियाएँ तर्क से नहीं बल्कि एक विशिष्ट मानसिक अवस्था से उत्पन्न होती है। इसलिए उस क्रिया को करने वाला उस क्रिया के पक्ष में अनेक युक्तियाँ पेष करता है तथा उसे उचित प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है। उदाहरण के रूप में सामाजिक निषेध को ही ले लें। इस प्रकार के निषेध एक विशिष्ट मानसिक अवस्था की ही उपज होते हैं। साथ ही वे निषेध उचित हैं, इसे प्रमाणित करने के लिए ईश्वरीय आज्ञा से लेकर पौराणिक गाथा तक का सहारा लिया जाता है। परन्तु वास्तव में इनमें से कोई निषेध तर्क संगत नहीं होता।

तार्किक रूप से इन निषेधों की व्याख्या नहीं की जा सकती परन्तु पैरेटो के मतानुसार इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इस प्रकार के निषेध या अन्य तर्कसंगत क्रियाएँ आवश्यक रूप से बेकार तथा अनुपयोगी होती हैं। एक निषेध का समुदाय-विशेष में महत्वपूर्ण स्थान तथा कार्य हो सकता है जबकि वही निषेध दूसरे समाज या समुदाय के लिए निरर्थक और हानिकारक भी हो सकता है। एक समुदाय विशेष में कोई निषेध तब पनपता है जबकि किसी कार्य के प्रति उस समुदाय के लोगों का घृणा- भाव हो और वे उस कार्य को उचित और अच्छा न मानते हो। इस कारण इस प्रकार के सामाजिक निषेधों को केवल सामूहिक अभिमति प्राप्त होती है। वे तर्कसंगत नहीं भी हो सकते हैं ओर बहुधा होते भी नहीं है। परन्तु इनको मानने वाले तथा इनको लागू करने वाले सभी लोग इनके पक्ष में अनेक तर्कों को प्रस्तुत करते हैं ताकि उसका अतार्किक रूप छिप जाये या उस विषय में लोग कुछ अनुमान न लगा सके। पैरेटो के लिए सामाजिक जीवन की संपूर्ण घटना समीकरणों की वह श्रृंखला है जिसमें की उस समाज के लोग अपनी अतर्कसंगत क्रियाओं की तर्कसंगतता सिद्ध करते रहते हैं।

इस प्रकार पैरेटो के मतानुसार- स्वर्गीय मैक्स हैंडमैन के शब्दों में, (मानव जाति का इतिहास तर्कसंगत दिखायी दे, यह इसके लिये किये जाने वाला प्रयासों का एक क्रम है।)

क्रोफोर्ड ने लिखा है कि पैरेटो के मतानुसार एक प्रेरक शक्ति के रूप में तर्क इतना निर्बल है कि उसके आधार पर कोई प्रभावशाली आचरण का निर्धारण सम्भव नहीं हो सकता। ऐसा इस कारण नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य का व्यवहार किसी अज्ञात मानसिक अवस्था पर निर्भर होता है तथा इस मानसिक अवस्था का कोई तर्क संगत आधार नहीं होता। मानव व्यवहार किसी तर्क की परवाह नहीं करता इनका अपना एक अलग धारा प्रवाह होता है। परन्तु जैसा पहले ही बताया जा चुका है कि अतर्कसंगत क्रियाओं को आवश्यक रूप से निरर्थक या हानिकार समझना उचित न होगा। पैरेटो ऐसी क्रियाओं को पर्याप्त महत्व प्रदान करते हैं। पैरेटो का मानना था कि अतीत के सिद्धांत निर्माताओं ने अतर्कसंगत क्रियाओं के महत्व को बहुत घटाकर बताया है क्योंकि उन लोगों ने अतर्कसंगत क्रिया के समस्त जटिल तथ्यों को समझने का तथा उसी आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का कष्ट उठाने की अपेक्षा तर्कसंगत क्रिया के सिद्धांतों की रचना अधिक सरल पायी। इस प्रकार के विद्वानों में फुस्तेल डी कुलजेस, पॉलिबियस, मेन, अरस्तू तथा प्लेटो तक का नाम पैरेटो ने उल्लेखित किया है।

ये विद्वान मानव क्रिया के अतर्कसंगत तत्व के प्रति सन्तुलित धरणा को न पनपा सके तथा इसे निरर्थक व व्याधिकीय समझना इन विद्यानों की सबसे बड़ी भूल थी। पैरेटो का कहना था कि इसका अर्थ यह नहीं है कि अतर्कसंगत क्रियाओं को विज्ञान की सामग्री मान ली जाये। यह गलत होगा क्योंकि ये क्रियाएँ उपयोगी भले होती है परन्तु ये न तो सत्य होती हैं और न ही अनुभवसिद्ध और तर्कसंगत। चूंकि पैरेटो का समाजशास्त्र भी विज्ञान है, इस कारण समाजशास्त्रीय अध्ययन में अर्थात् सामाजिक घटनाओं को समझने में अतर्कसंगत तथ्यों की सहायता कभी भी नहीं ली जायेगी।

पैरेटो के तर्कसंगत व अतर्कसंगत क्रियाओं के वर्गीकरण का विश्लेषण करने पर कुछ तथ्य सामने आते हैं-

1. तर्कसंगत क्रियाएँ वे मानवीय क्रियाएँ हैं जो साधन और साध्य में समायोजन स्थापित करती है।
2. अतर्कसंगत क्रियाएँ वे मानवीय क्रियाएँ हैं जिसमें साधन और साध्य के मध्य तार्किक संगति का अभाव होता है।
3. तर्कसंगत क्रियाओं का आधार सामान्यतः वस्तुनिष्ठ होता है। वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य घटना को उसके वास्तविक रूप में देखने से है।
4. अतर्कसंगत क्रियाओं का आधार व्यक्तिनिष्ठ होता है। इस स्थिति में मनुष्य किसी भी घटना का मूल्यांकन अपने दृष्टिकोण से करता है जो वास्तविक हो भी सकता है और नहीं भी।
5. तर्कसंगत क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अतर्कसंगत क्रियाओं का अध्ययन किया जाना नितान्त आवश्यक है।
6. अतर्कसंगत क्रिया का निर्माण कुछ तत्वों के द्वारा होता है। पैरेटो ने इन सन्दर्भों में दो तत्वों का उल्लेख किया है-
   I. विशिष्ट चालक अथवा अवशेष (Residues)
   II. भ्रांत तर्क अथवा प्रत्युपाद (Derivations)

2.2.6. अतार्किक क्रिया के अध्ययन की विधियाँ

पैरेटो अतार्किक क्रिया का भी अध्ययन वैज्ञानिक विधि से करना चाहते थे। उन्होंने जब समाजशास्त्र को परिभाषित किया था तभी कहा था कि वे तार्किक-प्रायोगिक विधि को काम में लाएंगे। अतार्किक क्रिया के अध्ययन में उन्होंने सबसे पहले तर्क को लगाया है। उनका यह तर्क आगमनात्मक (Indiuctive) है। वे बृहद आनुभविक सामग्री को एकत्र करते हैं। यह सामग्री विभिन्न समाजों के इतिहास में बिखरी है। उनके अध्ययन का यह प्रायोगिक पहलू है जो तथ्य उन्होंने एकत्र किये हैं उनमें जो समान तथ्य हैं उन्हें व्यस्थित कर देते हैं। इन तथ्यों में कुछ तथ्य (Constant) स्थिर होते हैं और कुछ चर (Variable) तथ्यों को लेकर वे नियम बनाते हें और ये नियम ही अतार्किक क्रिया के अध्यन में सहायक हाते हैं। इसे हम दृष्यान्त में रखेंगे समाज में हम लोगों को देखते हैं- नाम के लिए वे मोहन, सोहन और रोहन हैं। हम देखते हैं कि ये सब एक न एक दिन मर जाते हैं। यह सब मनुष्य हैं, और यह स्थिर तथ्य है कि

मनुष्य मरणधर्मा है। यह समान रूप से इन्हीं तीन व्यक्तियों के अतिरिक्त सभी व्यक्तियों पर लागू होता है। इस भाँति इन आगमनात्मक नियम द्वारा ही वे अतार्किक क्रिया के अध्ययन के सिद्धांत को बनाते हैं।

पारसंस ने पैरेटो के अतार्किक क्रिया के सिद्धांत की व्याख्या की है। उनकी व्याख्या में तीन तथ्य हैं-

क. कर्ता यानि (Actor) : मस्तिष्क की अवस्था (State of Mind)

ख. गतिविधियाँ (Acts)

ग. मनोभावों की अभिव्यक्ति (Expresssions of Sentiments) इसकी व्याख्या करने से पहले निम्न चित्र द्वारा इसे प्रस्तुत किया जा सकता है।

उपरोक्त त्रिभुज के आधार पर पैरेटो के अतार्किक क्रिया की व्याख्या की जा सकती है। इसमें जब हमें (क) की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य कर्ता से है। कर्ता की एक मानसिक दशा होती है, वह मस्तिष्क की एक अवस्था में होता है और जब वस्तुओं को देखता है तो वह अपने मस्तिष्क की दशा के आधार पर देखता है। (ख) की स्थिति है- जब वह गतिविधियाँ करता है, काम करता है, हँसता है, क्रोध करता है। (ग) की अवस्था वह है जब अपनी गतिविधियों में अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति करता है। इस चित्र में हम पाएंगे कि (क) और (ख) देखें जा सकते हें। जिन्हें हम परम्परा, धार्मिक संस्कार, कर्मकाण्ड, गीत-संगीत आदि कहते हैं। वे ऐसी गतिविधियाँ हैं जो नग्न आँखों से देखी जा सकती है। आये दिन हम (ठ) व (ब्) को देखते हैं यानी कर्ता के कार्यों और मनोभावों की अभिव्यक्ति को इन्द्रियों द्वारा समझते हैं। माता-पिता बच्चों की देखभाल करते हैं, उन्हें शिक्षा-दीक्षा देते हैं उनके परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के लिए व्रत, त्यौहार करते हैं, प्रार्थना करते हैं। ये सब गतिविधियों और मनोभावों की अभिव्यक्ति है यानि (ख) व (ग) है। इन्हें पैरेटो स्थूल रूप से दखा जाने वाला तथ्य कहते हैं। अतार्किक क्रिया का यह पहला पहलू है। दूसरा पहलू (क) है। (क) में क्या है यानी मानव में मस्तिष्क में क्या है इसे नग्न आँखों से या स्थूल रूप में नहीं देखा जा सकता है। यह तो कहा जा सकता है कि (ख) और (ग) जड़े हैं। मनोभाव, भाषा आदि क्रिया से जुड़े हुये हैं। लेकिन मस्तिष्क में क्या है, इसका यदि कोई अनुमान लगाया जा सकता है तो वह मानसिक अवस्था से है। यह मानसिक अवस्था वही है जो (ग) और (ग) द्वारा पैदा की गयी है। देखा जाये तो मानसिक अवस्था वाह्य क्रियाएँ, संवेग और मनोभाव ऐसे है जिन्हें देखा नहीं जा सकता है। इस तरह (क) (ख) और (ग) यानी मानसिक अवस्था, गतिविधियाँ और क्रियाकलाप और इनसे जुड़े हुए संवेग और मनोभाव अतार्किक क्रिया है। सूत्र रूप मं इसे इस प्रकार परिभाषित करेंगे।

अतार्किक क्रियात्रमानसिक अवस्था क्रियाकलाप संवेग और मनोभावों की अभिव्यक्ति

त्रिभुज के ये तीनों कोण एक-दूसरे पर निर्भर है। मानसिक अवस्था, क्रियाकलाप और मनोभावों की अभिव्यक्ति के बीच में कार्य-कारण ढूँढ़ना बहुत कठिन है। सच्चाई यह है कि ये तीनों एक-दूसरे पर निर्भर है और अतार्किक क्रिया का सिद्धांत बनाते हैं। अतार्किक क्रियाओं का गणितशास्त्र की तरह दो और दो चार का संबंध नहीं होता है। मनोदशा ही अतार्किक क्रियाओं का मूल स्रोत है। कहीं भी पैरेटो ने अपने विश्लेष्ण में मनोविज्ञान को समाजशास्त्र से पृथक करके नहीं देखा। अतः इनके सिद्धान्तीकरण में अतार्किक क्रियाएँ समाजशास्त्रीय व मनोवैज्ञानिक दोनों है।

2.2.7. सारांश

कुल मिलाकर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पैरोटो जीवन पर्यन्त इस तथ्य पर बल देते रहें कि मानव व्यवहार तथा उसकी दी गयी व्याख्या में साम्य नहीं है। सामान्यतया यह विचार है कि मनुष्य एक विचारशील प्राणी होने के कारण पहले सोचता-विचारता है। उसके पश्चात् विवेकपूर्ण ढंग से व्यवहार करता है। परन्तु इस संदर्भ में ठीक इसके विपरीत पैरेटो यह मानते हैं कि मनुष्य प हले क्रिया कर डालता है और फिर सोचता-विचारता है। ऐसा वो इसलिए करता है क्योंकि ये क्रियाएँ अवशिष्टों या भावनाओं के आवेग से ओत-प्रोत व संचालित होती है। तत्पश्चात मनुष्य उनको तर्कसंगत प्रदर्शित करने के लिए उपयुक्त व्याख्या की तलाश कर देता है, जिससे वह अन्य व्यक्तियों को अपने व्यवहार की तर्कसंगतता के विषय में सन्तुष्ट करने या विश्वास दिलाने का भरसक प्रयास करता है। हम सभी में यह इच्छा दमित रहती है कि हम उन्हें तर्कसंगत प्रतीत कराने का उपाय करते रहते हैं। इनका संपूर्ण तथ्य इसी बात को स्थापित करता है कि समाजशास्त्र का उद्देश्य यह बतलाना है कि मनुष्य का व्यवहार अतार्किक है। इनके संपूर्ण क्रिया सिद्धांत को मुख्य ती बिन्दुओं में देखा जा सकता है।

1. पैरेटो का मानना है कि मानवीय क्रियाएँ तर्कसंगत हो सकती हैं और अतर्कसंगत भी। तर्कसंगत क्रिया ही वास्तव में प्रमाणिक होती हैं क्योंकि इस प्रकार की क्रियाएँ निरीक्षण व अनुभव के क्षेत्र के अंतर्गत होती हैं।
2. पैरोटो के अतार्किक क्रिया से तात्पर्य उन सभी क्रियाओं से है जो तार्किक नहीं है। दूसरे शब्दों में वह क्रिया जो तार्किक नहीं है वह अतार्किक है।
3. पैरेटो अतार्किक क्रिया का अध्ययन वैज्ञानिक विधि से करना चाहते थे। उनहोंने समाजशास्त्र को जब परिभाषित किया तब कहा कि वे तार्किक-प्रायोगिक विधि को काम में लाएंगें

2.2.8. बोध प्रश्न

1. पैरेटो के तार्किक क्रिया सम्बन्धी अवधारणा का उदाहरण सहित विस्तृत विवेचना दिजिए।
2. तार्किक क्रिया का क्या लक्षण है? संक्षेप में वर्णन करें।
3. वस्तुनिष्ठ व व्यक्तिनिष्ठ मानकों में अंतर स्पष्ट करें
4. लेविस कोजर के अनुसार तार्किक व अतार्किक क्रिया को परिभाषित करें
5. पैरेटो के अतार्किक क्रिया की विवेचना करें तथा तार्किक व अतार्किक क्रिया में मध्य अंतर स्पष्ट करकें।
6. पैरेटो के इस कथन को सिद्ध करें कि मनुष्य अपने व्यवहार में अतार्किकता को प्राथमिकता देता है?
7. समाजशास्त्र की विषयवस्तु (अतार्किक क्रियाओं(के अध्ययन पद्धति की विवेचना करें?

2.2.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, गोपाल.कृष्ण. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.
2. मुखर्जी, रवीन्द्र. नाथ. (2001). *समकालीन उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
3. मुखर्जी, रवीन्द्र. नाथ. (2006). *सामाजिक विचारधारा*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
4. शर्मा, वीरेन्द्र. प्रकाशन. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
5. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्रीय चिंतक एवं सिद्धांतकार*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
6. मुखर्जी, रवीन्द्र. नाथ. (2008). *उत्कृष्ट समाजशास्त्रीय परम्पराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. दोषी, एस.एल. एवं त्रिवेदी, एम.एस.. (2002). *उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन.
8. मुखर्जी, रवीन्द्र. नाथ. एवं घोषाल, अरूणान्सु. (2004). *सोशल थॉट (फ्राम कॉम्ट टू मुखर्जी)*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

इकाई-3 : विशिष्ट चालक एवं भ्रांत तक

इकाई की रूपरेखा

2.3.1. उद्देश्य
2.3.2. प्रस्तावना
2.3.3. विशिष्ट (अवशिष्ट) चालक: अर्थ एवं विशेषताएँ
2.3.4. विशिष्ट चालकों की श्रेणियाँ
2.3.5. विशिष्ट चालकों का वितरण
2.3.6. विशिष्ट चालक को महत्व
2.3.7. भ्रांत तर्क की अवधारणा
2.3.8. भ्रांत तर्क के प्रकार
2.3.9. सारांश
2.3.10. बोध प्रश्न
2.3.11. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.3.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात विद्यार्थी जान पाएंगे कि:-

1. विशिष्ट चालक का क्या अभिप्राय होता हैं?
2. विशिष्ट चालकों के अन्तर्गत पैरेटो ने किन-किन मानवीय व्यवहारों को श्रेणीगत किया है। इस संदर्भ में ज्ञान प्राप्त होगा।
3. समाज को व्यवस्थित व नियंत्रित रखने के लिए विशिष्ट चालकों के महत्व को जान पाएंगे।
4. भ्रांत तर्क का अर्थ व विशेषताओं का विवरण दे पाएंगे। भ्रांत तर्क के प्रकारों को रेखांकित कर पाएंगे।
5. विशिष्ट चालक एवं भ्रांत तर्क क मध्य अंतर को स्पष्ट कर पाएंगे।
6. अतार्किक व्यवहारों के प्रति विद्यार्थियों की एक सम्पूर्ण समझ विकसित हो पायेगी।
7. मानवीय व्यवहारों में अतार्किक क्रिया में महत्व को समय पाएंगे।

2.3.2. प्रस्तावना

मनोविज्ञान के आधार पर समाजिक सम्बन्धों के अध्ययन में अतार्किक क्रियाओं के महत्व को स्वीकार कर ते हुए पैरेटो ने यह भी स्पष्ट किया कि यह अतार्किक क्रियाएं किन प्रेरणाओं तथा औचित्य प्रदर्शन के प्रयत्नों से प्रभावित होती है। इसी संदर्भ में इन्होंने अवशिष्ट या विशिष्ट चालक तथा भ्रांत तर्क की अवधारणा प्रस्तुत किया। (आरम्भ में ही यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अवशिष्ट चालक तथा भ्रांत तर्क दोनों ही अतार्किक क्रियाओं की व्याख्या से संबंधित है। एक ओर अवशिष्ट चालक या विशिष्ट चालक विभिन्न प्रेरणाओं के रूप में अतार्किक क्रियाओं क स्थिर पक्ष को स्पष्ट करते हैं तो दूसरी ओर भ्रांत तर्क सैद्धान्तीकरण के रूप में इन क्रियाओं के औचित्य को प्रदर्शित करने वाला गतिशील पक्ष है।)

यह सच है मानव व्यवहार एक बड़ी सीमा तक अतार्किक होते हैं, लेकिन मनुष्य जन्म से ही एक तर्क - प्रधान प्राणी रहा है। अपनी प्रत्येक क्रिया के पीछे व्यक्ति का यही विश्वास रहता है कि उसका व्यवहार तार्किक है तथा किसी न किसी सिद्धान्त पर आधारित है। मानव यह कभी नहीं मानना चाहता की उसके व्यवहार भावना या आवेग पर आधारित है। फलस्वरूप व्यक्ति अपनी क्रिया को विवेकपूर्ण दिखाने के लिए किसी न किसी तार्किक व्याख्या का सहारा लेता है। ऐसे व्यवहारों का अध्ययन करने के लिए पैरेटो ने परम्परागत और आधुनिक समाजों में पाये जाने वाले बहुत से विश्वासों, सिद्धान्तों, उपासना की विधियों, प्रथाओं तथा क्रियाओं का अध्ययन किया। इससे स्पष्ट हुआ कि ऐसी सभी प्रथाओं और सिद्धान्तों के बीच इतनी समानता अवश्य मिलती रही होगी कि व्यक्ति कुछ विशेष वस्तुओं, स्थानों अथवा संख्याओं को अपने लिए शुभ अथवा अशुभ मानते आये हैं। व्यक्ति केवल शकुन और अपशकुन में विश्वास ही नहीं करते बल्कि व्यवहार के इन तरीकों को तर्कपूर्ण दिखाने के लिए अनेक अर्द्ध-तार्किक कारण भी प्रस्तुत करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य के अतार्किक व्यवहारों में दो आधारभूत तत्व जरूर पाये जाते हैं-(1) स्थिर तत्व है जिसका संबंध मनुष्य की उस प्रवृत्ति से है जिसके द्वारा वह विभिन्न वस्तुओं अथवा दशाओं के बीच एक विशेष संबंध जोड़ने का प्रयत्न करता है। तथा (2) दूसरा तत्व वे विलक्षण सिद्धान्त (Inqenious Theorig) हैं जिनके आधार पर व्यक्ति अपने व्यवहार के औचित्य को प्रमाणित करता है। पैरेटो की शब्दावली में पहले तत्व को विशिष्ट चालक या अवशिष्ट चालक तथा दूसरे को भ्रांत तर्क या प्रत्युत्पाद कहते हैं। अतार्किक क्रियाओं से संबंधित इन तत्वों की विवेचना पैरेटो ने अपनी पुस्तक (ट्रीटिज ऑन जनरल सोशियोलॉजी) में किया है।

पेरोटो के अनुसार यदि हम मोटे तौर पर मानव व्यवहार को विश्लेषित करें तो उस व्यवहार के दो पक्ष स्पष्ट हो सकते हैं। एक तो अपेक्षाकृत अधिक स्थिर पक्ष होता है और दूसरा अस्थिर या परिवर्तनशील पक्ष। मानव व्यवहार के स्थिर पक्ष को पैरेटो ने विशिष्ट चालक और परिवर्तनशील पक्ष को भ्रांत-तर्क कहा है। पैरेटो ने यह स्वीकार किया है कि ये नाम केवल सुविधाजनक संकेत शब्द है और यदि कोई चाहे तो इसके स्थान पर अन्य किसी संकेत का भी प्रयोग कर सकता है।

2.3.3. विशिष्ट (अवशिष्ट) चालक: अर्थ एवं विशेषताएँ

मानव की अतार्किक क्रियाओं का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि मनुष्य द्वारा अपने व्यवहार को तर्कसंगत प्रमाणित करने की प्रक्रिया को कुछ तत्व अधिक स्थिर प्रकृति के होते हैं। यही तत्व व्यक्ति को कुछ विशेष वस्तुओं, व्यवहार के तरीकों अथवा व्यक्तियों के साथ एक विशेष ढंग से कोई संबंध जोड़ने की प्रेरणा देते हैं। पैरेटो ने इन्ही चालकों को अवशिष्ट चालक कहा है। शब्दिक रूप से अवशिष्ट का अर्थ है (बचा हुआ)। इस प्रकार किसी वस्तु अथवा विशेषता के उपयोग में आने के बाद जितना हिस्सा शेष रह जाता है उसी को हम (अवशिष्ट) कहते हैं। मानव व्यवहारों को प्रभावित करने वाली प्रेरणाओं में से जो प्रेरणाएं तार्किक और समाज द्वारा स्वीकृत नहीं होती, उन्हीं बची हुयी प्रेरणाओं से प्रभावित चालकों को ही हम (विशिष्ट चालक) कहेंगे। इनकी प्रकृति को स्पष्ट करते हुए पैरेटो ने बतलाया कि अवशिष्ट चालक न तो मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts) है और न ही संवेग (Sentiments) है लेकिन तो भी इनकी प्रकृति बहुत कुछ संवेगों से मिलती जुलती है। वास्तव में विशिष्ट चालक कुछ ऐसी प्रेरणाएं हैं जो मानव मस्तिष्क में बहुत गहराई तक बैठी हुयी नहीं होती है बल्कि सतही तौर पर व्यक्ति को अपने कथन और व्यवहार में एक संबंध जोड़ने का आधार प्रदान करती है। इसी कारण विशिष्ट चालकों को संवेगों की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है यद्यपि इन्हें पूर्णतया संवेगों के समान नहीं कहा जा सकता। पैरेटो ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, (विशिष्ट चालक मूल प्रवृत्तियों तथा संवेगों का घोषित स्वरूप है।) इसी आधार पर एक अन्य परिभाषा है जिसमें मार्टिण्डेल लिखते हैं कि, (विशिष्ट चालक तर्कहीन स्थिर तत्व है जो संवेग न होने पर भी संवेगों को अभिव्यक्ति करते हैं।)

पैरेटो की उक्त संदर्भ में परिभाष व व्याख्या के आधार पर एक तथ्य और भी उभर कर आता है कि मानव व्यवहार के उन स्थिर तत्वों का जिन्हें की उन्होंने (विशिष्ट चालक कहा है, पैरेटो ने अधिक स्पष्टीकरण नहीं किया है और यह सुझाव दिया है कि इसके विशय में मनोवैज्ञानिकों को और अधिक अध्ययन करना चाहिए। कुछ भी हो, समाजशास्त्रियों के लिए यह ज्ञान व व्याख्या बहुत ही मुल्यवान व महत्वपूर्ण है। इनके अनुसार मानव व्यवहार के निर्धारण में प्रेरणाओं का बहुत बड़ा हाथ होता है। पैरेटो का विशिष्ट चालक विशेष प्रकार की प्रेरणाये हैं। ये विशिष्ट चालक प्रेरणाओं की उपेक्षा अधिक स्थिर होती है और इसी कारण मानव व्यवहार को संचालित और नियंत्रित करने में इनका पर्याप्त योग होता है। पैरेटो की व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि ये भावनाएं न तो मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं और न ही प्रेरणात्मक या संवेगात्मक भावनाएं। इनके संबंध में पैरेटो ने जो कुछ बताया उससे इनका अधिक से अधिक स्पष्टीकरण या परिभाषा यह हो सकती है कि (विशिष्ट चालक मूल प्रवृत्तियों और भावनाओं की अभिव्यक्ति है।) पैरेटो के शब्दों में (जिस प्रकार थर्मामीटर में पारे का चढ़ना ताप के बढ़ने की अभिव्यक्ति है, उसी प्रकार विशिष्ट चालक मूल प्रवृत्तियों ओर भावनाओं की अभिव्यक्ति है।) ये विशिष्ट चालक जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, अपेक्षाकृत अधिक स्थिर होते हैं। इनकी स्थिरता चाहे मूल-प्रवृत्तियों के कारण हो या भावनाओं के कारण या अन्य किसी कारण से परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ये अधिक स्थिर तत्व नहीं होते।

पैरेटो ने संवेगों की अभिव्यक्ति के रूप में विशिष्ट चालकों की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए मनुष्य की व्यावहारिक क्रियाओं और एक विवेकशील व्याख्या के अंतर की चर्चा की। मानव क्रियाओं की विवेकशील व्याख्या यह मानकर चलती है कि मनुष्य पहले सोचता है, फिर विचार विकसित होते है और इन्हीं विचारों के आधार पर अन्त में सिद्धान्तों का निर्माण होता है। यही सिद्धान्त मानवीय क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। पैरेटो का कथन है कि व्यवहारिक स्थिति ठीक इसके विपरीत होती है अर्थात व्यक्ति कोई व्यवहार पहले कर लेता है। फिर सोचता है और फिर किसी सिद्धान्त के संदर्भ में अपने व्यवहार को उचित मान लेता है। इससे स्पष्ट होता है कि (सिद्धान्त और वास्तविक क्रिया के बीच कार्य-कारण का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता। सिद्धान्त और क्रिया दोनों ही कुछ संवेगात्मक व्यवहारों के परिणाम है जो समाज में सदैव से कुछ स्थिरत ढंग से होते रहे है।) अतः कहा जा सकता है कि समाज में व्यक्ति जिन चालकों अथवा प्रेरणाओं के आधार पर विभिन्न क्रियाएं करता है वे चालक कही अधिक स्थिर प्रवृत्ति के होते हैं। पैरेटो के शब्दों में (विशिष्ट चालक समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए विश्लेषण की एक आधारभूत अवधारणा है। जबकि संवेगों का विश्लेषण विशुद्ध मनोविज्ञान है।)

उदाहरण के तौर पर जब हम अपने अध्यापक को प्रणाम करते हैं तो हमारी यह क्रिया इस विश्वास से बंधी है कि यदि हम अपने अध्यापक का आर्शीवाद पा लें तो हमें सुगम मार्ग मिलेगा। यह क्रिया विशिष्ट क्रिया है। एम. एन. निवास के जातियों के परिवर्तन में जब संस्कृतिकरण की बात करते हैं तो संस्कृतिकरण के ये तत्व (मानक, मूल्य, विश्वास, प्रथा, परम्परा) ही अवशिष्ट क्रिया है।

विशिष्ट चालक की विशेषताएं:-

उपरोक्त विवेचना के आधार पर विशिष्ट चालकों की तीन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है-

1. विशिष्ट चालक अपेक्षाकृत अधिक स्थिर होते है।
2. विशिष्ट चालक स्वयं मूल-प्रवृत्ति या भावना नहीं होती वरन् इनकी अभिव्यक्ति होती है।
3. विशिष्ट चालकों में तार्किक तत्व नहीं होते और न ही तार्किक आधार पर इनकी व्याख्या की जा सकती है या इन्हें समझाया जा सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विशिष्ट चालक आलपोर्ट द्वारा वर्णित (शक्तिशाली प्रतिक्षेप(या (पेटराजिट्स्की) द्वारा उल्लेखित संवेगों आदि से संबंधित है।

2.3.4. विशिष्ट चालकों की श्रेणियाँ

पैरेटों के पहले लेखों में भी कुछ ऐसी शक्तियों का उल्लेख मिलता है जो सामाजिक सन्तुलन की व्याख्या करती है। अतः हम कह सकते है कि भूतकाल में भी समाजशास्त्रियों द्वारा विशिष्ट चालकों को खोजा गया है, परन्तु उन खोजों का कोई वैज्ञानिक स्पष्टीकरण उनके लेखों में नहीं मिलता है। पैरेटो ने उनकी कमी को दूर करने का सचेत प्रयत्न किया, यद्यपि उनके लेखों में भी इस विषय का कोई विशेष स्पष्टीकरण नहीं मिलता है।

फिर भी यथा सम्भव इन्होंने विशिष्ट चालकों की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए लगभग 50 विशिष्ट चालकों पर चर्चा की तथा उन्हें 60 श्रेणियों में विभाजित करके इनकी व्यापकता पर प्रकाश डाला। प्रत्येक श्रेणी के विशिष्ट चालक अनेक उपवर्गो में तथा प्रत्येक उपवर्ग कुछ उपखण्डों में विभाजित है। इसी कारण रेमण्ड ऐरा ने पैरेटो द्वारा प्रस्तुत विशिष्ट चालकों के वर्गीकरण को (त्रिस्तरीय वर्गीकरण) कहा है। विशिष्ट चालक के इन सभी श्रेणियों को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है-

(1) संयोजन या सम्मिलन के विशिष्ट चालक (Residuse of Commination)

पैरेटो ने स्वीकार किया है कि संयोजन के विशिष्ट चालक मानव की एक ऐसी प्रवृत्ति में देखने को मिलती है जिसमें वह कुछ विशेष विचारों और वस्तुओं के बीच संबंध स्थापित करने में लिए कुछ सिद्धान्त खोजने की कोशिश करता है। ये सभी परस्पर समान या विरोधी तत्वों को मिलाने वाली प्रेरणाएं होती है। परन्तु, इस प्रकार के सम्मिलन का प्रायः कोई तर्कसंगत कारण नहीं होता, यद्यपि हम उनमें अपने विश्वास को उत्पन्न करने और बनाये रखने के लिए कोई न कोई उल्टा-सीधा तर्क ढूँढ़ने का प्रयत्न अवश्य ही करते हैं। इन विशेष विचारों एवं वस्तुओं में सम्मिलन या संयोजन की यह प्रवृत्ति विभिन्न क्षेत्रों में देखने को मिलती है जिसको विशिष्ट चालकों का उपवर्ग कहा जा सकता है। पहले उपवर्ग में व्यक्ति उन विचारों और वस्तुओं के बीच संयोजन करता है जिनके गुण लगभग एक-दूसरे से समान होता है। दूसरे उपवर्ग में उन वस्तुओं अथवा घटनाओं के बीच संयोजन किया जाता है जो असमान विशेषताओं से युक्त होती हैं। तीसरे उपवर्ग का संयोजन अज्ञात वस्तुओं अथवा अज्ञात शक्तियों से संबंधित होता है। चौथे तथा अंतिम उपवर्ग में पैरेटो ने एक विशेष प्रकार की प्रेरणा का कुछ अन्य प्रेरणाओं से संयोजन करने की मानव प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है। पैरेटो का कथन है कि संयोजन के विशिष्ट चालक हमारे दैनिक जीवन में विद्यमान रहते हैं। उदाहरण- हम कुछ विचारों और वस्तुओं में इस तरह का संयोजन करते हैं कि सुन्दर और स्वच्छ घर में रहने वाला व्यक्ति परिष्कृत विचारों का होगा। इसी तरह से स्वपन में कोई सुन्दर चीज देख लेने का अर्थ भविष्य में अच्छे भाग्य का परिचायक है। इसी तरह शव यात्रा देखने का संबंध दीर्घायु होने से जोड़ना अथवा स्वपन में सोना देखना और उसे किसी आर्थिक हानि से जोड़ना असमान विशेषताओं के संयोजन का उदाहरण है। कुछ लोग शत्रु की मूर्ति का निर्माण कर उस पर चोट पहुँचाकर शत्रु को घायल व मारने की चेष्टा करते हैं। उसी प्रकार जनजातियों के लोग वर्षा लाने के लिए आग जलाते हैं और खूब धुआं करते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि धुआँ और बादल में समानता है इसलिए समान वस्तु (धुआँ) सदैव समान वस्तु (बादल) उत्पन्न करेगी और वर्षा होगी। इस प्रकार के विश्वासों का कोई तार्किक आधार नहीं होता है।

(2) सामूहिकता के स्थायित्व के विशिष्ट चालक (Residues of the Resistance Aggregates)

पैरेटो के अनुसार यह विशिष्ट चालक वे हैं जो समाज में सामूहिकता को स्थायित्व प्रदान करते है। ये वे प्रेरणाएं होती है जो मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों, मनुष्य एवं स्थानों के बीच सम्बन्धों, जीवित और मृत्यु व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों को स्थायित्व प्रदान करती है। ये विशिष्ट चालकें मनुष्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है और एक पीढ़ि से दूरी पीढ़ि को हस्तानान्तरित होती है इनके प्रति लोगों के दिल में आदर-भाव होता है। इन्हीं विशिष्ट चालकों से चालित होकर हम अपने परिवार, नगर, देश, प्रजाति या इनके सदस्यों के साथ अपने सम्बन्धेां को बनाये रखते है और उन्हें सम्मान प्रदान करते हैं।

सामूहिकता को स्थायित्व देने वाले अथवा इसमें वृद्धि करने वाले विशिष्ट चालकों को पैरेटो ने 8 उपवर्गों में विभाजित करके स्पष्ट किया है। पहले उपवर्ग में उन विशिष्ट चालकों का समावेश है जो कुछ व्यक्तियों, स्थानों तथा सामाजिक वर्गों से व्यक्ति के संबंध को स्थायित्व प्रदान करते हैं। इन्हीं के प्रभाव से हमे अपने माता-पिता, नातेदारों या मित्रों से स्थायी संबंध रखने की प्रेरणा मिलती है। हम अपने मकान या गाँव को छोड़कर नहीं जाना चाहते। दूसरे और तीसरे उपवर्ग में पैरेटो ने उन विशिष्ट चालकों की चर्चा की जो हमें मृत व्यक्तियों की यादों और वस्तुओं को सुरक्षित रखने की प्रेरणा देकर उनसे अपना भावनात्मक संबंध बनाये रखते हैं। चौथे उपवर्ग में वे विशिष्ट चालक आते हैं जो हमें अपनी संस्कृति, विश्वासों और मूल्यों को स्थायी बनाये रहने की प्रेरणा देकर सामूहिकता में वृद्धि करते हैं। पांचवे वर्ग के चालक वे है जो व्यक्ति को अपने आस-पास की वस्तुओं और घटनाओं से समरूपता स्थापित करने की प्रेरणा देते हैं। छठे वर्ग में पैरेटो ने उन विशिष्ट चालकों का उल्लेख किया है जिनके प्रभाव से व्यक्ति अपनी भावनाओं को यथार्थ में बदलकर सामूहिक जीवन के लिए त्यागपूर्ण कार्य करता है। तथा साँतवें व आठवें में उन विशिष्ट चालकों से सम्मिलित किया जा सकता है जो क्रमशः वैयक्तिक सम्बन्धों की स्थापना तथा नये विश्वासों के सृजन को प्रोत्साहन देते हैं।

स्पष्ट है कि इस श्रेणी के सभी विशिष्ट चालक सामूहिक जीवन को स्थायित्व प्रदान करने में विशेष भूमिका निभाते हैं। यदि पहली श्रेणी के विशिष्ट चालकों से इनकी तुलना की जाये तो यह कहा जा सकता है कि प्रथम श्रेणी के विशिष्ट चालक जहाँ नये विचारों और सैद्धान्तिक युक्तियों में वृद्धि करते हैं वही दूसरी श्रेणी के विशिष्ट चालक वे हैं जो समाज की यथास्थिती को बनाये रखने में योगदान करते हैं। इस प्रकार विशिष्ट चालकों की प्रथम श्रेणी कुछ सीमा तक परिवर्तनवादी है जबकि दूसरा जनवादी। इसी कारण पैरेटो ने लिखा है कि,समाज में परिवर्तन और क्रांति लाने के प्रयास तभी सफल हो सकते है जब दूसरी श्रेणी में विशिष्ट चालकों के प्रभाव को कम से कम किया जाये।

(3) बाह्य क्रियाओं द्वारा संवेगों की अभिव्यक्ति के विशिष्ट चालक (Residues of the Manifeatation of Sentiments through Exterior Acts)

इस श्रेणी में पैरेटो ने उन विशिष्ट चालकों को सम्मिलित किया है जो व्यक्ति को अपने संवेगों को बाह्य क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त करने की प्रेरणा देते हैं। उन्हें दो उपवर्गों में विभाजित किया गया है। पहले उपवर्ग में पैरेटो ने उन विशिष्ट चालकों का उल्लेख किया है जो सामूहिक जीवन में व्यक्ति के संवेगात्मक

व्यवहारों को स्पष्ट करते हैं। उदाहरण के लिए कोई कार्यक्रम पसन्द आने पर दर्शकों द्वारा ताली बजाना अथवा कार्यक्रम पसन्द न आने पर बीच में ही उठकर चले जाना, शोर मचाना या विरोध प्रदर्शित करना इसी तरह के विशिष्ट चालक है। दूसरा उपवर्ग में उन चालकों से संबंधित है जिनके द्वारा व्यक्ति विभिन्न क्रियाओं के द्वारा ईश्वर के प्रति अपनी धार्मिक आस्थाओं को प्रकट करता है। स्पष्ट है कि इस श्रेणी के विशिष्ट चालक वे हैं जो व्यक्ति को अपने संवेगों की अभिव्यक्ति के लिए कुछ बाह्य क्रियाएं करने की प्रेरणा देते हैं। इन चालकों के प्रभाव से जो बाह्य क्रियाएं की जाती है उनका स्वरूप भी संवेगात्मक ही होता है।

(4) सामाजिकता से संबंधित विशिष्ट चालक (Residues of Sociability)

यह वे विशिष्ट चालक है जो व्यक्ति को अपने विचारों और व्यवहारों को समूह के अनुरूप बनाकर उसे एक सामाजिक प्राणी बनने की प्रेरणा देते हैं। अर्थात इस श्रेणी के अन्तर्गत उन विशिष्ट चालकों को सम्मिलित किये जाते हैं जो कि मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी बनाते है। उनके द्वारा हमें इस बात की प्रेरणा भी मिलती है कि हम अपने आचरणों या व्यवहारों को अपने उस छोटे या बड़े समूह के अनुरूप बनाये जिसके हम सदस्य हैं। इस श्रेणी के विशिष्ट चालकों को पैरेटो ने 6 उपवर्गों में विभाजित करके स्पष्ट किया। पैरेटो द्वारा किये गये वर्गीकरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विभिन्न प्रेरणाओं के रूप में यह विशिष्ट चालक व्यक्ति को कुछ विशिष्ट समाजों का सदस्य बनने की प्रेरणा देते है। दूसरों के प्रति दया, त्याग, बलिदान को प्रोत्साहन देते हैं। पैरेटो ने इस श्रेणी के विशिष्ट चालकों के जिन उपवर्गों और उपखण्डों का उल्लेख किया है उन्हें सरल ढंग से अग्रांक्ति रूप से समझा जा सकता है।

इस श्रेणी के विशिष्ट चालकों के पहले उपवर्ग में पैरेटो ने उन विशिष्ट चालकों को सम्मिलित किया जा विशिष्ट समाजों के रूप में व्यक्ति को अनेक संघों का सदस्य बनने की प्रेरणा देते है। यह संघ अथवा समितियों उस समूह से भिन्न होती है जिससे व्यक्ति जन्म लेता है। क्रीड़ा समिति तथा अनेक दूसरे संगठन इसी तरह की समितियाँ है जो व्यक्ति के उन संवेगों को प्रभावपूर्ण बनाती है जो सामाजिक जीवन को निरन्तरता प्रदान करने वाली होती है। दूसरे उपवर्ग के विशिष्ट विशिष्ट चालक व्यक्ति को अपने विचारों, विश्वासों और व्यवहारों में दूसरे सदस्यों के समान बनने की आवश्यकता पर बल देते हैं। इसके लिए व्यक्ति न केवल स्वयं पर अनुशासन की भावना से प्रेरित होता है बल्कि वह दूसरों को भी अनुशासन में रखने का प्रयत्न करता है। इसके साथ ही समरूपता को बनाये रखने के लिए कुछ विशिष्ट चालक व्यक्ति को अपने समाज के आदर्श नियमों, जैसे-रूढ़ियों तथा प्रथाओं के अनुसार व्यवहार करने की प्रेरणा देते हैं।

सामाजिकता की भावना से संबंधित, विशिष्ट चालकों का तीसरा उपवर्ग वह है जिसमें दया और क्रूरता की भावना को प्रभावित आने वाले विशिष्ट चालक आते हैं। इन्ही के प्रभाव से व्यक्ति दूसरे के प्रति दया का भाव विकसित करता है अथवा क्रूर भावनाओं के प्रति घृणा प्रदर्शित करता है। इनमें से कुछ चालक मनुष्य को क्रूर भावनाओं का संगठित रूप से तिरस्कार करने की भी प्रेरणा देते हैं। चौथा उपवर्ग उन विशिष्ट चालकों से संबंधित है जो व्यक्ति को आत्मोत्सर्ग और बलिदान करने की प्रेरणा सामाजिकता में वृद्धि करते हैं। इस तरह के चालकों के प्रभाव से व्यक्ति या तो अपने जीवन को खतरे में डालकर दूसरों

के हित का कार्य करता है अथवा वह अपनी वस्तुओं में दूसरों को भागीदार बनाकर स्वयं को अधिक से अधिक सामाजिक बनाने का प्रयत्न करता है। पाँचवे उपवर्ग के विशिष्ट चालक सामाजिक संस्तरण के प्रति व्यक्ति में विश्वास उत्पन्न करते हैं। इसके अन्तर्गत व्यक्ति अपने से उच्च प्रस्थिति के लोगों तथा अपने से निम्न प्रस्थिति के लोगों के प्रति कुछ विशेष भावनाएं विकसित करता है तथा इन्हीं के अनुरूप सामाजिक रूप से स्वीकृत व्यवहार करने का प्रयत्न करता है। अंतिम यानि छठाँ उपवर्ग उन विशिष्ट चालकों का है जो व्यक्ति को समाज के प्रति अपने दायित्वों को देखते हुए समाज से पलायन करने की भावना को प्रोत्साहन देते हैं। इनके प्रभाव से व्यक्ति सुखों का त्याग करके स्वयं कष्टप्रद जीवन को चुनना भी बुरा नहीं समझता। स्पष्ट है कि सामाजिकता से संबंधित यह सभी विशिष्ट चालक समाज को स्थायी तथा सन्तुलित बनाने का प्रयत्न करते हैं।

(5) व्यक्तित्व के संगठन के विशिष्ट चालक (Residues of Personality Integrity)

इस श्रेणी के विशिष्ट चालकों में पैरेटो ने इन प्रेरणाओं का उल्लेख किया है जो व्यक्तित्व के विभिन्न तत्वों को संगठित करती है। इन्हीं विशिष्ट चालकों के प्रभाव से हम ऐसी सभी दशाओं का विरोध करते हैं जो व्यक्तित्व सम्बन्धी संगठन को नष्ट करने वाली होती है तथा उन दशाओं को स्वीकार करते हैं जिनसे व्यक्तित्व के अधिक संगठित बनने की सम्भावना हो। पैरेटो ने इस विशिष्ट चालकों को मनुष्य रूप से चार उपवर्गों में विभाजित करके स्पष्ट किया। पहले उपवर्ग में वे विशिष्ट चालक आते हैं जो व्यक्तियों को सामाजिक सन्तुलन में परिवर्तन लाने वाले तत्वों का विरोध करने की प्रेरणा देते हैं। व्यक्ति यह विरोध इसलिए करता है जिससे उसकस व्यक्तित्व परम्परागत मूल्यों के अनुकूल बना रहे। दूसरा उपवर्ग उन चालकों का है जो हमें अपने व्यक्तित्व में नैतिक मूल्यों का समावेश करने की प्रेरणा देते हैं। इन्हीं के प्रभाव से हम किसी भी अनैतिक दबाव का विरोध करते हैं तथा उन व्यवहारों से बचने का प्रयत्न करते हैं जिन्हें अनैतिक समझा जाता है। कुछ विशिष्ट चालक इस प्रकार के होते हैं जो व्यक्ति को परिवर्तनकारी गतिविधियों के बीच इस तरह एकीकरण करने की प्रेरणा देते हैं जिससे व्यक्तित्व के विकास में बाधाएँ उत्पन्न न हो सके। तीसरे उपवर्ग में पैरेटो ने इन विशिष्ट चालकों का उल्लेख किया है जिनके प्रभाव से व्यक्ति अपनी स्थिति में परितर्वन करने के लिए बहुत से वास्तविक और काल्पनिक उद्देश्यों के बीच इस तरह सामंजस्य करने का प्रयत्न करता है जिससे उसका व्यक्तित्व अधिक संगठित प्रतीत हो सके। पैरेटो का कथन है कि इस चौथे उपवर्ग से संबंधित सभी विशिष्ट चालक व्यक्तिगत हित से संबंधित हैं। यह सभी चालक वे हैं जो व्यक्तित्व को संगठित रखने के उद्देश्य से समाज के सन्तुलन में जोने वाले किसी भी परिवर्तन का विरोध करते हैं

(6) (काम) सम्बन्धी विशिष्ट चालक (Residues of Sex)

पैरेटो का कथन है कि संसार के प्रत्येक धर्म ने काम सन्तुस्टि के लिए कुछ न कुछ निषेधों तथा नियन्त्रणों को प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है लेकिन फिर भी काम सम्बन्धी व्यवहारों का विस्तार प्रत्येक मानव समूह की विशेषता है। इसका कारण वे विशिष्ट चालक है जो काम सम्बन्धी भावनाओं को उत्पन्न और प्रेरित करते हैं। साधारणतया काम सम्बन्धी विशिष्ट चालकों को वैयक्तिक समझा जाता है

लेकिन पैरेटो ने इनसे उत्पन्न व्यवहारों के सामाजिक प्रभाव की चर्चा करते है हुए इनकी व्यापकता को स्पष्ट किया। ये चालक जहाँ एक ओर यौन सम्बन्धी व्यवहारों के प्रेरक होते हैं वहीं दूसरी ओर यह पाँचवी श्रेणी के विशिष्ट चालकों से संयुक्त होकर यौन नैतिकता को विकसित करने की भी प्रेरणा प्रदान करते है।

विभिन्न श्रेणियों के विशिष्ट चालकों की प्रकृति को स्पष्ट करके पैरेटो ने यह बतलाया कि अपने व्यवहारिक जीवन में हम किसी व्यवहार को उसकी तार्किकता या अतार्किकता के आधार पर नहीं करते बल्कि यह विशिष्ट चालक ही है जो हमें कुछ विशेष क्रियाओं या व्यवहारों को करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। वास्तव में प्रत्येक समाज ये विशिष्ट चालक हमारें व्यवहारों का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं लेकिन विभिन्न समूहों और विभिन्न व्यक्तियों में इन विशिष्ट चालकों के प्रभाव की सीमा अलग-अलग हो सकती है। इसका तात्पर्य है कि कुछ लोगों के व्यवहार (संयोजन के विशिष्ट चालकों से अधिक प्रभावित होते है जब कि कुछ लोगो के व्यक्तित्व के संगठन के विशिष्ट चालक) अधिक प्रभावित कर सकते है। इससे यह होता है कि व्यक्ति के व्यवहारों पर विशिष्ट चालकों का प्रभाव बहुत कुछ सामाजिक दशाओं तथा समय कारक से प्रभावित होता है।

पैरेटो ने स्पष्ट किया है कि ये विशिष्ट चालक मानवीय व्यवहार के निर्धारण में महत्वपूर्ण है। क्योंकि मानवीय क्रियाएं और व्यवहार इनके द्वारा ही संचालित होत हैं, इसकारण ये विशिष्ट चालक सामाजिक व्यवस्था में सन्तुलन बनाये रखने में भी सहायक सिद्ध होते हैं। ये विशिष्ट चालक प्रायः परस्पर विरोधी होते हैं। साथ ही इनका कोई तार्किक आधार भी नहीं होता है। इस कारण इन विशिष्ट चालकों को अतर्कसंगत तत्व मान लेना उचित होगा। चूँकि ये विशिष्ट चालक अतर्कसंगत, तत्व है इस कारण इनके द्वारा संचालित व्यवहारों को भी तार्किक आधार पर उचित प्रमाणित करना सम्भव नहीं होता। वास्तविकता यह है कि हम किसी व्यवहार को उसकी सत्यता या असत्यता, तार्किक या अतार्किक आधार पर स्वीकार नहीं करते बल्कि विशिष्ट चालक हमें कुछ विशेष व्यवहारों या क्रियाओं को करने या स्वीकार करने की जो प्रेरणा देते हैं, हमारे अनेक व्यवहार उसी का परिणाम होते हैं।

2.3.5. विशिष्ट चालकों का वितरण (Distribution of Residues)

पैरेटो के अनुसार उपरोक्त विशिष्ट चालक प्रत्येक समाज में पाये जाते हैं और वे सभी सामाजिक प्रणाली की अपेक्षा अधिक स्थिर तत्व भी है। परनतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन विशिष्ट चालकों की शक्ति और वितरण या अनुपात समस्त व्यक्ति या समूहों में एक जैसा होता है। वास्तव में इनकी शक्ति और विभिन्न कालों और विभिन्न व्यक्तियों तथा सामाजिक समूहों में भिन्न-भिन्न होता है। कोई समूह जिसमें सम्मिलन या स्थायित्व के विशिष्ट चालकों की अधिकता हो सकती है तो किसी में कम हो सकता है किसी व्यक्ति में काम सम्बन्धी विशिष्ट चालक की अधिकता हो तो किसी में कम था न हो। वास्तविकता यह है कि कोई भी सामाजिक व्यवस्था किसी अन्तिम या पूर्ण रूप से स्थिर सिद्धान्त के आधार पर नहीं चलती बल्कि यह सदैव सापेक्षिक होती है व इसमें परितर्वन भी होता रहता है। इन परिवर्तनों के साथ-साथ उक्त विशिष्ट चालकों की व्यक्ति और वितरण में भी परिवर्तन होते रहता है। इस

प्रकार पैरेटो के अनुसार (विशिष्ट-विचार समय काकर और सामाजिक परिस्थितियों से संबंधित है और इनमें परितर्वन के साथ-साथ थे स्वये मैं भी परिवर्तन होते रहते है।)

2.3.6. विशिष्ट चालक को महत्व (Significance of Reisdues)

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि विशिष्ट चालक मानवीय व्यवहार को निर्धारित करने के साथ-साथ उसे नियंत्रित करने में भी महत्वपूर्ण होते है।उदाहरण के लिए सामाजिकता से संबंधित विशिष्ट चालक व्यक्ति में मानवीय गुणों को प्रोत्साहन देकर व्यक्ति को समाज के अनुरूप बनाते है जबकि संयोजन के विशिष्ट चालक हमें विभिन्न धटनाओं के बीच हमें विभिन्न घअनाओं के बीच एक तार्किक संबंध जोड़ने की प्रेरणा देकर मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करते है। सच तो ये है कि इसी तरह के विशिष्ट चालक विभिन्न प्रकार के विश्वासों को प्रभावपूर्ण बनाकर उनके माध्यम से घटनाओं की सरल व्याख्या प्रस्तुत करने का आधार प्रदान करते हैं। सामाजिक व्यवस्था के सन्तुलन को बनाये रखने में भी विशिष्ट चालकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक व्यवस्था एक बड़ी सीमा तक व्यक्तित्व के संगठन पर आधारित है जिस समाज में व्यक्तियों का व्यक्तित्व अधिक संगठित होता है वहाँ सामाजिक व्यवस्था उतनी ही सन्तुलित और प्रभावपूर्ण देखने को मिलती है।

विशिष्ट चालक लोगों को अपने व्यक्तित्व में नैतिक मूल्यों का समावेश करने और सामाजिक व मानवीय मूल्यों से भिन्न प्रकार के व्यवहार को तिरस्कृत करने की प्रेरणा देते हैं। यह कार्य तार्किक आधार पर उतना व्यवस्थित रूप से नहीं किया जा सकता जितना की विशिष्ट चालकों से प्राप्त प्रेरणाओं की सहायता से किया जा सकता है। विशिष्ट चालक समाज की निरन्तरता व स्थायित्व में भी महत्वपूर्ण योगदान देते है। समाज को स्थायित्व प्रदान करने में कुछ ऐसी प्रेरणाओं का योगदान होता है जो विभिन्न व्यक्तियों, समूहों तथा अनुभूतियों को एक-दूसरे जोड़ते है। इसका तात्पर्य है कि सामूहिकता के स्थायित्व के विशिष्ट चालक जब हमें अपनी मातृभूमि, राष्ट्र तथा संस्कृति के प्रति समर्पित रहने की प्रेरणा देते हैं तब इससे सामाजिक व्यवस्था अधिक दृढ़ बन जाती है। विशिष्ट चालकों द्वारा ही हमारी संस्कृतिक विरासत का निर्माण होता है। विशिष्ट चालकों से प्रभाव से ही हम महापुरूषों के व्यवहारों का अनुकरण करते है। अतीत के गौरवशाली इतिहास के प्रति गर्व व श्रद्धा रखते हैं। तथा उपयोगी व्यवहारों को परम्परा के रूप में स्थायी रूप से ग्रहण करते हैं। अनेक मानव व्यवहार इस तरह के होते हैं जो वाह्य क्रियाओं द्वारा संवेगों की अभिव्यक्ति के विशिष्ट चालकों से प्रभावित होते है लेकिन जिनकी सहायता से ही समाज को अधिक उन्नत और प्रगतिशील बनाया जा सकता है।

अपनी भावनाओं को अपने ही अन्दर दबाये रखने के बजाय उनकी बाहरी अभिव्यक्ति बहुधा समाज के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। उदाहरणार्थ- यदि हमारी राष्ट्रीयता की भावना अपने को दासता के बन्धन से मुक्त करने के लिए हमें अंग्रेजों के विरूद्ध आन्दोलन करने की प्रेरणा न देती तो आज ही हम स्वतन्त्र नहीं हो पाते। इन्हीं सब आधारों पर पैरेटो का कथन है कि अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन विशिष्ट चालकों से प्राप्त प्रेरणाओं का ही परिणाम रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि विशिष्ट चालकों

के पीछे कोई तार्किक आधार न होने के बाद भी इनके सामाजिक महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

2.3.7. भ्रांत तर्क की अवधारणा (The concept of Derivations)

विशिष्ट चालकें जहाँ मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाली बहुत कुछ स्थिर प्रेरणाएं हैं वही भ्रांत तर्क अपनी प्रकृति से परिवर्तनशील, विविधतापूर्ण और अम्सर परस्पर विरोधी हो सकते हैं। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने सभी व्यवहारों व कार्यों को न केवल स्वयं उचित समझता है बल्कि वह दूसरे व्यक्तियों के सामने भी किसी न किसी तर्क के आधार पर उन व्यवहारों तथा क्रियाओं को उचित प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है। अपनी प्रत्येक क्रिया के पीछे व्यक्ति किसी न किसी ऐसे तर्क प्रमाण अथवा सिद्धान्त को ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है जिसकी सहायता से हव अपने व्यवहार की उपयोगिता अथवा उसके औचित्य को प्रमाणित कर सके। इस तरह के तर्क या प्रमाण तार्किक या प्रयोगात्मक विज्ञान से संबंधित नहीं होते लेकिन उन्हें तार्किकता के आवरण में इस तरह से लपेट दिया जाता है कि वे दूसरों को तार्किक प्रतीत हो सके। यह कारण है कि स्थान, समय और व्यक्ति के अनुसार ऐसे तर्कों में परिवर्तन किया जाता रहा है।

संक्षेप में, मानव व्यवहारों के औचित्य को प्रदर्शित करने वाले इस प्रकार के तर्कों को पैरेटो ने (भ्रांत तर्क) का नाम दिया है। पैरेटो का कथन है कि (मनुष्य अपनी अधिकांश क्रियाएं अनुभूति, भावना और संवेगों के आधार पर करता है। इसके पश्चात भी वह अपनी क्रियाओं की व्याख्या इस प्रकार करता है जिससे वे उचित तार्किक प्रतीत हो सके। यह भ्रांत तर्क की दिशा में व्यवहारों की व्याख्या का प्रयत्न है) उदाहरण के लिए हमारा कोई व्यवहार चाहे मानवतावादी हो अथवा क्रूरता से भरा हुआ हो, हम उसके औचित्य को किसी न किसी आदर्श अथवा सिद्धान्त के द्वारा प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं।

इस प्रकार पैरेटो द्वारा प्रस्तुत भ्रांत तर्क की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये फेयरचाइल्ड ने लिखा है कि, (भ्रांत तर्क व्यवहारों और क्रियाओं का वह व्यापक क्षेत्र है जिसके द्वारा मनुष्य अपने व्यवहारों की तार्किकता औचित्य के संबंध में स्वयं अपने आपको और अन्य व्यक्तियों को विश्वास दिलाने का प्रयत्न करता है।)

इससे संबंध में दूसरे समाजशास्त्री मार्टिण्डेल (Martindalse) में पैरेटो के विचारों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि (भ्रांत तर्क मनुष्य के कार्यों की हृदय व्याख्या के तरीके है।) इस संदर्भ में पैरेटो का यह कथन सही प्रतीत होता है कि मनुष्य के अधिकांश व्यवहार किसी तर्क या सिद्धान्त से प्रभावित नहीं होते बल्कि मनुष्य पहले व्यवहार करता है और इसके बाद अपने व्यवहार के औचितय को सिद्ध करता है। पैरेटो की मान्यता है कि केवल सामान्य व्यक्ति ही अपने जीवन में भ्रांत तर्कों का सहारा नहीं लेते बल्कि राजनीति दर्शन तथा समाज विज्ञान के क्षेत्र में भी बड़े-बड़े विद्वान अपने कार्यों और विचारों को भ्रांत तर्कों की सहायता से उपयोगी प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं।

इस संदर्भ में उन्होंने कॉम्ट की विशेष चर्चा करते हुए बताया कि कॉम्ट ने (मानवता के धर्म) (Religion of Humanity) के रूप में जिस अवधारणा को प्रस्तुत किया, वह मुख्यतः असत्य तथ्यों पर

आधारित एक ऐसी युक्ति है जिसे भ्रन्त तर्कों द्वारा प्रमाणित करने का प्रयत्न क्या गया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति अपने व्यवहार को उचित सिद्ध करने के लिए जिस तर्कों का सहारा लेता है, वे ही भ्रांत तर्क है।

भ्रांत तर्क की प्रकृति को इसकी दो प्रमुख विशेषताओं के आधार पर समझा जा सकता है-भ्रांत तर्क की पहली विशेषता (भ्रांत तर्क विशिष्ट चालकों से संबंधित) होते है तथा दूसरा यह है कि (यह अतार्किक तथ्य है।) यदि हम प्रश्न करें कि ऐसा क्यों है कि व्यक्ति पहले कार्य करता है और बाद में इसके लिए तर्क ढूँढ़ता है? तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ ऐसे विशिष्ट चालक अवश्य होते है जो व्यक्ति को कुछ विशष भावनाओं और संवेगों के अनुसार व्यवहार करने की प्रेरणा देते हैं। इसके बाद व्यक्ति अपने व्यवहार के औचित्य को प्रमाणित भी करना चाहता है। ऐसा औचित्य तभी प्रमाणित हो सकता है जब व्यक्ति अपने व्यवहार की तुलना समाज द्वारा मान्यता प्राप्त कुछ अन्य व्यवहारों अथवा सिद्धान्तों से करें। यही कारण है कि मनुष्य विभिन्न श्रेणियों के विशिष्ट चालकों से संबंधित विशेषताओं को ही आधारभूत तर्क के रूप में स्वीकार कर लेता है। विशिष्ट चालक स्वयं ही अतार्किक होते हैं इसलिए इन पर आधारित तर्क भी अतार्किक हो जाते है। इस तरह विशिष्ट चालकों तथा भ्रांत तर्कों के बीच एक गहरा संबंध है।

2.3.8. भ्रांत तर्क के प्रकार (Types of Derivations)

पैरेटो ने भ्रांत तर्कों की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए इनके विभिन्न प्रकारों का भी उल्लेख किया। इसका उद्देश्य यह स्पष्ट करना था कि विभिन्न व्यक्ति किस तहर तार्किक अथवा मनोवैज्ञानिक विधियों की सहायता से अपने व्यवहारों में औचित्य से सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। पैरेटो के अनुसार विभिन्न व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन में सामान्यतः जिन भ्रांत तर्कों का उपयोग करते हैं, उन्हें निम्नांकित चार श्रेणियों में विभाजित करके समझा जा सकता है-

(1) घोषणाएं या सकारात्मक भ्रांत तर्क (Airmative Derivations)

इस श्रेणी के भ्रांत तर्कों को पैरेटो ने ऐसे भ्रांत तर्क कहा है जो सरलतम प्रकार के होते है। इन तर्कों का उपयोग कुछ ऐसे कथनों, वाक्यों अथव घोषणाओं के रूप में होता है जिनकी अनुभव या परीक्षण के द्वार पुष्टि नहीं की जा सकती। साधारणतया इस श्रेणी के तर्कों को समाज द्वारा एक सामान्य व्यवहार के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है तथा यह इतने शक्तिशाली बन जाते हैं कि इनका विरोध करना एक सरल कार्य नहीं होता। इस प्रकार भ्रांत तर्कों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।–

(1) भावनात्मक

(2) मिश्रित

(1) भावनात्मक आधार पर सकारात्मक भ्रांत तर्क वे है-जिनमें भावना के आधार पर कोई तर्क इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि साधारणतया इसका विरोध नहीं किया जाता। एक माँ जब अपने पुत्र को किसी व्यवहार के लिए यह आदेश देती है कि (अपने से बड़े प्रत्येक व्यक्ति की आज्ञा का पालन करों क्योंकि ऐसी आज्ञा का पालन करना तुम्हारा दायित्व है) तो इस तर्क को केवल भावना की ही स्वीकृति प्राप्त होती है।

(2) मिश्रित रूप के सकारात्मक भ्रांत तर्क वे है जिनमें भावनाओं के साथ तथ्यों का भी कुछ सीमा तक मिश्रण होता है। उदाहरण के लिए युद्ध के समय सैनिकों को पहले भावनात्मक आधार पर अपने राष्ट्र के प्रति समर्पण की शिक्षा दी जाती है और इसके बाद उन्हें युद्ध करने का आदेश दिया जाता है। स्पष्ट है कि युद्ध के समय सैनिकों को दिये जाने वाले आदेशों में तथ्यों और भावनाओं का जो समावेश देखने को मिलता है वह इसी तरह के भ्रांत तर्कों को स्पष्ट करते हैं। पैरेटो ने एक कासीवादी व्यवस्था में शासक द्वारा किये जाने वाले प्रचार को भी इसी तरह के भ्रानत तर्कों से संबंधित माना है। ऐसे प्रचार में भावनात्मक आधार पर किसी आंशिक तथ्य को बार-बार दोहराये जाने से जनसाधारण द्वारा उसे सच मान लिया जाता है। यही कारण था कि हिटलन हथियार के साथ प्रचार को भी उतना ही महत्वपूर्ण मानता था।

(2) अधिकरवादी या सत्तावादी भ्रांत तर्क (Authoritative Perivations)-

इस श्रेणी के अन्तर्गत वे भ्रांत तर्क आते हैं जिनका संबंध किसी व्यक्ति विशेष की सत्ता, विशेष परम्परा या ईश्वरीय सत्ता से होता है। इस प्रकार सत्तावादी भ्रांततर्क तीन प्रकार का होता है।

(क) व्यक्ति की सत्ता (Authority Man)

(ख) परम्परा की सत्ता (Authority of Tradition)

(ग) ईश्वरीयसत्ता (Devine Authority)

(क) व्यक्ति की सत्ता (Authority of Man)

समाज में प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक संबंध किसी न किसी व्यक्ति की सत्ता से प्रभावित होते हैं। यह सत्ता चाहे वैधानिक हो या प्रथागत लेकिन हम जिसे अपने से अधिक प्रतिष्ठित या सत्तासम्पन्न मानते हैं, उसके द्वारा दिये गये तर्क अथवा कथन को सहज ही मान लेते हैं। पत्नी पर पति की सत्ता, बच्चों पर पिता की सत्ता विद्यार्थी पर शिक्ष की सत्ता, कार्यकर्ताओं या नेताओं की सत्ता ये सभी इसके विभिन्न उदाहरण है। इसका तात्पर्य है कि जब एक अधीन व्यक्ति के सामने सत्ता सम्पन्न व्यक्ति के नाम से कोई तर्क दिया जाता है तो वह उसकी विश्वसनीयता जानने का प्रयत्न नहीं करता।

(ख) परंपरा की सत्ता (Authority of Tradition)-

व्यक्ति अपने कार्यों अथवा व्यवहारें का औचित्य सिद्ध करने के लिए परम्पराओं के आधार पर भी तर्क प्रस्तुत करता है। जब हम यह कहते है कि (विवाह अपनी जाति में करने से ही दामपत्य जीवन सफल हो सकता है।) तब यह परम्परा की सत्ता के संदर्भ में दिया जाने वाला भ्रांत तर्क है। तात्पर्य यह है कि हम अक्सर परम्पराओं अथवा प्रथाओं की सत्ता के संदर्भ में साम्प्रदायिक झगड़ों, जातिगत हिंसाओं और क्षेत्रवाद के संदर्भ में इस तरह का तर्क देते है जिन्हें उचित मान लिया जाता है।

(ग) ईश्वरीय सत्ता (Devine Authority)

पैरेटो ने स्पष्ट किया है कि अधिकांश व्यक्ति ईश्वर अथवा एक अलौकिक सत्ता में विश्वास करते हैं। फलस्वरूवप व्यक्ति जब अपने किसी विशेष व्यवहार के पक्ष में कोई ठोस तर्क नहीं दे पाता तब वह कोई न कोई ऐसा भ्रांत तर्क अवश्य देने लगता है जो ईश्वरीय सत्ता से संबंधित होती है। किसी व्यवहार का कारण ईश्वर की इच्छा या भाग्य का परिणाम या प्रारब्ध को मान लेने इस तरह के भ्रांत तर्कों का उदाहरण है।

(3) भावनाओं या सिद्धान्तों से अनुकूलन (Accord with Sentiments of Principlas)-

मानव जीवन में भावनाओं का स्थान बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। इस स्थिति में व्यक्ति अपनी क्रियाओं के लिए अक्सर ऐसे भ्रांत तर्कों का सहारा लेते हैं जो मानव की भावनाओं के अनुकूल होते हैं। जो मानव की भावनाओं के अनुकूल होते हैं। इसी कारण उन्हें सामान्य व्यक्तियों द्वारा सच मान लिया जाता है। ऐसे भ्रांत तर्कों का उपयोग व्यक्ति के स्तर से लेकर राष्ट्र के स्तर तक किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति अपने पुत्र के लिए अपराध करके यह तर्क दे कि (पुत्र की रक्षा के लिए अपराध भी कर देना पिता का नैतिक दायित्व है।(अथवा सर्वाजनिक रूप से अभद्रता करने पर व्यक्ति पर आघात करके यह तर्क दे कि नैतिकता की रक्षा प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है तो ऐसे भ्रांत तर्क जनसाधारण के अनुकूल होते है। इस प्रकार पैरेटो ने इस वर्ग में मुख्यतः उन भा्रन्त तर्कों को सम्मिलित किया है- जिनके द्वारा व्यक्ति किसी व्यवहार के बाद उसे भावनात्मक या सैद्धान्तिक अधार पर स्वयं अपने आपको सही करने का प्रयत्न करता है।

(4) मौखिक प्रमाण (Verbal Proals)

पैरेटो ने भ्रांत तर्कों की विवेचना में मौखिक प्रमाण देकर व्यवहारों के औचित्य को सिद्ध करना विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना है। आपका कथन है कि ऐसे भ्रांत तर्कों में शब्द की भाषा का महत्व होता है। इन भ्रांत तर्कों के लिए प्रयोग में लायी जाने वाली भाषा न केवल भ्रमपूर्ण और दो अर्थों वाली होती है बल्कि उसे अनेक काल्पनिक प्रमाणों की सहायता से इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि उसमें सहज ही विश्वास कर लिया जाये।

प्रजातांत्रिक नेताओं द्वारा भाषाण दिये जाने के संबंध में पैरेटो ने लिख है कि इन भाषणों में अतार्किक उद्घोषणाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। पैरेटो यह भी मानते थे कि विभिन्न धर्मों की पोराणिक गाथाओं में जिन बहुत से मौखिक प्रमाणों का समावेश होता है, वे भी तार्किक अथवा प्रयोगसिद्ध न होकर केवल भ्रांत तर्क ही होते हैं।

2.3.9. सारांश

उपरोक्त सम्पूर्ण विवरण व व्याख्या से यह तो स्पष्ट हो गया कि समाज की निस्तरता, स्थायित्व, नियंत्रण व व्यवस्था सभी के विशिष्ट चालक एवं भ्रांत तर्कों पर आधारित होती है। मानवीय व्यवहार की बहुत सी ऐसी क्रियाये होती है जिनका सन्तुष्टिकरण तार्किक क्रिया व व्याख्या द्वारा नहीं किया जा सकता शायद इसीलिए पैरेटो ने मानवीय वप सामाजिक व्यवहारों के अध्ययन में केवल अतार्किक क्रियाओं को समझने, जानने व उनका अध्ययन करने के लिए चुना अर्थात अध्ययन वस्तु के रूप में अतार्किक क्रिया को विषय के रूप में चुना। हाँ ये एक अलग तथ्य है कि भले ही इन्होंने अध्ययन वस्तु क्रिया को माना परन्तु अध्ययन पद्धति के रूप में ये पूरी तरह से तार्किक व वैज्ञानिक पद्धति अर्थात तार्किक प्रयोगात्मक पद्धति को अपनाते है। ये कहते थे कि अनुभव के आधार पर विभिन्न घटनाओं का अध्ययन किया जाये,

निरीक्षण और प्रयोग द्वारा तथ्यों की जाँच की जाय तथा विभिन्न तथ्यों के बीच पायी जाने वाली समानताओं के आधार पर तार्किक नियमों का निर्माण किया जाये।

पैरटो इस मत से बिल्कुल सहमत नहीं है कि विशिष्ट चालक व भ्रांत तर्क समाज के अनुपयोगी हानिकारक है। ये इसकी असत्यता व अप्रमाणिकता को स्वीकार करते हुए भी समाज में इसके महत्व की संपुष्टि करते है। परन्तु ये इस तथ्य पर भी बल देते थे कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में प्रत्येक शोधकर्ता को इनके प्रभाव से बचना चाहिए।

2.3.10. बोध प्रश्न

1. पैरेटो के विशिष्ट चालक के अवधारणा को स्पष्ट करें तथा इसकी मुख्य विशेषताओं पर भी प्रकाश डालें।
2. विशिष्ट चालक के विभिन्न श्रेणियें का उल्लेख करें?
3. समाज को व्यवस्थित व नियंत्रित करने में विशिष्ट चालकों का महत्वपूर्ण योगदान है। इस कथन की पुष्टि करें।
4. भ्रांत तर्क की अवधारणा एवं विशेषताओं का उल्लेख करें?
5. भ्रांततर्क के प्रकारों का उल्लेख करें?
6. अप्रमाणिक व असत्य होते हुए भी भ्रांत तर्क अनुपयोगी नहीं है। इस कथन की व्याख्या करें।
7. विशिष्ट चालक एवं भ्रानत तर्क के मध्य अंतर स्पष्ट करें?

2.3.11. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. मुखजी, रवीन्द्र. नाथ. (2008). *उत्कृष्ट समाजशास्त्री परम्पराएं.* दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
2. अब्राहम, फ्रैनसिस. एवं मार्गन, जॉन हेवरी. (2010). *सोशियोलॉजिकल थॉट.* दिल्ली: मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लिमिटेड.
3. रावत, हरिकृष्ण. (2007). *समाजशास्त्रीय चिंतक एवं सिद्धांतकार.* नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.
4. शर्मा, वीरन्द्र. (2004). *समकालीन समाजशास्त्री सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
5. मुखजी, रवीन्द्र. नाथ. (2016). *सामाजिक विचारधारा.* दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
6. मुखर्जी, रवीन्द्र. नाथ. एवं घोषाल, अरूणान्सु. (2014). *सोशल थॉट (फ्रा कॉक्ट इ मुखर्जी.* दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. अग्रवाल, गोपाल. कृष्ण. (2015). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. आगरा: एस.वी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस.

इकाई-4 : अभिजात वर्ग एवं सामाजिक परिवर्तन का चक्रिय सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

2.4.1. उद्देश्य
2.4.2. प्रस्तावना
2.4.3. अभिजात वर्ग: अर्थ एवं परिभाषाएँ
2.4.4. अभिजात वर्ग: प्रकार एवं आधार
2.4.5. अभिजनों के परिभ्रमण का सिद्धांत
2.4.6. अभिजनों का परिभ्रमण एवं चक्रीय सामाजिक परिवर्तन
2.4.7. आलोचनात्मक मूल्यांकन
2.4.8. निष्कर्ष
2.4.9. बोध प्रश्न
2.4.10. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.4.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी जान पाएँगे कि-

1. अभिजन वर्ग किसे कहते हैं एवं इसमें किस-किस वर्ग के लोगों को सम्मिलित किया जाता है।
2. इसके आधारों एवं वर्गीकरण पर भी ज्ञान प्राप्त होगा।
3. सामाजिक परिवर्तन के विषय में एक सामान्य ज्ञान प्राप्त होगा।
4. अभिजात वर्गों का परिभ्रमण क्यों और कैसे होता है तथा इस कारण समाज कैसे परिवर्तित होगा। इस विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पाएँगे।
5. किसी भी विषय के परीक्षण के लिए उसका मूल्यांकन आवश्यक होता है। अतः इस इकाई का सम्पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी इसका मूल्यांकन कर पाएँगे।
6. भारतीय सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन को चक्रीय परिवर्तन के आधार पर समझने में सहायता मिलेगी।

2.4.2. प्रस्तावना

सामाजिक विचारधारा के क्षेत्र में "अभिजनों के परिभ्रमण की अवधारणा पैरेटो की प्रमुख देन है। इस अवधारणा के द्वारा पैरेटो ने जहाँ एक ओर सामाजिक संरचना के अन्तगत विभिन्न वर्गों की प्रकृति को स्पष्ट किया वहीं दूसरी ओर उन्होंने विभिन्न वर्गों की स्थिति में होने वाले परिवर्तन के आधार पर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का भी विश्लेषण किया है। इस प्रकार पैरेटो के द्वारा प्रस्तुत "अभिजनों के परिभ्रमण का सिद्धांत (Circulation व Elites, Cyclie theory of Social Change) सामाजिक

परिवर्तन के सिद्धांत को स्पष्ट करती है।पैरेटो ने बताया कि प्रत्येक समाज में किसी न किसी आधार पर ऊँच-नीच का एक संस्तरण अवश्य ही होता है जिसके कारण आमतौर पर प्रत्येक समाज में दो वर्ग पाये जाते हैं। ये साधारण बोल-चाल में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग कहलाते हैं। उच्च वर्ग के लोगों के हाथों में शक्ति होती है और प्रायः वही शासन में भी होता है तथा दूसरा वर्ग जो होता है वह सामाजिक संस्तरण में नीचले स्थान पर होता है। अर्थात वो शासित वर्ग होता है उस पर शासन किया जाता है इसे निम्न वर्ग कहा जाता है। जैरेटो के अनुसार पहले वर्ग को अभिजात वर्ग या संभ्रांतजन (Elite class) तथा दूसरे वर्ग को जनता अथवा समूह (Mass) कहा जाता है। अभिजात वर्ग की अवधारणा के पहले केवल राजनीतिक दृष्टि से देखा जाता था परन्तु आज ऐसा नहीं है क्योंकि अभिजात वर्ग या जन में शासक, सैनिक, अधिकारी, पूँजीपति, बुद्धजीवि तथा सामाजिक दृष्टि से उच्च लोग भी सम्मलिति किये जाने लगे हैं। "अभिजात जन" की अवधारणा का विकास समाज में पाये जाने वाले असमानतओं के अध्ययन के परिणामस्वरूप हुआ है तथा आज यह अवधारणा समाजशास्त्र में एक प्रमुख अवधारणा का स्थान ग्रहण कर चुकी है। सामाजिक यथार्थता अथवा वास्तविकता को समझाने के लिए यह अवधारणा काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि कोई भी समाज ऐसा नहीं है जिसमें विभिन्न प्रकार की असमानताएं न पायी जाती हों। पैरेटो के अभिजात वर्ग के सिद्धांत की विवेवचना करने से पहले अभिजात अथवा सभ्रांत वर्ग का अर्थ समझ लेना आवश्यक है।

2.4.3. अभिजात वर्ग: अर्थ एवं परिभाषाएँ

सत्रहवीं शताब्दी में अभिजात जन शब्द का प्रयोग सबसे अल्प वस्तुओं या वस्तुओं की किसी खास अच्छाई के लिए किया जाता था। इस सीमित अर्थ में अभिजात या संभ्रांत जन शब्द का प्रयोग केवल वज्र सैनिक दस्तों (Crack Miltary Units) अथवा कुलीन वर्ग के उच्चतर स्तर के लोगों के लिए किया जाता था। अंग्रेजी भाषा में अभिजात (Elite) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश में 1823 में सम्मिलित किया गया था जिसका शाब्दिक अर्थ "श्रेष्ठ" होता है। समाजशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम पैरेटो ने किया था। पैरेटो द्वारा समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में इस शब्द को अपनाये जाने के पश्चात यूरोप तथा अमेरिका में इस शब्द का काफी प्रचलन हो गया।

पैरेटो ने अभिजात वर्ग की अवधारणा का मौलिक ढंग से विवेचन किया है। उन्होंने मुख्य रूप से शासन सम्बन्धी अभिजात वर्ग का वर्णन किया है। पैरेटो का मत है कि सभी व्यक्ति समान नहीं होते हैं। इनकी अवसरों, क्षमताओं, योग्यताओं और कुशलताओं में अंतर होता है। इस अंतर के कारण समाज में स्तरीकरण हो जाता है। इस स्तरीकरण के कारण विभिन्न श्रेणियों का गठन हो जाता है। कुछ व्यक्ति उच्च श्रेणी में कुछ निम्न श्रेणी में रखे जाते हैं। सर्वोच्च योग्यता वाले व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों से पृथक होने के कारण उनका एक पृथक वर्ग हो जाता है। पैरेटो इसे (अभिजात वर्ग(कहते हैं। पैरेटो ने हर क्षेत्र में अभिजात वर्ग की विस्तृत विवेचना नहीं की है बल्कि मुख्य रूप से शासन से संबंधित अभिजात या सभ्रांत जनों की व्याख्या की है। इनके अनुसार प्रत्येक मानवीय क्रिया जैसे न्यायालय, व्यापार, कला, राजनीति, बौद्धिकता आदि में अगर हम व्यक्तियों की गतिविधि के क्षेत्र में इन सूचकों को अंक दे दें तो वे

व्यक्ति जो सर्वोच्च अंक प्राप्त करते हैं तो वे अभिजात जन कहलाते हैं। पैरोटो के अनुसार, "मानवीय गतिविधियों के किसी अवशिष्ट क्षेत्र में जिन व्यक्तियों को सर्वाधिक अंक मिले, उनका यदि एक वर्ग बनाया जाये तो उसी को अभिजात वर्ग कहा जायेगा।" दूसरे शब्दों में "किसी विशिष्ट कार्यक्षेत्र में सर्वोच्च योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को हम अभिजात जन की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं।"इस संदर्भ में कुछ अन्य परिभाषाएँ भी इस प्रकार हैं-

पेरी गारिएन्ट (Pary Gariant : Political Elite, 1969) कहते हैं, "कुछ अल्पसंख्य को विषिश्ट क्षेत्रों में समाज के मामलों में अद्वितीय प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन करते हैं, अभिजन कहलाते है।"

राइट मिल्स (C.Wright Mills : Power Elite, 1956), "अभिजन जनसमुदाय के सर्वोत्कृष्ट लोगों का एक समूह है जो कि धन, शक्ति और प्रतिष्ठा के सर्वोपरि है एवं जो अन्यों के विरोध के पश्चात भी अपनी इच्छा को आरोपित करने (समाज पर) समर्थ होते हैं।"

राम अहूजा (Ram Ahuja : Recruitment and Role in Modernçation), "मैं अभिजन को एक प्रभुता सम्पन्न समूह कहता हूँ जिसके पास वैशिष्ट्य और अनन्यता एवं अलगपन होती है।" स्वयं पैरेटो ही ये कहते हैं कि अभिजन वे सफल लोग हैं जो सबसे ऊपर (समाज में) आ जाते हैं।

रेमण्ड एराँ (Raymond Aron) के अनुसार, "अभिजात वर्ग से हमारा तात्पर्य समाज के उस छोटे से वर्ग से है जिसके सदस्य अपने से संबंधित व्यवसायिक संस्तरण से उच्चतम स्थान प्राप्त करते हैं।

एन.एस. टिमाशेफ (N.S. Timashffe), "अभिजात वर्ग के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो समाज के विभिन्न क्षेत्रों में उच्चतम् कार्यों का निर्वाह करते हैं अथवा अपने-अपने क्षेत्र में जिनकी स्थिति बहुत उच्च होती है।"

गायतानो मोस्का (Gaetano Mosca):-पहले विद्वान है जिन्होंने सभ्रांत जन तथा जनसाधारण शब्दों का प्रयोग विशेष अर्थों में किया। इनके अनुसार "उन विकासशील समाजों में जिनमें सभ्यता का विकास अभी मुश्किल से हो पाया है, से लेकर अत्यधिक विकसित और शक्तिशाली समाजों में दो प्रकार के वर्ग पाये जाते हैं- शासक वर्ग व शासित वर्ग। प्रथम वर्ग के लोग अल्पसंख्यक होते हुए भी समस्त राजनीतिक कार्यों को निभाते हैं, सारी सत्ता उनके हाथ में केन्द्रित होती है तथा सत्ता के लाभों का रस भी उन्हें मिलता है जबकि इसके विपरीत दूसरा वर्ग बहुसंख्यक होते हुए भी प्रथम वर्ग द्वारा कभी वैधानिक तरीकों से चालित और नियन्त्रित होता है।"

टी.बी. बॉटोमोर ने भी विद्वानों द्वारा दी गई संभ्रांतजन की परिभाषाओं से इस आधार पर असहमति प्रकट की है कि उन्होंने सभ्रांतजन के सिद्धांत में निहित विचारधारा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है।

इनका कहना है कि संभ्रांतजन की अवधारणा जनतन्त्र के महत्व के विरोध में विकसित हुई है। इन्होंने संभ्रांतजन की परिभाषा इस प्रकार दी है- "अभिजात जन शब्द का प्रयोग आमतौर पर वस्तुतः उन प्रकार्यात्मक, मुख्यतः व्यावसासिक, समूहों के लिए किया जाने लगा है। जिनको समाज में (किसी कारणवश) उच्च स्थिति प्राप्त है।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि संभ्रांतजन की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है तथा मुख्य रूप से अभिजात जन उन व्यक्तियों का एक वर्ग है जो कि सामाजिक, आर्थिक तथा

राजीनितक दृष्टि से अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा उच्च स्थिति रखते हैं। इस विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि अभिजात जन कई प्रकार के होते हैं। जैसे शासक वर्ग (Gaetano Mosca) शक्ति अभिजातजन (Power Elite), बुद्धजीवि वर्ग (Intellectuals), मैनेजर (Manager), उच्च अधिकारी (Bureaucats) तथा सैनिक अधिकारी (Military Elite) इत्यादि।

2.4.4. अभिजात वर्ग: प्रकार एवं आधार

अभिजनों के प्रकार या वर्गीकरण (Classification or Types of Eliets):- अभिजन के ऊपर अनेक समाजशास्त्रियों एवं राजनीति विज्ञानिओं ने बहुत अध्ययन किया है।

राम अहूजा ने बिहार के अभिजन सम्बन्धी अध्ययन में इन्हें अल्पतन्त्रीय अभिजन (Oligarchic Elite) कहा है। सी. राइट मिल्स ने इन्हें राजनीतिक अभिजन (Power Elite) कहा है तो मार्क्स ने इन्हें शासक वर्ग (Ruling Class) शब्द का प्रयोग किया है। हन्टर ने इन्हें शीर्षस्थ नेता (Top Leader) माना है तो रीजमैन अभिजन के लिए वीटो समूह (Vito Group) शब्द का प्रयोग करते हैं। प्रमुख राजनीति विज्ञानी टॉम बॉटोमोर अभिजनों के तीन रूपों का उल्लेख करते हैं।

1. बौद्धिक अभिजन
2. प्रबन्धकीय अभिजन
3. नौकरशाह अभिजन

पैरेटो की शिष्या मैरी कोलबिन्सका ने चार प्रकार के अभिजनों का वर्गीकरण किया है।

1. धार्मिक अभिजन
2. कुलीन अभिजन
3. सैनिक अभिजन
4. पादरी अभिजन

पैरेटो के अनुसार प्रत्येक समाज में किसी न किसी आधार पर ऊँच-नीच का संस्तरण पाया जाता है। इन सभी वर्गों के आधार पर किसी भी समाज को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग

1. उच्च वर्ग (Higher Class):- उच्च वर्ग के अन्तर्गत पैरेटो उन अभिजनें को रखते हैं जो प्रभावशाली होते हैं और निर्णय को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। इन अभिजनों की संख्या कम होती है। पैरेटो ने इनका विभाजन दो श्रेणियों में किया है।

I. **शासकीय अभिजन (Governing Elite):-** शासकीय अभिजन मुख्यतः राजनैतिक अभिजन होते हैं। इन अभिजनों की क्रिया का केन्द्र राजनीति होती है। ये लोग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सत्ता या सरकार की गतिविधियों में भाग लेकर अथवा बाहर रहकर उसे प्रभावित करते हैं। ये लोग प्रतिष्ठित पदों पर आसीन होते हैं तथा नीतियाँ भी तय करते हैं। प्रभुता सम्पन्न होने के कारण अल्पसंख्यक होने के पश्चात भी बहुसंख्यकों पर शासन करते हैं।

II. **अशासकीय या गैरशासकीय अभिजात वर्ग (Non-Governing Elite):-** ये सभी अभिजन जो शासक अभिजन की श्रेणी में नहीं आते हैं, गैरशासकीय अभिजन कहलाते हैं। ये अभिजन राजनीति से अलग क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व जमाये हैं। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, बौद्धिक एवं सैनिक क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व स्थापित करने वाले लोग, गैर शासकीय अभिजन की श्रेणी में आते हैं।

(2) निम्न वर्ग (Lower Class) या गैर अभिजन वर्ग (Non Elite Classs):- निम्न वर्ग, जन समुदाय के रूप में होता है। वे सभी लोग जो अभिजन के रूप में स्वयं को स्थापित नहीं कर पाते एवं अभिजनों द्वारा नियमित होते रहते हैं। निम्न वर्ग में आ जाते हैं।

अभिजात वर्ग के आधार पर (Basis of Elite Class):- पैरेटो ने अभिजात वर्ग के विभाजन के अतिरिक्त उन आधारों का भी विवेचन किया है जिस पर यह अवधारणा आधारित है। ये आधार दो हैं-

I. **योग्यताएं:-** पैरेटो, का विचार है कि बुद्धि, योग्यता, गणित के प्रति रूचि, संगती तथा नैतिकता के स्तर आदि के आधारों पर किये गये विभाजन का यदि अवलोकन किया जाये तो वह धन के स्तर पर आधारित विभाजन के ही अनुकूल होता है अर्थात वही व्यक्ति धनवान होते हैं जो अन्य योग्यताओं से भी युक्त होते हैं।

II. **धन:-** राजनैतिक एवं सामाजिक शक्ति वाले धन की शक्ति से भी उसी अनुपात में युक्त होते हैं।

इस विषय में पैरेटो का कथन उचित है कि तथाकथित उच्च वर्ग एक अभिजात जन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

अभिजात वर्ग के मुख्य लक्षण एवं विशेषताएं (Characteristics and Main Traits of Elite Class):-

1. अभिजात वर्ग का निर्माण स्वतः चलने वाली एक स्वभाविक प्रक्रिया है।
2. यह अवधारणा सापेक्षिक अर्थात् समय व काल के अनुसार इसके स्वरूप व संरचना में परिवर्तन होता रहता है।
3. अभिजात वर्गों में परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का द्योतक है।
4. पैरेटो के अनुसार, "अभिजात वर्ग" सार्वभौम है। अर्थात् विश्व के प्रत्येक देश में यह वर्ग होता है। शासन प्रणाली किसी भी प्रकार की हो, यह वर्ग सदैव सर्वोच्च शक्ति सम्पन्न रहा है।
5. अभिजात वर्गों में मुख्यत तीन प्रकार होते हैं।
6. ये वर्ग राजनैतिक शक्तियों का खुलकर प्रयोग करता है।

2.4.5. अभिजनों के परिभ्रमण का सिद्धांत

पैरेटो ने अभिजात वर्ग के परिभ्रमण की अवधारणा की भी व्याख्या की है। इस व्याख्या के अुनसार एकवर्ग से दूसरे वर्ग में व्यक्तियों का आना-जाना सम्भव है। अर्थात् एक समय में उच्च वर्ग किसी अन्य समय में निम्न वर्ग में परिवर्तित हो सकता है। शासक वर्ग शासित वर्ग बन सकता है तथा शासित

वर्ग शासक वर्ग का रूप ले सकता है। वर्ग परिभ्रमण की यह प्रक्रिया निरन्तर रूप में तथा चक्रिय क्रम में चलती रहती है। पैरेटो का मत है कि उच्च वर्ग वाले सदैव इस बात का प्रयास करते रहते हैं कि निम्न वर्ग के व्यक्ति किसी भी प्रकार से उनके वर्ग में सम्मिलित न हो पाये। इस उद्देष्य के लिए वे कारावास, घूँस, भ्रष्टाचार, निस्कासन तथा निम्न वर्ग के नेताओं का निरसन आदि हथकण्डों का इस्तेमाल किया करते हैं। इसके अतिरिक्त उच्च वर्ग के व्यक्ति अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिए कभी-कभी सहृदयता से भी काम लिया करते हैं।

पैरेटो के अनुसार अभिजात वर्ग के परिभ्रमण की प्रक्रिया दो प्रकार से चलती है। प्रथम प्रक्रिया के अन्तर्गत पूरा का पूरा अभिजात वर्ग परिवर्तित हो जाता है तथा दूसरा वर्ग उसका स्थान ले लेता है। इस प्रक्रिया में स्वभाविक है कि ना अभिजात वर्ग ही अभिजात वर्ग का रूप ग्रहण करता है। दूसरी प्रक्रिया के अन्तर्गत अभिजात वर्ग के कुछ सदस्य अथवा सदस्यों के परिवार अनभिजात वर्ग में उतर जाते हैं। यह उतार पतन के फलस्वरूप होता है। इस प्रक्रिया में दूसरे पहलू के अनुसार कुछ अनभिजात वर्ग में सम्मिलित हो जाया करते हैं। वास्तव में अभिजातों के परिभ्रमण की ये दोनों प्रक्रियाएं आपस में घनिष्ठ रूप से संबंधित है तथा एक-दूसरे की गति को प्रभावित करती हैं। अर्थात् सामाजिक संस्तरण की एक प्रमुख विषेशता यह होती है कि कोई भी वर्ग विशेषकर अभिजात वर्ग अधिक स्थिर नहीं होता है। अपने जीवन में प्राप्त सफलता या असफलता के अनुसार निम्न वर्ग के व्यक्ति उच्च वर्ग में जा सकता है तथा उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग में आ सकते हैं। इस परिभ्रमण की गति प्रत्येक समाज में एक सी नहीं होती परन्तु परिभ्रमण की प्रक्रिया प्रत्येक समाज में होती अवश्य है।

वास्तव में प्रत्येक समाज में किसी न किसी गति से अभिजातों के परिभ्रमण की प्रक्रिया चलती रहती है जबकि इस प्रकार के परिभ्रमण को अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया जाता है। साथ ही अभिजातों के परिभ्रमण की तीव्रता प्रत्येक समाज में भिन्न होती है। फिर भी यह सदैव होने वाली एक प्रक्रिया है। संक्षेप में अभिजातों के परिभ्रमण की गति तथा तीव्रता एक समाज से दूसरे समाज तथा एक समय से दूसरे समय के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। परन्तु हर समय में यह क्रिया अनवरत रूप से होती रहती है। यह प्रक्रिया चलते रहने के तीन मुख्य कारण है:-

1. कोई भी वर्ग पूर्णतया बन्द नहीं हो सकता।
2. अभिजात वर्ग शक्ति के अधिकारी होते हैं और यह शक्ति उन्हें भ्रष्ट कर देती है तथा उनका पतन होता है।
3. नीचे के वर्ग में जो कुशल व बुद्धिमान व्यक्ति होते हैं जोकि ऊपर की ओर चढ़ते जाते हैं।

जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि समाज में इस अभिजात वर्ग का प्रभुत्व होता है परन्तु वे परिस्थितियाँ जिन पर प्रभुत्व निर्भर है, परिवर्तनशील होती है। परिस्थितियों के बदलने के साथ-साथ इनका प्रभुत्व भी घटता-बढ़ता रहता है। नई शक्ति के उदय हो जाने पर नया अभिजात वर्ग का जन्म होता है और पुराना अभिजात वर्ग धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। वर्ग की इस प्रकार की प्रवृत्ति का फल यह होता है कि अभिजातों की संख्या घटती है और उनके स्थानों को भरने के लिए नीचे वर्ग के सदस्यों में से उन लोगों को ऊपर का अवसर प्राप्त होता है जोकि अधिक कुषल और समर्थ होते हैं। अभिजात वर्ग में पायी

जाने वाली कमी की पूर्ति इस प्रकार होती है। इसी कारण जर्मनी में भी जो आज अभिजात वर्ग कहलता है उसके अधिकतर सदस्य वे लोग हैं जोकि प्राचीनकाल में अभिजातों के नौकर थे। अतः स्पष्ट है कि अभिजात वर्ग का नाश उनकी संख्या में निरन्तर कमी होते रहने के कारण तथा उन गुणों की समाप्ति के कारण होता है। उनके खाली स्थानों को निम्न वर्ग के सदस्य भरते रहते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि अभिजात वर्ग समाज पर शासन करते हैं परन्तु अपनी कब्र को भी स्वयं ही खोदते हैं। इसलिए पैरेटो ने कहा था कि, इतिहास कुलीन तन्त्रों का कब्रिस्तान है (History is a grave yard of Aristocracies)"।

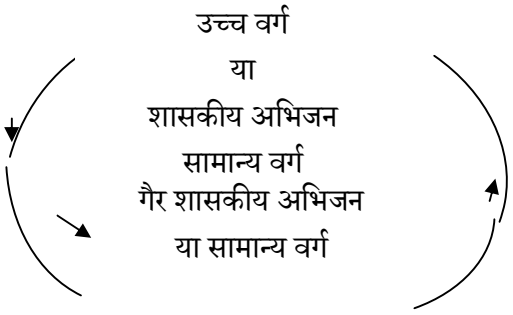

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि पैरेटो के मतानुसार अभिजात वर्ग का पतन तथा निम्न वर्ग का उत्थान या ऊपर की ओर चढ़ना हर समाज में हर समय होता रहता है परन्तु अभिजात वर्ग इस परिभ्रमण या प्रवाह के पक्ष में नहीं होते हैं, क्योंकि इसके द्वारा निम्न वर्ग के लोग निरन्तर उनके वर्ग में आते हैं जिसके फलस्वरूप उनकी प्रतिष्ठा और शक्ति दोनों घटती जाती है। इस कारण वे इस प्रवाह को रोकने का भरसक प्रयत्न करते रहते हैं और उनके उचित तथा अनुचित साधनों को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनाने में नहीं हिचकते हैं। अधिकार, शक्ति तथा प्रतिष्ठा का अपना मोह होता है जो अभिजात वर्ग के लोगों को जकड़े रहते हैं और वे अपनी स्थिति या प्रतिष्ठा को अपनाए रखने के लिए शक्ति या बल का भी प्रयोग करते हैं। इसका परिणाम भी अभिजात वर्ग के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। पैरेटो का विश्वास है कि पुराने कुलीन तन्त्र का अन्त तथा उसके स्थान पर कठोर सैनिक कुलीन तन्त्र का जन्म अवश्य ही होकर रहेगा। परन्तु इस नयी व्यवस्था का निर्माण निम्न वर्ग के लोगों द्वारा ही होगा।

2.4.6. अभिजनों का परिभ्रमण एवं चक्रीय सामाजिक परिवर्तन

पैरोटो के अनुसार प्रत्येक सामाजिक संरचना में जो ऊँच-नीच का संस्तरण होता है, वह मोटे तौर पर दो वर्गों द्वारा होता है- उच्च वर्ग व निम्न वर्ग इनमें से कोई भी वर्ग स्थिर नहीं होता, अपितु इनमें "चक्रीय गति" पाई जाती है। चक्रिय गति इस अर्थ में समाज के इन दो वर्गों में निरन्तर ऊपर से नीचे या अधोगामी और नीचे से ऊपर या ऊर्ध्वगामी प्रवाह होता रहता है। और भी स्पष्ट रूप से चक्रिय गति को इस प्रकार समझा जा सकता हैकि जो वर्ग सामाजिक संरचना में ऊपरी भाग में होते हैं, वह कालान्तर में

भ्रष्ट हो जाने के कारण अपने पद और प्रतिष्ठा से गिर जाते हैं अर्थात् अभिजात वर्ग अपने गुणों को खोकर या असफल होकर निम्न वर्ग में आ जाते हैं। दूसरी ओर उन खाली जगहों को भरने के लिए निम्न वर्ग में जो बुद्धिमान, कुशल, चरित्रवान तथा योग्य होते हैं, वे नीचे से ऊपर की ओर जाते रहते हैं।

इस प्रकार उच्च वर्ग का निम्न वर्ग में आने या उसका विनाश होने और निम्न वर्ग का उच्च वर्ग में जाने की प्रक्रिया चक्रिय ढंग से चलती रहती है। इसी चक्रिय गति के कारण सामाजिक ढ़ाँचा परिवर्तित हो जाता है या सामाजिक परिवर्तन होता है। इसलिए इसे "चक्रिय गति का सिद्धांत" या "सामाजिक परिवर्तन या चक्रिय सिद्धांत" कहा जाता है।

अपने इस सिद्धांत में पैरेटो ने दो श्रेणी के विशिष्ट चालकों (अ) सम्मिलन के विशिष्ट चालक (ब) समूह के स्थायित्व के विशिष्ट चालक के आधार पर समझाया है। ऐसे कुछ व्यक्ति तथा समूह होते है। जिनमें की स्थायित्व के विशिष्ट चालक की अधिकता पाई जाती है तो कुछ में सम्मिलन के विशिष्ट चालक का आधिक्य होता है। सामाजिक परिवर्तन इन्हीं दो श्रेणी के विशिष्ट चालक वाले वर्गों की क्रियाशीलता का परिणाम होता है। प्रथम वर्ग जिसमें सम्मिलन के विशिष्ट चालक का प्रभुत्व होता है, वह तत्कालिक स्वार्थों पर बल देता है। जबकि दूसरा वर्ग, जिसमें समूह के स्थायित्व का विशिष्ट चालक अधिक क्रियाशील है, आदर्शवादी लक्ष्यों में विश्वास करता है, इन दोनों प्रकार की विशिष्ट चालकें की क्रियाओं से किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन सम्भव होता है, यह निम्न विवेचना से स्पष्ट हो जायेगा।

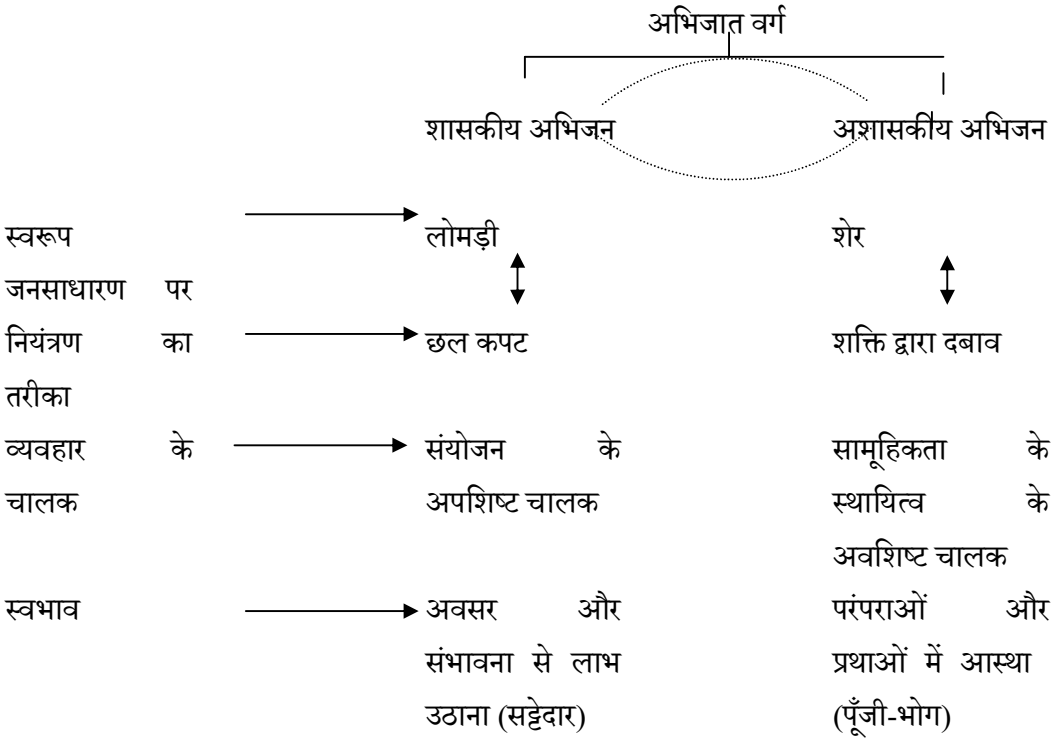

पैरेटो के चक्रीय सिद्धांत का चित्र द्वारा प्रस्तुतीकरण

सामाजिक परिवर्तन के चक्र के तीन मुख्य पक्ष है- राजनीतिक, आर्थिक व आदर्शात्मक। राजनीतिक क्षेत्र में विभिन्न अभिजन वर्ग के बीच परिभ्रमण या चक्रीय परिवर्तन तब आरम्भ होता है जब

"सामूहिकता के स्थायित्व के विशिष्ट चालकों" का प्रभाव शासकीय अभिजन वर्ग से कम होने लगता है तथा इनके स्थान पर व्यवहार संयोजन के विशिष्ट चालकों" द्वारा अधिक प्रभावित होने लगता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक अवस्था में जो राजनीतिक अभिजन (Political Eliete) "समूह के स्थायित्व के विशिष्ट चालको" द्वारा संचालित होकर शक्ति द्वारा सामाजिक व्यवस्था को स्थायी बनाते हैं शक्तिशाली होने के कारण ये "शेर" कहलाते हैं। इनका अपने कुछ आदर्शवादी लक्ष्यों व सिद्धान्तों पर दृढ़ विश्वास होता है। इन आदर्शों की प्राप्ति के लिए शक्ति का भी प्रयोग करते हैं। परन्तु अधिक शक्ति प्रयोग की प्रतिक्रिया भयंकर हो सकती है। जो असुविधाजनक तरीका है अतः ये कूटनीति का सहारा लेते हैं। धीरे-धीरे ये चालकी (संयोजन के विशिष्ट चालक) के द्वारा शासन कार्य आरम्भ कर देते हैं। इस प्रकार शासक वर्ग "शेर" के गुण को छोड़कर "लोमड़ियों" वाला गुण अपना लेते हैं अर्थात् ये खुद को (शेर) की जगह (लोमड़ी) में परिवर्तित कर लेते हैं। शासक वर्ग में जैसे-जैसे चालाकी और छलकपट बढ़ता है वैसे-वैसे निम्न वर्ग की लोमड़िया जो सत्ता व शासन के लिए तत्पर रहती है, खुद को (शेर) में परिवर्तित कर लेती हैं। अन्त में एक समय आता है जब निम्न वर्ग के (शेर) उच्च वर्ग के (लोमड़ियों) पर आधिपत्य कर लेते हैं और सत्ता में निम्न वर्ग के लोगों का वर्चस्व हो जाता है। इस प्रकार शेर व लोमड़ियों के मध्य परिभ्रमण चलता रहता है। इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र या राजनीतिक संगठन में परिवर्तन होता है। उदाहरण- पैरेटो ने यूरोप के समाज का उदाहरण देते हुए बतलाया कि आज यहाँ सत्ता पर जिस वर्ग का प्रभुत्व है उनकी प्रकृति लोमड़ी जैसी है। शासन में आज जिन भ्रष्ट राजनीतिक अभिजनों तथा चरित्रहीन वकीलों की बहुलता है, वे अपनी को छल कपट से बनाये हुए हैं तथा उनमें धीरे-धीरे शक्ति के उपयोग की क्षमता कम होती जा रही है अर्थात् इनमें (सयोंजन के विशिष्ट चालक) की मात्रा बढ़ रही है। ठीक इसके विपरीत निम्न वर्ग में एक ऐसे अभिजन वर्ग का उदय हो रहा है। जिनके व्यवहार समूह के स्थायित्व के विशिष्ट चालकों से प्रभावित हैं तथा जो शक्ति के उपयोग के द्वारा सामाजिक व्यवस्था को सन्तुलन और स्थिरता प्रदान कर सकते हैं। स्पष्ट है कि यह नया अभिजन वर्ग लोमड़ियों को समाप्त करके उनका स्थान स्वयं ले लेगा।

आर्थिक क्षेत्र में परिभ्रमण को स्पष्ट करते हुये पैरेटो ने लिखा है कि जिस प्रकार राजनीतिक क्षेत्रों में परिवर्तन का चक्र लोमड़ियों और शेरों के बीच चलता है उसी तरह आर्थिक क्षेत्र में यह चक्र सट्टेदारों (Speculatorn) तथा पूँजी भोगी वर्ग (Rentiers) के बीच चलता है। इनके अनुसार प्रत्येक समाज दो आर्थिक वर्ग (सट्टेदार एवं पूंजी भोगी या निश्चित आय वाला वर्ग) होते हैं।

सट्टेदार वर्ग वह है जिसमें सयोंजन के विशिष्ट चालक की प्रधानता होती है। इसमें अविष्कारकर्ता, उद्योगपति, नेता आदि होते हैं। यह वर्ग अवसरों और सम्भावनाओं से लाभ उठाने का प्रयत्न करता है तथा इसकी प्रवृत्ति अपने लिए अधिक लाभ प्राप्त करने की होती है। दूसरा वर्ग पूँजीभोगी वर्ग या निश्चित आय वाला वर्गहै जिसमें स्थायित्व के विशिष्ट चालाकों का प्रभुत्व है। इसमें आय लगभग निश्चित होती है यह सट्टेबाजों की तरह अनुमान पर निर्भर नहीं है। परिभ्रमण की प्रक्रिया में यह होता है कि सट्टेदार वर्ग, जिसमें संयोजन के विशिष्ट चालकों की प्रभुता के कारण,यह अपने हित या अन्य प्रकार की

शक्ति के मोह से चालाकी और भ्रष्टाचार का स्वयं शिकार हो जाता है। जिसके कारण उसका पतन होता है और दूसरा वर्ग उसका स्थान ले लेता है।

इस संदर्भ में पैरेटो ने बताया कि जब शासकीय अभिजन वर्ग कुछ समय तक सत्ता में रह लेता है तब उसकी प्रवृत्ति सट्टेदारों की हो जाती है। और वह अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने की लालसा में दुर्गुणों का शिकार होता है जो इसके पतन का कारण होता है।

आदर्शात्मक क्षेत्र में भी यही चक्र विश्वास व अविश्वास के रूप में चलता रहता है। एक समय में विश्वासवादियों (जिसमें संयोजन के विशिष्ट चालकों का प्रभुत्व होता है।) का प्रभुत्व रहता हैं परन्तु अपनी दृढ़ता या रूढ़िवादिता के कारण वे अपने पतन का साधन अपने आप ही जुटा लेते हैं। और उनका स्थान दूसरे वर्ग के लोग ले लेते हैं।

पैरेटो के चक्रीय सिद्धांत द्वारा चक्रिय सामाजिक परिवर्तन:- पैरेटो ने प्रत्येक समाज में अभिजात वर्गों के परिभ्रमण की प्रक्रिया को अनिवार्य दशा के रूप में स्वीकार किया है। इनका कथन है कि एक स्थायी सामाजिक व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि सर्वोच्च श्रेणी के अभिजनों में समूह के स्थायित्व के अवशिष्ट चालाकों तथा संयोजन के विशिष्ट चालकों का एक समुचित सन्तुलन बना रहे। इसका तात्पर्य हैं कि राजनीति क्षेत्र में जहाँ एक ओर शेर और लोमड़ियों का एक न्यायिक सम्मिश्रण जरूरी है वहीं दूसरी ओर आर्थिक न आदर्शात्मक क्षेत्रों में सट्टेदारों व पूँजीभोगियों तथा अविश्वास व विश्वास के बीच इस तरह का सन्तुलन होना चाहिए जिससे सामाजिक व्यवस्था पर वांछित नियन्त्रण रखा जा सके। लेकिन व्यवहार में इस तरह का सम्मिश्रण नहीं हो पाता। अभिजन वर्गों के बीच होने वाला परिभ्रमण इसी दशा का परिणाम है। इस प्रकार पैरेटो का विश्वास है कि परिवर्तन न तो उद्विकास अथवा प्रगति के समान एक सीधी दिशा में होता है और न ही परिवर्तन की विवेचना किसी एक आर्थिक या सांस्कृतिक कारक के आधार पर की जा सकती है। बुनियादी तौर पर परिवर्तन का कारण विशिष्ट चालकों से प्रभावित व्यवहारों में परिवर्तन होना है तथा ऐसे परिवर्तन की गति "चक्रिय" होती है। इनका मानना था कि मानव समाज में इस चक्र की पुनरावृत्ति अनिवार्य है कि, "जो शासन शेरों द्वारा आरम्भ होता है, वह लोमड़ियों के शासन में बदलकर पुनः कुछ दूसरे शेरों के अधिकार में आ जाता है।" इस प्रकार समाज में कुछ नया नहीं होता बल्कि राजनीतिक आर्थिक व मूल्यात्मक सन्तुलन एवं चक्रीय रूप में बनता-बिगड़ता रहता है।

भारतीय पृष्ठभूमि में परिभ्रमण सिद्धांत द्वारा सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या:- अभिजात वर्ग के परिभ्रमण की उपरोक्त अवधारणा को भारतीय पृष्ठभूमि पर भी लागू किया जा सकता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण "भारतीय जाति प्रथा" है। पहले जातीय संस्तरण में ब्राह्मणों की स्थिति सबसे ऊपर थी और सम्पूर्ण जाति-व्यवस्था इन्हीं कि प्रतिष्ठा पर निर्भर थी। प्राचीन भारत में पुरोहित राजाओं का भी उल्लेख मिलता है। वैसे भी राज-पुरोहित को राजनीतिक मामलों में पर्याप्त क्षमताएँ प्राप्त थीं और राजा लोग इन पुरोहितों की सलाह व आज्ञा को शायद ही अमान्य करते थे। इस रूप में ब्राह्मण शासक-वर्ग तक को नियन्त्रित करने वाले होते थे। सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में भी इसकी प्रचुर शक्ति होती थी। इसके विपरीत, हरिजनों की स्थिति ऐसी थी जिन्हें कि जातीय संस्तरण में सबसे अधर्म या निम्नतम स्थान दिया

था और वे असंख्य सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक निर्योग्यताओं के शिकार थे। परन्तु धीरे-धीरे हरिजनों की सामाजिक स्थिति ऊपर की ओर उठती गई और आज वे, कम-से-कम वैधानिक दृष्टिकोण से ब्राह्मणों के बराबर दर्जे पर पहुँच गए हैं। आज वे अन्य उच्च जातियों के साथ-साथ उच्च अफसर हैं, विधानसभा के सदस्य हैं, मिनिस्टर हैं, आर्थिक संस्थाओं के संचालन हैं। दूसरी ओर ब्राह्मणों का प्रभुत्व आज पर्याप्त घट गया है, वे अपने पहले की बुद्धिमत्ता, कुशलता, सामर्थ्य और शौर्य को खोकर धीरे-धीरे नीचे की ओर उतरते जा रहे हैं अर्थात् उनकी पूर्व-प्रतिष्ठा व स्थिति से उनका पतन हो रहा है और उनके स्थान को निम्न जाति के सदस्य लेते जा रहे हैं। इस प्रकार भारत की सामाजिक पृष्ठभूमि पर ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आने-जाने का परिभ्रमण हो रहा है। उसी प्रकार अंग्रेजी शासनकाल में भारतवर्ष में जो लोग शासक थे, शक्तिमान तथा प्रभावशाली थे, आज उनका पतन हो चुका है और उनके रिक्त स्थानों पर आज वे लोग हैं जिनको कि अंग्रेज लोग दबाकर रखना चाहते थे, जिनको जेल में बन्द कर देते थे और जिन पर लाठी व गोलियों की वर्षा करते थे तथा जिनको वे (काला आदमी) या (गुलाम)की संज्ञा देते थे। वही (गुलाम) आज राजा है, शासक है, शक्तिवान् और प्रभावशाली है और जो राजा थे उनका आज भारतीय सामाजिक व्यवस्था ने नाम तक मिट गया है। वे चले गए हैं, उनका (कब्रिस्तान) मात्र भारत में रह गया है। भारतीय पृष्ठभूमि पर अभिजात-वर्ग के परिभ्रमण का इससे उत्तम उदाहरण है और क्या हो सकता है।

2.4.7. आलोचनात्मक मूल्यांकन

यह सच है कि पैरेटो ने नये दृष्टिकोण के आधार पर अभिजनों के परिभ्रमण के रूप में सामाजिक परिवर्तन का चक्रिय सिद्धांत प्रस्तुत किया लेकिन बॉटोमोर (Bottomore) तथा कुछ अन्य विद्वानों ने इस सिद्धांत के अनेक दोषों पर भी प्रकाश डाला है जो इस प्रकार है। इस सिद्धांत के द्वारा पैरेटो ने यह स्पष्ट किया कि विशिष्ट चालक ही व्यक्तियों के विभिन्न व्यवहारों का निर्धारण करते हैं तथा यही अभिजन वर्गों के परिभ्रमण का कारण है। इसके बाद भी पैरेटो ने यह नहीं बतलाया कि स्वयं विशिष्ट चालकों में परिवर्तन क्यों और किस प्रकार होता है? दूसरी आलोचना है कि पैरेटो ने अपने सिद्धांत में शासकीय अभिजन वर्ग तथा गैर शासकीय अभिजन वर्ग के बीच ही परिभ्रमण पर बल दिया है। उन्होंने समाज के मध्यम और निम्न वर्ग की ओर से अभिजन वर्ग में सम्मिलित होने वाले व्यक्यितों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। केवल इनका कहना है कि "निम्न स्तर के व्यक्तियों का ऊपर की ओर उठना ही भी समूह के स्थायित्व के विशिष्ट चालकों से प्रभावित एक प्रक्रिया के रूप में होता है।" पर्याप्त व्याख्या नहीं है। अभिजात वर्गों के उत्थान और पतन को जिन आधारों स्पष्ट किया गया है उन्हें तार्किक व प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। साथ ही मात्र लोभ व स्वार्थ के कारण ही इन्सान का पतन नहीं होता, कभी-कभी जीवन की परिस्थितियों के कारण थी पतन होता है। जिसमें मनुष्य का कोई नियन्त्रण नहीं रहता।

पैरेटो के अनुसार अभिजात वर्ग के दो गुण "पूर्णता" व (बल" मुख्य एवं आवश्यक है। परन्तु ये इन दोनों गुणों की कोई वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर पाएं। इनका मत है कि अभिजातों का चक्रीय परिभ्रमण कुछ मनोवैज्ञानिक लक्षणों के परिवर्तन के साथ होता है। परन्तु इतना कहने से कोई अर्थ स्पष्ट

नहीं होता। यह भी बताना आवश्यक है कि इन मनोवैज्ञानिक लक्षणों में परिवर्तन क्या और कैसे होता है तथा क्या इन परिवर्तनों का सामाजिक परिवर्तन से कोई संबंध है या नहीं? पैरेटो द्वारा प्रस्तुत विवरण पर्याप्त उदाहरणों द्वारा सिद्ध नहीं होता। उसकी व्याख्या इटली की राजनीति तथा प्राचीन रोम के कुछ दृष्टान्तों तक ही सीमित है। इतने थोड़े दृष्टान्त पर्याप्त नहीं है।

पैरेटो ने अपने चक्रिय परिभ्रमण के मात्र दो प्रकारों का वर्णन किया है परन्तु इन दोनों प्रकारों के पारस्परिक संबंध को सपष्ट नहीं किया गया।

2.4.8. सारांश

अब तक की विवेचना से स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में इनका योगदान वास्तव में प्रशंसनीय है। इन्होंने मनुष्य की अधिकांश क्रियाओं में छिपे अतार्किक तत्व या आधार पर सामाजिक परिवर्तन से इस प्रकार उद्घटित किया जैसा अब तक किसी समाज वैज्ञानिक ने नहीं किया। इसका परिणाम हुआ कि सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में एक नवीन दृष्टिकोण प्राप्त हुआ जो उस समय के प्रचलित तर्कवाद के भ्रम को दूर करती हैं और मानव व्यवहार के सम्पूर्ण पक्ष से प्रकट करती हैं। यद्यपि यह मानव व्यवहार व सामाजिक परिवर्तन का अन्तिम निश्कर्ष नहीं है। इनके विषय में सोरोकिन ने लिखा है कि, "पैरेटो की कृतियों का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि सत्रहवीं शताब्दी की सामाजिक भौतिक एक साहसिक मानवीय मस्तिष्क का केवल एक सपना मात्र नहीं था, अपितु उसे एक वास्तविक वैज्ञानिक समाजशास्त्र के रूप में विकसित किया जा सकता है। जो सम्भवतः मानव व्यवहार व परिवर्तन के सभी सदस्यों का उद्घाटन तो न कर सके। फिर भी उनमें जो महत्वपूर्ण है, उनका कुछ सीमा तक तो स्पष्टीकरण अवश्य ही कर सकता है।" यह सच है कि पैरेटो के विचार में कुछ कमियाँ रह गयी हैं फिर भी उन कमियों को निकालकर जो सारतत्व बचता है। उन आधारभूत विचारों का आदर हमेशा होता रहेगा।

2.4.9. बोध प्रश्न

1. अभिजात वर्ग किसे कहते हैं, स्पष्ट करें तथा इसके प्रकारों का भी वर्गीकरण करें?
2. अभिजात वर्ग "परिभ्रमण का सिद्धांत" की विवेचना कीजिए?
3. पैरेटो के अनुसार अभिजात वर्ग के मुख्य लक्षण क्या है? व्याख्या कर
4. पैरोटो के अनुसार अभिजनों का परिभ्रमण किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन को किस प्रकार स्पष्ट करता है? स्पष्ट करें।
5. इतिहास कुलीन तन्त्रों का कब्रिस्तान है? इसकी विवेचना अभिजनों के परिभ्रमण सिद्धांत के आधार पर करें।
6. पैरेटो के अभिजनों के परिभ्रमण के सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें?
7. भारतीय जाति व्यवस्था में परिभ्रमण के सिद्धांत के अनुसार किस प्रकार परिवर्तन होता है? विवेचना करें।

8. कुछ मुख्य बिन्दुओं को परिभाषित करें।

(1) सट्टेदार (2) पूँजी भोगी वर्ग (3) शेर

(4) लोमड़ी (5) सामाजिक परिवर्तन (6) चक्रीय सामाजिक परिवर्तन

2.4.10. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. महाजन, धर्मवीर. (2008). *सामाजिक विचारधारा*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग.
2. शर्मा, वीरेन्द्र. प्रकाश. (2004). *समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
3. शर्मा, रामनाथ. एवं शर्मा, राजेन्द्र. कुमार. (2007). *प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.
4. गोयल, सुनील. एवं गोयल, संगीता. (2005). *उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. जयपुर: आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स.
5. मुखर्जी, रवीन्द्र. नाथ. (2016). *सामाजिक विचारधारा*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
6. मुखर्जी, रवीन्द्र. नाथ. एवं घोषाल, अरूणान्सु. (2014). *सोशल थॉट (फ्राम काम्ट टू मुखर्जी)*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
7. पाण्डेय, रविप्रकाश. (2014). *समाजशास्त्रीय सिद्धांत अभिगमन एवं परिप्रेक्ष्य*. इलाहाबाद: शेखर प्रकाशन.
8. मुखर्जी, रवीन्द्र. नाथ. (2008). *उत्कृष्ट समाजशास्त्रीय परम्पराएं*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

खंड-3 टालकट पारसंस

इकाई-1 : जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई की रूपरेखा

3.1.1. उद्देश्य
3.1.2. प्रस्तावना
3.1.3. टालकट पारसन्स का प्रारंभिक जीवन
3.1.4. टालकट पारसन्स का शैक्षणिक जीवन
3.1.5. सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक जीवन
3.1.6. महत्वपूर्ण कृतियाँ
3.1.7. तत्कालीन बौद्धिक पृष्ठभूमि
3.1.8. पारसन्स के विचारों पर प्रभाव
3.1.9. सामाजिक नियंत्रण का सिद्धांत
3.1.10. पारसन्स का प्रमुख योगदान
3.1.11. पारसन्स का पद्धतिशास्त्र
3.1.12.सारांश
3.1.13. बोध प्रश्न
3.1.14. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.1.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चयात् आप-

- टालकट पारसन्स के संपूर्ण जीवन के बारे में विस्तार पूर्वक जान पाएँगे।
- सत्ता मानव समाज एवं व्यवस्था के प्रति पारसन्स के दृष्टिकोण को आप समझ पाएँगे।
- उन परिस्थितियों को आप समझ पाएंगे जिससे समाजशास्त्र के प्रति टालकट पारसन्स का झुकाव हुआ।
- उस समय आप अमेरिका की राजनैतिक परिस्थितियों को बारे में भी एक समझ विकसित कर पाएँगे।
- समाजशास्त्र के क्षेत्र में पारसन्स का योगदान सामाजिक क्रिया का सिद्धांत (Theory of Social Action) है। इस संबंध में पारसन्स से पहले भी विचारकों ने चिंतन किया था किंतु पारसन्स के विचार अधिक वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय हैं।

- पारसन्स अमेरिकन समाजशास्त्री है। आधुनिक युग में समाजशास्त्र के क्षेत्र में अमेरिका विश्व के अन्य राष्ट्रों की तुलना में अग्रणी है। इसमें भी परसंस की भूमिका महत्वपूर्ण है।
- पारसन्स के विचारों का अभी पूर्ण मूल्यांकन नहीं हो पाया है। उसने समाजशास्त्रा में जो निरंतर योगदान दिया है उसका मूल्यांकन आगे आने वाली पीढ़ी करेगी।
- पारसन्स का समाजशास्त्र के क्षेत्र में जो आज महत्व है। आगे आने वाले भविष्य में इसमें और भी वृद्धि होगी।
- समाजशास्त्र के क्षेत्र में पारसन्स को सामाजिक क्रिया संप्रदाय के संस्थापकों (Founder of Social Action School) माना जाता है।
- पारसन्स का अमेरिका के नवोदित प्रतिभाशाली समाजशास्त्रियों में अत्यंत ही महत्वपूर्ण स्थान है।

3.1.2. प्रस्तावना

टालकट पारसन्स बीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमेरिका के सबसे प्रसिद्ध समाजशास्त्री थे। पारसन्स को अमेरिका के शासक समूहों और सत्ता केंद्रों का समर्थन था। वे संस्कृतिवादी थे। कुछ विद्वान उन्हें सांस्कृतिक निर्धारणवादी भी कहते हैं। उन्होंने स्वयं भी ऐसा कहा। वे मूल्यों एवं मूल्य सहमति को समाज के लिए आवश्यक मानते थे। पारसन्स की एक विशेषता यह रही है कि वे आलोचनाओं के संदर्भ में एवं परिस्थितियों के संदर्भ में बार-बार अपने विचारों में संशोधन करते रहे हैं उन्होंने सामान्य शब्दों का प्रयोग अपनी ही दृष्टि से किया। मैक्स ब्लैक ने इसी कारण से उन्हें विचिर अथवा मैवेरिक समाजशास्त्री कहा है।

टालकट पारसन्स 1930 में जब अर्थशास्त्र से समाजशास्त्र में आए तब शुरुआती दिनों में सामाजिक क्रिया और अंतर्क्रिया की बात ही करते रहे। लगभग बीस वर्षों तक उन्होंने यह चाहा कि सामाजिक क्रिया और सामाजिक अंतर्क्रिया की दृष्टि से सामाजिक संरचना और सामाजिक गत्यात्मकता की व्याख्या की जाए। वे स्वयं इस व्याख्या से संतुष्ट नहीं हो सके। इसलिए 1950 में उन्होंने अपने विचारों को बदल दिया। वे अंतर्क्रियावादी से संरचना प्रकार्यवादी हो गए। इस बौद्धिक कलाबाजी और संक्रमण के बावजूद पारसन्स ने सामाजिक क्रिया की धारणा को महत्वपूर्ण स्थान दिया। वे बार-बार कहते रहे कि सामाजिक क्रिया सामाजिक संरचना की मूल इकाई है। इसी प्रकार उन्होंने सामाजिक क्रिया और सामाजिक संबंधों को एक साथ जोड़ा।

समाजशास्त्र में एमिल दुर्खाइम के बाद टालकट पासंस संरचना प्रकार्यवाद के सर्व प्रमुख हस्ताक्षर बन गए दुर्खाइम से प्रेरित दो सामाजिक मानवशास्त्रियों, कास्पर ब्रोनिस्ला मैलीनास्की और रेडक्लिफ ब्राउन ने प्रकार्यवाद को आगे बढ़ाया। अपने जीवनकाल में मैलीनास्की और ब्राउन लड़ते रहे। टालकट पारसन्स इन दोनों विद्वानों से व्यक्तिगत रूप से मिले और दोनों से गंभीर रूप से प्रभावित भी हुए।

प्रकर्यवाद को पारसन्स ने अपनी पुस्तक सोशल सिस्टम में बड़े ही सुसंगत रूप से प्रस्तुत किया। आगे चलकर भी वे इस सिद्धांत को बार-बार संशोधित करते रहे।

पारसन्स की समाजशास्त्र की जहाँ बहुत अधिक प्रशंसा हुई है वहीं उनकी गंभीर आलोचना भी हुई। पारसन्स को अमेरिकी समृद्धि एवं विहीन श्रृंखलित अमेरिकी समाज का समाजशास्त्री कहा जाता है। चार्ल्स राइट मिल्स ने उन पर व्यक्तिगत प्रहार किए। टी.बी. बोटोमोर ने पारसन्स के समाजशास्त्रीय निष्कर्षों को कभी भी प्रभावशाली नहीं समझा। एलविन गोल्डनर ने अपनी पुस्तक (क्रमिंग क्राइसिस ऑफ वेस्टर्न सोशियोलॉजी, 1970) में मुख्य रूप से पारसन्स को एवं उनके प्रकार्यवादी विचारों को यथास्थितिवादी कह कर उन्हें अपनी आलोचना का शिकार बनाया।

पारसन्स की प्रशंसा भी बहुत अधिक हुई है। किंग्सले डेविस और बिलबर्ट ई. मूर ने पारसन्स के प्रकार्यवादी बनने के पहले ही स्तरीकरण का प्रसिद्ध प्रकार्यवादी सिद्धांत दिया। बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि पारसन्स प्रकार्यवादी के प्रभावी सिद्धांतकार है। टालकट पारसन्स के सहयोगी आर.के. मर्टन ने पारसन्स की तारीफ की। एक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि पारसन्स के साथ अनेक विद्वानों ने लिखा, परंतु मर्टन ने पारसन्स के साथ कोई भी रचना और निबंध नहीं लिखा। भारत में पारसन्स बहुत लोकप्रिय हैं। भारतीय समाजशास्त्र की मुख्यधारा प्रकार्यवादी से प्रभावित है। इसलिए स्वाभाविक रूप से से टालकट पारसन्स समाजशास्त्री हैं।

पारसन्स व्यापक परिप्रेक्ष्य में लिखते रहे। उन्होंने विश्व समाज के संबंध में सैद्धांतीकरण किया। मर्टन ने इसी कारण से पारसन्स को सैद्धांतिक व्यवस्थाओं का निर्माण करने वाला कहा है। जार्ज रीजर ने कहा पारसन्स ने अपनी एक पुस्तक (दि स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन) में बड़े यूरोपियन समाजशास्त्रियों को अमेरिका में परिचित करवाया। यह बात सही नहीं है। यूरोप के विद्वान अमेरिका को गवार समझते हैं। अमेरिकी विद्वान पढ़ने के लिए यूरोप आते रहे। स्वयं पारसन्स भी बाद की पढ़ाई यूरोप में की। अमेरिका तो इंग्लैंड का ही विस्तार है। अमेरिका में समाजशास्त्र को लोकप्रिय बनाने का श्रेय हर्बर्ट स्पेंसर को दिया जाता है। स्पेंसर की पुस्तकें अमेरिका में खूब बिकीं। सभी आरंभिक अमेरिकी समाजशास्त्री हर्बर्ट स्पेंसर से प्रभावित थे। रीजर के अनुसार चूँकि पारसन्स ने 1937 की अपनी पुस्तक में मार्क्स के संबंध में नही लिखा, इसलिए अमेरिका में मार्क्स लोकप्रिय नहीं हो सकें, यह गलत है। यह सही है कि टालकट पारसन्स घोर मार्क्सवादी विरोधी थे। मार्क्स अमेरिकी अर्थ शासन एवं बौद्धिक व्यवस्था की प्रकृति के कारण वहाँ लोकप्रिय नहीं हो सके। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में मार्क्स की बहुत चर्चा हुई।

पारसन्स ने सामाजिक क्रिया का सिद्धांत समाज व्यवस्था का सिद्धांत, धर्म, राजनीति, परिवार जैसी उपसंरचनाओं के साथ-साथ प्रतिमान चर या पैटर्न वैरियबल की धारणा दी है। पारसन्स ने जो द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले लिखा एवं जो दूसरे विश्वयुद्ध के बाद लिखा, उसमें गुणात्मक अंतर है। वी.एल. एलेन के अनुसार ऐसा अमेरिकी अवस्थाओं में परिवर्तन के कारण हुआ। संरचना प्रकार्यवाद का सिद्धांत जिसका प्रतिपादन पारसन्स ने किया, अमेरिकी प्रभाव और वर्चस्व से जुड़ा रहा है। जार्ज हुवाको ने कहा 1970 के आसपास अमेरिकी प्रभाव कमजोर हो गया। इसीलिए प्रकार्यवाद कमजोर हों गया। जार्ज रीजर ने कहा वियतनाम युद्ध के बनते-बिगड़ते समीकरणों ने और अमेरिकी बिसात के अंततः 1975 से बिखर

जाने से प्रकार्यवाद कमजोर हो गया। 1990 में समाजवादी खेमा के खत्म हो जाने से पुनः नवप्रकार्यवाद के रूप में जेफरी अलेक्जेंडर आदि ने पारसन्स की विरासत की पुनर्जीवित किया। जर्मनी में भी एंथनी गिडेंस और जोनाथन टर्नर के अनुसार पारसन्स के प्रकार्यवाद का पुनरुत्थान हुआ है। यह सही है कि इसके एवं अफगानिस्तान के भँवर के कारण एवं रूस और चीन के उभार के कारण पुनः अमेरिकी वर्चस्व प्रभावित हुआ है। इसलिए नवप्रकार्यवाद लोकप्रिय नहीं हो पा रहा है।

3.1.3. टालकट पारसन्स का प्रारंभिक जीवन

पारसन्स का जन्म 1902 में संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलारेडो में हुआ। आरंभ मे वे एक डॉक्टर बनना चाहते थे। अंततः 1924 में वे अमहर्स्ट कॉलेज से अर्थशास्त्र से स्नातक हुए। इसके बाद वे लंदन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स में आगे की पढ़ाई करने के लिए चले गए। इंग्लैंड में उस समय व अर्थशास्त्र के शिक्षकों के अतिरिक्त समाजशास्त्र के मोरिस जिन्सबर्ग से मिले। उनकी मुलाकात ब्रोनिस्ला मैलीनास्की (1884-1942) से हुई। मैलीनास्की 1914 से 1918 तक दक्षिण-पश्चिम प्रशांत महासागर के द्वीपों में आदिवासियों के बीच रहकर उनके जीवन के अनेक पक्षों का अध्ययन कर चुके थे। संभवतः इन प्रभावों से पारसन्स की रुचि सामाजिक जीवन एवं सामाजिक संबंधों में भी हुई।

1925 के आस-पास पारसन्स इंग्लैंड से जर्मनी के हीडलबर्ग विश्वविद्यालय में चले गए। इस विश्वविद्यालय में पारसन्स ने मैक्स वेबर के विचारों को जाना। संभवतः फ्रांस में प्रवास के समय पारसन्स ने विल्फ्रेडो पैरेटो के संबंध में पढ़ा, पैरेटो से संतुलन की धारणा अपना ली। पारसन्स ने पैरेटो के संबंध में विशद अध्ययन 1931 के बाद ही किया। जब एल.जे. हैंडरसन ने संयुक्त राज्य अमेरिका में विल्फ्रेडो पैरेटो के संबंध में एक सेमिनार का आयोजन करवाया। 1927 में पारसन्स हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के इंस्ट्रक्टर नियुक्त हुए। पारसन्स ने जार्ज रीजर के अनुसार अनेक बार विभाग बदले। 1930 में जब पी.ए. सोरोकिन की अध्यक्षता में हार्वर्ड विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग बना तब पारसन्स समाजशास्त्र विभाग में चले आए। 1970 में अपनी अप्रत्याशित मृत्यु तक वे किसी ने किसी रूप में हार्वर्ड विश्वविद्यालय में ही बने रहे। 1944 में पारसन्स हार्वर्ड में समाजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष हो गए। 1946 में उन्होंने इस विभाग का नामकरण सामाजिक संबंध विभाग कर दिया। 1949 में पारसन्स अमेरिकी समाजशास्त्र परिषद के अक्ष्यक्ष निर्वाचित हुए। इसके अलग दस वर्षों तक संभवतः पारसन्स अमेरिकी समाजशास्त्र में परिषद् के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इसके अगले वर्षों तक संभवतः पारसन्स अमेरिकी समाजशास्त्र में सबसे प्रभावशाली समाजशास्त्री के रूप में छाए रहे।

3.1.4. टालकट पारसन्स का शैक्षणिक जीवन

पारसन्स का जन्म अमेरिका में सन् 1902 में हुआ था। उसका पालन-पोषण परिवार में हुआ। इसलिए बचपन से ही पारसन्स बौद्धिक रूप से प्रखर था। उसमें बचपन में ही विभिन्न दृष्टियों से जिज्ञासाएँ विकसित हो गई थीं। सन् 1924 में पारसन्स ने एम्हार्ट कालेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त कर ली थी। आरंभ में उसकी रुचि प्राणीशास्त्र की ओर आकृष्ट हुई। इस दृष्टि से उसने अपनी उपधि लेने के उपरांत

स्पेंसर के विचारों का गहन आध्ययन करना प्रारंभ दिया था। इसी समय में वह प्रमुख अर्थशास्त्र वाल्टन हेमिल्टन के संपर्क में जाएगा। परिणामस्वरूप उसने अर्थशास्त्र के अध्ययन में अपनी रुचि विकसित की। बब्लेन व मार्क्स के विचारों का उसने इस दृष्टि से गहन अध्ययन किया। उसने आध्यात्मक अर्थशास्त्र में अनेक पुस्तकें पढ़ी। इसके बाद उसने अध्यापन कार्य की अपना ध्यान आकर्षित किया। इसके फलस्वरूप उसे येल (Yale) विश्वविद्यालय के कानून के स्कूल में अध्यापक कार्य मिल गया। यहाँ उसने अर्थशास्त्र का विषय ही पढ़ाया।

सन् 1927 में पारसन्स ने अपनी शोधप्रबंध प्रेषित कर दिया। इस शोध प्रबंध पर पारसन्स को पी-एच.डी. की उपाधि से विभूषित किया गया। यह उपाधि उसे हैडलवर्ग विश्वविद्यालय से प्राप्त हुई। इसके शोध का विषय (दी कानसेप्ट ऑफ केपिटेलीज्म इन दी थ्योरीज ऑफ मैक्स वेबर एंड सोमबार्ट) था। इसके पूर्व पारसन्स सन् 1924 ई. में लंदन गया। वहाँ उसने हाबहाउस, जिन्सबर्ग और मेलिनोवास्की आदि समाजशास्त्रियों से संपर्क एवं चर्चाएँ कीं। पारसन्स लंदन में एक वर्ष रहा। इस अवधि में उसने लंदन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स में प्रवास किया यहाँ उसने मानवशास्त्रीय ग्रन्थों का पठन किया। लंदन में पारसन्स मेलिनोवास्की से बहुत प्रभावित हुआ।

लंदन में प्रवास के उपरानत पारसन्स को जर्मनी जाने का अवसर मिला। लंदन में वह अध्ययन समाप्त ही कर पाया था कि उसे जर्मनी के हैडलबर्ग विश्वविद्यालय में फेलोशिप प्राप्त हो गई। यहाँ एक वर्ष तक पारसन्स ने मैक्स वेबर के विचारों का अध्ययन किया। इस दृष्टि से पारसन्स ने मैक्स वेबर के प्रोटेस्टेट धर्म और पूँजीवाद के संबंधों का व्यापक और गहन विश्लेषण किया। इस प्रकार पारसन्स ने अपने अध्ययन और अध्यापन काल में समाजशास्त्र के सभी प्रमुख विद्वानों के विचारों का गहन अध्ययन कर लिया। इसी अध्ययन पर कालांतर में पारसन्स का सारा कृतित्व विकसित हुआ।

सन् 1927 ई. में जर्मनी से शोध उपाधि प्राप्त करने के बाद पारसन्स अमेरिका चला गया। यहाँ उसकी हारवर्ड विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक के पद पर नियुक्ति हो गई। सन् 1927-1931 तक पारसन्स इसी विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करते रहे। सन् 1936 ई. में इसी विश्वविद्यालय में पारसन्स को समाजशास्त्र का प्राध्यापक बना दिया गया। इस प्रकार सन् 1936 ई. में सन् 1944 तक पारसन्स ने समाजशास्त्र विभाग में विभिन्न पदों पर कार्य किया है। सन् 1946 ई. में हारवर्ड विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभा के अंतर्गत एक नया संस्थान खोला गया। इस संसथान में सामाजिक संबंधों का विशेष अध्ययन करने का निश्चय किया गया। पारसन्स की इस संस्थान में समाजशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति हो गई।

3.1.5. सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक जीवन

पारसन्स के संबंध में कहा जाता है कि वे अमेरिकी संकट की पैदावार थे, परंतु उन्होंने अमेरिकन समृद्धि का फल भोगा। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जब पारसन्स पढ़कर निकले तब संयुक्त राज्य अमेरिका आर्थिक संकट का शिकार था। पारसन्स संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य पश्चिम के रूढ़िवादी और संरक्षणवादी परिवेश में पैदा हुए, पले और बढ़े। उनका जन्म एक धार्मिक परिवार में हुआ था। इसलिए

एक संरक्षणवादी एवं क्रांति विरोधी दृष्टिकोण का होना विचित्र नहीं लगता है। पारसन्स ने अपने जीवन के उत्तरार्ध में परिवर्तन संबंधी और क्रांति संबंधी जो विचार दिए, वे समकालीन घटनाओं के परिचायक अधिक थे न कि उनके जीवन और विकास के आर्थिक, सामाजिक परिवेश के कारण ऐसा था। परिवर्तन संबंधी विचारों में संशोधन का बड़ा कारण पारसन्स के विचारों की आलोचना थी। पारसन्स अपने विचारों में ईमानदारी से संशोधन कर रहे थे।

अमेरिका में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने और अमेरिकी शासक वर्ग ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद उन परिस्थितियों को संभाल लिया जो कि जर्मनी एवं इटली में फासीवाद लाने में सहायक हुई थे। इस समय तक पारसन्स सामाजिक क्रिया और अंतक्रिया की दृष्टि से मजबूती से जुड़े थे। द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका की भागीदारी, अमेरिका का दुनिया की सबसे बड़ी ताकत के रूप में उभरना और विश्व पूँजीवादी व्यवस्था को पुनर्निर्मित करने का अमेरिकी प्रयास वह आर्थिक और राजनैतिक पृष्ठभूमि थी जिसने पारसन्स को सामाजिक क्रिया से सामाजिक व्यवस्था की ओर संक्रमण के लिए प्रेरित किया। उन्होंने देखा कि किसी एक उद्योगपति या उद्योगपतियों के संघ ने नहीं बल्कि पश्चिम के देशों का अपने विरोधी को भुला कर एक मंच पर आना ही, पूँजीवाद के पुनर्जीवन का बड़ा कारण था।

1950 से 1970 के बीस वर्ष जहाँ पूँजीवाद के पुनर्जीवन का काल था, वहीं सोवियत समाजवाद के आगे बढ़ने का भी समय था। पश्चिमी पूँजीवाद ने इस अवधि में प्रौद्योगिकी में तेज प्रगति की। इस काल में साठ का दशक अफ्रीकी स्वतंत्रता का दशक भी कहा जाता है। इस अवधि में पश्चिमी पूँजीवाद एवं समाजवादी खेमे में घोर शीतयुद्ध हुआ। इस शीतयुद्ध में अतंतः समाजवाद पराजित हो गया, परंतु पचास और साठ के दशक में समाजवाद के उभार और वियतनाम युद्ध की विभीषिका ने प्रकार्यवाद की शवयात्रा को आरंभ कर दिया। टालकट पारसन्स ने अगस्त कांट और हर्बर्ट स्पेंसर जैसे समाजशास्त्रियों का शोक संदेश लिखा था परंतु सी. राइट मिल्स आदि की आलोचनाओं से पारसन्स अपने जीवनकाल में ही उपेक्षित हो गए। पारसन्स के विचारों की विशेषताओं में पहले ही लिखा है कि उन्होंने अपने विचारों में संशोधन किया। विशेष रूप से सामाजिक परिवर्तन संबंधी विचारों में उन्होंने बड़ा परिमार्जन किया। विश्व की घटनाएँ इतने तेजी से बदली कि पारसन्स के परिमार्जन उनसे अपना तालमेल नहीं बिठा सके।

3.1.6. महत्वपूर्ण कृतियाँ

पारसन्स ने 1937 से पहले कुछ निबंध लिखे, परंतु 1937 में उन्होंने अपनी पहली महत्वपूर्ण पुस्तक (दि स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन) लिखी। इस पुस्तक में उन्होंने सामाजिक क्रिया के संबंध में महत्वपूर्ण विद्वानों के विचार प्रस्तुत किए। इसमें वेबर के व्यक्तिवाद एवं दुर्खाइम के समूहवाद को एकीकृत करने का प्रयास किया। 1949 में (एस्सेज इन सोशियोलॉजिकल थियरीज) नामक पुस्तक लिखी। यह मुख्य रूप से सामाजिक क्रिया और अंतर्क्रिया की दृष्टि से सामाजिक यथार्थ को देखने का प्रयास था। पुस्तक का एक संशोधित संस्करण 1954 में प्रकाशित हुआ।

पारसन्स ने 1950 के आस-पास अपनी सैद्धांतिक दृष्टि बदल दी। वे अंतर्क्रियावाद से प्रकार्यवाद में आ गए। 1951 में पारसन्स ने एडवर्ड शील्स के साथ मिलकर (टुआई ए जेनेरल थियरी ऑफ एक्शन)

नामक पुस्तक लिखी। अपनी बदली हुई प्रकार्यवादी सैद्धांतिक दृष्टि को उद्घाटित करते हुए 1951 में पारसन्स ने (सोशल सिस्टम) नामक पुस्तक लिखी। इसके दो वर्ष बाद 1953 में पारसन्स ने आर.एफत्र बेल्स एवं एडवर्ड शील्स के साथ मिलकर (वर्किंग पेपर्स इन दि थियरी ऑफ एक्शन) नामक पुस्तक लिखी। 1955 में पारसन्स ने अनेक विद्वान के साथ मिलकर, जिनमें प्रमुख थे बेल्स, शील्स, जूडिथ, स्लेटर आदि, (फेमिली, सोशलाइनेशन एंड इंटरएक्शन) नामक पुस्तक लिखी। 1956 में पारसन्स ने एन.जे. स्मेलसर के साथ मिलकर (इकोनामी एंड सोसायटी) नामक पुस्तक लिखी। स्पेंसर ने दक्षिण में इस समस्या का अध्ययन किया था। मैक्स वेबर ने इसी शीर्षक से एक बड़ी पुस्तक लिखी थी जिसका प्रकाशन उनके मरणोपरांत 1922 में हुआ था।

पारसन्स ने इस बीच काफी निबंध लिखे। उनकी आलोचना भी होने लगी। अमेरिका में अनुभवाश्रित संख्यात्मक अध्ययनों का जोर था। पारसन्स व्यापक सिद्धांतों को पुस्तक कर रहे थे। 1964 में उनकी पुस्तक (सोशल स्ट्रक्चर एंड पर्सनालिटी) प्रकाशित हुई। इसके दो वर्ष बाद 1966 में उनकी पुस्तक (सोसायटीज : इवाजुशनरी एंड कंपेरेटिव पर्सपेक्टिव) प्रकाशित हुई। इस समय तक आते-आते पारसन्स सामाजिक परिवर्तन के संबंध में उद्विकासवादी दृष्टि को अपना चुके थे। 1967 में उनकी पुस्तक (दि सोशिओलाजिकल थियरी एंड माडर्न सोशियोलॉजी) प्रकाशित हुई। 1971 में पारसन्स की पुस्तक (दि सिस्टम ऑफ मॉडर्न सोसायटीज) प्रकाशित हुई 1973 में जराल्ड प्लेट के नाथ पारसन्स ने (दि अमेरिकन यूनिवर्सिटी) लिखी। 1977 में उन्होंने (दि इवालुशन ऑफ सोसाइटीज) लिखी। 1977 में ही उन्होंने (सोशल सिस्टम एंड दि इवालुशन ऑफ एक्शन थियरी) लिखी।

पारसन्स ने समय-समय पर अनेक निबंध लिखे। पारसन्स की लेखन क्षमता अपार थी। इन निबंधों में एमिल दुर्खाइम एवं पैरेटों के समाजशास्त्रीय योगदान के संबंध में उनका निबंध प्रभावी था। पारसन्स ने फासीबाद के चरित्र के संबंध में लिखा। पारसन्स ने बहुत पहले 1953 में ही किंग्सले डेविस एवं विलवर्ड मूर के स्तरीकरण के प्रकार्यवादी सिद्धांत के व्यापक टिप्पणी की थी। यह यही है कि पारसन्स ने बड़ी संरचनाओं एवं व्यापक समस्याओं के संबंध में चार-बार लिखा, परंतु वे सामाजिक क्रिया की पृष्ठभूमि मनोवैज्ञानिक दृष्टि और व्यक्तिव दी परिप्रेक्ष्य से कभी निकल नहीं पाए।

पारसन्स के महत्वपूर्ण प्रकाशन

पारसन्स ने जिन महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है, वे निम्नलिखित हैं -

1. The Protestant ethics and sprit of capitalism

एक वेबर द्वारा लिखित पुस्तक का अनुवाद जिसका प्रकाशन 1930 में हुआ था।

2. The Structure of Social Action, 1937

3. मैक्स वेबर द्वारा लिखित पुस्तक "The theory of social and economic organisation" हैंडरसन के साथ अनुवाद जिसका प्रकाशन 1941 में हुआ था।

4. 1945 में पारसन्स ने निम्न दो विचारकों द्वारा लिखित पुस्तकों संबंध में अपने विचार प्रतिपादित किए थे -

(अ) गुरविच (Gurwitch) की पुस्तक (Nineteenth Geniture Sociology)

(आ) फिंके लिस्टिन (Finkelistin) की पुस्तक (Difference in modern worlds)

5 The Social system, 1957 फिंके लिस्टि

6. पारसन्स ने सामाजिक विज्ञानों के शब्दकोश Encyclopedia Social Sciences के कुछ प्रश्नों के लेखन और संपादन का काम किया।

7. पारसन्स ने E.A. Bhils के साथ (Towards a general theory of social action) नामक पुस्तक लिखी थी।

8. आरवेल्स के साथ (Working papers in theory of social action)

9- Essay in Sociological Theories-Pure and applied.

10- Family, Socialization and Inter-action process, 1955

3.1.7. तत्कालीन बौद्धिक पृष्ठभूमि

टालकट पारसन्स ने बहुत अधिक लिखा। आर.के. मर्टन ने लिखा है कि पारसन्स सिद्धांत की दृष्टि से सिस्टम बिल्डर थे। मैक्स ब्लैक ने 1960 के दशक में ही एक पुस्तक का संपादन (टालकट पारसंस) शीर्षक से किया, जिसमें उन्होंने पारसन्स के बौद्धिक विकास की समीक्षा की। पारसन्स आरंभ में एक चिकित्सक बनना चाहते थे। जीव विज्ञान की चर्चाओं से और विशेष रूप से एल.जे. हेंडरसन की चर्चा में उन्होंने अंतर्निहित व्यवस्था के विचार को विकसित किया।

पारसन्स ने संभवतः संयुक्त राज्य अमेरिका में जो मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्र एवं सामाजिक अंतर्क्रियावाद की लंबी परंपरा थी, उसके कारण और अपने छात्र जीवन में जर्मनी में प्रवास के कारण और जर्मन क्रियावाद की प्रवृत्ति के कारण सामाजिक क्रिया को समाज का आधार मानकर चर्चा की। संयुक्त राज्य अमेरिका की जो संरचना थी एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले जो परिस्थितियाँ थीं, संभवतः उसके प्रभाव से भी उन्होंने सामाजिक क्रिया की धारणा को केंद्रीय माना एवं इसे जीवनपर्यंत छोड़ा नहीं।

सामाजिक क्रिया की वेबर की धारणा बहुत अंशों में मनोवैज्ञानिक आयामों से मुक्त है। संभवतः इस कारण मैक्स ब्लैक ने कहा पारसन्स की व्याख्या मनोवैज्ञानिक अधिक है और समाजशास्त्रीय कम है। यह मनोविज्ञान सिगमण्ड फ्रायड का मनोविज्ञान नहीं है। यह गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों जैसे कोहलर और कोफका का प्रभाव है। यह दृष्टिकोण मानता है कि व्यक्ति और समूह अपनी क्रिया में आंतरिक मानसिक स्थिति को प्रतिरूपित करता है। यह फ्रायड के समान अवचेतन की बात एवं लिबिडो अर्थात् वासना के दमन की बात नहीं करता है।

पारसन्स ने पहले विलफ्रेडो परेटो के संबंध में फ्रांस में सुना और पढ़ा। वह उनके अनुरूप थे। 1930 के दशक में एल.जे. हेन्डरसन ने पैरेटो के संबंध में एक बड़ा परिसंवाद आयोजित किया। इस परिसंवाद में पारसन्स थे। पारसन्स ने पैरेटो की धारण संतुलन को अपना लिया। यूरोप एवं अमेरिका में बड़ा करीबी संपर्क था। इनकी बौद्धिक धाराएँ अलग थी। अमेरिका में यूरोप से वही अपनाया गया, जो उसके मिजाज के अनुकूल था।

पारसन्स मैक्स वेबर से प्रभावित थे। अर्थशास्त्र में अपनी चर्चाओं के समय पारसन्स ने वेबर के अर्थशास्त्रीय विचारों को पढ़ा था। अपनी पुस्तक स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन में उन्होंने वेबर, दुर्खाइम, पैरेटो आदि पर एक-एक अलग अध्याय में टिप्पणी की। जार्ज रीजर ने कहा वेबर के समान पारसन्स जीवन भर कार्ल मार्क्स के विचारों के विरोधी बने रहे। इसका एक कारण यह था कि अमेरिकी व्यवस्था ने मार्क्स को पसंद नहीं किया। अमेरिका में मैक्स वेबर की लोकप्रियता का एक कारण यह रहा है। कि वेबर मार्क्स के विरोधी थे एवं वेबर ने उत्पादन के साधनों के साथ शक्ति को समान महत्व दिया।

वैचारिक दृष्टि से पारसन्स ने 1950 के बाद सामाजिक अंतर्क्रिया एवं सामाजिक क्रिया की दृष्टि को पृष्ठभूमि में डाल दिया। इसके आर्थिक और राजनैतिक की चर्चा हमने की है। बौद्धिक दृष्टि से संभवतः यह एमिल दुर्खाइम के विचारों का प्रभाव था। वेबर एवं दुर्खाइम समकालीन थे, परंतु उनमें कभी पटी नहीं। दुर्खाइम ने अपनी पत्रिका (एनी सोशियोलॉजिका(नें कभी भी वेबर को प्रकाशित नहीं किया इसलिए पारसन्स का सामाजिक क्रिया से सामाजिक संरचना में संक्रमण एक तरह से मैक्स वेबर को छोड़ कर एमिल दुर्खाइमको अपनाना था।

3.1.8. पारसन्स के विचारों पर प्रभाव

पारसन्स की विचारधार पर पड़ने वाले प्रभावों को निम्नलिखित विभागों विभाजित किया जा सकता है-

(1) पारिवारिक दशाएँ- पारसन्स के विचारधारा पर पारिवारिक दशाओं का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था। पारसन्स के पिता एवं प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। प्रतिभाशाली व्यक्ति होने के कारण उनका संपर्क अपने विचारकों से होता था। यही कारण है कि माँ अत्यंत ही शांत एवं धार्मिक स्वभाव की थी। इस प्रकार पारसन्स की विचारधारस में उसके माता-पिता के भूमिका महत्वपूर्ण है।

(2) हैमिलटन - हैमिल्टन को संस्थागत अर्थशास्त्र का संस्थापक कहा जाता है। पारसन्स लंदन के अर्थशास्त्रीय स्कूल का सदस्य बना और हैमिल्टन के संपर्क में आया हैमिल्टन के अतिरिक्त इस संस्था में उसका संपर्क हाबहाउस, गिंसवर्ग और मेलिनों वस्की जैसे महान विचारकों से हुआ। इन विचारकों के संपर्क का ही यह परिणाम था कि पारसन्स अर्थशास्त्र से समाजशास्त्र और मानवशास्त्र में रूचि लेने लगा।

(3) मार्क्स और वेबर - जैसा कि ऊपर लिखा हुआ है कि पारसन्स उच्च अध्ययन के लिए जर्मनी आया था और यहाँ उसने अपने और वेबर के ग्रंथों का गहन अध्ययन किया था। उसने वेबर की दो पुस्तकों का अनुवाद भी किया था। मार्क्स और वेबर के प्रभाव के परिणामस्वरूप पारसन्स सामाजिक क्रिया और व्यवस्था के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था।

(4) दुर्खीम - पारसन्स के ऊपर दुर्खीम की विचार का प्रभाव पड़ा था। उसने दुर्खीम के श्रम के विभाजन के आधार पर सामाजिक उद्विकास, आत्महत्या के आधार पर मानव व्यवहार और धार्मिक जीवन के अन्य स्वरूपों के आधार पर समाज में धर्म के महत्व का प्रतिपादन किया था। इन्ही उपर्युक्त सिद्धांतों के आधार पर सामाजिक सिद्धांत की अवधारणा स्पष्ट किया है।

3.1.9. पारसन्स का पद्धतिशास्त्र

पारसन्स मूल रूप से प्रकार्यवादी समाजशास्त्री है। उसने अपनी संपूर्ण विश्लेषणाओं में प्रकार्यवादी पद्धति को ही अपनाया है। इसलिए पद्धतिशास्त्रीय विशेषताओं की दृष्टि से पारसन्स के प्रकार्यवाद का विश्लेषण आवश्यक है। अपनी प्रकार्यवादी पद्धति को पारसन्स ने हर्बर्ट स्पेंसर के विचारों पर आधारित किया है। उसने समाज को सावयवी व्यवस्था में विश्लेषित करने की कोशिश की है। पारसन्स ने अपने सामाजिक क्रिया सिद्धांत और सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांतों के प्रतिपादन में इसी पद्धति का अनुसरण किया। इस दृद्धि से पारसन्स प्रत्यक्षवादी भी था। उसने प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण अपनाकर ही सामाजिक घटनाओं के अध्ययन करने की संपति दी है।

लंदन स्कूल ऑफ इकानामिक्स ने पारसन्स ने प्रकार्यवादी और प्रत्यक्षवादी विचारकों का अध्ययन किया। वैसे पारसन्स की पद्धति की सृष्टि मेलिनोवास्की के विचारों से ही हुई है। इंग्लैंड में पारसन्स ने इस दृष्टि से स्पेंसर की कृतियों का भी गहन मनन-चिंतन किया था। पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था को क्रिया व्यवस्था के नाम से संबोधित किया है। इस अंतसंबंधित व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए पारसन्स ने व्यक्तित्व व्यवस्था, सांस्कृतिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था के संबंधों की खोज करके उनमें प्रकार्यवादी संबंधों को इंगित किया है। मेलिनोवास्की के विचारों से प्रेरणा पाकर ही पारसन्स ने इस व्यवस्था को सावयवी व्यवस्था के रूप में सिद्ध करने की चेष्टा की है।

पारसन्स ने अपने पद्धतिशास्त्र मं प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकताओं के विचार का भी प्रतिपादन किया है। उसने इन प्रकार्यवादी आवश्यकताओं को मानवीय आवश्यकता के अनुरूप बताया है। उसने यह भी सिद्ध करने की चेष्टा की है कि सभी सामाजिक व्यवस्थाएँ इन्ही आवश्यकताओं की पूर्ति करने का ध्येय रखती हैं। अपनी पद्धति की सार्थकता को इंगित करते हुए पारसन्स ने लिखा है कि इस पद्धति से सामाजिक व्यवस्था का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा सकता है। उसने यह भी स्पष्ट किया है कि समाज की किसी भी व्यवस्था का अध्ययन संपूर्णता में होना चाहिए। इस भाँति पारसन्स ने दूसरे शब्दों में दुर्खिम और मैक्स वेबर के पद्धतिशास्त्र को ही अपनाया है।

पारसन्स ने लिखा है कि समाजशास्त्रीय अध्ययनों में क्रिया व्यवस्था का अध्ययन आवश्यक है। इस व्यवस्था में परिस्थिति के तत्त्व को पारसन्स ने प्रमुख माना है। परिस्थिति से पारसन्स को तात्पर्य सामाजिक परिस्थिति ही है। इस प्रकार मानव व्यवहार एवं क्रिया को प्रभावित करने वाले सभी तत्वों के प्रकार्यवादी विश्लेषण पर ही पारसन्स ने जोर दिया।

3.1.10. पारसन्स का प्रमुख योगदान

तात्कालिक समाजशास्त्रियों में पारसन्स ही एक ऐसा विद्वान है जो अपने कृतित्व के कारण प्रभावशाली समाजशास्त्री माना जाता है। पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक क्रिया, सामाजिक संरचना, सामाजिक प्रकार्य, सामाजिक नियंत्रण आदि विभिन्न विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। ये विचार उसके द्वारा लिखित पुस्तकों, समालोचनाओं, लेखों और शोध टिप्पणियों में प्रकाशित हुए हैं। पारसन्स ने इन सबके बावजूद संपादन कार्य भी किया। उसने सभी प्रमुख समाजशास्त्रियों और उनके

सिद्धांतों की समीक्षाएँ प्रकाशित कराई हैं। पारसन्स की निम्नलिखित रचनाएँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय स्थान रखती हैं:

(1) दी स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन

पारसन्स की यह एक महत्वपूर्ण रचना है। इस पुस्तक का प्रकाशन 1937 में हुआ है। इस रचना में पारसन्स ने अपना सामाजिक क्रिया सिद्धांत प्रस्तुत किया है। यह सिद्धांत पारसन्स ने विशेष रूप से दुर्खीम, स्पेंसर, मैक्स वेबर और पैरेटो के विचारों की समीक्षाओं के साथ प्रस्तुत किया है। इस सामाजिक क्रिया सिद्धांत के कारण ही पारसन्स को समाजशास्त्र में ख्याति प्राप्त हुई है।

(2) दी सोशल सिस्टम

पारसन्स की यह दूसरी महत्वपूर्ण कृति है। यह रचना सन् 1952 ई. में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में पारसन्स ने सामाजिक क्रिया के विश्लेषण से सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को स्पष्ट किया है। इस प्रकार पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत प्रतिपादित किया है। इस दृष्टि से अपने इस सिद्धांत में पारसन्स ने सामाजिक स्तरण की भी व्याख्या प्रस्तुत की है।

इन रचनाओं के अतिरिक्त पारसन्स ने मैक्स वेबर की रचनाओं का अँग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित कराया है। इस दृष्टि से प्रथम 1960 में पारसन्स ने वेबर की (दी प्रोटेस्टेट इथिक्स एंड दी स्प्रिट ऑफ केपिटेलिज्म) का अनुवाद प्रकाशित कराया। इसके बाद पारसन्स ने मैक्स वेबर की दूसरी रचना "दी थ्योरी ऑफ सोशल एंड इकानामिक आर्गेनाईजेशन" का अनुवाद किया। यह अनुवाद री हैंडरसन के सहयोग से प्रकाशित हुआ। पारसन्स के समाजशास्त्रीय योगदानों पर हम क्रमशः यहाँ विस्तार में विवेचन करेंगे।

समाज की अवधारणा

पारसन्स ने समाज की जो परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं वे निम्नलिखित हैं -

(1) "समाज को उन सामाजिक संबंधों की संपूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो साध्य-साधन संबंध की दृष्टि से स्वाभाविक प्रतीकात्मक क्रिया के द्वारा उत्पन्न होते हैं।

(2) "समाज इनसे पृथक अस्तित्व नहीं रख सकता, वे इसकी पूर्त अभिव्यक्तियों में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं किंतु वे समाज नहीं है। समाज तो केवल सामाजिक संबंधों की जटिलता है।"

पारसन्स ने समाज के अंतर्गत समस्त सामाजिक संबंधों को सम्मिलित किया है पारसन्स का विचार है कि मनुष्यों और मनुष्यों के बीच जितने प्रकार के संबंध में जाते हैं वे सभी समाज का निर्माण करते हैं। उसने लिखा है कि समाजशास्त्र क्षेत्र अत्यंत ही व्यापक और और इस व्यापकता के कारण ही सामाजिक संबंधों का जटिलता का विकास होता है।

मौलिक प्रश्न यह है कि सामाजिक संबंध कैसे बनते हैं? पारसन्स ने इस का उत्तर देते हुए लिखा है कि हमारी विशिष्ट आवश्यकताएं होती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के व्यकित को अनेक प्रकार कि क्रियाओं का संपादन करना पड़ता है। व्यक्ति जिन क्रियाओं का संपादन करता है उनको संपादिक करने में वह साधन और साध्य को ध्यान में रखता है। उसका विचार है कि वंशानुक्रमण, पर्यावरण, सांस्कृतिक तत्व, नैतिक व्यवस्थाएं, ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिक आदि तत्व, समाज के विभिन्न स्वरूपों और इसकी

व्यवस्था को प्रभावित करते हैं। ऊपर जिन तत्वों की विवेचना की गई है यद्यपि वे स्वयं में समाज नहीं है किंतु समाज के स्वरूप का निर्धारण करते हैं। समाज के निर्माण में इनका महत्वपूर्ण स्थान होता है। इनके बिना समाज का कोई अस्तित्व नहीं होता है।

3.1.11. सामाजिक नियंत्रण का सिद्धांत

मनुष्य के द्वारा जो क्रियाएँ की जाती हैं वे प्रमुख रूप से दो प्रकार की होती है -

(अ) व्यवस्था स्थापित करने वाली क्रियाएँ, और

(ब) व्यवस्था का उल्लंघन करने वाली क्रियाएँ।

मनुष्य केवल सामाजिक प्राणी ही नहीं है। वह असामाजिक और समाज विरोधी प्राणी भी है। वह ऐसे कार्यों का संपादन करता है जिससे समाज के स्थापित व्यवस्था का उल्लंघन पाया जाता है। यह निश्चित है कि व्यक्ति में सामाजिकता की प्रवृत्ति पाई जाती है क्योंकि वह सामाजिक प्राणी है। क्योंकि इसके साथ ही साथ इस तथ्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि उससे व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना भी पाई जाती है। वह व्यक्तिगत इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद सामाजिक प्राणी है। उसका अपना अहं होता है और इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति अपने अहं की बलि देकर सामाजिक मूल्यों और आदर्शों का अधिक दिनों तक ढ़िढोरा पीटेगा।

प्रत्येक समाज के कुद निश्चित आदर्श, मापदंड, मूल्य और विचार होते हैं। ये आदर्श और प्रतिमान समाज में व्यक्ति की भूमिका या उसके कार्यो का निर्धारण करते हैं। ये आदश और प्रतिमान व्यक्ति के क्रियाओं का निर्देशन और संचालन करते हैं। इन प्रतिमानों की रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक दायित्व होता है। किंतु अपने ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं कि जब व्यक्ति इन मूल्यों और आदर्शों के अनुरूप अपना व्यवहार निर्देशित करने में असमर्थ रहता है। ऐसी अवस्था में उसके द्वारा जो व्यवहार किए जाते हैं उन्हें समाज विरोधी व्यवहारों के नाम से जाना जाता है।

प्रत्येक समाज का यह दायित्व होता है कि वह समाज विरोधी कार्यों पर रोक लगाए। इन समाज विरोधी कार्यों पर रोक लगाकर ही समाज में व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है। समाज विरोधी व्यवहारों को जिन साधनों के द्वारा रोका जाता है वे साधन ही सामाजिक नियंत्रण (Social Control) के नाम से जाने जाते हैं सामाजिक नियंत्रण समाज के वे साधन है जो व्यक्ति के व्यवहारों पर प्रतिबंध हो जाते हैं और सामाजिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

पारसन्स का विचार है कि कोई भी समाज इतना पूर्ण नहीं है कि सामाजिक व्यवस्था में पूर्ण संतुलन का विकास हो सके। अपने व्यक्तियों के व्यवहार इस प्रकार होते हैं जो संतुलन में बाधा उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार के व्यवहारों को नियंत्रित करके समाज में व्यवस्था स्थापित करने का जो कार्य किया जाता है उसे सामाजिक नियंत्रण के नाम से जाना जाता है।

सामाजिक नियंत्रण के संयंत्र

पारसन्स ने लिखा है कि सामाजिक नियंत्रण के सर्वाधिक आधारभूत संयत्रों को संस्थाओं के द्वारा समन्वित सामाजिक व्यवस्थायों अंतःक्रिया की सामान्य क्रियाओं में देखे जा सकते हैं।

पारसन्स के इस विचारधारा से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक समाज की एक निश्चित व्यवस्था होती है और इस व्यवस्था में ही सामाजिक नियंत्रण के साधन पाए जाते हैं। उसने सामाजिक नियंत्रण के निम्न साधन बतलाये हैं।

(1) संस्थाएँ - पारसन्स के अनुसार संस्थाएँ सामाजिक नियंत्रण के सबसे मौलिक साधन हैं। संस्थाएँ व्यक्ति की क्रियाओं को एक निश्चित दिशा प्रदान करती हैं। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति संतुलित व्यवहारों को अपनाता है। संतुलित व्यवहारों के परिणामस्वरूप समाज में संतुलन बना रहता है। संस्थायों व्यक्ति के कार्यों का भी निर्धारण करती हैं तथा दूसरे व्यक्तियों के साथ उनके सह-संबंधों को निश्चित करती हैं। इन संबंधों के परिणामस्वरूप समाज के सभी व्यक्तियों के व्यवहारों में अनुरूपता स्थापित हो जाती है। संस्थाएँ निम्न दो प्रकार से व्यक्ति के व्यवहारों को संतुलित करती हैं।

(अ) समय अनुसूची - संस्थाओं का कार्य व्यक्ति की क्रियाओं और समय के बीच सामजस्य या तालमेल स्थापित करना होता है। संस्थायों यह निश्चित करती हैं कि व्यक्ति को किस मसय में कौन से कार्य करने होंगे? उदाहरण के लिए संस्थायों निश्चित करती हैं कि विद्यार्थी किस दिन और समय में किस विषय की परीक्षा देंगे। इसी प्रकार व्यक्ति की विभिन्न क्रियाओं और उनके समय का निर्धारण करना संस्थाओं का मौलिक कार्य है। ऐसा करके संस्थाएँ सामाजिक संतुलन तो स्थापित करती हैं साथ ही संघर्षों को भी कम करती हैं इससे समाज में सामाजिक नियंत्रण बना रहता है।

(ब) संस्थागत प्राथमिकताएँ - संस्थाओं का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य प्राथमिकाआतों के आधार पर विभिन्न क्रियाओं का एक क्रम निर्धारित करना होता है। व्यक्ति को सामाजिक जीवन में अनेक क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। अनेक परिस्थितियों में एक ही समय में व्यक्ति अनेक क्रियाओं के बीच यह निश्चय नहीं कर पाता है कि वह पहले किस क्रिया को संपादित करे ऐसी स्थिति में संघर्ष असंतुलन और अव्यवस्था उत्पन्न होती है। पारसन्स कहता है कि संस्थाएँ इस संघर्ष को रोकती है विभिन्न क्रियाओं को प्राथमिकता के आधार पर उनका और ऐसा करके वह सामाजिक व्यवस्था में योग देता है।

(2) मौलिक संयंत्र - पारसन्स का विचार है कि सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया सामाजिक व्यवस्था में स्वभाविक रूप से चलती रहती है। पारसन्स का विचार है कि संस्थागत प्रतिमान वे मौलिक साधन हैं जो समाज में सामाजिक नियंत्रण की स्थापना करते हैं। प्रत्येक समाज के संस्थागत व्यवहार प्रतिमान (Institutional Behavior Pattern) होते हैं। और व्यक्ति इन्हीं संस्थागत व्यवहार प्रतिमानों के अनुसार क्रियाएँ संपादित करते हैं। पारसन्स का विचार है कि ये संस्थागत प्रतिमान शिथिल हो जाते हैं तो सामाजिक नियंत्रण के साधनों की आवश्यकता होती है। उसने संस्थागत व्यवहार प्रतिमानों को सामाजिक नियंत्रण के मौलिक संयत्र मानता है।

(3) धार्मिक संस्थाएँ - प्रत्येक समाज में धार्मिक संस्कार किसी न किसी रूप में पाए जाते हैं। जब सामाजिक नियंत्रण के अन्य साधन शिथिल हो जाते हैं तो धार्मिक संस्था समाज और व्यक्ति की क्रियाओं

को संगठित करके समाज में व्यवस्था की स्थापना करते हैं। इसका कारण यह है कि धार्मिक संस्थाओं के पीछे समाज की शक्ति और स्वीकृति होती है। इस प्रकार धार्मिक संस्कार समाज को नियंत्रित करने के मौलिक साधन हैं।

(4) द्वैतीयक संस्थाएँ - समाज नियंत्रित करने में पारसन्स के अनुसार द्वैतीयक संस्थाएँ भी कम महत्वपूर्ण होती हैं। इन द्वैतीयक संस्थाओं में शिक्षा संस्थाएँ में शिक्षा संस्थाएँ सांस्कृतिक प्रतिमान, राजनैतिक शक्तियाँ आदि महत्वपूर्ण होती है।

(5) अवरोध - पारसन्स ने अवरोध प्रणाली को सामाजिक नियंत्रण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है। उसके अनुसार अवरोध प्रणाली द्वारा समाज के उन तत्वों को संपर्क में आने से रोका जा सकता है जिनसे संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। इस प्रकार अवरोध का काम संघर्ष को रोकता और समाज में नियंत्रण स्थापित करना होता है।

(6) पृथक्करण - पृथक्करण सामाजिक नियंत्रण की प्रणाली है जिसमें कुछ प्रमुख सांस्कृतिक प्रतिमानों को सामाजिक संरना के अपने तत्वों से पृथक रखने की चेष्टा की जाती है। समाज में कुछ प्रतिनिधि प्रतिमानों विकसित किया जाता है और व्यक्ति को इन प्रतिमानों के अनुरूप व्यवहार करने प्रेरित किया जाता है। इस प्रकार समाज में नियंत्रण स्थापित होता है।

(7) अन्य संयंत्र - पारसन्स के अनुसार सामाजिक नियंत्रण के जिन साधनों की विवेचना की गई है उनके अतिरिक्त अन्य भी हैं जो समाज में नियंत्रण स्थापित करते हैं। ये साधन अनियोजित और होते हैं। पारसन्स ने इन साधनों को तीन भागों में विभाजित किया है -

(अ) ऐसे साधनों को प्रयोग में लाना जिससे सामाज विरोधी कार्यों को आरंभ होने से पहले ही कुचल दिया जाए।

(ब) ऐसे साधनों को प्रयोग में लाना जिससे विरोधी प्रवृत्तियों और कार्यों से व्यक्ति की रक्षा की जा सके।

(स) ऐसे प्रयास करना जिससे समाज विरोधी प्रवृत्तियों की दिशा परिवर्तित किया जाए और वे संरचनात्मक कार्य करने लगें।

पारसन्स का विचार है कि मनुष्यों की अंतःक्रियाएँ उसके व्यवहारों को प्रदर्शित करती हैं। संस्थाएँ, समय अनुसूची और प्राथमिकताओं के द्वारा उसके व्यवहारों को निर्दोष और संतुलित करती हैं। धार्मिक संस्कार अवरोध और क्करण को नियंत्रित करते हैं।

सामाजिक नियंत्रण के प्रकार

पारसन्स ने सामाजिक नियंत्रण के साधनों को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया है -

(1) सकारात्मक

सकारात्मक नियंत्रण वह है जो व्यक्ति अंतःकरण से जन्म लेता है। व्यक्ति अपने अंतःकरण से नियंत्रण में रहता पारसन्स के अनुसार नियंत्रण का यह सर्वश्रेष्ठ साधन है। सामाजिक और आदर्श, धर्म और शिक्षा संस्थाएँ तथा संस्कार नियंत्रण के साधन हैं।

(2) नकारात्मक

नियंत्रण का नकारात्मक साधन वह है जो शक्ति के भय से व्यक्ति के ऊपर नियंत्रण रखा जाता है। व्यक्ति अंतःकरण से नियंत्रण का पालन नहीं करना चाहता किंतु वह ऐसा भय के कारण करता है। इस प्रकार के नियंत्रण के साधन में शक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

(3) सुधारात्मक

सुधारात्मक नियंत्रण वह है जो शक्ति के व्यवहारों को कुछ इस प्रकार नियंत्रण कर देता है कि वह भविष्य में विचलनकारी व्यवहार न करे। नियंत्रण का सुधारात्मक साधन यह मानकर चलता है कि विचलनकारी व्यवहार करने वाला व्यक्ति एक बीमार व्यक्ति है। वह जो भी व्यवहार कर रहा है यह व्यवहार उसकी बीमारी का परिणाम है। जिस प्रकार बीमार व्यक्ति का इलाज किया जाता है ठीक उसी प्रकार विचलनकारी व्यवहार करने वाले का इलाज किया जाता है। व्यक्ति विचलनकारी व्यवहार इसलिए करता है कि उसका ठीक से समाजीकरण नहीं हो पाया है। सुधारात्मक नियंत्रण निम्नलिखित तत्वों पर आधारित है।

(अ) सुधारात्मक नियंत्रण में विचलनकारी व्यवहार करने वाले व्यक्ति के मन में इस प्रकार की भावना विकसित कर दी जाती है कि वह भी समाज एक उपयोगी प्राणी है। परिणामस्वरूप समाज को उस व्यक्ति की आवश्यकता है।

(ब) व्यक्ति जो भी विचलनकारी व्यवहार करता है समाज उन सभी विचलनकारी व्यवहारों को स्वीकार कर लेता है।

(स) समाज में ऐसी संस्थाओं का विकास किया जाता है जो सामाजिक जीवन में व्याप्त बुराइयों को दूर करने में समक्ष होते हैं।

(द) विलचनकारी व्यवहार करने वाले व्यक्ति को समाज के अनुरूप व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित और पुरस्कृत किया जाता है।

3.1.12.सारांश

इस इकाई में हमने टालकट पारसन्स के जीवन परिचय उनकी सामाजिक शैक्षणिक एवं राजनीतिक विचारधाराओं की जाना। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट हुआ कि किस प्रकार इनके जीवन की बदलती परिस्थितियों एवं समकालीन सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण धीरे-धीरे इन्हें एक समाजशास्त्रीय बना दिया।

पारसन्स संयुक्त राज्य अमेरिका में यूरोपीय समाजशास्त्रीय सिद्धांत और अपने स्वयं के भव्य शास्त्री सिद्धांत को तैयार करने के लिए जाने जाते हैं। इसके अलावा पारसन्स के कई स्नातक छात्रों पर उनके प्रभाव के माध्यम से अमेरिकी समाजशास्त्र पर गहरा असर पड़ा, जो अपने सिद्धांत में महत्वपूर्ण सिद्धांतवादी बन गए।

अर्थात् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है। पारसन्स ने समाज और उसके रखरखाव की आदेशिक संरचना का अध्ययन करने के प्रयोजनों के लिए विश्लेषण के विभिन्न मॉडल का उपयोग किया। इस रूप में पारसन्स का महत्वपूर्ण योगदान है जिसे मानव समाज सर्वदा याद रखेगा।

3.1.13. बोध प्रश्न

बहुविकल्पिय प्रश्न

- टालक्ट पारसन्स का जन्म कब और कहाँ हुआ था?
  (क) **1902** में अमेरिका के कोलारेडो
  (ख) **1924** में इंग्लैंड में
  (ग) **1927** के जर्मनी में
  (घ) **1928** फ्रांस में
- पारसन्स के कपनी कृति The Structure of Social Action कब लिखी ?
  (क) **1937** (ख) **1941** (ग) **1943** (घ) **1945**
- पारसन्स के विचारों पर किसका प्रभाव था ?
  (क) हैमिलटन (ख) मार्क्स और वेबर
  (ग) दुर्खीम (घ) उपरोक्त सभी
- पारसन्स मुख्य रूप से क्या माने जाते हैं ?
  (क) प्रकार्यवादी (ख) संरचनावादी
  (ग) संघर्षवादी (घ) समाजवादी
- इनमें से कौन सिद्धांत पारसन्स द्वारा नहीं दिया गया है?
  (क) सामाजिक क्रिया (ख) सामाजिक व्यवस्था
  (ग) प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकताएँ (घ) आदर्श प्रारूप

लघु उत्तरीय प्रश्न

- टालकर पारसन्स की परिवारिक परिस्थितियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए?
- टालकर पारसन्स के प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा का उल्लेख कीजिए?
- टालकर पारसन्स अर्थशास्त्रीय से समाजशास्त्रीय कैसे बन गए? इस कथन की समीक्षा कीजिए।
- टालकर पारसन्स के सामाजिक आर्थिक एवं व्यावसायिक जीवन का अध्ययन कीजिए?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- टालकर पारसन्स के शैक्षणिक जीवन एवं उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ का उल्लेख कीजिए?
- टालकर पारसन्स के तत्कालीन बौद्धिक पृष्ठ भूमि पर एक नजर डालिए?
- टालकर पारसन्स अर्थशास्त्री से ज्यादा समाजशास्त्री बनना क्यों अधिक पसंद करते हैं इस कथन की समीक्षा कीजिए?

3.1.14. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- एरन, रेमंड. (1976). *मेन करेंटस इन सोशियोलॉजिकल थॉट*. लंदन: पेंगुइन बुक्स.
- कोजर, एल, (1977). *एः मास्टर्स ऑफ सोशियोलॉजिकल थाट*. न्यूयार्क: हाकोर्ट ब्रास जोवानोविच.
- गिडेंस, एंथनी. (1971). *कैपीटलिज्म एंड मार्डन सोशल थियरी*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- टर्नर, जोनाथन. (1991). *दि स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थियरी*. बेलमेट: बेडसवर्थ.
- डहरेनडार्फ, राल्फ. (1968). *एशेज ऑन थियरी ऑफ सोसायटी*. स्टान्फर्ड: यूनिवर्सिटी प्रेस.
- टालकट, पारसन्स. (1949). *दि स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन*. न्यूर्याक: मैकग्राहिल.
- टालकट, पारसन्स. (1975). *कोलन एस्सेज इन सोशियोलॉजिकल थियरी*. नई दिल्ली: लाइट एंड लाइफ पब्लिशर्स.
- बोटोमोर, टी. बी. (1978). *सोशियोलॉजी*. बंबई: ब्लेकी एंड संस.
- जार्ज, रीटजर. (1992). *सोशियोलॉजिकल थियरी*. न्यूयार्क: मैकग्राहिल.
- सोरोकिन, पी. ए. (1978). *कंटेमपोरेरी सोशियोलॉजिकल थियरीज*. नई दिल्ली: कल्याणी पब्लिशर्स.
- हैरालबोस, एम. एवं हीलबर्न, (1995). एम. *सोशियोलॉजी*. लंदन: कालीनस एजुकेशनल.

इकाई- 2 : टालकट पारसन्स की सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

3.2.1. उद्देश्य
3.2.2. प्रस्तावना
3.2.3. पारसन्स का स्वेच्छावाद
3.2.4. उपयोगितावादी, प्रत्यक्षवादी और आदर्शवादी दृष्टिकोण
3.2.5. पारसन्स का दृष्टिकोण
3.2.6. सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत
3.2.7. सामाजिक व्यवस्था की परिभाषा
3.2.8. सामाजिक-व्यवस्था पर पारसन्स के विचार
3.2.9. पारसन्स का सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत
3.2.10. सामाजिक व्यवस्था की पूर्व आवश्यकताएँ
3.2.11. संस्थात्यीकरण
3.2.12. सामाजिक व्यवस्था का आतंरिक विभेदीकरण
3.2.13. सारांश
3.2.14. बोध प्रश्न
3.2.15. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.2.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप समझ पाऐंगे:-

- पारसन्स के स्वेच्छावाद तथा उपयोगीतावादी दृष्टिकोण प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण एवं आदर्शवादी दृष्टिकोण को।
- पारसन्स का सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत।
- पारसन्स का सामाजिक व्यवस्था की परिभाषा एवं उनका सामाजिक व्यवस्था पर व्यक्तिगत विचार।
- पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था का आतंरिक विभेदीकरण तथा संस्थात्यीकरण की अब धारणा को।
- पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था की पूर्व आवश्यकता।

3.2.2. प्रस्तावना

सन् 1937 ई. में पारसन्स की पहली महत्वपूर्ण रचना (द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन) प्रकाश में आई। सामाजिक चिंतन की इतनी अच्छी व्याख्या, इस पुस्तक से पहले नहीं की गई थी। पारसन्स के सिद्धांतों के बीच इसी पुस्तक से अंकुरित हुए। उपयोगितावाद की मान्यताओं का प्रभाव सामाजिक चिंतन पर बना हुआ है। समाज वैज्ञानिक सिद्धांतकार उपयोगितावाद की मान्यताओं से समझौता करते रहे हैं। पारसन्स ने स्वतंत्रता और अधिकांश नियंत्रण में संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया है। उपोगितावाद की व्याख्या करना हमारे लिए यहाँ पर संभव नहीं है। मोटे तौर पर केवल इतना कहा जा सकता है कि उपयोगितावाद व्यक्ति की स्वतंत्रता का पक्षघर है और सामाजिक या राजकीय नियंत्रण की मात्रा कम-से-कम करने के पक्ष में है। वही राज्य अच्छा है, जो शासन कम-से-कम करें और व्यक्ति को स्वतंत्रता अधिक-से-अधिक दे। इस सिद्धांत के राजनीतिक दार्शनिक और आर्थिक पहलू भी है। व्यापार और उपभोग पर कोई नियंत्रण नहीं होना चाहिए। सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने के लिए उपयोगितावादी दबाव डालने के पक्ष में नहीं है। पारसन्स के समय में उपयोगितावादी सिद्धांत की मान्यताओं के आधार पर चलने वाले पश्चिमी समाज में दुष्परिणाम प्रकट होने लगे थे। अनियंत्रित, मुक्त और असीमित वैयक्तिक स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप समाज की व्यवस्था में विघटन की प्रवृत्तियाँ उजागिर हो रही थीं। पारसन्स ही नहीं, बल्कि आज हर संवेदनशील सामाजिक-चिंतन इन प्रवृत्तियों के दुष्परिणाम से चिंतित है। जनतांत्रिक व्यवस्था के लिए उपयोगितावादी मान्यताएँ अनिवार्य स्तंभ हैं। जनतांत्रिक व्यवस्था में व्यक्ति की स्वतंत्रत्रा रहेगी। व्यक्तिगत संपत्ति रहेगी। व्यापार और मुनाफे का अधिकार रहेगा। व्यक्ति के मौलिक अधिकार रहेंगे। यदि ये सब रहेंगे तो समाज की व्यवस्था डांवाडोल होती रहेगी। यदि इन पर नियंत्रण लगाया जाएगा तो तानाशाही प्रवृत्तियों को मिलेगा। वैयक्तिक संपत्ति और मौलिक अधिकारों में काट-छाट को स्वीकारा नहीं जा सकता। अतः हमारे युग का सबसे बड़ा द्वंद्व यही है कि व्यक्ति स्वरूप भी और नियंत्रित भी रहे। अपने प्रकार्यवादी सिद्धांतों द्वारा पारसन्स ने इस द्वंद्व के समाधान का प्रयास किया है।

3.2.3. पारसन्स का स्वेच्छावाद

पारसन्स के स्वेच्छावादी सिद्धांत के विषय में हमारा तर्क यह है कि पारसन्स व्यक्ति को स्वेच्छा से कार्य करने की अनुमति तो देता है, परंतु समाज स्वतंत्रता के विकल्पों को कम करता है। दूसरे शब्दों में पारसन्स व्यक्ति को स्वतंत्र करता है, परंतु समाज को व्यक्ति पर बंधन लगाने के लिए तैयार करता है। (चोर से चोरी करने को कहता है और साह को जगे रहने(को कहता है। समाज व्यक्ति को दबाने के लिए सतर्क रहे और व्यक्ति अपने इच्छाओं के चुनाव करने में स्वतंत्र रहे। कुल मिलाकर व्यक्ति पर व्यवस्था इस कदर हाबी होती है कि अमेरिकी विचारक आज चिल्ला-चिल्ला कह रह रहे हैं कि हम स्वतंत्र है, परंतु व्यवस्था की चक्की में पिसे (मारक्यूज) जा रहे हैं। हम विशाल टेक्नॉलाजी का प्रयोग करके वातावरण को जहरीला बना रहे हैं तथा प्राकृतिक साधनों को समाप्त (शूमेकर) कर रहे हैं। टेक्नॉलाजी के कारण हम शून्यवाद को ओर अग्रसर है तथा हमारी संस्कृति और टेक्नॉलाजी से उत्पन्न व्यवस्था में, तालमेल (डेनियलबेल) नहीं

है। किस-किस का जिक्र किया जाए। आज का गर्म समाजवैज्ञानिक आंदोलन पारसन्स ऐसे विचारकों पर पूँजीवादी व्यवस्था की (जासूसी) करने का आरोप लगाता है। लोकविधि विज्ञान प्रकार्यवादी विश्लेषण की मान्यताओं को उखाड़ फेंकना चाहता है। यह आवाज भी बुलंद है कि हमारी संस्कृति और हमारा अभी तक का समाजविज्ञान, दोनों ही (संकटग्रस्त) हो चुके हैं। इस आवाज में एक आवाज भारत के प्रो. ए.के. शरन की भी हैं जिनके मतानुसार (परंपराओं का धरातल छोड़ने से यह संकट बढ़ गया है।) कहने का तात्पर्य यह है कि उपयोगितावाद और स्वेच्छावाद का संश्लेषण करने में पारसन्स का सिद्धांत समकालीन आलोचना आलोचकों के अनुसार सफल नहीं हुआ।

पारसन्स के स्वेच्छावाद का अर्थ यह है कि व्यक्ति या कर्त्ता दबावमुक्त होकर लक्ष्य प्राप्त करने के साधनों का चुनाव करता हैं तथा उसका चुनाव निजी या स्वेच्छापूर्ण होता है। व्यक्ति के सभी व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होते हैं। व्यक्ति लक्ष्यों की प्राप्ति करना चाहता है। स्वेच्छापूर्ण निर्णय का आधार (व्यक्ति के विचार) होते हैं। सामाजिक मूल्यों और सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार व्यक्ति स्वेच्छा से लक्ष्यों और लक्ष्यों तक पहुँचने के साधनों का चयन करता है। इस सरल-सी बात की व्याख्या पारसन्स में बड़े ही सूक्ष्म अवधारणाओं से किया है।

3.2.4. उपयोगितावादी, प्रत्यक्षवादी और आदर्शवादी दृष्टिकोण

पारसन्स ने सामाजिक प्रणाली के क्षेत्र में इससे पूर्ववर्ती योगदानों को तीन मुख्य विचारधाराओं में बाँटा है, ये है - उपयोगितावादी, प्रत्यक्षवादी और आदर्शवादी। उपयोगितावादी दृष्टिकोण के समर्थकों ने सामाजिक क्रिया को अत्यधिक व्यक्तिपरक दृष्टि से देखा। उन्होंने उपयोगितावादी तर्कसंगत परिकलन को केवल व्यक्ति के स्तर पर महत्व दिया। इस कारण से वे यह समझने में असमर्थ है कि सामाजिक जीवन सामूहिक रूप से समन्वित है, न कि बेतरतीब दूसरी ओर, प्रत्यक्षवादियों का विश्वास है कि सामाजिक पात्रों को अपनी सामाजिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान है। इससे पात्रों में किसी प्रकार की त्रुटि की संभावना नहीं रह जाती।

आदर्शवादियों का यह विचार है कि सामाजिक क्रिया राष्ट्र या देश जैसी सामाजिक प्रवृत्ति और विचारों द्वारा कार्यान्वित होती है। परिणामस्वरूप वे रोजमर्रा की वास्तविक बाधाओं की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। क्योंकि ये विचारों के स्वतंत्र रूप से कार्यान्वयन के मार्ग में रूकावट है। आइए आदर्शवाद की अवधारणा को समझ लें।

आदर्शवादी विचारधारा को मानने वालों का यह विश्वास है कि विश्व के निर्माण में मन की महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि यह विभिन्न प्रकार के अनुभवों का भंडार है। दर्शन के इतिहास में आदर्शवाद के विभिन्न रूपों को और उनके विभिन्न प्रकार से अनुप्रयोंगों को देखा जा सकता है। इसके मूलभूत रूप को सामान्यतः अस्वीकार कर दिया गया है। क्योंकि यह अहंवाद के समान है। अहंवाद का मतलब यह है कि जो वस्तु जगत में है। वह व्यक्तियों के अपने मन के क्रियाकलापों के सिवाय कुछ नहीं है। यानी वास्तव में हमारे (अह(के अलावा और किसी चीज का अस्तित्व नहीं है।

लेकिन, सामान्यत आदर्शवादी बाह्य जगत यानी प्राकृतिक जगत् के अस्तित्व को पूरी तरह से स्वीकार करते हैं। उनका यह दावा नहीं है। हक इस जगत को मात्र विचार प्रक्रिया में रूपातरित किया जा सकता है। उनके विचार में मन क्रियाशील है और वह कानून धर्म कला और गणित आदि को उत्पन्न करने और धारण करने में समर्थ है जिनका अस्तित्व अन्यथा संभव नहीं था।

अठारहवीं शताब्दी के आयरिश दार्शनिक जॉर्ज बर्कले को इस दार्शनिक विचारधारा से बहुत निकट से माना जाता है। उसकी यह मान्यता थी कि प्रत्येक वस्तु के जिन पक्षों से हम परिचित है उनको वस्तुतः मन में विद्यमान विचारों मे रूपांतरित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए हमारे मन में कुर्सी या गाय का विचार पहले से ही विद्यमान होता है इसीलिए जब कुर्सी या गाय को देखा जाता है। तो उन्हें पहचान लिया जाता है। इस प्रकार प्रेक्षक (कुर्सी या गाय जैसी) बाहरी वस्तुओं को अस्तित्व में नहीं लाता। बर्कले का यह विचार था कि वास्तव में, मनुष्य के मन में बाहरी वस्तुओं के सही विचार सीधे ईश्वर द्वारा प्रदत्त है।

अपनी पुस्तक स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन में पारसन्स ने इस वर्गीकरण का उपयोग दुर्खाइम, परेटो और वेबर जैसे प्रमुख विचारकों के योगदान की समीक्षा करने के लिए किया। उसने विभिन्न विचारधाराओं के विचारकों द्वारा उनकी कृतियों में चर्चित विभिन्न तत्वों की ओर बहुत विस्तार से संकेत किया, लेकिन ऐसा करते समय पारसन्स ने सामाजिक क्रिया और क्रिया के ढाँचे के विकास को समझने के लिए इन लेखकों की महत्वपूर्ण बातों को भी निकलवाने का प्रयास किया।

3.2.5. पारसन्स का दृष्टिकोण

पारसन्स ने यह बात जोर देकर कही कि सामाजिक प्रणाली और सामाजिक वास्तविकता के प्रति उपयोगितावादी और आदर्शवादी दोनों दृष्टिकोण इकतरफा है। उपयोगितावादी दृष्टिकोण सामाजिक प्रणालियों को मनुष्यों (व्यक्तियों) की तर्कसंगत अतः प्रेरणाओं का परिणाम मानता है और इसके द्वारा अपनी आवश्यकताओं और लालसाओं को क्रमबद्ध व्यवस्थाओं में संघटित करता है। वे व्यवस्थाएँ संविदात्मक परंपरता के द्वारा संगत हितों पर आधारित है। संविदात्म परंपरता का एक अच्छा उदाहरण राज्य शासन व्यवस्था है, जो संगठित अधिकार तंत्र का प्रतिनिधित्व करती है। इस क्रमबद्ध व्यवस्था का एक और उदाहरण बाजार व्यवस्था है, जो आर्थिक हितों के संविदात्मक संबंधों पर आधारित है।

पारसन्स के अनुसार उपयोगितावादी समाज वैज्ञानिकों द्वारा विश्लेषित क्रमबद्ध व्यवस्थाओं में नैतिक मूल्यों की भूमिका पर ध्यान नहीं दिया गया है। इसी तरह, सामाजिक प्रणाली की आदर्शवादी पद्धति में मूल्यों और विचारों को अधिक महत्व दिया जाता है और सामाजिक आचरण को बहुत कम। वेबर भी इसी परंपरा से संबद्ध है। उसके अनुसार, पूँजीवाद को आरंभिक अवस्था में प्रोटेस्टेट नैतिकता से मदद मिला। वेबर और कट्टर आदर्शवादियों में इतना ही अंतर है कि वेबर ने कभी यह नहीं कहा है कि पूँजीवाद का कारण प्रोटेस्टेट नैतिकता मात्र है, लेकिन इतना तो मानना ही होगा कि वेबर ने (तर्कसंगत आत्मसंयम) या (लौकिक आत्मसंयम) से संबंधित कुछ मूल्यों का विस्तार से वर्णन किया, परंतु उसने उपयोगी वस्तुओं की खोज या आवश्कताओं की भूमिका उपेक्षा की।

टालकट पारसन्स के अनुसार सामाजिक प्रणाली की आदर्शवादी और उपयोगितावादी दोनों विचारधाराओं में पूर्वमान्यता के अनुसार मानव अंतः प्रेरणा में कुछ विशिष्टताओं की कल्पना विद्यमान है। पूर्वमान्य से हमारा अभिप्राय है, जो पहले से ही विद्यमान है। सामाजिक प्रणाली के प्रति उपयोगितावादी दृष्टिकोण की विशेषता आवश्यकताओं के नियमन में तर्कसंगत का होना हैं और आदर्शवादी दृष्टिकोण की विशेषता आधारभूत मूल्यों और विचारों के प्रति वचनबद्धता है।

इस प्रणाली के अंतर्गत उपयोगितावादी दृष्टिकोण में व्यक्ति की धारणा तो है, लेकिन वह केवल कुछ विशिष्ट योग्यताओं का अभूत रूप हैं (जो उसके पूर्व अनुभवों पर आधारित विशेषता है)।

आदर्शवादी दृष्टिकोण की स्थिति भी लगभग वैसी ही है। बस केवल अंतर इतना है कि उसमें पूर्व अनुभवाश्रित दृष्टि से मानी गई विशेषताओं में भिन्नता है। आदर्शवादी यह मानते हैं कि मनुष्य विश्वव्यापी मानसिक परिकल्पना के अनुरूप कार्य करते हैं।

प्रत्यक्षवादियों का विचार इससे एकमद अलग है। उनकी यह धारणा है कि वास्तविक मानव-क्रिया स्थिति के पूर्ण ज्ञान के परिणामस्वरूप होती है। इस प्रकार उनके विचारों में सुनिश्चितता है और लचीलेपन का अभाव होता है। उनके यहाँ कार्य करने का एक ही तरीका है और वह सही तरीका है। परिणामस्वरूप उनकी सामाजिक क्रिया में मूल्यों की जगह नहीं होती और गलतियों या विभिन्नता की कोई गुजाइश नहीं होती। इस प्रकार, उपयोगितावादी, आदर्शवादी और प्रत्यक्षवादी विचारधाराओं के समर्थको में सभी ने कुछ महत्वपूर्ण बातें कही है, लेकिन हर महत्वपूर्ण बात के अनोखेपन से ही पारसन्स को एतराज है। उपयोगितावादियों का ध्यान केवल व्यक्ति की तर्कसंगत रुचि पर है, लेकिन वे सामूहिक रुचि की बात भूल जाते हैं। आदर्शवादी मूल्यों की बात करते हैं। लेकिन वे मूल्यों पर अनुभवाश्रित वास्तविकताओं से पड़ने वाले दबाव को भूल जाते हैं। अंत में, प्रत्यक्षवादी स्थिति के पूर्ण ज्ञान को महत्व देते हैं, लेकिन वे मूल्यों गलतियों और परिवर्तनों की भूमिका को नजर अंदाज कर देते हैं।

इन ऊपर दी गई बातों को ध्यान में रखते हुए पारसन्स ने सामाजिक प्रणालियों के अध्ययन के लिए एक अन्य दृष्टिकोण सामने रखा जिसे उसने (क्रियात्मक दृष्टिकोण) कहा ।

3.2.6. सामाजिक व्यवस्था का सिद्धात

पारसन्स ने दो महत्वपूर्ण सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है जिसमें पहला तत्वकाल सामाजिक व्यवस्था है और दूसरा तत्व सामाजिक क्रिया। यद्यपि सामाजिक व्यवस्था के बारे में पारसन्स के पहले भी अनेक विद्वानों ने अपने विचारों का प्रतिपादन किया है किंतु इन सभी विचारकों की तुलना में पारसन्स का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सामाजिक क्रिया और सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांत के कारण ही पारसन्स आज मूर्धन्य समाजशास्त्रियों में गिना जाता है। आधुनिक समाजशास्त्र को पारसन्स की सबसे महत्वपूर्ण देन उसका सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत है।

पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण सिद्धांत का प्रतिपादन अपनी प्रख्यात पुस्तक (सामाजिक व्यवस्था) (The Social System) में किया है। पारसन्स की यह पुस्तक 1951 मे पहली बार प्रकाश में आई है। पारसन्स के अनुसार सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति की अपने सामाजिक आवश्यकताएँ होती हैं। इन आवश्यकताओं के संदर्भ में व्यक्ति को अपने सामाजिक क्रियाएँ करनी पड़ती

है। व्यक्ति सामाजिक प्राणी है इस परिणामस्वरूप वह अन्य प्राणियों के साथ सामाजिक अंतः क्रियाएँ (Social Interaction) करता रहता है। इन्ही सामाजिक अंतः क्रियाओं के परिणामस्वरूप व्यवस्था का जन्म होता है। इस संदर्भ में पारसन्स ने जो विचार व्यक्त किए हैं वे इस प्रकार है - "अत्यंत ही सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक व्यवस्था एक ऐसी परिस्थिति में, जिसका कि कम से कम एक भौतिक या वातावरण संबंधी पहलू हो, अपनी इच्छाओं या आवश्यकताओं की आदर्श पूर्ति की प्रवृत्ति से प्रेरित एक या एक से अधिक वैयक्तिक कर्ताओं की एक-दूसरे के साथ अंतः क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। इन अंतः क्रियाओं में लगे हुए व्यक्तियों का पारस्परिक संबंध सांस्कृतिक रूप से संरचित तथा स्वीकृत प्रतीकों की एक व्यवस्था द्वारा पारिभाषित और मध्यस्थिति होता है।

3.2.7. सामाजिक व्यवस्था की परिभाषा

पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था की व्याख्या करते हुए लिखा है कि इसका विकास तब होता है जब कि एक भौतिक पक्षवादी सामाजिक परिस्थिति तथा आज द्वारा स्वीकृत सांस्कृतिक प्रतीकों की एक व्यवस्था के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के कर्ता अपने आदर्शों की प्राप्ति के लिए क्रियाएँ करने में संलग्न रहते हैं। पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था की जो परिभाषाएँ दी हैं वे निम्नलिखित हैं -

(1) "सामाजिक व्यवस्था आवश्यकत रूप में अंतः क्रियात्मक संबंधों का है।"

(2) "क्रिया के तत्वों की एक संगठित प्रणाली जो बहुसंख्यक अंतःआत्मक कर्ताओं से संबंधित है, सामाजिक व्यवस्था है।"

(3) "सामाजिक व्यवस्था अंतः क्रिया करने वाले सदस्यों की एक प्रतिनित व्यवस्था है, यह विभिन्न वैयक्तिक कर्ताओं की अंतः क्रियाओं का एकीकृत रूप है। जिनके पारस्परिक संबंध सामाजिक संरचना के लिए दिशा निर्देशन काम करते हैं और जिसके परिणामस्वरूप की व्यवस्था का जन्म देता है।"

यह हम पारसन्स के द्वारा दी गई सामाजिक व्यवस्था को उपर्युक्त परिभाषाओं विवेचना करें तो स्पष्ट होता है कि प्रत्येक समाज में खुद निश्चित प्रतीक।

3.2.8. सामाजिक-व्यवस्था पर पारसन्स के विचार

पारसन्स का प्रमुख ग्रंथ (सोशल सिस्टम) 1952 में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था पर व्यापक रूप से विचार प्रस्तुत किया है। इन्हीं विचारों के आधार पर उसका सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत प्रसिद्ध हो गया है। वस्तुतः पारसन्स के क्रिया सिद्धांत और सामाजिक व्यवस्था सिद्धांत में परस्पर घनिष्ठ संबंध है। इस आधार पर पारसन्स के क्रिया सिद्धांत को सामाजिक व्यवस्था सिद्धांत का पूरक माना जा सकता है।

सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को सर्वप्रथम पारसन्स ने स्पष्ट करने की चेष्टा की है। सामाजिक व्यवस्था की परिभाषा करते हुए पारसन्स ने लिखा है - "एक सामाजिक व्यवस्था एक ऐसी दशा या स्थिति में परस्पर अंत-क्रिया करने वाले वैयक्तिक कर्ताओं की बहुलता में निर्मित होती है जिसका कम से कम एक भौतिक या पर्यावरण कर्ताओं की बहुलता मे निर्मित होती है जिसका कम से कम एक

भौतिक या पर्यावरण संबंध पक्ष होता है। ऐसे कर्ता जो अधिकतम संतुष्टि की प्रवृत्ति से प्रेरित होते हैं और एक-दूसरे के साथ उनकी स्थितियों के साथ जिनके संबंध की परिभाषा एवं निर्णय संस्कृति द्वारा निर्मित और सामान्य सहभागी प्रतीकों की व्यवस्था द्वारा होती है।

इस प्रकार पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था के मुख्य तत्वों के प्रति उल्लेख करते हुए सामाजिक व्यवसथा की अवधारणा को विश्लेषित किया है। पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था को एक स्थिति, सामाजिक परिस्थिति, भौतिक या पर्यावरण संबंधी व्यवस्था बताया है। उसके अनुसार सांस्कृतिक-सामाजिक व्यवस्था में प्रतीकों का संचयन होता है। इसके द्वारा व्यक्तियों को अधिकतम संतुष्टि होती है। पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था को इसीलिए अंतःक्रियात्मक संबंधों का जाल कहा है। इसलिए एक व्यवस्था में परस्पर अंतःक्रिया होना आवश्यक है। सामाजिक दृष्टि से सामाजिक व्यवस्था व्यक्तियों की परस्पर अंतःक्रियाओ का एक ढाँचा है। ये अंतःक्रियाएँ सांस्कृतिक-सहभागी प्रतीकों के माध्यम से सामाजिक पर्यावरण के नियमों के अनुसार होती है। इस प्रकार पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को इसके तत्वों के विश्लेषण द्वारा समझाया है। उसकी अवधारणा को समझने के लिए पारसन्स द्वारा विश्लेषिण एवं प्रतिपादित सामाजिक व्यवस्था के तत्वों को समझना आवश्यक है।

3.2.9. पारसन्स का सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत

पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांत की व्याख्या अपनी पुस्तक दी सोशल सिस्टम (1952) में की है। पारसन्स का सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इन्होंने सामाजिक व्यवस्था के अनेक पक्षों की व्याख्या इस सिद्धांत में की हैं।

सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा

पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को अनेक कारकों के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। उसने सामाजिक व्यवस्था की परिभाषा करते हुए लिखा है - "एक सामाजिक व्यवस्था एक ऐसी स्थिति या दशा में परस्पर अंतःक्रिया करने वाले वैयक्तिक कर्ताओं की बहुलता में निर्मित होती है जिसका कम से कम एक भौतिक या पर्यावरण संबंधी पक्ष होता है, ऐसे कर्ता जो अधिकतम संतुष्टि की प्रवृत्ति से प्रेरित होते हैं और एक-दूसरे के साथ तथा उनकी स्थितियों के साथ जिनके संबंध की परिभाषा एवं निर्णय संस्कृति द्वारा निर्मित और सामान्य सहभागी प्रतीकों की व्यवस्था द्वारा होती है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था के मुख्य तत्वों को अपनी परिभाषा में व्यक्त कर दिया है। उसके अनुसार सामाजिक व्यवस्था वह स्थिति है जो एक सामाजिक परिस्थिति, जिसका कम से कम एक भौतिक या पर्यावरण-संबंधी पक्ष हो, में सामान्य रूप से स्वीकृत सांस्कृतिक संरचित एवं सहभागी प्रतीकों द्वारा परिभाषित एवं अभिव्यक्ति अनेक वैयक्तिक कर्ता अपनी इच्छाओं की अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के लिए परस्पर सामाजिक अंतःक्रियाओं में संलग्न होते हैं। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था सामाजिक अंतःक्रियाओं का एक जाल है, जिसमें अंतःक्रियाएँ सांस्कृतिक प्रतीकों एवं प्रतिमानों के अनुसार होती है

और कर्ताओं की अधिकतम संतुष्टि करती हैं। इस तथ्य को हम सामाजिक व्यवस्था के तथ्यों के विवेचन से और भी अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे।

सामाजिक व्यवस्था के मौलिक तत्व

सामाजिक व्यवस्था के मौलिक तत्व, जैसा कि पारसन्स की परिभाषा में स्पष्ट है, अग्रलिखित पाँच हैं-

(1) एकाधिक वैयक्तिक कर्ता

(2) सामाजिक अंतःक्रिया, जो कर्ताओं के बीच होती है,

(3) अंतःक्रियाओं का लक्ष्य या इच्छाओं की प्रेरणा

(4) कम से कम एक भौतिक या पर्यावरण संबंधी पक्ष, जिसमें अंतःक्रियाएँ घटित होती हैं, और

(5) सांस्कृतिक संरचना की व्यवस्था, जो अंतःक्रियाओं को परिभाषित करती है।

अब हम इन तत्वों पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे:

(1) एकाधिक वैयक्तिक कर्ता

सामाजिक व्यवस्था के लिए एक से अधिक या अनेक कर्ताओं (व्यक्तियों) जो कि अंतःक्रिया करते हैं कि आवश्यक होती है। बिना व्यक्तियों के कोई भी सामाजिक व्यवस्था निर्मित नहीं हो सकती। कर्ता शब्द का प्रयोग पारसन्स ने इसलिए किया है कि व्यक्तियों से ही सामाजिक व्यवस्था निर्मित नहीं होती, अपितु उनकी क्रियाओं (Actions) से होती है। यह क्रियाएँ एक से अधिक कर्ताओं की होना चाहिए अर्थात् अंतःक्रिा होनी चाहिए।

(2) सामाजिक अंतःक्रिया

सामाजिक व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण तत्व सामाजिक अंतःक्रिया है। अंतःक्रिया ही से सामाजिक व्यवस्था निर्मित होती है। इसीलिए पारसन्स ने लिखा है - "सामाजिक व्यवस्था अनिवार्य रूप से अंतःक्रियात्मक संबंधों का जाल है"। इसका अभिप्राय यह है कि सामाजिक व्यवस्था बार-बार घटित होने वाल (Recurring) अंतःक्रियात्मक संबंधों के प्रतिमानों की व्यवस्था है।

(3) प्रेरक इच्छाएँ

सामाजिक व्यवस्था का एक तत्व प्रेरक इच्छाएँ हैं। व्यक्ति या कर्ता क्यों क्रिया करता है या अंतःक्रिया का क्या प्रयोजन या उद्देश्य है। व्यक्ति इन प्रेरक इच्छाओं से प्रेरित होकर ही अंतःक्रिया करता है।

(4) परिस्थिति

सामाजिक व्यवस्था के लिए परिस्थिति भी आवश्यक है क्योंकि सामाजिक व्यवस्था अंतःक्रिया पर आधारित है और अंतःक्रिया शून्य में नहीं होती है। अंतःक्रिया के घटित होने के लिए परिस्थिति आवश्यक है। पारसन्स के अनुसार कम से कम एक भौतिक या पर्यावरण संबंधी परिस्थिति अवश्य होनी चाहिए। इसलिए भौतिक या पर्याव्रण संबंधी पक्ष पर पारसन्स ने अधिक बदल दिया है।

(5) सांस्कृतिक व्यवस्था

सामाजिक व्यवस्था के लिए सांस्कृतिक व्यवस्था भी आवश्यक है। पारसन्स ने लिखा है कि उनके (कर्ताओं) के परिस्थिति के साथ तथा एक-दूसरे के साथ संबंध सांस्कृतिक व्यवस्था के द्वारा परिभाषित एवं अभिव्यक्ति होते हैं। आवश्यकताओं की पूर्ति सांस्कृतिक व्यवस्था के द्वारा प्रदत्त एवं मान्य पद्धतियों के द्वारा ही की जा सकती है। मानवीय लक्ष्य, इच्छाएँ एवं प्रेरणाएँ भी सामाजीकृत होती हैं और सांस्कृतिक व्यवस्था के द्वारा निर्धारित होती हैं। इच्छाओं की अधिकतम आदर्शपूर्ति भी सांस्कृतिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित साधनों से ही होती है। कर्ताओं (व्यक्तियों) द्वारा किए जाने वाली सामाजिक अंतःक्रियाएँ सांस्कृतिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित प्रतिमानों के अनुसार ही होती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक व्यवस्था की एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होती है जिसमें वह पनपती, विकसित होती और क्रियाशील रहती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सामाजिक व्यवस्था की क्रियाशीलता के लिए एकाधिक वैयक्तिक कर्ता (व्यक्तित्व व्यवस्था) अंतःक्रियात्मक व्यवस्था (सामाजिक व्यवस्था) और सांस्कृति व्यवसथा की आवश्यकता होती है। इससे यह और भी अधिक स्पष्ट हो गया होगा कि व्यक्तिव व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक व्यवस्था एक-दूसरे से अत्यधिक अंततःसंबंधित हैं।

सामाजिक व्यवस्था के संरचात्मक तत्व या अंग सामाजिक व्यवस्था के संरचनात्मक तत्वों या अंगों के संबंध में भी पारसन्स ने प्रकाश डाला है। उसने सामाजिक व्यवस्था के चार प्रमुख संरचनात्मक तत्व बताए हैं-

(1) नातेदारी व्यवस्था

(2) सामाजिक स्तरीयकरण की व्यवस्था

(3) शक्ति व्यवस्था और

(4) धर्म तथा मूल्य व्यवस्था।

(1) नातेदारी व्यवस्था

नातेदारी व्यवस्था का सामाजिक व्यवस्था के लिए अत्यधिक महत्व है। प्रत्येक समाज में व्यक्ति कई तरह के सूत्रों से संबंध होते हैं। इन सूत्रों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं सर्वव्यापी सूत्र वह है जो व्यक्तियों को रक्त द्वारा बद्ध करता है। रक्त द्वारा बद्ध होने के कारण ही व्यक्ति अपने संबंधी एवं दूसरे व्यक्ति में अंतर खता है। समीप से समीप एवं दूर से दूर रक्त संबंधियों में भी संबंध निर्धारित किया हुआ होता है। नातेदारी से हमारा तात्पर्य उन व्यक्तियों से होता है जो हम से रक्त द्वारा संबंधित हों अथवा समाज द्वारा जो इस प्रकार के संबंध अनुमोदित हों। नातेदारी का अर्थ विभिन्न समाजों में विभिन्न है। चार्ल्स विनिक के मतानुसार - "नातेदारी प्रणाली में समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वे संबंध आ सकते हैं जो कि माने हुए एवं रक्त संबंधों पर आधारित हों। नातेदारी में केवल प्राणीशास्त्रीय संबंध ही नहीं आते किंतु समाज द्वारा मान्यता प्राप्त संबंध भी आते हैं। रक्त संबंध सामाजिक अर्थों में नातेदारी का केवल विकास करने में ही सहायक होता है। समाज में यह सत्ता होती है कि वह किसी भी रक्त संबंधी नाते को उपेक्षित अथवा नियंत्रित करे।

समाज कृत्रिम संबंधों का निर्माण कर सकता है तथा रक्त संबंधों को अनियंत्रित सीमा तक बढ़ा सकता है। लेबी-स्ट्रास के अनुसार - "नातेदारी प्रणाली वंश अथवा रक्त संबंधी कर्म विषयक सूत्रों से निर्मित नहीं होती जो कि व्यक्ति को मिलती है, यह मानव चेतना में विद्यमान रहती है, यह विचारों की निरंकुश प्रणाली है, वास्तविक परिस्थिति का स्वतः विकास नहीं है"। उदाहरण के लिए, निसंतान माता-पिता बच्चों को गोद ले लेते हैं। अतः यह नाता कृत्रिम ही हुआ। इस प्रकार रक्त संबंध एवं गोत्र जो कि रक्त संबंध की बहिर्विवाही विविधता है, कृत्रिम रूप से आधे से अधिक वास्तविक रक्त संबंधियों का अपवर्जन करता है। किंतु दूसरी ओर रक्त सूत्र को इतना अधिक पूर्वज वंश की ओर बढ़ा देता है कि एक कल्पित गोत्र पूर्वज, एक रक्त संबंधी मान लिया जाता है। अतः स्पष्ट है कि नातेदारी केवल रक्त संबंध पर ही आधारित नहीं अपितु समाज स्वीकृत कोई भी व्यक्ति नातेदार कहा जा सकता है।

नातेदारी के दो रूप एफिनल-संबन्ध तथा समान रक्त-संबंध

सभी समाजों मं स्वीकृत हैं क्योंकि प्रत्येक समाज में विवाह तथा रक्त संबंधियों की आवश्यकता होती है। ये दोनों संबंध सर्वव्यापी तथा अति साधारण समाज में भी पाए जाते हैं। क्योंकि फर्थ के अनुसार - "यह एक छड़ है जिसके सहारे प्रत्येक व्यक्ति जीवन भर रहता है। संबंधी अपने संबंधी की निःशुक्ल सेवा करता है। आपत्तिजनक स्थितियों में केवल एक वही सहारा होता है। किंतु फिर भी नातेदार की कुछ ऐसी श्रेणियाँ होती हैं जिनमें कि सामीप्य तथा दूरस्थता रहती है। अधिकारों तथा कृतज्ञताओं में भी अंतर होता है।

एफीनल संबंध (विवाह संबंधी) पति तथा पत्नी के बीच होता है। इनमें आपस में कोई रक्त संबंध नहीं होता है। ये संबंध केवल दो व्यक्तियों को ही आपस में बद्ध नहीं करते वरन दो परिवारों को भी संबंधों की श्रृंखलाओं में बद्ध कर देते हैं। इन दोनों परिवारों के संबंधी अर्थात् पति के संबंधी - भाई, बहिन, माता-पिता इत्यादि एवं पत्नी के संबंधी - माता-पिता, बहिन,भाई आदि एफीनल संबंधी है। उन परिवारों में चूँकि ये रक्त द्वारा संबंधित नहीं हैं, विवाह द्वारा संबंधित हैं।

परिवार में समान रक्त संबंध दो व्यक्तियों में होता है - माता-पिता एवं बच्चों के बीच दूसरा भाई-बहनों के बीच। इन रक्त संबंधियों में समान रुधिर रहता है। इस संबंध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि समान-रक्त-संबंध केवल प्राणीशास्त्रीय संबंध द्वारा ही स्थापित नहीं होता। यह भी आवश्यक नहीं कि समान-रक्त-संबंधियों में प्राणीशास्त्रीय संबंध भी है। समान-रक्त-संबंध के शाब्दिक अर्थ को हमें यहाँ विस्तृत रूप में प्रयोग करना होगा। समान-रक्त-संबंध में प्राणीशास्त्रीय तत्वा तो होता ही है किंतु इसके अतिरिक्त संबंधियों को जब तक सामाजिक मान्यता प्राप्त न हो, वे समान-रक्त-संबंधी नहीं कहला सकते। लावी का मह है कि समाज किसी भी रक्त संबंध को अस्वीकार करता है एवं किसी भी व्यक्ति को रक्त संबंधी ठहरा सकता है। इस प्रकार प्राणीशास्त्रीय संबंध गौण तथा सामाजिक स्वीकृति मुख्य है। बच्चे को गोद लेने की प्रथा सामाजिक स्वीकृति का सर्वव्यापी उदाहरण है।

नातेदारी व्यवस्था का प्रकार्यात्मक महत्व बहुत अधिक है। नातेदारी व्यवस्था सामाजिक क्षेत्र में स्थिति एवं काय का निर्धारण करती है। सामाजीकरण की प्रक्रिया का उत्तरदायित्व इसी व्यवस्था पर है।

परिवार इसी व्यवस्था की एक इकाई है। नातेदारी व्यवस्था यौन संबंधों को भी परिभाषित एवं नियंत्रित करता है। विवाह आदि व्यवस्थाओं को परिभाषित एवं नियंत्रित करती है। इस प्रकार नातेदारी व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख तत्व है।

(2) सामाजिक स्तरीयकरण की व्यवस्था

सामाजिक स्तरीकरण किसी न किसी रूप में हर समाज में पाया जाता है। अति प्राचीन एवं सरल समाजों में सामाजिक स्तरीकरण पाया जाता था। आदिम वन्य जातीय समाजों में भी यह पाया जाता है। आधुनिक समाज में भी सामाजिक स्तरीकरण पाया जाता है। इस प्रकार, सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया हर समाज में पाई जाती है। यहाँ तक कि वर्ग विहीन समाज होने के दावा करने वालो साम्यवादी समाजों में भी सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया पाई जाती है। सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया सार्वभौमिक है। सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया का अर्थ है समाज में स्तरों का निर्माण। समाज को विभिन्न स्तरों में विभाजित करके कुछ स्तर उच्च समझे जाते हैं और कुछ निम्न। इस प्रकार के स्थाई समूहों का निर्माण हो जाता है। मुरे ने सामाजिक स्तरीकरण की परिभाषा करते हुए लिखा है - "स्तरीकरण समाज को (उच्च(और (निम्न(सामाजिक स्तरीकरण, समाज का वह विभाजन है, जिसमें उसे स्थाई समूहों अथवा श्रेणियों में विभाजित कर दिया जाता है और वे एक-दूसरे से उच्चता एवं आधीनता के संबंध के आधार पर श्रृंखलाबद्ध रहती है। सदरलैंड एवं बुडवर्ड ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है - "स्तरीकरण साधारणता अंतःक्रिया अथवा विभेदीकरण की एक प्रक्रिया है, जिसके ,द्वारा कुछ व्यक्तियों को दूसरों की तुलना में उच्च स्थिति प्राप्त हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि स्तरीकरण समाज को कुछ समूहों में विभक्त करके उन्हें उच्च एवं निम्न स्तरों में स्थापित करने की प्रक्रिया को कहते हैं।

सामाजिक स्तरीकरण के अनेक आधार है। इन आधार अथवा आधारों पर सामाजिक स्तरीकरण किया जाता है:

(1) आयु- आयु प्रायः व्यक्ति की मानसिक परिपक्वता को प्रकट करती है। आयु के साथ ही साथ सांसारिक अनुभव भी बढ़ता जाता है। अतः आयु के आधार पर कुछ समाजों में स्तरीकरण किया जाता है। प्रायः अधिक आयु के व्यक्तियों को उच्च स्थान दिया जाता है।

(2) लिंग- लिंग के आधार पर भी स्तरीकरण होता है। प्रायः पुरुषों को स्त्रियों से उच्च माना जाता है।

(3) प्रजातीय आधार- प्रजातीय आधार पर भी स्तरीकरण किया जाता है। श्वेत प्रजाति को उच्चतम माना जाता है और श्याम प्रजातियों को निम्नतम।

(4) आर्थिक- स्तरीकरण का आर्थिक आधार बहुत महत्वपूर्ण है। आधुनिक समाजों मं इसका महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है।

(5) व्यवसाय- व्यवसाय भी स्तरीकरण का महत्व पूर्ण आधार है। इसी प्रकार के अन्य आधार भी विभिन्न समाजों मे पाए जाते हैं।

सामाजिक स्तरीकरण समाज की एक कार्यात्मक आवश्यकता है। इसका समाज में अत्यधिक महत्व है। निम्न कारणों से इसकी आवश्यकता समाज में अनुभव होती है।

(1) श्रम-विभाजन की व्यवस्था - सामाजिक स्तरीकरण श्रम-विभाजन की एक व्यवस्था है। हर स्तर के कुछ निश्चित कार्य होते हैं जिन्हें उस स्तर के सदस्य को पूरा करना पड़ता है। भारत की जाति व्यवस्था इसका एक उदाहरण है। हर जाति का एक विशिष्ट कार्य है। इसके कारण हर प्रकार के कार्य लोग करते हैं और समाज में व्यवस्था बनी रहती है।

(2) कुशलता एवं योग्यता में वृद्धि के लिए प्रोत्साहन - सामाजिक संस्तरण के कारण व्यक्तियों में कुशलता एवं योग्यता में वृद्धि करने के लिए होड़-सी लग जाती है। हर व्यक्ति उच्च स्थिति को प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है। इसे वह अपनी कुशलता एवं योग्यता में वृद्धि करके प्राप्त कर सकता है। अतः वह अधिक से अधिक परिश्रम करता है।

(3) मनोवैज्ञानिक संतोष प्रदान करना - सामाजिक संस्तरण के कारण लोगों को जो कुछ उनके स्तर के अनुसार प्राप्त होता है उससे वे संतुष्ट रहते हैं।

सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था पुरस्कारों के वितरण की भी व्यवस्था है। ये कई प्रकार की प्रेरणाएँ प्रदान करती हैं जैसे –

(1) आर्थिक प्रेरणाएँ

(2) आत्म-प्रेरणाएँ या सौंदर्यात्मक प्रेरणाएँ और

(3) प्रतीकात्मक प्रेरणाएँ।

(4) शक्ति व्यवस्था - सामाजिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण तत्व शक्ति व्यवस्था है। शक्ति व्यवस्था की महत्ता बहुत अधिक है। क्योंकि व्यक्तियों और समूहों के व्यवहारों को नियंत्रित एवं नियमित करना अत्यंत आवश्यक है। शक्ति व्यवस्था के अंतर्गत सभी प्रकार की शक्तियाँ आती हैं, इसमें शारीरिक शक्ति भी सम्मिलित है। सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तियों के हाथ में शक्ति की मात्रा कम या ज्यादा होती है। शक्ति व्यवस्था जहाँ संघर्षों को दबाती है एवं रोकती है, वहीं इसके कारण संघर्ष भी उत्पन्न होते हैं क्योंकि लोग शक्ति के लिए संघर्ष करते हैं। फिर भी सामाजिक व्यवस्था में विघटनकारी तत्वों को रोकने एवं बड़ाने के लिए तथा व्यवहारों को नियंत्रित करने के लिए शक्ति व्यवस्था की आवश्यकता पड़ती है। मैक्स वेबर ने तो शक्ति के विवरण की व्यवस्था को ही सामाजिक व्यवस्था कहा है।

(5) धर्म तथा मूल्य व्यवस्था

सामाजिक व्यवस्था कए तत्व धर्म मूल्य व्यवस्था भी है। मूल्य सामाजिक व्यवस्था के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। मूल्यों का प्रत्येक समाज में बड़ा महत्व होता है। मूल्य किसी भी समाज को स्थायित्व प्रदान करते हैं। मूल्य ही वास्तव में मानव समाज का आधार बनते हैं। इनमें परिवर्तन ही समाज में भी परिवर्तन लाता है। वास्तव में मानव समाज और पशु समाज में क्या अंतर है? यह अंतर मूल्यों पर ही आधारित है। भीड़ एक ऐसा समूह है जो मनमानी करती है और कोई मूल्य नहीं रखती। उसकी प्रवृत्ति पशुओं सरीखी है। यह मनुष्य का वह क्षेत्र है जबकि वे पशु ही रहते हैं और मानवता की ओर बिलकुल भी नहीं बढ़ते। जब मूल्यों का विकास होता है, तो मानतस के गुण बढ़ते जाते हैं। समाज की एकता मूल्यों पर आधारित होती है। हम कई बार कहते हैं कि भारत में, विभिन्नता मे एकता पाई जाती है। इसका क्या

अर्थ होता है? वास्तव में हमारी भाषा, रहन-सहन इत्यादि विभिन्न हैं, पर हमारे मूल्य समान हैं। भारत के लिए कुछ निश्चित मूल्य हैं जो परंपरागत चले आ रहे हैं और हम उकना पालन करते हैं। यह हमें एकता के सूत्र में बाँधता है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति भारत में एक महत्त्वपूर्ण मूल्य है। इसका प्रभाव हम सब पर पड़ता है।

धर्म भी सामाजिक व्यवस्था के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। धर्म समाज में एकीकरण उत्पन्न करता है। धर्म सामाजिक नियंत्रण का एक प्रभावशाली यंत्र है। धर्म सामाजीकरण का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इससे स्पष्ट है कि धर्म सामाजिक व्यवस्था के लिए किता महत्वपूर्ण है।

सामाजिक व्यवस्था के सकारात्मक एवं नकारात्मका पक्ष्ज्ञ

पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था के दो पक्षों का उल्लेख किया –

(1) सकारात्मक पक्ष और

(2) नकारात्मक पक्ष

सकारात्मक पक्ष

सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत कर्ताओं की स्थितियाँ और कार्य स्पष्ट रूप से परिभाषित रहते हैं। व्यक्तियों को इन स्थितियों के अनुरूप ही काय करते रहना चाहिए। इस प्रकार की प्रेरणा सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक व्यवस्था से प्राप्त होती रहती है। सामाजिक व्यवस्था का सकारात्मक पक्ष यही है कि वह कुछ कार्य करने को कहती है। जो आदर्श नियम यह करना चाहिए(की प्रवृत्ति के होते हैं, वे सकारात्मक कहलाते हैं।

नाकरात्मक पक्ष

सामाजिक व्यवस्था कुछ कार्य नहीं करने के लिए भी कहती है। यह उसका नकारात्मक पक्ष है। कुछ आदर्श नियम इस प्रकार के होते हैं जो निषेधात्मक होते हैं। नकारात्मक पक्ष का पालन तभी संभव है जबकि व्यक्तियों की आवश्यकताएँ सकारात्मक पक्ष से पूरी होती रहेंगी। पारसन्स का कहना है कि यह संभव नहीं हैं कि जब व्यक्तियों की सब इच्छाएँ कोई भी सामाजिक व्यवस्था पूरी कर सके। पर हर सामाजिक व्यवस्था के लिए यह अनिवार्य है कि सब व्यक्तियों की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी करने की व्यवस्था करें अन्यथा व्यक्ति निषेधात्मक या नकारात्मक पक्ष का पालन नहीं करेंगे। वैसे हर सामाजिक व्यवस्था का यह प्रयास होना चाहिए कि अधिकतम व्यक्तियों की अधिकतम इच्छाओं की पूर्ति करने की व्यवस्था करे, तभी सामाजिक व्यवस्था स्थाई रह सकती है।

पारसन्स का कहना है कि हर सामाजिक व्यवस्था में कुछ ऐसी शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं, जिनके कारण सामाजिक व्यवस्था को, व्यक्तियों एवं समूहों को हानि पहुँचाना एक अनिवार्य हो जाता है। युद्ध एक ऐसी ही शक्ति है। सामाजिक व्यवस्था के स्थायित्व एवं निरंतरता के लिए युद्ध में विजय प्राप्त करना अनिवार्य होता है और युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए कुछ व्यक्तियों को मरना अनिवार्यता है। पारसन्स ने लिखा है - "यह वास्तव में एक बहुत ही सामान्य घटना है कि सामाजिक शक्तियाँ कुछ व्यक्तियों और सब व्यक्तियों की कुछ इच्छाओं या आवश्यकताओं को चोट पहुँचाने अथवा नष्ट करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदाई होती हैं और हालाँकि यह कम किया जा सकता है, परंतु इस तथ्य की

अधिक संभावना है कि इसे व्यावहारिक सत्यमाओं की परिस्थितियों के अंतर्गत समाप्त नहीं किया जा सकता।"

3.2.10. सामाजिक व्यवस्था का आतंरिक विभेदीकरण

सामाजिक व्यवस्था का आतंरिक विभेदीकरण का वर्णन करते हुए पारसन्स ने चार प्रकार के तथ्यों का वर्णन किया है। प्रथम, उन्होंने ऐसी संस्थाओं का उल्लेख किया है जो विभिन्न स्थितियों और सामाजिक व्यवस्था के बीच तथा विभिन्न स्थितियों के बीच के संबंधों को परिभाषित, निर्धारित एवं निश्चित करती हैं। चूँकि ये संबंधों को परिभाषित करती है इसलिए उसने इन्हें संबंधात्मक संस्थाएँ कहा है। संबंधात्मक संस्थाएँ विभिन्न स्थितियों में विभेद करती है और उनके एक-दूसरे के साथ संबंधों का निर्धारण करती हैं। द्वितीय, कर्ताओं की समस्त क्रियाएँ स्वार्थों प आधारित हैं। इसलिए यह आवश्यसक है कि उनकी क्रियाओं की समस्त क्रियाएँ स्वार्थों पर आधारित हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि उनकी क्रियाओं पर नियमन एवं नियंत्रण किया जाए जिससे कि वे सकारात्मक साधनों का ही प्रयोग अपने स्वार्थों की पूर्ति में करें। चूँकि ये संस्थाएँ नियमन करती है, इसलिए उसने इन्हें नियामक संस्थाएँ कहा है। तृतीय, कुछ संस्थाएँ ऐसी होती हैं जिनका संबंध सांस्कृतिक व्यवस्था से होता है, इसलिए पारसन्स ने उन्हें सांस्कृतिक संस्थाएँ कहा है। चतुर्थ, कुछ को उसने संबंधात्मक नियामक संस्थाएँ कहा है।

संबन्धात्क संस्थाएँ

इसके अंतर्गत (1) व्यक्तियों या कर्ता इकाइयों की स्थिति का वितरण एवं विभेद होता है, और (2) व्यक्तियों या कर्ता-इकाइयों के कार्यों का विभेदीकरण होता है। संबंधात्मक संस्थाएँ स्थितियों एवं कार्यों का वर्गीकरण एवं विभेदीकरण होता है।

नियामक संस्थाएँ

ये संस्थाएँ

(1) साधन संबंधों का नियमन,

(2) सुविधाओं का वर्गीकरण एवं वितरण,

(3) शक्ति व्यवस्था का संगठन,

(4) संबंधों का नियमन,

(5) पुरस्कारों का वर्गीकरण एवं वितरण और पुरस्कार व्यवस्था का संगठन करती हैं।

सांस्कृतिक संस्थाएँ

ये सांस्कृतिक व्यवस्था आदर्श, मूल्य, धार्मिक विश्वास, प्रतीक व्यवस्था आदि का संगठन करती हैं।

संबंधात्मक-नियामक संस्थाएँ

ये एक प्रकार से संगठित करने वाली संरचनाएँ होती हैं जैसे सामाजिक संबंधों का संगठन और नियामक आदर्श नियम आदि।

सामाजिक व्यवस्था को विभिन्न संस्थाओं में विभाजित करने की प्रक्रिया को पारसन्स ने संस्थाकरण कहा है। संस्थाकरण के महत्व पर प्रकाश डालते हुए पारसन्स ने लिखा है - "संस्थाकरण का एक प्राथमिक कार्य इन विभिन्न क्रियाओं और संबंधों को व्यवस्थित करने में सहायता करना है ताकि वे पर्याप्त रूप से ऐसी समन्वित व्यवस्था का निर्माण कर सकें जिसे कर्ता प्रबंध कर सके और जिससे कि सामाजिक स्तर पर संघर्ष को कम किया जा सके।"

संस्थाएँ सामाजिक व्यवस्था के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। वे मार्गदर्शक का कार्य करती हैं। संस्थाएँ समय सूची का भी निर्माण करती हैं कि किसी समय क्या काम करना चाहिए? इसके परिणामस्वरूप हर कार्य अपने समय पर होता है और किसी प्रकार की दुविधा या संघर्ष नहीं उत्पन्न होती है। इसी प्रकार, संस्थागत प्राथमिकताएँ भी संस्थाएँ निर्धारित करते हैं संस्थागत प्राथमिकता का यह अभिप्राय है कि किस क्रिया को प्राथमिकता देनी चाहिए? संस्थाएँ यह बताती हैं कि विभिन्न क्रियाओं का क्या क्रम है। संस्थागत प्राथमिकताएँ मुनष्यों को कर्तव्यों के संघर्ष से बचाती हैं। मान लीजिए एक डाक्टर है। उसकी डाक्टर होने के नाते व्यावसायिक आचार का उसे पालन करना पड़ता है। मान लीजिए एक समय वह घर के उत्सव में भाग ले रहा हैं और उसी समय किसी सख्त बीमार को देखने के लिए उसे बुलावा आता है। इस संघर्ष की स्थिति में वह क्या करे, इसका निर्णय संस्थागत प्राथमिकताएँ काती हैं और व्यक्ति को दुविधा में पड़ने से बचाती हैं।

पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण सामाजिक क्रिया के संदर्भ में किया है। उसके अनुसार सामाजिक व्यवस्था क्रिया व्यवस्था का ही एक भाग है। पारसन्स ने उसी दृष्टि से इसकी व्याख्या की है।

3.2.11. संस्थात्यीकरण

संस्थात्यीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति संस्था के अनुरूप हो जाते हैं। पारसन्स का विचार है कि सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्ति के पदों और कार्यों का संस्थानीकरण हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि पदों और कार्यों में किसी प्रकार का संषर्घ पैदा नहीं होता है? व्यक्ति के पदों और कार्यों को निर्धारित करने वाली संस्थाओं को पारसन्स ने निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया है।

3.2.12. सामाजिक व्यवस्था की पूर्व आवश्यकताएँ

समाज की व्यवस्था सामाजिक संरचना पर आधारित होती है। सामाजिक रचना में भिन्नता के परिणामस्वरूप सामाजिक व्यवस्था में भी भिन्नता पाई जाती है। समाज की व्यवस्था उपयुक्त ढंग से क्रियाशील रहे इसके लिए पारसन्स कुछ पूर्व आवश्यकताओं की विवेचना की है।

(1) पद और कार्य निर्धारित करने वाली

पहले प्रकार की संस्थाएँ वे हैं जो व्यक्ति के पदों और कार्यों को निर्धारित करती हैं। इन संस्थाओं में जाति वर्ग, और प्रजाति आदि महत्वपूर्ण हैं।

(2) नियंत्रणकारी

दूसरे प्रकार की संस्थाएँ वे हैं जो समाज में व्यक्ति के कार्यों को संचालित करती है और इस प्रकार समाज में नियंत्रण की स्थापना है इसके अंतर्गत सामाजिक व्यापारिक संस्थाएँ आती है।

(3) सांस्कृतिक

सांस्कृतिक संस्थाएँ वे हैं जो समाज में एकता और व्यवस्था की स्थापना करती हैं। इन संस्थाओं में परिवार, राज्य और धर्म आदि प्रमुख हैं।

(ब) सामाजिक नियंत्रण

सामाजिक व्यवस्था को संचालित करने के लिए सर्वाधिक दशा सामाजिक नियंत्रण है। सामाजिक नियंत्रण के द्वारा ही व्यक्ति की क्रियाओं को एकता के सूत्र में बाँधा जाता है। सामाजिक नियंत्रण के द्वारा सामाजिक आदर्शों और मूल्यों में अनुकूलन स्थापित किया जाता है। जब व्यक्ति सामाजिक मूल्यों और आदर्शों के अनुसार कार्य करते हैं तो इससे सामंजस्य की स्थापना होती है। किंतु अनेक ऐसी अवस्थाएँ आती हैं जब व्यक्ति सामाजिक मूल्यों और आदर्शों के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते हैं। परिणामस्वरूप वे सामाजिक व्यवस्था के विपरीत कार्य करते हैं। व्यक्ति के व्यवहार जो सामाजिक व्यवस्था के विपरीत होते हैं विचलनकारी कहलाते हैं। पारसन्स ने विचलनकारी व्यवहारों के लिए उत्तरदाई कारकों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है -

(1) विचलनकारी व्यवहार का पहला कारण सामाजिक स्वीकृति को प्रश्न देना है।

(2) नियमों को कमजोरी से लागू करना भी विचलनकारी व्याहारों का कारण है। जब व्यक्ति अपने कार्यों के औचित्य को सरलता से ढूँढ लेता है जो इससे वह अपने हर एक कार्य को उचित ठहराना चाहता है। परिणामस्वरूप विचलनकारी व्यवहार का जन्म होता है।

(3) सामाजिक आदर्शों का क्षेत्र अनिश्चित होता है। सामाजिक आदर्शों की क्षेत्रीय अनिश्चितता के कारण भी विचलनकारी व्यवहार का जन्म होता है।

(4) विचलनकारी व्यवहारों का अलग कारण यह है कि इसे गुप्त रखा जाता है। गुप्त रक्खे जाने के परिणामस्वरूप विचलनकारी व्यवहार करने वाले व्यक्ति को न तो सामाजिक दंड ही मिलता और न ही उसकी सामाजिक निंदा ही की जाती है। इससे विचलनकारी व्यवहारों को प्रोत्साहान मिलता है।

(5) समाज में कानूनों को लागू करने या कानूनों की देखभाल की आस्था यदि अनुचित और भष्ट होती है तो इससे भी विचलनकारी व्यवहार जन्म होता है।

(6) जब विचलनकारी व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को सामाजिक लोग मिलता है तो वे ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं।

(7) जब समाज में नियंत्रणकारी संस्थाओं के व्यवहार अत्यंत ही नम्र हो हैं तो इससे विचलन को प्रोत्साहन मिलता है। जब कोई भी सांस्कृतिक उपविचलनकारी व्यवहार को उचित करार होता है जो इससे भी इनकी संसख्य में होती है।

(8) विचलनकारी व्यवहारों को प्रोत्साहित करने में गिरोहों का अत्यधिक तत्व हैं।

3.2.13. सारांश

यद्यपि पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांत के अनेक पक्षों पर बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला है फिर भी उसके सिद्धांत में अनेक कमियाँ हैं और उन्हीं के आधार पर उनकी आलोचना की गई है। पारसन्स ने अपने सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांत में केवल सामाजिक जीवन के आदर्शात्मक पक्ष पर ही प्रकाश डाला है। उसने सामाजिक व्यवहार को केवल मूल्यों, आदर्शों और सामाजिक नियमों के संदर्भ में ही विश्लेषित किया है। उसके अनुसार समाज एक नैतिक व्यवस्था पर आधारित है। पर यह सामाजिक व्यवहार का एक ही पक्ष है। टिमशेफ के अनुसार पारसन्स ने अनेक तत्वों जैसे राजनीति, अर्थ व्यवस्था आदि महत्वपूर्ण तत्वों को छोड़ दिया है। पारसन्स ने समाज की आदर्शात्मकता को आवश्यकता से अधिक प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है।

पारसन्स के सिद्धांत में ऐसा दर्शाया गया है कि सामाजिक कार्य और व्यवहार सदैव विवेकशील ही होता है। पर यह सत्य नहीं है। सामाजिक कार्य अनेक अविवेकशील तत्वों से प्रेरित होता है। इतना ही नहीं, अपितु अधिकांश मानव व्यवहार अविवेकशील होता है। पारसन्स ने व्यवहार पर इन महत्वपूर्ण कारकों के प्रभाव का काई वर्णन नहीं किया है। टिमशेफ का कहना है कि पारसन्स ने अपने सिद्धांत में संस्कृति तथा सामजिक व्यवस्था में स्वष्ट भेद नहीं किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि पारसन्स का सिद्धांत व्यावहारिक जीवन की सत्यता एवं वास्तविकता से बहुत दूर है। पारसन्स ने समायोजन का सिद्धांत में स्थान दिया, पर असमायोजन को नहीं। का कथन है कि पारसन्स का सिद्धांत सराहीन है क्योंकि यदि शब्द-जाल, जिससे कि वह भरा हुआ है निकाल दिया जाए, तो उसमें अंततः कुछ भी उपयोगी नहीं बचता। एक ही बत्यय के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है और शब्द-जाल विछाया गया है। शब्द-जाल के अति रिक्त इसमें कुछ भी नहीं है। पारसन्स ने इस सिद्धांत का निर्माण सामाजीकरण, आत्मीकरण, प्रेरणा आदि की अवधारणाओं के आधार पर किया है और ये अवधारणाएँ नई नहीं हैं। इनके आधार पर निर्मित सिद्धांत नया नहीं माना जा सकता। पारसन्स के सिद्धांत को सार्वभौमिक नहीं माना जा सकता। यह इसलिए सार्वभौमिक नहीं है क्योकि इसे तथ्यों की कसौटी पर नहीं कसा गया है।

मैक्य ब्लेक का कहना है कि पारसन्स ने अपने सिद्धांत में यह मान्यता स्वीकार की है कि हर क्रिया का लक्ष्य होता है, पर यह मान्यता सत्य नहीं है। अनेक मानवीय क्रियाओं का कोई लक्ष्य नहीं होता है। पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांत को प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति सार्वभौमिक आधार पर प्रस्तुत किया है। मर्टन का मत है कि ऐसा करना उचित नहीं है क्योंकि सामाजिक विज्ञानों में अभी प्राकृतिक विज्ञानों की तुलना में एक प्रतिशत भी परिश्रम नहीं किया गया है और न ही उनकी प्रामाणिकता

का परीक्षण किया गया है। प्राकृतिक विज्ञानों के सिद्धांतों की भाँति अभी सामाजिक विज्ञानों के सिद्धांत सार्वभौमिक नहीं हो सकते। मर्टन के अनुसार अभी सामाजिक विज्ञानों में मिडिल रेंज सिद्धांत ही प्रस्तुत करना चाहिए। सामाजिक विज्ञानों के सिद्धांत अभी औसत सत्य को ही प्रदर्शित करते हैं, न कि सार्वभौमिक सत्य को।

यूरी का कहना है कि पारसन्स ने फ्रायड के सिद्धांत को ही रूप परिवर्तित करके प्रस्तुत कर दिया है। यह फ्रायड के सिद्धांत का ही एक रूप है। यूरी का मत है कि पारसन्स का सिद्धांत व्यर्थ है। उसका कहना है कि इनका सिद्धांत एक ऐसे फल के समान है जिसके न तो खाने में ही स्वाद है और न ही कोई पोषण तत्त्व ही है उपरोक्त आलोचनाओं से स्पष्ट है कि पारसन्स के सिद्धांत की कटु आचोलना की गई है। फिर भी पारसन्स का सिद्धांत व्यर्थ नहीं है। मैक्स ब्लेक का कहना है कि पारसन्स का समाजशास्त्र को महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि उसने समाजशास्त्र को एक विशेष शब्दावली प्रदान की है और विभिन्न विषयों का अभियोजन कर सैद्धांतिकरण किया है।

3.2.14. बोध प्रश्न

बहु विकल्पीय पश्न

- पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत अपनी किस ग्रंथ में दिया ?
  (क) द सोशल सिस्टम
  (ख) द स्ट्रक्चर ऑफ सोसल एक्सन
  (ग) एसे एंड सोसियोलाजिकल थ्योरिज
  (घ) फैमली सोसियोलाइजेशन एंड इनट्रैक्शन प्रोसेस
- सामाजिक व्यवस्था के मौलिक तत्व कौन है पारसन्स के अनुसार ?
  (क) एकाधिक वैयक्तिक कर्ता (ख) सामाजिक अंतःक्रिया
  (ग) प्रेरक इच्छाएँ (घ) उपरोक्त सभी
- संस्थात्यीकरण की की अवधारणा किसने दी ?
  (क) पारसंस (ख) स्पेंसर
  (ग) पेरेटो (घ) दुर्खीम
- सामाजिक व्यवस्था हेतु सामाजिक स्तरीकरण किस आधार पर किया जाता है?
  (क) आयु (ख) लिंग
  (ग) प्रजाति आधार (घ) उपरोक्त

लघुउत्तरीय प्रश्न:-

- टालकट पारसन्स के उपयोगितावादी स्वेच्छावादी प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण का विवरण दीजिए?
- टालकट पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था पर क्या विचार है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न:-

- टालकट पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांत का अर्थ एवं परिभाषा का वर्णन कीजिए ?
- टालकट पारसन्स के आतंरिक विभेदी करण एवं प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकता का आलोचनात्मक विवरण कीजिए

3.2.15. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- एरन, रेमंड. (1976). *मेन करेंटस इन सोशियोलॉजिकल थॉट*. लंदन: पेंगुइन बुक्स.
- कोजर, एल, (1977). *एः मास्टर्स ऑफ सोशियोलॉजिकल थाट*. न्यूयार्क: हाकोर्ट ब्रास जोवानोविच.
- गिडेंस, एंथनी. (1971). *कैपीटलिज्म एंड मार्डन सोशल थियरी*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- टर्नर, जोनाथन. (1991). *दि स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थियरी*. बेलमेट: बेडसवर्थ.
- डहरेनडार्फ, राल्फ. (1968). *एशेज ऑन थियरी ऑफ सोसायटी*. स्टान्फर्ड: यूनिवर्सिटी प्रेस.
- टालकट, पारसन्स. (1949). *दि स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन*. न्यूर्याक: मैकग्राहिल.
- टालकट, पारसन्स. (1975). *कोलन एस्सेज इन सोशियोलॉजिकल थियरी*. नई दिल्ली: लाइट एंड लाइफ पब्लिशर्स.
- बोटोमोर, टी. बी. (1978). *सोशियोलॉजी*. बंबई: ब्लेकी एंड संस.
- जार्ज, रीटजर. (1992). *सोशियोलॉजिकल थियरी*. न्यूयार्क: मैकग्राहिल.
- सोरोकिन, पी. ए. (1978). *कंटेमपोरेरी सोशियोलॉजिकल थियरीज*. नई दिल्ली: कल्याणी पब्लिशर्स.
- हैरालबोस, एम. एवं हीलबर्न, (1995). एम. *सोशियोलॉजी*. लंदन: कालीनस एजुकेशनल.

इकाई-3 : प्रकार्यात्मक सिद्धांत एवं सामाजिक परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

3.3.1. उद्देश्य
3.3.2. प्रस्तावना
3.3.3. प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन
3.3.4. सामाजिक प्रणालियों के भीतर परिवर्तन
3.3.5. परिवर्तन के लिए दबाव पैदा करने वाले कारक
3.3.6. सामाजिक आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन
3.3.7. सामाजिक प्रणालियों में आमूल परिवर्तन: विकासात्मक सार्विकीय तत्व
3.3.8. आदिम प्राचीन मध्यवर्ती अथवा आधुनिक समाज
3.3.9. क्रिया का सामाजिक क्रिया का अर्थ
3.3.10. पारसन्स का क्रिया सिद्धांत
3.3.11. पारसन्स का क्रियात्मक दृष्टिकोण
3.3.12. सामाजिक प्रणाली के संगठन की आधारभूत इकाई
3.3.13. विन्यास प्रकारांतर
3.3.14. सारांश
3.3.15. बोध प्रश्न
3.3.16. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.3.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप समझ पाएँगे:-

- प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक प्रणालियों के भीतर परिवर्तन।
- परिवर्तन के लिए दबाव पैदा करने वाले कारक एवं सामाजिक आंदोलन तथा परिवर्तन ।
- सामाजिक प्रणालियों में आदिम प्राचीन मध्यवर्गीय एवं आधुनिक समाज।
- क्रिया एवं सामाजिक क्रिया का अर्थ तथा पारसन्स का सामाजिक क्रिया का सिद्धांत।
- सामाजिक प्रणाली के संगठन की आधारभूत इकाई विन्यास प्रकारांतर एवं क्रियात्मक दृष्टिकोण।

3.3.2. प्रस्तावना

पारसन्स के अनुसार सामाजिक प्रणाली की स्थिरता केवल समाज द्वारा अपने सदस्यों पर लागू किए गए नियम-मर्यादाओं तथा सरकार द्वारा अपने नागरिकों पर लागू किए गए सामाजिक नियंत्रण के अन्य उपायों के माध्यम से ही नहीं, बल्कि समाज के सदस्यों द्वारा समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से सामाजिक मूल्यों, अपेक्षित आचार पद्धतियों तथा सामाजिक अस्तित्व की सहिताओं को आत्मसात् करके कायम की जाती है। बच्चा विभिन्न सामाजिक संस्थाओं तथा भूमिकाओं के वांछित एवं वर्जित, दोनों तरह के मूल्यों तथा प्रतिमानों के संबंध में अपने परिवार तथा पड़ोस के वातावरण से ही सीखता है। बड़ा होने पर वह स्कूल, कालेज तथा काम के स्थानों पर अन्य सामाजिक मूल्यों एवं वांछित आचार-पद्धतियों को सीखता और अपनाता है।

पारसन्स के अनुसार अनुकूलन लक्ष्य प्राप्ति एकीकरण तथा विन्यास अनुरक्षण जैसी ये पूर्वापेक्षाएँ किसी भी सामाजिक प्रणाली के अस्तित्व के लिए आवश्यक प्रतिक्रियाएँ है। सामाजिक प्रणाली का अस्तित्व बनाए रखने में संस्थाओं एक प्रक्रियाओं के योगदान को पारसन्स ने प्रकार्यात्मक माना है।

प्रकार्यवाद का अर्थ है कि सामाजिक प्रणालियाँ मानव शरीर की जैविक प्रणाली के समान है। इन प्रणलियों में सामाजिक प्रक्रियाएँ तथा संस्थाएँ वही काम करती है तथा सामाजिक प्रणलियों को जीवित रखने के उद्देश्य को लेकर उसी प्रकार चलती है जिस प्रकार मानव शरीर में प्रकार्यात्मक प्रक्रियाएँ काम करती है। सामाजिक प्रणाली और मानव शरीर दोनों में आत्म-नियामक क्रियाविधि होती है। जिससे उनमें स्थिरता बनी रहती है और बाहरी खतरों से उनका बचाव होता है। इस तरह की संतुलन क्षमता को होमियोस्टेसिस कहते हैं, किंतु इनमें एक अंतर है कि मानव शरीर मनुष्य की सभी प्रजातियों में एक समान होता है, जबकि सामाजिक व्यवस्थाएँ इतिहास की उपज होती है। पारसन्स का मानना है कि सामाजिक प्रणलियों के स्वरूप तथा शैलियों में बहुत भिन्नताएँ है। मानव शिशु की सुघट्यता में यह तथ्य प्रकट होता है, जो अन्य जीवों के समान आचरण की एक जैसी विशेषताओं के साथ बड़ा नहीं होता। वह विभिन्न भाषाएँ सीखता है। जिस आचार-विचारों के अनुकूल स्वयं को ढालता है। उनमें अनेक भाषाओं, सांस्कृतिक शैलियों आदि को अपनाने की क्षमता होती है। मनुष्य अन्य जीवों की तरह पूर्व-निर्धारित सहज प्रवृत्तियाँ लेकर जन्म नहीं लेते। मानव-शिशु की समाजीकरण की प्रक्रिया तथा उसकी व्यक्तित्व प्रणाली संबंधित सामाजिक प्रणाली के सामाजिक आचार-विचार तथा मूल्यों के आत्मसात् के माध्यम से सामाजिक प्रक्रिया की स्थिरता और एकता को बनाए रखती है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य संस्कृति और समाज से सीखने के साथ-साथ संस्कृति की नई शैलियाँ विकसित करने तथा उन्हें मौजूदा शैलियों में समन्वित करने में भी समक्ष है।

3.3.3. प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन

प्रकार्यवाद की उपर्युक्त विशेषताओं से हमें यह आभास हो सकता है कि इसका संबंध सामाजिक प्रणाली की निरंतरता एवं अनुरक्षण मात्र से है। इसमें सामाजिक परिवर्तन की धारणा नहीं है। वास्तव में अनेक समाजशास्त्रियों ने प्रकार्यवाद की केवल इसलिए आलोचना की है कि इसमें सामाजिक प्रणाली के

उस पहलू पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाता है। जिसके फलस्वरूप स्थिरता एवं निरंतरता बनी रहती है। उनका यह भी कहना है कि प्रकार्यवाद बुनियादी मूल्यों में व्यापक सहमति या सर्वानुमति से चलता है। यह आलोचना उस प्रकार्यवादी दृष्टिकोण पर आधारित है, जोकि यह विश्वास करता है कि समाज के सदस्य किसी समाज विशेष में अपनी समूची बाल्यावस्था में एक ही तरह के मूल्यों और विश्वासों से परिचित रहते हैं।

पारसन्स ने संबंधित सामाजिक प्रणालियों की प्रकार्यात्मक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप सामाजिक प्रणाली में स्थिरता तथा मूल्य सहमति के तत्व के प्रवेश से इनकार नहीं किया, परंतु उसने सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं की भी कल्पना की थी। यह किसी सामाजिक प्रणाली के विशिष्ट स्वरूप तथा प्रेरक प्रवृत्तियों के स्वरूप का परिणाम होता है जोकि समाज में सदस्यों की कार्य-व्यवस्थाओं संगठित करते हैं। पहला स्वरूप सामाजिक प्रणालियों को पारिस्थितकीय संसाधनों और भौतिक एवं पर्यावरण परिस्थितियों जैसी बाह्य सीमावर्ती स्थितियों तथा सांस्कृतिक संपर्क पद विचारों और हितों के प्रसार जैसे ऐतिहासिक पहलुओं एवं इन ऐतिहासिक पहलुओं के कारण उत्पन्न सामाजिक दबावों के साथ जोड़ता है। दूसरा स्वरूप इसे कार्य-प्रणालियों से अभिप्रेरक तत्वों से जोड़ता है, जो अपने स्वरूप में अनिवार्यतः निर्देशात्मक है। उद्देश्यों तथा मूल्यों के उन्मुखीकरण की दिशा सामाजिक प्रणाली में सामंजस्य और तनाव दोनों की जन्म देती है। सामंजस्य से स्थिरता आती है और तनाव परिवर्तन कारण बनता है। पारसन्स ने दो स्तरों पर सामाजिक परिवर्तन की कल्पना की है। पहला सामाजिक प्रणाली के भीतर की प्रक्रियाओं में उभरने वाला परिवर्तन और दूसरा है, सामाजिक में आमूल परिवर्तन की प्रक्रियाएँ।

पारसन्स के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन के दोनों पहलुओं पर ध्यान देने के लिए सामाजिक विज्ञानों में अभी तक कोई निश्चित सिद्धांत विकसित नहीं हो पाया है, किंतु समाजशास्त्र अपने विश्लेषण को दो पहलुओं तक सीमित रखकर सामाजिक परिवर्तन को समझने की समस्या हल कर सकता है। पहला वह कि परिवर्तन का अध्ययन अवधारणात्मक श्रेणियों अथवा प्रतिरूपों की सहायता से किया जाए। ये अवधारणात्मक श्रेणियाँ जिन्हें पारसन्स ने सामाजिक परिवर्तन के विश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण माना है, वे है अभिप्रेरणात्मक और मूल्यपरक उन्मुखता तथा सामाजिक प्रणाली की प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाएँ पारसन्स के अनुसार दूसरा पहल यह है कि सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन सामान्य स्तर पर नहीं किया जाना चाहिए, जो सभी समाजों पर समान रूप से लागू हो, बल्कि विशिष्ट ऐतिहासिक स्तर पर किया जाना चाहिए। इसलिए पारसन्स का यह मत है कि समाजशास्त्रियों के लिए समग्र सामाजिक प्रणाली के परिवर्तन की प्रक्रियाओं की तुलना में सामाजिक प्रणाली के भीतर के परिवर्तन का अध्ययन करना सरल है।

पारसन्स का मुख्य योगदान विभिन्न स्थितियों में सामाजिक प्रणाली के भीतर होने वाले परिवर्तन का अध्ययन है, किंतु उसने समग्र सामाजिक प्रणालियों के भीतर का विश्लेषण करने का, विशेषकर (विकासात्मक सार्विकीय तत्वों) की अपनी अवधारणा के माध्यम से प्रयास भी किया है, जिसका विकास उसने अपने जीवन के बाद के वर्षों में किया।

सामाजिक प्रणालियों के भीतर होने वाले सामाजिक परिवर्तनों की पारसन्स की व्याख्या में प्रकार्यवाद के तत्व सुस्पष्ट दृष्टिगत है। उसने जैविक जीवन चक्र में होने वाले परिवर्तनों से सामाजिक प्रणालियों के भीतर होने वाले परिवर्तनों की तुलना की है, किंतु इस तुलना में एक अंतर बताते हुए पारसन्स ने कहा है कि सामाजिक प्रणालियाँ सांस्कृतिक पहलुओं से संचालित होती है, जो जीव विज्ञान से पर्याप्त भिन्न है फिर भी, विकास, विभेदीकरण और आत्म-अनुरक्षण की जो प्रवृत्ति हमें जैविक प्रणालियों के भीतर परिवर्तन की प्रक्रियाओं में दिखाई देती है, वही काफी हद तक सामाजिक प्रणाली के भीतर चलती है। इसके अतिरिक्त अन्य संस्कृतियों के संपर्क, प्रणाली के भीतर नई सांस्कृतिक नवीनताओं तथा नए मूल्यों एवं जीवन-शैलियों में विसरण के कारण प्रणाली के भीतर भी परिवर्तन होते हैं।

सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन की प्रक्रिया से जुड़ा एक प्रमुख कारण है जनसंख्या में वृद्धि, उसका घनत्व एवं एकत्रीकरण। मनुष्य के माध्यम से खाद्य संसाधनों तथा उत्पादन प्रौद्योगिकी पर दबाव बढ़ता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अतीत मे बृहद सामाजिक प्रणालियों जैसे कि बढ़े समुदायों, नगरों तथा राजनीतिक के संगठित रूपों का विकास नदी की घाटियों के समीप और उपजाऊ जमीनों पर हुआ है, जहाँ पर्याप्त मात्रा में अनाज पैदा हो सकता था। इस वृद्धि से जनसंख्या में वृद्धि हुई तथा सामाजिक प्रणाली के भीतर श्रम-विभाजन, शहरों का विकास तथा भारत में जाति व्यवस्था एवं यूरोप में गिल्ड आदि सामाजिक संगठन जैसे बड़े-बड़े सामाजिक परिवर्तन हुए। पारसन्स के अनुसार ये परिवर्तन सरलता से नहीं होते, बल्कि विरोध पर विजय द्वारा रूपांतरण है। "विरोध पर विजय पाने से पारसन्स का अभ्रिपाय है सामाजिक प्रणाली में तनाव अथवा द्वंद्व का समाधान करना।"

पारसन्स के अनुसार प्रत्येक सामाजिक प्रणाली में कुछ समय बाद विभिन्न प्रकार के निहित स्वार्थ की जड़े जमा होते हैं। क्योंकि वह प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाओं (अनुकूलन, लक्ष्य प्राप्ति, एकीकरण एवं विन्यास अनुरक्षण) के अनुरूप स्वयं को संयोजित कर लेती है। प्रणाली के भीतर से नए विचारों की माँगों प्रौद्योगिकी में परिवर्तन की आवश्यकता अथवा प्रणाली पर जलवायु या पारिस्थितिकी में परिवर्तन अथवा महामारी जैसे बाहरी तत्वों के दबाव के कारण सामाजिक प्रणालियों को अपने निहित स्वार्थों को छोड़कर नए चिंतन, विचारों, प्रौद्योगिकी, कार्य-पद्धति, श्रम-विभाजन आदि को अपनाना पड़ता है। इसके फलस्वरूप सामाजिक प्रणाली का पुराना संतुलन बिगड़ जाता है और उसके स्थान पर नया संतुलन लाया जाता है। इस दो छोरों के बीच सामाजिक प्रणालियों के भीतर अनुकूलन की लंबी प्रक्रियाएँ चलती है, जिनके द्वारा नए विचार, नई कार्यपद्धतियाँ लोगों के लिए स्वीकार्य बनाई जाती है। पारसन्स ने इस प्रक्रिया को संस्थागत होना कहा है। नई भूमिकाओं, संगठनों के नए प्रकारों, विज्ञान का विकास और धार्मिक विचार जैसे नए सांस्कृतिक संरूपों से सामाजिक प्रणाली में संतुलन की मौजूदा विधियों पर दबाव पड़ता है और अतिक्रमण होता है। सामाजिक संगठन के पुराने तत्वों पर नए तत्वों के अतिक्रमण के फलस्वरूप स्थापित निहित स्वार्थ के साथ संघर्ष एवं तनाव उत्पन्न होता है। पारसन्स के अनुसार किसी एक कारण से ही सामाजिक तनाव पैदा नहीं होते और न ही सामाजिक परिवर्तन का कोई एक मुख्य कारक होता है, किंतु सामाजिक तनाव सामाजिक विकास के उस बिंदु का प्रतीक है, जहाँ पर सक्रिय संपर्क प्रणालियों और प्रणाली की संस्थाओं तथा संरचनाओं (भूमिकाओं, प्रस्थितियों, व्यवसायों आदि) का पुराना

संतुलन बिगड़ जाता है और नए संतुलन की दिशा में बढ़ने की प्रवृत्ति का सूत्रपात होता है। सामाजिक प्रणालियों के भीतर होने वाले सामाजिक परिवर्तनों की पारसन्स की व्याख्या में प्रकार्यवाद के तत्व सुस्पष्ट दृष्टिगत है। उसने जैविक जीवन चक्र में होने वाले परिवर्तनों से सामाजिक प्रणालियों के भीतर होने वाले परिवर्तनों की तुलना की है, किंतु इस तुलना में एक अंतर बताते हुए पारसन्स ने कहा है कि सामाजिक प्रणालियाँ सांस्कृतिक पहलुओं से संचालित होती है, जो जीव विज्ञान से पर्याप्त भिन्न है फिर भी, विकास, विभेदीकरण और आत्म-अनुरक्षण की जो प्रवृत्ति हमें जैविक प्रणालियों के भीतर परिवर्तन की प्रक्रियाओं में दिखाई देती है, वही काफी हद तक सामाजिक प्रणाली के भीतर चलती है। इसके अतिरिक्त अन्य संस्कृतियों के संपर्क, प्रणाली के भीतर नई सांस्कृतिक नवीनताओं तथा नए मूल्यों एवं जीवन-शैलियों में विसरण के कारण प्रणाली के भीतर भी परिवर्तन होते हैं।

सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन की प्रक्रिया से जुड़ा एक प्रमुख कारण है जनसंख्या में वृद्धि, उसका घनत्व एवं एकत्रीकरण। मनुष्य के माध्यम से खाद्य संसाधनों तथा उत्पादन प्रौद्योगिकी पर दबाव बढ़ता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अतीत मे बृहद सामाजिक प्रणालियों जैसे कि बढ़े समुदायों, नगरों तथा राजनीतिक के संगठित रूपों का विकास नदी की घाटियों के समीप और उपजाऊ जमीनों पर हुआ है, जहाँ पर्याप्त मात्रा में अनाज पैदा हो सकता था। इस वृद्धि से जनसंख्या में वृद्धि हुई तथा सामाजिक प्रणाली के भीतर श्रम-विभाजन, शहरों का विकास तथा भारत में जाति व्यवस्था एवं यूरोप में गिल्ड आदि सामाजिक संगठन जैसे बड़े-बड़े सामाजिक परिवर्तन हुए। पारसन्स के अनुसार ये परिवर्तन सरलता से नहीं होते, बल्कि विरोध पर विजय द्वारा रूपांतरण है। "विरोध पर विजय पाने से पारसन्स का अभिप्राय है सामाजिक प्रणाली में तनाव अथवा द्वंद्व का समाधान करना।"

पारसन्स के अनुसार प्रत्येक सामाजिक प्रणाली में कुछ समय बाद विभिन्न प्रकार के निहित स्वार्थ की जड़े जमा होते हैं। क्योंकि वह प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाओं (अनुकूलन, लक्ष्य प्राप्ति, एकीकरण एवं विन्यास अनुरक्षण) के अनुरूप स्वयं को संयोजित कर लेती है। प्रणाली के भीतर से नए विचारों की माँगों प्रौद्योगिकी में परिवर्तन की आवश्यकता अथवा प्रणाली पर जलवायु या पारिस्थितिकी में परिवर्तन अथवा महामारी जैसे बाहरी तत्वों के दबाव के कारण सामाजिक प्रणालियों को अपने निहित स्वार्थों को छोड़कर नए चिंतन, विचारों, प्रौद्योगिकी, कार्य-पद्धति, श्रम-विभाजन आदि को अपनाना पड़ता है। इसके फलस्वरूप सामाजिक प्रणाली का पुराना संतुलन बिगड़ जाता है और उसके स्थान पर नया संतुलन लाया जाता है। इस दो छोरों के बीच सामाजिक प्रणालियों के भीतर अनुकूलन की लंबी प्रक्रियाएँ चलती है, जिनके द्वारा नए विचार, नई कार्यपद्धतियाँ लोगों के लिए स्वीकार्य बनाई जाती है। पारसन्स ने इस प्रक्रिया को संस्थागत होना कहा है। नई भूमिकाओं, संगठनों के नए प्रकारों, विज्ञान का विकास और धार्मिक विचार जैसे नए सांस्कृतिक संरूपों से सामाजिक प्रणाली में संतुलन की मौजूदा विधियों पर दबाव पड़ता है और अतिक्रमण होता है। सामाजिक संगठन के पुराने तत्वों पर नए तत्वों के अतिक्रमण के फलस्वरूप स्थापित निहित स्वार्थ के साथ संघर्ष एवं तनाव उत्पन्न होता है। पारसन्स के अनुसार किसी एक कारण से ही सामाजिक तनाव पैदा नहीं होते और न ही सामाजिक परिवर्तन का कोई एक मुख्य कारक होता है, किंतु सामाजिक तनाव सामाजिक विकास के उस बिंदु का प्रतीक है, जहाँ पर सक्रिय संपर्क प्रणालियों

और प्रणाली की संस्थाओं तथा संरचनाओं (भूमिकाओं, प्रस्थितियों, व्यवसायों आदि) का पुराना संतुलन बिगड़ जाता है और नए संतुलन की दिशा में बढ़ने की प्रवृत्ति का सूत्रपात होता है।

3.3.4. सामाजिक प्रणालियों के भीतर परिवर्तन

सामाजिक प्रणालियों के भीतर होने वाले सामाजिक परिवर्तनों की पारसन्स की व्याख्या में प्रकार्यवाद के तत्व सुस्पष्ट दृष्टिगत है। उसने जैविक जीवन चक्र में होने वाले परिवर्तनों से सामाजिक प्रणालियों के भीतर होने वाले परिवर्तनों की तुलना की है, किंतु इस तुलना में एक अंतर बताते हुए पारसन्स ने कहा है कि सामाजिक प्रणालियाँ सांस्कृतिक पहलुओं से संचालित होती है, जो जीव विज्ञान से पर्याप्त भिन्न है फिर भी, विकास, विभेदीकरण और आत्म-अनुरक्षण की जो प्रवृत्ति हमें जैविक प्रणालियों के भीतर परिवर्तन की प्रक्रियाओं में दिखाई देती है, वही काफी हद तक सामाजिक प्रणाली के भीतर चलती है। इसके अतिरिक्त अन्य संस्कृतियों के संपर्क, प्रणाली के भीतर नई सांस्कृतिक नवीनताओं तथा नए मूल्यों एवं जीवन-शैलियों में विसरण के कारण प्रणाली के भीतर भी परिवर्तन होते हैं।

सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन की प्रक्रिया से जुड़ा एक प्रमुख कारण है जनसंख्या में वृद्धि, उसका घनत्व एवं एकत्रीकरण। मनुष्य के माध्यम से खाद्य संसाधनों तथा उत्पादन प्रौद्योगिकी पर दबाव बढ़ता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अतीत मे बृहद सामाजिक प्रणालियों जैसे कि बढ़े समुदायों, नगरों तथा राजनीतिक के संगठित रूपों का विकास नदी की घाटियों के समीप और उपजाऊ जमीनों पर हुआ है, जहाँ पर्याप्त मात्रा में अनाज पैदा हो सकता था। इस वृद्धि से जनसंख्या में वृद्धि हुई तथा सामाजिक प्रणाली के भीतर श्रम-विभाजन, शहरों का विकास तथा भारत में जाति व्यवस्था एवं यूरोप में गिल्ड आदि सामाजिक संगठन जैसे बड़े-बड़े सामाजिक परिवर्तन हुए। पारसन्स के अनुसार ये परिवर्तन सरलता से नहीं होते, बल्कि विरोध पर विजय द्वारा रूपांतरण है। "विरोध पर विजय पाने से पारसन्स का अभ्रिपाय है सामाजिक प्रणाली में तनाव अथवा द्वंद्व का समाधान करना।"

पारसन्स के अनुसार प्रत्येक सामाजिक प्रणाली में कुछ समय बाद विभिन्न प्रकार के निहित स्वार्थ की जड़े जमा होते हैं। क्योंकि वह प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाओं (अनुकूलन, लक्ष्य प्राप्ति, एकीकरण एवं विन्यास अनुरक्षण) के अनुरूप स्वयं को संयोजित कर लेती है। प्रणाली के भीतर से नए विचारों की माँगों प्रौद्योगिकी में परिवर्तन की आवश्यकता अथवा प्रणाली पर जलवायु या पारिस्थितिकी में परिवर्तन अथवा महामारी जैसे बाहरी तत्वों के दबाव के कारण सामाजिक प्रणालियों को अपने निहित स्वार्थों को छोड़कर नए चिंतन, विचारों, प्रौद्योगिकी, कार्य-पद्धति, श्रम-विभाजन आदि को अपनाना पड़ता है। इसके फलस्वरूप सामाजिक प्रणाली का पुराना संतुलन बिगड़ जाता है और उसके स्थान पर नया संतुलन लाया जाता है। इस दो छोरों के बीच सामाजिक प्रणालियों के भीतर अनुकूलन की लंबी प्रक्रियाएँ चलती है, जिनके द्वारा नए विचार, नई कार्यपद्धतियाँ लोगों के लिए स्वीकार्य बनाई जाती है। पारसन्स ने इस प्रक्रिया को संस्थागत होना कहा है। नई भूमिकाओं, संगठनों के नए प्रकारों, विज्ञान का विकास और धार्मिक विचार जैसे नए सांस्कृतिक संरूपों से सामाजिक प्रणाली में संतुलन की मौजूदा विधियों पर दबाव पड़ता है और अतिक्रमण होता है। सामाजिक संगठन के पुराने तत्वों पर नए तत्वों के अतिक्रमण के फलस्वरूप

स्थापित निहित स्वार्थ के साथ संघर्ष एवं तनाव उत्पन्न होता है। पारसन्स के अनुसार किसी एक कारण से ही सामाजिक तनाव पैदा नहीं होते और न ही सामाजिक परिवर्तन का कोई एक मुख्य कारक होता है, किंतु सामाजिक तनाव सामाजिक विकास के उस बिंदु का प्रतीक है, जहाँ पर सक्रिय संपर्क प्रणालियों और प्रणाली की संस्थाओं तथा संरचनाओं (भूमिकाओं, प्रस्थितियों, व्यवसायों आदि) का पुराना संतुलन बिगड़ जाता है और नए संतुलन की दिशा में बढ़ने की प्रवृत्ति का सूत्रपात होता है।

3.3.5. परिवर्तन के लिए दबाव पैदा करने वाले कारक

पारसन्स ने ऐसे कई पहलुओं का उल्लेख किया है, जो सामाजिक प्रणालियों में नया संतुलन स्थापित करने के लिए आवश्यक दबाव पैदा करते हैं। इनमें से कुछ कारक इस प्रकार है -

- एक स्थान से दूसरे स्थान पर लोगों के सामूहिक रूप से चले जाने, प्रजातियों के (अंतर्समुदाय विवाह) उसके साथ-साथ लोगों की मृत्यु और जन्म दर में परिवर्तन आदि के माध्यम से जनसंख्या के जनसांख्यिकीय स्वरूप में परिवर्तन इन सभी कारकों से सामाजिक संरूप में बदलाव आता है।
- भौतिक वातावरण में परिवर्तन जैसे कि भौतिक संसाधनों (मुद्रा, जल मौसम आदि) की समाप्ति। इससे भी सामाजिक प्रणाली में तनाव और परिवर्तन आ सकता है।
- सामाजिक प्रणाली के भीतर सदस्यों के लिए संसाधनों की उपलब्धता और खाद्य उत्पादन में वृद्धि के कारण जनसंख्या में परिवर्तन।
- प्रौद्योगिकी में परिवर्तन और समाज की प्रगति के लिए वैज्ञानिक जानकारी का उपयोग।
- नए धार्मिक विचार अथवा धार्मिक मूल्यों तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि के बीच एकीकरण जैसे नए (सांस्कृतिक संरूप(भी सामाजिक प्रणाली में परिवर्तन ला सकते हैं। पारसन्स का कहना है कि ये पहलू अपने आप में पूर्ण नहीं है, किंतु उन अनेक तत्वों में से महत्वपूर्ण होने का संकेत देते हैं जो अपने अलग अस्तित्व के रूप में नहीं, बल्कि (परंपराश्रित समूह(हैं अर्थात् अनेक तत्व एक-दूसरे का सहारा लेकर सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन लाने के लिए काम करते हैं।

सांस्कृतिक तत्व मूल्यों और विश्वासों के तर्कसंगतिकरण तथा परंपरागत होने की सतत प्रक्रियाओं के द्वारा सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन लाते हैं। पारसन्स ने तर्कसंगतिकरण की अवधारणा का प्रयोग वेबर की व्याख्या के अनुसार किया है, जिसका अभिप्राय है कार्य, व्यक्तिगत कर्तव्यों तथा सामाजिक संस्थाओं के प्रति तर्कसंगत, व्यक्तिवादी और अभिनव दृष्टिकोण के क्रमिक विकास की प्रक्रिया। इसका अर्थ है राजा, पूजारी अथवा नेता जैसे शासक लोगों की व्यक्तिगत सनक अथवा परंपरा अथवा रीति-रिवाज की बजाय उत्तरदायित्व के निर्धारण के कानूनी तथा औपचारिक उपायों में बढ़ोत्तरी, किंतु तर्कसंगतिकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ सामाजिक प्रणालियों में कुछ समय बाद मूल्यों को स्थायित्व प्रदान करने अथवा संस्थागत करने की प्रवृत्ति भी रहती है। जिससे निहित स्वार्थ उभर आते हैं। ये निहित स्वार्थ स्थितियों में परिवर्तन होने के बावजूद उन्हीं मूल्यों को जारी रखने पर बल

देते हैं। ऐसा होने पर तार्किक मूल्यों में फिर से परंपरा का रूप आने लगता है। समाज अथवा सामाजिक प्रणाली में तर्कसंगतिकरण और परंपरागत होने की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है और पुराने मूल्यों के स्थान पर नए यह चक्र निरंतर गतिशील रहता है।

पारसन्स ने परिवार प्रणाली के उदाहरणों से सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन की प्रक्रियाओं को स्पष्ट किया है। परिवार में उसके सदस्यों के जीवनचक्र में अतंर्हित परिवर्तन के फलस्वरूप उसमें परिवर्तन होता रहता है। जन्म, बाल्यावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था और मुत्यु की प्रक्रियाएँ सभी परिवारों के अनिवार्य अंग है और इनमें से प्रत्येक प्रक्रिया ऐसे सामाजिक परिणाम लाती हैं, जो परिवर्तन तथा पारिवारिक भूमिकाओं, सदस्यों के व्यवसाय, सत्ता, प्रस्थिति और मूल्यों एवं विश्वासों में नए समायोजन का आवश्यक बना देते हैं। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के मूल्यों तथा दृष्किकोण में परिवर्तन परिवार प्रणाली का अंतर्निहित तत्व है। परिवार में निरंतरता तथा परिवर्तनों की इस प्रक्रिया की महत्वपूर्ण विधि है बालक का समाजीकरण। यह प्रक्रिया बालक के व्यक्तित्व में प्रणाली के मूल्यों को स्थापित करती है, किंतु बड़ा होने पर वही बालक समाज की व्यापक प्रणलियों से अन्य मूल्य ग्रहण करता है, हो सकता है कि बड़ा होने पर उसकी नई भूमिकाएँ और अपेक्षाएँ बाल्यवस्था की भूमिकाओं एवं अपेक्षाओं से मेल न खाती हों। इस प्रकार परिवार प्रणाली में स्थिरता और परिवर्तन की अंतनिहित प्रक्रिया है।

इन परिवर्तनों को परिवार चक्र के अध्ययन द्वारा चित्रित किया जा सकता है। इस चक्र का एक पहलू शारीरिक विकास की प्रक्रिया में बच्चे की भूमिका में परिवर्तन से संबंधित है। इससे बदलते हुए जैविक चक्र (उदाहरण के लिए बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था) में व्यक्ति के व्यक्तिगत पर प्रभाव पड़ता है। क्योंकि इसके साथ भूमिका अपेक्षाएँ बदल जाती है। पुराने शैक्षिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों के स्थान पर नए मूल्यों को आत्मसात् करना आवश्यक हो जाता है। समाजीकरण की जैविक प्रक्रिया निर्बाध नहीं होती, क्योंकि जीवन के एक चरण से दूसरे चरण में परिवर्तन में विरोध और चिंता का सामना करना पड़ता है। इससे नई भूमिकाओं तथा नए मूल्यों को सीखने के स्थान पर पुराने मूल्यों के संरक्षण की नई भूमिकाओं तथा नए मूल्यों को सीखने के स्थान पर पुराने मूल्यों के संरक्षण की नई विधियाँ सामने आती है। इसलिए समाजीकरण और शिक्षा की प्रक्रियाओं में पुरस्कार तथा दंड के माध्यम से सदैव भूमिका-अपेक्षाओं में हेर-फेर होती रहती है। बचपन में यह भूमिका माँ-बाप निभाते हैं और बड़ा होने पर सामाजिक प्रणाली, सामाजिक प्रतिबंध की अपनी संरचना के द्वारा अपेक्षित भूमिकाओं के साथ अनुरूपता स्थापित करती है।

परिवार चक्र का दूसरा पहलू संरचात्मक है। इसका निर्धारण परिवार में सदस्यों की संख्या में परिवर्तन से होता है। एकल परिवारों में सदस्यों की संख्या में वृद्धि से संयुक्त परिवार बन जाते हैं। परिवार का यह आकार प्रणाली के आंतरिक तथा बाहरी दोनों पहलुओं से प्रभावित हो सकता है। बाहरी पहलुओं में आर्थिक साधन, संपत्ति या व्यवसाय आदि शामिल किए जा सकते हैं। आंतरिक पहलु जन्म-दर तथा लिंग-अनुपात से निर्धारित होते हैं। ये दोनों पहलू एक-दूसरे से जुड़े हुए है।

3.3.6. सामाजिक आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन

पारसन्स ने सामाजिक प्रणाली के भीतर सामाजिक परिवर्तन का विवेचन दो स्तरों पर किया है :

- पहला स्तर है भूमिका के विभेदीकरण, समाजीकरण तथा संस्थागत होने की प्रक्रियाओं तथा उनके दबाओं के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन (परिवार प्रणाली के उदाहरण को देखिए)। इस प्रकार का परिवर्तन धीमा, सतत और स्वरूप में अनुकूलनपरक होता है। इस तरह के परिवर्तन की प्रक्रियाओं की शृंखला है : नवीनताएँ अथवा तर्कसंगतिकरण, नवीनता का संस्थागत होना, नए संस्थागत अनुकूलन के आसपास निहित स्वार्थों का किससित होना और अंततः नवीनता फिर से परंपरा बन जाती है यह अनुकूलनपरक सामाजिक परिवर्तन की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।
- दूसरा है क्रांतिकारी आंदोलन के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन, इस प्रकार का सामाजिक परिवर्तन क्रांतिकारी आंदोलन के फलस्वरूप होता है, जिसके कारण सामाजिक प्रणाली के संतुलन में अचानक अंतर आ जाता है। पारसन्स ने इसके लिए साम्यवादी तथा नाजी आंदोलनों के उदाहरण दिए है। पारसन्स के अनुसार इन आंदोलनों के जोर पकड़ने तथा सामाजिक प्रणाली में महत्ता पाने से पहले समाज में चार प्रकार की स्थितियाँ अवश्य होनी चाहिए। ये स्थितियाँ इन प्रकार हैं।
- लोगों में व्यापक रूप से फैली विलगता अथवा अलगाव की भावना। दूसरे शब्दों में, जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग मौजूदा प्रणाली से असंतुष्ट होना चाहिए।
- विद्रोही (अथवा वैकल्पिक विपरीत पक्ष) उपसंस्कृतिक के संगठन की विद्यमानता। अन्य शब्दों में ऐसी विपरीत विचारधारा की विद्यमानता जो मौजूदा विचारधारा से एकदम पृथक हो। इससे सामाजिक प्रणाली के सदस्यों में से बहुत बड़ी संख्या में लोगों को मौजूदा सामाजिक प्रणाली के प्रतिबंधों पर आचरण न करने और यहाँ तक कि खुली चुनौती देने में मदद मिलती है।
- उपरोक्त स्थिति के परिणामस्वरूप क्रांतिकारी आंदोलन की सफलता के लिए आवश्यक तीसरी स्थिति होती है। वह एक विचारधारा है। विश्वासों के एक समुच्चय का विकास जिसे सफलतापूर्वक लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके और उसके मूल्यों, प्रतीकों तथा संस्थागत स्वरूप के औचित्य का दावा किया जा सके।
- इस प्रकार के सामाजिक आंदोलन के लिए चौथी तथा अंतिम स्थिति है नए आंदोलन की विचारधारा को उचित सिद्ध करने तथा उसके समर्थन के लिए शासन की दृष्टि से सत्ता प्रणाली का संगठन करना तथा उसे क्रियात्मक रूप प्रदान करना। सोवियत संघ और चीन में साम्यवादी आंदोलन की सफलता ऐतिहासिक रूप में ऊपर बताई गई चारों स्थितियों की विद्यमानता और वैधता को दर्शाती है।

सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन का मुख्य परिणाम यह होता है कि इससे सामाजिक प्रणाली में ऐसी रूपांतरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है जोकि अनुकूलन लाती है, पारसन्स के अनुसार, इसका कारण यह है कि अधिकतर क्रांतिकारी विचारधाराओं में आदर्शलोक का

पुट रहता हैं। जब इन मूल्यों को लागू किया जाता है। विचारधारा जितनी क्रांतिकारी होगी, उस प्रकार की अनुकूलन संरचनाओं के विकास के लिए (रियासत की प्रक्रिया)अस्तित्व में आती है। विचारधारा जितनी क्रांतिकारी होगी, उस प्रकार की अनुकूलन संरचना तैयार करना उतना ही कठिन होगा। रूढ़िवादिता के प्रति विवशतापूर्ण रूझान होने लगता है। उदाहरण के लिए साम्यवादी आंदोलन में परिवार की संस्था को (बुर्जुआ पूर्वग्रह) अथवा संपत्ति के निजी स्वामित्व को एक बुराई की तरह माना गया, परंतु इन दोनों संस्थाओं परिवार और संपत्ति के निजी स्वामित्व को समाप्त करना व्यावहारिक धरातल पर संभव नहीं हुआ। इस प्रकार क्रांतिकारी विचारधाराओं में आदर्श एवं व्यवहार के बीच अंतर बना रहता है।

एक और बात यह है कि पारसन्स के अनुसार सभी क्रांतिकारी आंदोलनों की संरचनाओं में द्वैधवृत्ति पाई जाती है। जैसे कि साम्यवादी आंदोलन में वर्ग तथा समताबाई के बीच। इसके अलावा, इस तरह के आंदोलनों के अनुयायियों में अपनी उपेक्षित आवश्यकता-स्थितियों को संतुष्ट करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, क्योंकि वे प्रणाली को (उनका) अर्थात् किसी अन्य का नहीं बल्कि (हमारा) अर्थात् अपना मानकर चलते हैं। प्रणाली पर अधिकार की भावना के कारण नेताओं में व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आत्मतोष की प्रवृत्ति को बल मिलता है। आगे चलकर इसके कारण क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन की उग्रता कम हो जाती है। अंततः समय बीतने के साथ-साथ क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन की उग्रता कम हो जाती है अंततः समय बीतने के साथ-साथ क्रांतिकारी आधार पर चलाया गया आंदोलन धीरे-धीरे (रूढिवादिता) की ओर बढ़ने लगता है। तब यहाँ भी पूर्व प्रवृत्ति पैदा हो सकती है। जिस प्रकार अन्य किसी भी सामान्य सामाजिक प्रणाली में होता है। पारसन्स का मत है कि इस प्रकार अन्य किसी भी सामान्य सामाजिक प्रणाली में होता है। पारसन्स का मत है कि इस प्रकार क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन भी, सामाजिक प्रणाली में मूल परिवर्तन लाने का दाबा करते हैं। अंततः सतत् परिवर्तन की बजाए प्रणाली की स्थिरता की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन की प्रक्रिया अपनाने लगते हैं। इस प्रकार के क्रांतिकारी आंदोलनों का प्रारंभ तो परंपरा के विरोध से होता है, किंतु उनका अंत रूढ़िवाद में होता है।

3.3.7. सामाजिक प्रणालियों में आमूल परिवर्तन: विकासात्मक सार्विकीय तत्व

पारसन्स ने सामाजिक परिवर्तन के विकासात्मक सिद्धांत का विस्तृत विवेचन किया। परंतु सामाजिक परिवर्तन के प्रति उसका दृष्टिकोण मुख्यतया प्रकार्यात्मक रहा अर्थात् वह तब भी यही मानता था कि परिवर्तन की सभी प्रक्रियाएँ लंबे समय तक प्रणाली को बनाए रखने के लिए विभेदीकरण और अनुकूलन के प्रति दबावों से पैदा होती है, किंतु पारसन्स ने दो नए कारक भी प्रस्तुत किए, जो इस प्रकार है

(1) उसने "विकासात्मक सार्विकीय की अवधारणा का प्रतिपादन किया, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक सामाजिक प्रणाली अथवा समाज की विशिष्ट ऐतिहासिक विशेषताओं के बावजूद (अपनी संस्कृति और भौतिक वातावरण से बंधे होने के कारण) यदि हम समाजों में एक लंबे अंतराल का परिवर्तन देखें तो विकास के कुछ सामान्य दिशाएँ पाई जाती है, जिनसे हर समाज विकसित होने के लिए गुजरता है।

सामाजिक विकास की इस ऐतिहासिक प्रक्रिया के निर्देश और स्वरूप को पारसन्स ने (विकासात्मक सार्विकीय तत्व) कहा है।

(2) सामाजिक परिवर्तन के प्रति पारसन्स के विचारों में इस अवधि में एक और नया विचार सामने आया। इस विचार को इस तथ्य में देखा जा सकता है कि उसने सामाजिक प्रणालियों के विकासात्मक चरणों के प्रमुख प्रकारों का विश्व-स्तर पर ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विश्लेषण करने पर बल दिया। इस विश्लेषण के माध्यम से मानव इतिहास के आदिम समाजों से लेकर आधुनिक औद्योगिक समाजों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया।

3.3.8. आदिम अथवा प्राचीन समाज

सामाजिक संगठन की दृष्टि से ये समाज सर्वाधिक प्राथमिक है। पारसन्स के अनुसार, अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए किसी भी मानव समाज में ये अभिलक्षण होने चाहिए :

- अर्थव्यवस्था का मूल स्वरूप, जिसमें मनुष्यों को जीवित रखने की व्यवस्था (भोजन एकत्र करना, शिकार, पशु-पालन तथा कृषि आदि) होनी चाहिए,
- प्राथमिक तकनीकी जिसके द्वारा खाद्य सामग्री का उत्पादन, आवास की व्यवस्था तथा पर्यावरण एवं अन्य खतरों से सुरक्षा हो सके,
- बातचीत करने अथवा संप्रेषण के कुछ साधन, जिनसे परिवार से समुदाय स्तर तक सामाजिक एकात्मकता स्थापित हो सके और सामाजिक संगठन की देख-रेख की जा सके,
- विश्वास प्रणाली (जीववाद, जीवात्मबाद, जादू-टोना, धर्म आदि) जिसके माध्यम से लोगों की सांस्कृतिक तथा अभिव्यक्तिपरक प्रेरणाओं को सामाजिक दृष्टि से संयोजित तथा समन्वित किया जा सके,
- इस प्रकार के समाजों के संचालन के लिए राजनीतिक संगठन का प्राथमिक रूप भी आवश्यक है। राजनीतिक प्रणाली जनजाति की मुखिया प्रथा अथवा समुदाय के सामूहिक नियमों के द्वारा नियंत्रण होने के सरल रूप में भी हो सकती है। अतः समाज के समन्वित अस्तित्व के लिए राजनीतिक संगठन का होना अनिवार्य है।

मध्यवर्ती समाज

पारसन्स के अनुसार आदिम चरण के पश्चात दूसरा विकासात्मक सार्विकीय चरण है समाज का मध्यवर्ती प्रकार। समाज का यह प्रकार सामाजिक विभेदीकरण के दबाव के फलस्वरूप अस्तित्व में आता है। पारसन्स के विचार में सामाजिक प्रणाली में इस तरह के दबाव का सर्वाधिक सामान्य कारण है जनसंख्या में वृद्धि। इससे समाज के आकार तथा रचना में बदलाव आता है। जैविक प्रणाली वाले समाजों में विभेदीकरण का स्वरूप दोहरे विभाजन का होता है अर्थात् इसमें इकाइयों के दो हिस्से हो जाते हैं। जैविक प्रणाली के समरूप सामाजिक प्रणाली में भी जनसंख्या वृद्धि के दबाव के कारण मानव बस्तियों का दोहरा विभाजन होता है और यह है शहरी तथा ग्रामीण। यह विभाजन और आगे बढ़ता हुआ

व्यवसायों में विभेदीकरण लाता है, जिसमें अनेक प्रकार के कृषि से भिन्न व्यवसाय उभरते हैं। यह इसलिए होता है, क्योंकि कस्बों एवं शहरों के विकास के कारण आबादी उभरते हैं। जिससे नए वर्गों का सृजन होता है। इसके अंतर्गत अतिरिक्त संपत्ति को नियंत्रित करने और सत्ता तथा ऊँची सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त करने वाले लोगों, कारीगरों शिल्पकारों, साहित्यकारों, पूजारियों, व्यापारियों, योद्धाओं आदि के अनेक वर्ग अस्तित्व में आते हैं। आदिमकालीन अथवा आदिवासी समाज सामान्यतया वह समाज होता है जिसमें वर्गों तथा जातियों के बीच कोई विभाजन नहीं होता। इन समाजों में मुखियाओं को कुछ विशेषाधिकार अवश्य प्राप्त होते हैं, किंतु वे मुख्यतया सम्मानपरक ही होते हैं अर्थात् नेता को सम्मान प्राप्त होता है। उनकी जीवन-शैली में अन्य लोगों से कोई विशेष भिन्नता नहीं होती है। विकास के दूसरे चरण में वर्ग के आधार पर अथवा जैसे कि नए प्रकार के नियमों की आवश्यकता पड़ती है। समाज के इस चरण में पहले की भाँति केवल रीतियों और प्रयासों से समाज का प्रबंध करना संभव नहीं रहता। इसलिए समाज के शासन के लिए और अधिक नियम स्थिति में राजनीतिक प्रणाली अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित रूप ग्रहण कर लेती है, जैसे कि सामंतवाद अथवा राजतंत्र, परंतु पारसन्स के अनुसार दो आधारभूत नई संस्थाएँ विकास के मध्यवर्ती अथवा राजतंत्र। परंतु पारसन्स के अनुसार दो आधारभूत नई संस्थाएँ विकास के मध्यवर्ती चरण में समाज को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती है और

1. सामाजिक स्तर की व्यापक एवं जटिल प्रणाली का उदय, और
2. समाज के सामाजिक नियंत्रण के सामान्य प्रतिमानों का उदय।

आधुनिक समाज

पारसन्स के अनुसार समाजों के विकास की प्रक्रिया का तीसरा चरण है आधुनिक सामाजिक प्रणलियाँ। इस प्रकार के समाजों का उदय विकास के मध्यवर्ती चरण, जिसे समाजों का पूर्व-औद्योगिक चर भी कहा जा सकता है(से अनेक प्रकार की सामाजिक संस्थाओं के विकास के माध्यम से हुआ। इस प्रक्रिया में प्रौद्योगिकी ने निश्चय ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, किंतु यह विकास पश्चिमी यूरोपीय समाज में हुई तीन प्रकार की क्रांतियों के कारण संभव हुआ। पारसन्स के अनुसार, ये क्रातियाँ मानवता के लिए पश्चिम की विशिष्ट देन है। यही कारण है कि पारसन्स का यह विचार भी है कि समाज के आधुनिक चरण का विकास पूर्णतया पश्चिम के योगदान का परिणाम है और इस दिशा में पूर्व अर्थात् चीन या भारत जैसी किसी भी अन्य सभ्यता ने भूमिका नहीं निभाई।

उत्पादन की कारखाना प्रणाली से शहरी और औद्योगिक विकास में योगदान मिला और समाज के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में विज्ञान तथा प्रौद्योगिक की बढ़ती हुई भूमिका विकास का स्थाई तत्व बन गई। यह क्रांति यूरोप में लोकतांत्रिक क्रांति का विशेष योगदान रहा, जिसमें समानता, विश्व बंधुत्व, स्वतंत्रता जैसे मूल्यों की स्थापना की और राजशाही की जड़ें खोदकर उसके स्थान पर निर्वाचित सरकार की लोकतांत्रिक प्रक्रिया का सूत्रपात किया। इंग्लैंड में भी सुधार आंदोलन तथा राजनीतिक आंदोलन द्वारा राजा की निरंकुश सत्ता छिन गई और शासन के अधिकार निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों के हाथों में चले गए। लोकतांत्रिक आंदोलन का एक क्रांतिकारी परिणाम नई सामाजिक प्रणाली के उदय के

रूप में हुआ, जिनके अंतर्गत जन्म नहीं, बल्कि व्यक्ति की योग्यता समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा का आधार बन गई। औद्योगिक तथा लोकतांत्रिक क्रांतियों ने मिलकर सामाजिक परिवर्तन की गई प्रक्रिया की नींव डाली, जिससे अवसरों की उपलब्धता के विषय में लोगों को अधिक भागीदारी तथा समानता मिलने लगी, किंतु यह सभी कुछ तीसरी क्रांतिकारी घटना के कारण संभव हुआ और वह है यूरोपीय समाज में शैक्षिक क्रांति।

3.3.9. क्रिया का अर्थ

यदि हम संपूर्ण मानव जीवन की विवेचना करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि हर क्रिया प्रधान है। अत्यंत ही सरल शब्दों में हम जो कुछ भी करते हैं, उसे क्रिया के नाम से जाना जा सकता है। गीता में इसी क्रिया को कर्म कहकर संबोधित किया गया है और गीता में संपूर्ण जीवन को ही कर्म माना गया है। के अनुसार - जीवन और कर्म अभिन्न है और इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार जीवन में जो भी कार्य किए जाते हैं। क्रिया के नाम से जाने जाते हैं। इसी आधार पर पारसन्स ने क्रिया की व्याख्या करते हुए लिखा है कि - "क्रिया कर्ता परिस्थिति व्यवस्था में वह प्रक्रिया है जिसका कि कर्ता के लिए या सामूहिक रूप से उस समूह के कुछ व्यक्तियों के लिए प्रेरणात्मक महत्वपूर्ण होता है।

पारसन्स ने इसीलिए लिखा है कि - "क्रियात्मक प्रक्रियाएँ सदैव ही कर्ता की इच्छाओं की पूर्ति या अवांछनीयताओं के पृथक्कीकरण से संबंधित तथा उनमें प्रभावित होती हैं, चाहे कर्ता के व्यक्तित्व का प्रभाव कैसा भी क्यों न हो।

पारसन्स ने सामाजिक क्रिया की विवेचना की है, इसके आधार पर उसकी निम्न विशेषताओं का निर्धारण किया जा सकता है।

(1) पारसंसय का कहना है कि सामाजिक क्रिया को एक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जा कसता है। प्रक्रिया के अभाव में सामाजिक क्रियाओं का संपादन संभव नहीं है। प्रक्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं - एकीकरण करने वाली सामाजिक प्रक्रियाएँ और विभेदीकरण करने वाली सामाजिक प्रक्रियाएँ यही कारण है कि सामाजिक क्रियाएँ सहयोगी होती हैं और असहयोगी भी।

(2) सामाजिक क्रिया का मौलिक तत्व प्रक्रिया है। यदि हम इसकी विवेचना करें, तो स्पष्ट होता है कि इस प्रक्रिया के दो तत्व हैं।

(अ) कर्ता और

(ब) परिस्थिति।

कर्ता और परिस्थिति के अभाव में सामाजिक क्रिया संपादित नहीं होस सकता है। कर्ता क्रिया करता है और परिस्थिति उसे सामाजिक क्रिया करने को प्रेरित करती है।

(3) सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में कर्ता जो भी प्रतिक्रिया करते हैं, उसके परिणामस्वरूप ही सामाजिक क्रियाएँ संपादित होती है। उदाहरण (Example) पारसन्स ने सामाजिक क्रिया को समझज्ञने के लिए एक अच्छा उदाहरण दिया है। उसके अनुसार संपूर्ण समाज एक (रंगमंच की भाँति है। इन रंगमंच में सामाजिक नाटकों का प्रदर्शन होता है। इस सामाजिक नाटक व्यक्ति अभिनेता है। इस परिभाषा का तात्पर्य

यह है कि व्यक्तियों की अलग-अलग परिस्थितियाँ होती हैं। इन परिस्थितियों के संदर्भ में जब कर्ता उत्तेजना स्वरूप उसी भी प्रकार की क्रिया सामाजिक संदर्भ में की जाती है तो इसे ही सामाजिक क्रिया के नाम से जाना जाता है।

यहाँ मौलिक प्रश्न यह उठता है कि क्रियाओं को संपादित करने के व्यक्ति उत्तेजित क्यों होता है? यहाँ व्यक्ति को क्रिया करने की जो उत्तेजना प्राप्त होती है, उसके दो कारण है।

(1) सामाजिक संदर्भ या सामाजिक परिस्थितियाँ, और

(2) व्यक्ति की आवश्यकताएँ।

सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में व्यक्ति जब अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है तो इसे सामाजिक क्रिया के नाम से जाना जाता है।

सामाजिक क्रिया का अर्थ

समाजशास्त्र के क्षेत्र में पारसन्स का सर्वाधिक योगदान सामाजिक क्रिया के क्षेत्र में है। पारसन्स ने अपनी इस सिद्धांत की विवेचना अपनी पुस्तक "सामाजिक क्रिया की संरचना (The Structure of Social Action) में व्यक्त किया है। यद्यपि पारसन्स से पूर्व भी अनेक विद्वानों ने अपने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। इन विद्वानो में परेटो, मैक्स बेबर और दुर्खीम का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। पारसन्स ने इन विद्वानों पर यह आरोप लगाया है कि इन्होंने सामाजिक क्रिया की व्याख्या ठीक उसी प्रकार की है, जिस प्रकार कि वे उसे समझना चाहते थे। पारसन्स ने सामाजिक क्रिया की सार्वाभौतिक विवेचना प्रस्तुत की है।

सरल शब्दों में समाज के सदस्य के रूप में व्यक्ति द्वारा सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में किया गया कार्य ही सामाजिक क्रिया है। सामाजिक क्रियाओं में कर्ता की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पारसन्स का कहना है कि कर्ता के अभाव में सामाजिक क्रियाएँ संपादित ही नहीं हो पाती हैं।

3.3.10. पारसन्स का क्रिया सिद्धांत

समाजशास्त्रीय जगत में पारसन्स का क्रिया सिद्धांत अत्यंत उल्लेखनीय तथा विवेचनीय है। पारसन्स ने वस्तुतः इस सिद्धांत के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करने की विधि प्रतिपादित की है। पारसन्स के इस सिद्धांत का मूल विषय यही है कि यदि सामाजिक क्रियाओं की विश्लेषण कर ली जाए तो हम सामाजिक व्यवस्था क्रिया की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। सामाजिक क्रिया की परिभाषा करते हुए पारसन्स ने लिखा है। - "सामाजिक क्रिया के अंतर्गत मानव की समस्त गतिविधियाँ आ जाती हैं। सामाजिक क्रिया वे क्रिया हैं, जिसमें कर्ता अपनी अभिप्रेरणाओं से लक्ष्यों की प्राप्ति करने का प्रयास करता है। इस प्रकार पारसन्स ने क्रिया के लिए कर्ता, लक्ष्य, परिस्थितियाँ और साधन इन चार तत्वों की प्रमुख माना है।

अपने इस सिद्धांत की आवश्यकता बताते हुए पारसन्स आगे लिखता है - "उन सबसे विभिन्न दृष्टियों से इस संगठित सिद्धांत के लिए महत्वपूर्ण येाग दिया है। इस दृष्टि से पारसन्स का मत पैरेटो,

वेब्लेन, मैक्स वेबर, दुर्खीम आदि समाजशास्त्रियों से है। वस्तुतः पारसन्स ने अपना क्रिया सिद्धांत इन्ही विचारकों के विचारों से संबंधित रखा है। पारसन्स आगे लिखना है कि सामाजिक क्रिया का सिद्धांत केवल अवधारणाओं एवं उनके तार्किक अंतसंबंधों का समूह मात्र नहीं है।

पारसन्स ने अपने इस सामाजिक क्रिया सिद्धांत का विवेचन अपनी पुस्तक "दी स्ट्रक्चर ऑफ सोशल ऐक्सन" में क्रिया है जो **1937** में प्रथम बार प्रकाशित हुई। पारसन्स की यह पुस्तक चार खंडों में प्रकाशित हुई है। इसके प्रथम खंड में पारसन्स ने अपना पद्धतिशास्त्र संबंधी विवेचन किया है। इस दृष्टि से उसने क्रिया का प्रत्युत्तरवादी सिद्धांत के नाम से विश्लेषण प्रस्तुत की है। इस सिद्धांत में पारसन्स ने अपने पद्धतिशास्त्र को चार तत्वों पर आधारित किया है। ये तत्व हैं तार्किकता, प्रत्यक्षवाद, प्रकार्यवाद और सामाजिक इकाई। इन चार तत्वों के आधार पर पारसन्स ने प्रत्यक्षवादी परंपरा में प्रचलति कमियों को इंगित किया है। इसके बाद पारसन्स ने पैरेटी और दुर्खीम के विचारों की आलोचना की है।

पारसन्स द्वारा प्रस्तुत सामाजिक क्रिया का सिद्धांत आधुनिक युग का प्रमुख सिद्धांत है, पारसन्स के पूर्व विचारकों ने इस दृष्टि से अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है। परंतु प्रत्येक में कमियाँ बताते हुए पारसन्स ने यह सिद्धांत पारित किया। इस दृष्टि से प्रथम मार्शल का स्थान उल्लेखनीय है। मार्शल के विचारों पर टिप्पणी करते हुए पारसन्स ने लिखा है कि उसने क्रिया की तार्किकता की खोज नहीं की है। मार्शल ने यह भी नहीं माना है कि क्रिया के लिए आवश्यकताओं का स्वतंत्र अस्तित्व होता है। इस भाँति पारसन्स लिखता है कि मार्शल के विचारों को हम पूर्णतः प्रत्यक्षवादी नहीं मान सकते । मार्शल के बाद पारसन्स ने पैरेटो के विचारों की समीक्षा की है। पैरेटो ने इस दृष्टि से विशिष्ट चालक सिद्धांत प्रतिपादित किया है। पैरेटो का उद्देश्य अतार्किक क्रियाओं का विश्लेषण करना था। पैरेटो ने लिखा है कि क्रियाओं का अंतिम लक्ष्य अतार्किक होता है। पारसन्स के अनुसार पैरेटो ने अतार्किक क्रियाओं पर अधिक बल देकर अच्छा नहीं किया। उसने लिखा है कि अतार्किक भी पारसन्स ने पैरेटो के योगदान को उल्लेखनिय बताया। परंतु उसकी व्यापक टीका अपने सिद्धांत में की है।

इस प्रकार क्रिया सिद्धांत के संदर्भ में पारसन्स ने अपने पूर्ववर्ती विचारें की व्यापक रूप से समीक्षा की है। क्रिया संबंधी दुर्खीम के विचारों की समीक्षा करते हुए पारसन्स ने लिखा है कि दुर्खीम ने सामाजिक क्रिया के कारणों की व्याख्या सामाजिक घटनाओं के संदर्भ में की जानी चाहिए। दुर्खीम के इस मत को पारसन्स करता है। यहाँ अन्य तत्वों का समावेश होता है। पारसन्स लिखता है कि प्रत्येक क्रिया के पीछे कुछ आदर्श और मूल्य अवश्य होते हैं। ये सामाजिक आदर्श और मूल्य ही व्यक्ति की क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति को इन मूल्यों के अनुरूप ही अपनी क्रिया को आयोजित करना पड़ता है। प्रत्येक समाज में इन आदर्शों और मूल्यों की व्यवस्था होती है। इनकी अवहेलना करना समाज के हित मे नहीं है। इसलिए प्रत्येक समाज में व्यक्तियों पर इनका नियंत्रण होता है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की क्रियाएँ इनके नियंत्रण में रहती हैं। इसी प्रकार प्रत्येक क्रिया की कुछ दशाएँ और परिस्थितियाँ होती है जो क्रिया विशेष को प्रभावित करती है। ये परिस्थितियाँ साधनों की प्रकृति को निर्धारित करती है। परिस्थिति के अनुसार व्यक्ति क्रिया करने के तलिए इन साधनो को चुनता है। इस परिस्थिति की सीमा में ही क्रियाएँ आयोजित की जाती है।

इस प्रकार पारसन्स ने अपने क्रिया सिद्धांत में क्रिया के तत्वपों की विश्लेषण की है। वह यह मानता है इन तत्वों के विश्लेषण के अभाव में क्रिया-व्यवस्था की व्याख्या नहीं हो सकती। और इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था की व्याख्या हेतु यह विश्लेषण अति आवश्यक है। पारसन्स लिखता है कि सामाजिक व्यवस्था उस समाज की भौतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप होती है। इन्ही कारणों से विश्व में विभिन्न प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाएं पाई जाती है। इसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था क्रिया के संदर्भ में भी उल्लेखनीय स्थान रखती है। अर्थात् क्रिया का रूप-स्वरूप सामाजिक व्यवस्था और उसकी विशिष्ट प्रकृति के अनुकूल होते हैं। इस प्रकार क्रिया औ सामाजिक व्यवस्था के पारस्परिक संबंधों को भी पारसन्स ने स्पष्ट करेन का प्रयास किया है।

इस प्रकार सामाजिक परिस्थिति सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक क्रिया व्यवस्था में घनिष्ठ संबंध है। इस मत को भी पारसन्स ने स्पष्ट करने का यत्न किया है। उसके मतानुसार सामाजिक परिस्थिति व्यक्तियों की स्थिति (Status) और कार्यों (Roles) को निर्धारित करती हैं। इन स्थितियों के अनुसार ही व्यक्ति को समाज मे कार्य या क्रिया करना पड़ता है। व्यक्ति को परविार में, पडो़स में, व्यावसायिक संगठनों आदि सभी में अपनी स्थितियों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। स्थितियों का ज्ञान हो। तभी वे अपनी क्रियाओं को तार्किक रूप में संचालित कर सकते हैं। वास्तव में व्यक्तियों की भूमिकाओं का निर्धारण केवल सामाजिक स्थितियों के आधार पर ही नहीं होता है। क्योंकि भूमिका व्यवस्था में एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से अंतःक्रिया करनी पड़ती है। इसी प्रकार व्यक्तियों को अपनी भूमिकाओं का संचालन करने के लिए सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान भी आवश्यक है। पारसन्स का सामाजिक परिस्थितियों से यहाँ तात्पर्य समाज के मूल्यों एवं आदर्शों से है। इनके ज्ञान के अभाव में व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से वांछित व्यवहार और क्रियाएँ नहीं कर सकता है। इसीलिए पारसन्स कहता है कि व्यक्तियों को इन सबका ज्ञान करने के लिए सामाजीकरण की व्यवस्था की जाती है।

क्रिया के आधार

अपने क्रिया सिद्धांत को और अधिक स्पष्ट करने के लिए पारसन्स ने आगे और भी व्याख्या प्रस्तुत की है। सामाजिक क्रिया व्यवस्था की व्याख्या के लिए पारसन्स ने कुछ व्यवस्थाओं की व्याख्याओं को भी आवश्यक माना है। इस दृष्टि से पारसन्स के क्रिया के निम्न आधार पर बताए हैं :

(1) व्यक्तित्व व्यवस्था

पारसन्स कहता है कि जीवनशास्त्रीय दृष्टि से व्यक्ति का जन्म इस संसार में अति असहाय अवस्था में होता है। सामाजिक अर्थ में उसमें किसी भी प्रकार की क्रिया करने की क्षमता नहीं होती है। इस प्रकार सामाजिक सावयव के अंग के रूप में व्यक्ति इस अवसथा में अन्य व्यक्तियों से सहायता लेता है। वह उनके संपर्क में आता है। उनके विचारों, भावनाओं, उद्देश्यों, आदतों तथा मूल्यों आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। पारसन्स कहता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास की यही प्रक्रिया है। पारसन्स ने इस दृष्टि से व्यक्तित्व पर भी अपने इस सिद्धांत में प्रकाश डाला है। उसने लिखा है कि यह व्यक्तित्व व्यवस्था ही

क्रिया व्यवस्था का आधारभूत है। व्यक्तित्व व्यवस्था को ही पारसन्स ने क्रियाव्यवस्था कहा है। उसके मतानुसार कर्ता क्या है? यह उसका व्यक्तित्व ही बतलासकता है। इसलिए पारसन्स कहता है कि व्यक्तित्व व्यवस्था का व्याख्या के अभाव में क्रिया-व्यवस्था की वैज्ञानिक व्याख्या करना असंभव है।

(2) सामाजिक व्यवस्था

कर्ता की क्रिया का निर्धारण जैसा कि हम देख चुके हैं सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप होता है। इसलिए क्रिया व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था को पारसन्स से समान स्तर प्रदान किया है। सामाजिक व्यवस्था का व्यक्तित्व व्यवस्था से भी घनिष्ठ संबंध है। इस तथ्य को इंगित करते हुए पारसन्स लिखता है कि व्यक्ति सामाजिक परिस्थिति तथा व्यवस्था के संपर्क एवं प्रभाव में दो प्रकार से आता है। इनको हम सामाजिक तत्त्व और गैर-सामाजिक तत्व कह सकते हैं। सामाजिक तत्वों में समूह, समुदाय, आदि आते हैं। गैर-सामाजिक तत्वों के अंतर्गत पारसन्स ने सांस्कृतिक व्यवस्था का उललेख किया है। इस प्रकार इन दोनों तत्वों के संपर्क में आने से व्यक्ति को सामाजिक परिस्थिति का ज्ञान होता है जिसके आधार पर व्यक्ति अपनी भावी क्रिया को रूप देता है।

इस प्रकार व्यक्तित्व व्यवस्था के अनुरूप सामाजिक व्यवस्था होती है। इन दोनों व्यवस्थाओं में पारस्परिक निर्भरताओं का संबंध है। ये दोनों व्यवस्थाएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं। सभी व्यक्तियों एक समान नहीं होता है। एक ही सामाजिक परिस्थिति में अपने-अपने व्यक्तित्व के अनुसार व्यक्ति क्रियाएँ करते हैं। इस प्रकार पारसन्स कहता है कि वैयक्तिक विभिन्नताओं के कारण व्यक्तित्व व्यवस्था में विभिन्नता विकसित हो जाती है। इस दृष्टि से साधनों एवं लक्ष्यों को विभिन्नताओं के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए पारसन्स लिखता है कि यह आवश्यक नहीं कि सभी समय में समान साधन उपलब्ध हों। समाज मं विभिन्न साधन एक क्रिया को करने के लिए हो सकते हैं । व्यक्ति उन विभिन्न साधनों में से चयन करता है जिसके द्वारा वह अपनी क्रियाओं को संचालित करता है। इन साधनों की विभिन्नता को पारसन्स ने प्रतिमानित विविधता (Pattern Variables) कहा है। पारसन्स कहता है कि साधनों और उद्देश्यों की विविधता के समान मूल्यों और आदर्शों में भी भिन्नता पाई जा सकती है। ये सभी प्रतिमानों की विविधता को प्रभावित करते हैं।

(3) संदर्भ संरचना

यह पारसन्स के क्रिया सिद्धांत में प्रयुक्त एक नवीन अवधारणा है। पारसन्स ने संदर्भ संरचना के अंतर्गत विभिन्न तत्वों को समाविष्ट किया है। उसके अनुसार इन सभी तत्वों का विश्लेषण भी क्रिया व्यवस्था के विश्लेषण के लिए आवश्यक है। इन तत्वों का उल्लेख करते हुए पारसन्स ने बताया है कि कर्ता, समूह, और परिस्थिति ये सब संदर्भ संरचना के आवश्यक तत्त्व हैं। क्रिया-व्यवस्था के इन महत्वपूर्ण तत्वों की प्रकृति बतलाते हुए पारसन्स लिखता है कि इनमें सभी में परस्पर संबंध पाया जाता है। इस प्रकार पारसन्स कहता है कि इन सभी संदर्भ तत्वों के परस्पर संबंधों के संदर्भ में ही क्रिया-व्यस्था की व्याख्या की जा सकती है।

पारसन्स का संदर्भ संरचना का विचार जैननिकी से मिलता है। जैननिकी ने लिखा है कि समाज के व्यक्तियों की क्रियाओं का अध्ययन सामाजिक क्रियाओं सामाजिक कार्यों, सामाजिक संबंधों, सामाजिक समूहों और सामाजिक व्यक्तियों के संदर्भ में ही हो सकता है। इस विचार को पारसन्स ने नया रूप देकर संदर्भ संरचना के नाम से विश्लेषित करने की चेष्टा की है।

इस प्रकार पारसन्स ने 1937 ई. में प्रकाशित होने वाली अपनी रचना में उपर्युक्त विचारों की विवेचना की है। इन विचारों को क्रिया की संदर्भ संरचना (Frame of Reference of Action) कह सकते हैं। इस विवेचना के बाद पारसन्स ने अपने क्रिया सिद्धांत पर आगे और कार्य किया। 1952 ई. में उसकी दूसरी रचना प्रकाशित हुई। इस रचना का नाम पारसन्स ने (सोशल सिस्टम((Social System) रखा। इस रचना में पारसन्स ने अपने क्रिया के सिद्धांत को और आगे बढ़ाया है और उसे परिभाषित किया है। हम उक्त पुस्तक के संदर्भ में इस सिद्धांत पर आगे विचार करेंगे। इस पुस्तक के माध्यम से पारसन्स ने क्रिया-व्यवस्था से सामाजिक व्यवस्था को समझने का सुझाव दिया है। यही इस नवीन कार्य की विशेषता है।

क्रिया की परिभाषा करते हुए पारसन्स ने अपनी पुस्तक (सोशल सिस्टम(लिखा है, (क्रिया कर्ता-परिस्थिति व्यवस्था में एक प्रक्रिया है। जिसका एक वैयक्तिक कला अथवा एक समूह के संदर्भ में उसके सदस्यों के लिए प्रेरणात्मक महत्व होता है।

यदि हम पारसन्स की पहली दी हुई क्रिया की परिभाषा का अवलोकन करें तो हमें प्रतीत होगा कि उसने इस परिभाषा में अनेक परिमार्जन सम्मिलित कर दिए हैं। इस दृष्टि से क्रिया के लिए पारसन्स ने प्रमुखतः तीन तत्व बताए हैं। (1) कर्ता, (2) परिस्थिति (3) प्रेरणा। कर्ता के संबंध में स्पष्टीकरण देते हुए पारसन्स ने लिखा है कि (कर्ता) शब्द से हमारा तात्पर्य क्रिया करने वाले से है। इसके अंतर्गत व्यक्ति भी हो सकता है और समूह भी। परिस्थिति को उसने पहले वर्णित तत्वों के समान ही रखा है। अर्थात् कर्ता की क्रिया करने की दशाओं को पारसन्स ने परिस्थिति कहा है। अपने इस सिद्धांत में पारसन्स ने प्रेरणा के तत्व को नए रूप में सम्मिलित किया है। क्रिया को प्रेरणा देने वाली शक्तियों को पारसन्स ने प्रेरक कहा है। इस भाँति पारसन्स ने अनुसार क्रिया के लिए ये तीनों तत्व उल्लेखनीय हैं और इन तत्वों की व्याख्या के अभाव में सामाजिक व्यवस्था की विश्लेषण नहीं हो सकती है।

सामाजिक क्रिया के इस परिमार्जित सिद्धांत में पारसन्स ने प्रेरणा के तत्व को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना है। वह लिखता है कि प्रेरणा क्रिया की प्रकृति और रूप को निर्धारित करती है। (क्रिया) शब्द के अंतर्गत किसी आवश्यकता की पूर्ति और अवांछित चीजों का बहिष्कार ये दोनों तत्व सम्मिलित है। परंतु वांछित तथा अवांछित का निर्णय कर्ता का व्यक्तित्व करता है। वह अपने विवेक के आधार पर निश्चित करता है कि किस आवश्यकता की पूर्ति के लिए क्रिया करनी चाहिए। इस प्रकार क्रिया की प्रेरक शक्तियों का उल्लेख करते हुए पारसन्स कहता है कि सामाजिक-सावयव भी क्रिया की एक प्रेरणा शक्ति है। परंतु वह सावयव-व्यवस्था की विश्लेषण को क्रिया-विश्लेषण के लिए आवश्यक नहीं माना है। पारसन्स लिखता है - "सामाजिक क्रिया सिद्धांत की दृष्टि से क्रिया तत्व का संगठन परिस्थिति से कर्ता के संबंध का प्रकार्य है। अतः पारसन्स को महत्वपूर्ण प्रेरक निर्धारित करता है।

सामाजिक क्रिया सिद्धांत को निष्कर्षणात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए पारसन्स ने इस प्रकार सामाजिक परिस्थिति के आधारभूत पक्षों की विवेचना की है। ये आधारभूत पक्ष की क्रिया में प्रेरणा का संचार करते हैं। इन आधार-भूत पक्षों की विवेचना करते हुए पारसन्स ने व्यक्तित्व व्यवस्था को परिभाषित किया है। उसके अनुसार व्यक्तित्व व्यवस्था, व्यक्ति की आदतें, अभिवृत्तियाँ धारणाएँ, मूल्य आदि का संगठन हैं। व्यक्ति ही अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को प्रकट करता है तथा उसकी पूर्ति के लिएण् क्रिया करता है। इस प्रकार अपनी सामाजिक व्यवस्था की विश्लेषणा में पारसन्स ने व्यक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

पारसन्स लिखता है कि क्रिया के लिए सांस्कृतिक व्यवस्था का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उसका यह दृढ़ मत रहा है कि व्यवस्था ही प्रमाणिक करती है। व्यक्ति अपनी संस्कृति का अंग होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व पर संस्कृति की छाप होती है। इसलिए पारसन्स यह कहता है कि व्यक्ति की क्रिया-व्यवस्था में संस्कृति की व्यवस्था का गहरा प्रभाव पड़ता है। इन दोनों व्यवस्थाओं को एक एक संदर्भ में समझना आवश्यक है। संस्कृति व्यवस्था था को पारसन्स ने प्रतीकात्मक (Symbolic) व्यवस्था कहा है। वह लिखता है कि कुछ चिन्हों और प्रतीकों का एक ऐसा अर्थ विकसित हो जाता है जो व्यक्तियों और समूहों के बीच संचार में स्थान ले लेता है। इस प्रकार पारसन्स कहता है कि सांस्कृतिक-व्यवस्था, क्रिया-व्यवस्था का एक अंग है।

यद्यपि सामाजिक व्यवस्था पारसन्स का प्रतिपाद्य विषय रहा है। उसने मुख्यतः अपनी (सोशल सिस्टम(नामक पुस्तक में इसी विषय पर व्यापक रूप से विचार किया है। सामाजिक व्यवस्था का उसने एक भिन्न सिद्धांत पारित किया है। इस सिद्धांत पर आगे हम विस्तार में विचार करेंगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पारसन्स ने अपने इस क्रिया सिद्धांत में क्रिया के विभिन्न पक्षों पर विचार किया है। क्रिया की विश्लेषण के लिए उसका यह मत रहा है कि इन सभी तत्वों एवं आधारों की व्याख्या आवश्यक है। इस सिद्धांत के माध्यम से पारसन्स ने समाजशास्त्र के क्षेत्र में एक सुदृढ़ विश्लेषणात्मक पद्धति को प्रतिपादित किया है। यद्यपि विचारकों ने विभिन्न दृष्टियों से पारसन्स की आलोचना की है। विचारकों का मत है कि पारसन्स ने इस सिद्धांत में शब्द जाल का प्रपंच रच दिया है। पारसन्स ने क्रिया सिद्धांत में कठिन भाषा का प्रयोग किया है। एक छोटी बात को समझाने के लिए उसने बहुत विस्तार में विवेचना की है। तथापि हम पारसन्स के इस सिद्धांत को उसका महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय योगदान कह सकते हैं।

3.3.11. पारसन्स का क्रियात्मक दृष्टिकोण

सामाजिक प्रणाली के प्रति पारसन्स का दृष्टिकोण समन्वयात्मक है। उसने उक्त प्रणाली के निर्माण के लिए न केवल उपयोगितावादी परिप्रेक्ष्य में विद्यमान अभिप्रेरणात्मक तथ्यों के महत्व को प्रदर्शन किया, बल्कि मूल्यों के महत्व को भी स्पष्ट किया। उसने अपने इस दृष्टिकोण का निर्माण सामाजिक क्रिया के सिद्धांत के रूप में किया, जो सामाजिक प्रणाली का मूल तत्व है।

पारसन्स 1937 के अनुसार क्रिया एकांत में नहीं होती। क्रिया अलग होने के बजाय सामूहिक योग में होती है। जो प्रणालियों का निर्माण करते हैं। इन प्रणालियों पर हमने आगे विचार किया है। आइए पहले आप (क्रिया(की अवधारणा को समझ लें। पारसन्स के अनुसार (क्रिया(की अवधारणा का जन्म मनुष्यों के व्यवहार से हुआ है। एक जीवधारी प्राणी के रूप में बाह्य जगत के साथ और अपने भीतरी मन के साथ अंतर्क्रिया करते हैं। ये व्यवहार आगे दी हुई चार स्थितियों में क्रिया का रूप धारण कर लेते हैं।

- इनका प्रयोजन किसी लक्ष्य या किसी प्रत्याशित परिणाम को प्राप्त करना होता है।
- यह किसी विशिष्ट स्थिति में घटित होती है।
- यह समाज के मानदंडों और मूल्यों से नियंत्रित होती है।
- इसके लिए ऊर्जा अथवा अभिप्रेरणा अथवा प्रयत्न की अपेक्षा होती है।

जब ये सभी विद्यमान हो तो व्यवहार क्रिया में बदल जाती है। आप उस महिला का उदाहरण लीजिए जो स्वंय कार चलाकर मंदिर जा रही है। वह संभवत: वहाँ पूजा करने जा रही है। ऐसी स्थिति में उसका लक्ष्य मंदिर में पूजा करना है जिसकी तरफ वह उन्मुख है। उसकी क्रिया की स्थिति वह सड़क है जिस पर वह अपनी कार चला रही है और वह कार जिसमें वह बैठी है। इसके अलावा उसका व्यवहार सामाजिक प्रतिमानों या मूल्यों द्वारा नियंत्रित है और मंदिर जाकर पूजा करने की क्रिया को समाज से मान्यता भी प्राप्त है। इसके अतिरिक्त कार चलाने के लिए वह अपनी बुद्धिमान और कार चलाने के कौशल का इस्तेमाल कर रही है, इसे उसने समाज से सीखा है। कार चलाने की इस क्रिया का मतलब है, ऊर्जा का प्रयोग कार के स्टियरिंग हवील को पकड़ना एक्सिलेटर का ठीक से प्रयोग करना और भीड़ भरी सड़क पर ठीक से गाड़ी चलाना आदि। जब व्यवहार को इस प्रकार विश्लेषण करके देखा जाता है तो इसे क्रिया कहा जा सकता है।

क्रियान्मुखता की इस स्थिति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो अभिप्रेरणात्मक उन्मुखता और दूसरी मूल्यपरक उन्मुखता अभिप्रेरणात्मक उन्मुखता उस स्थिति की ओर संकेत करती है, जिसमें आवश्यकताओं, बाह्य उपस्थिति और योजनाओं के परिप्रेक्ष्य में किया होती है। चिंतन के मानवों पर आधारित है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। पारसन्स के अनुसार कोइ्र क्रिया एकांत में नहीं होती, अपितु ये सामूहिक योग में होती है। क्रिया के इस सामूहिक योग से प्रणालियों का निर्माण होता है। क्रिया की इन प्रणालियों को तीन तरह से संगठित किया जा सकता है। पारसन्स के अनुसार ये प्रणालियाँ है। व्यक्तित्व प्रणाली सांस्कृतिक प्रणाली और सामाजिक प्रणाली। व्यक्तित्व प्रणाली मानव के व्यक्तित्व के उन पहलुओं के बारे में बताती है, जो व्यक्ति की सामाजिक क्रिया पद्धति को प्रभावित करती है। दूसरी ओर सांस्कृतिक प्रणाली में वास्तविक विश्वास मूल्यों की मूर्त व्यवस्था संप्रेषण के प्रतीकात्मक साधन शामिल है। सामाजिक प्रणाली में व्यक्तियों और इनसे बनने वाले संगठनों के बीच अंतः क्रिया के रूपों और तरीकों की ओर संकेत किया है। इस संदर्भ में मिचल (1979:204) ने सामाजिक प्रणाली के उदाहरण के रूप में किसी संगठन की प्राधिकार संरचना को या किसी परिवार में श्रम विभाजन को किया है।

पारसन्स के अनुसार किसी सामाजिक प्रणाली में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं।

- दो या अधिक व्यक्तियों के बीच अंतः क्रिया होती है और अंतः क्रियात्मक प्रक्रिया ही इसका मुख्य केंद्र बिंदु है।
- अंतः क्रिया ऐसी स्थिति में होती है, जिसमें किसी अन्य पात्र या व्यक्ति की अपेक्षा होती है। इन व्यक्तियों में संवेगों और मूल्यों के बारे में निर्णय लेने की शक्ति होती है तथा इनके द्वारा वे अपने लक्ष्यों और क्रिया के साधनों को प्राप्त करते हैं।
- सामाजिक प्रणाली में सामूहिक लक्ष्योन्मुखता होती है। या समान मूल्य होते हैं और मानदंडों तथा संज्ञानात्मक अर्थों में अपेक्षाओं पर सर्वसम्मति होती है।

सामाजिक प्रणाली की अवधारणा को और अच्छी तरह से समझने के लिए आइए अब हम सामाजिक प्रणाली के गठन की आधारभूत इकाई का परीक्षण करें।

3.3.12. सामाजिक प्रणाली के संगठन की आधारभूत इकाई

सामाजिक प्रणाली में क्रिया के संगठन की एक प्रणाली है, जिसे भूमिका कहते हैं। यह सामाजिक प्रणाली की आधारभूत अवधारणात्मक इकाई है और इसमें एकल व्यक्ति के समग्र क्रियाकलापों की व्यवस्था भी सम्मिलित होती है। यह उस एकल व्यक्ति की क्रिया प्रणाली और सामाजिक प्रणाली के बीच विभाजक बिंदु भी है। पारसन्स के अनुसार भूमिका का मुख्य तत्व भूमिका की अपेक्षा है। इसमें एक पात्र और दूसरे व्यक्ति के बीच परंपरता की भी अपेक्षा होती है और यह श्रेणीबद्ध अभिप्रेरणात्मक और मूल्यपरक उन्मुखताओं से नियंत्रित होती है।

जैसा कि एवं उल्लेख किया जा चुका है। अभिप्रेरणात्मक उन्मुखता उस स्थिति की ओर संकते करते हैं। जिसमें कोई क्रिया एकल पात्र या व्यक्ति की आवश्यकताओं या अभिप्रेरणाओं, बाहरी उपस्थितियों और योजनाओं को ध्यान में रखकर होती है। मूल्यपरक उन्मुखता का अर्थ क्रिया के मूल्य, सौंदर्य बोध, नैतिकता आदि पक्षों से है। सामाजिक प्रणाली की क्रियात्मक इकाइयों के संगठन में अभिप्रेरणाओं और मूल्यों, दोनों का समावेश होता है, जो इसे पहले (यानि अभिप्रेरण के संदर्भ में) व्यक्तित्व प्रणाली से और बाद में (यानि मूल्यों के संदर्भ में) सांस्कृतिक प्रणाली से जोड़ते हैं।

अभिप्रेरणात्मक उन्मुखता

अभिप्रेरणात्मक उन्मुखता के तीन क्षेत्र है। ये है- बोधपरक भावप्रवण और मूल्यांकन परक उन्मुखता।

- बोधपरक उन्मुखता पात्रों (व्यक्तियों) को अपने वातावरण को या वस्तु को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार मानसिक वस्तु के रूप में देखने में सहायता करता है। वे (यानी पात्र) अपने प्रेक्षण की विषय-वस्तु की वस्तुनिष्ठता को समझने का प्रयास करते हैं।
- भावप्रवण उन्मुखता में पात्रों की अपनी विषय-वस्तु के प्रति भावप्रवण अभिवृत्ति शामिल होती है।

- मूल्यांकनपरक उन्मुखता पात्रों को सर्वाधिक सक्षमता से अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने प्रयासों को संगठित करने में मदद करता है। इस विषय में एक गृहिणी के व्यवहार का उदाहरण लीजिए जो बाजार में सब्जी खरीदने जाती है। बोधपरक उन्मुखता से उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार सब्जियों की गुवणत्ता को समझने में मदद मिलती है, और फिर उनकी कीमतों के संदर्भ में आवश्यकता को समझने में मदद मिलती है। भावप्रवण उन्मुखता से वह यह निर्धारित करती है कि वह किस सब्जी के अधिक पसंद करती है। और उसके बाद मूल्यांकनपरक उन्मुखता से उसके लिए य संभव होता है कि वह ऐसी सब्जी का चयन करे जिससे उसे सबसे अधिक संतोष प्राप्त हों।

मूल्यपरक उन्मुखता

मूल्यपरक उन्मुखता के क्षेत्र के भी तीन भाग है ये हैं -

- बोधपरक उन्मुखता - बोधपरक उन्मुखता का संबंध निर्णय की बैधता से है।
- विवेचनात्मक उन्मुखता - विवेचनात्मक उन्मुखता उसे कहते हैं जिनके द्वारा पात्रों के लिए यह संभव होता है कि वे वस्तुओं के प्रति संवेगात्मक अनुक्रिया, इसकी उपयुक्तता या संगति के बारे में निर्णय ले सकें,
- नैतिक उन्मुखता - नैतिक उन्मुखता वह है, जो (अपनी) वस्तुओं के प्रति पात्र या व्यक्ति की मूल्य-प्रतिबद्धता की ओर संकेत करती है।

बाजार में सब्जी खरीदने वाली गृहिणी का उदाहरण गृहिणी की सेवन अभिप्रेरणात्मक उन्मुखता को स्पष्ट करता है, लेकिन मूल्यपरक उन्मुखता के क्षेत्र में समाज की मूल्य व्यवस्था और सांस्कृतिक विन्यास आते हैं। पात्र व्यक्तिगत रूप से सांस्कृतिक विन्यास के संदर्भ में क्रिया करते हैं। उदाहरण के तौर पर परिवार में बेटे की भूमिका और प्रस्थिति समाज में निर्धारित कुछ प्रतिमानों से निर्देशित होती है। जैसे पितृसत्तात्मक परिवार मे बेटे की प्रस्थिति मातृसत्तापरक परिवार से भिन्न होती है। उसका व्यवहार उसके समाज के प्रतिमानों से निर्देशित होगा।

इस प्रकार अभिप्रेरणात्मक उन्मुखता में व्यक्ति की केवल अभिप्रेरणाएँ और मनोवैज्ञानिक पहलू ही शामिल होते हैं, जबकि मूल्यपरक उन्मुखता से पूर्ण सांस्कृतिक प्रणाली जुड़ी होती है। व्यक्ति के व्यवहार में मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक दोनों परंपरा एक-दूसरे से जुड़े हुए है और एक-दूसरे पर निर्भर होती है।

पारसन्स के अनुसार अभिप्रेरणात्मक उन्मुखता और मूल्यपरक उन्मुखता के दो स्तर है, जो भूमिका और भूमिका अपेक्षाओं के व्यवहारपरक और सांस्कृतिक पहलुओं को निर्धारित करते हैं।

सामाजिक प्रणाली में भूमिकाओं का संस्थागत होना

सामाजिक प्रणाली में भूमिकाएँ संस्थागत हो जाती हैं, भूमिकाओं के संस्थागत होने का अर्थ किसी विशिष्ट भूमिका की अपेक्षाओं में है इसके मूल्यों और अभिप्रेरणात्मक उन्मुखताओं को समाज की

संस्कृति में एकीकृत कर लिया जाता है समाज अपने सदस्यों से भूमिका अपेक्षाओं की दृष्टि से समान मानक निर्धारित करता है और जब सदस्य अपनी भूमिकाओं की उन्मुखताओं को उनके अदा करने के लिए समाज के समान मानकों को आत्मसात् कर लेता है, तो वह कहा जाता है कि भूमिकाएँ संस्थागत हो गई है।

समाज में इन भूमिकाओं को समाज द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार या संस्थागत विन्यास के अनुरूप निष्पादित किए जाने के लिए हर समाज कुछ प्रतिबंध लागू करता है। वे प्रतिबंध यथा-स्थिति पुरस्कार या दंड के रूप में होते हैं और यह व्यक्ति की भूमिका पर निर्भर है कि उसकी भूमिका समाज द्वारा निर्धारित मानकों या मूल्यों के अनुसार है या इन मूल्यों का उल्लंघन करती है।

सामाजिक प्रणाली के रूप में सामूहिकता

पारसन्स की सामूहिकता की धारणा एक सामाजिक प्रणाली के रूप में भूमिका की अवधारणा से जुड़ी है। सामूहिकता की धारणा को सामाजिक प्रणाली की सीमा के द्वारा ही पहचाना जा सकता है। इससे ही यह निर्धारित होता है कि सामूहिकता की सदस्यता के दयारे में किन सदस्यों को रखा जाए और किन सदस्यों को न रखा जाए। सभी सामूहिकताओं की अपनी सदस्यता की सीमाएँ होती हैं। (जैसे-नातेदारी, योग्यता, कौशल या धार्मिक विश्वास आदि)। यहाँ सीमा से हमारा मतलब उन सीमाओं से है, जिनकी दृष्टि से सामाजिक प्रणाली एक अलग सता या इकाई के रूप में कार्य करती है। सामाजिक प्रणाली के उदाहरण के रूप में नातेदारी व्यवस्था में इनके सदस्य उनकी भूमिकाएँ और प्रस्थिति है। ये दोनों उस समाज एक स्थिति से दूसरी स्थिति में अलग-अलग होती है। श्रेणी के समान सामूहिकता केवल समाज के सदस्यों का समूह नहीं है। किसी श्रेणी का निर्धारण आयु, लिंग या शिक्षा जैसी समायोजन बातों के आधार पर होता है। सामूहिकता केवल उन व्यक्तियों की बहुलता में नहीं है जो परिस्थतिवश समान रूप में एक-दूसरे पर निर्भर है यानी बाजार जैसी भौतिक स्थिति है।

सामूहिकता उपर्युक्त दोनों प्रकार के सामाजिक समुच्चयों से भिन्न है। क्योंकि इसकी बहुलता की विशेषता इसके सदस्यों की सकात्मकता है। जैसा कि नातेदारी के समूह में या किसी संघ में पाया जाता है। यह एकात्मकता समान मूल्यों के संस्थागत होने से पैदा होती है। जैसे किन्हीं निकट संबंधियों में सहयोग की भावना के रूप में या समान धार्मिक आचरणों या विश्वासों को मानने वाले लोगों के रूप में।

सामूहिकताओं के कुछ आंतरिक उप-विभाजन उप-सामूहिकताओं के रूप में हो सकते हैं, जहाँ सदस्यता का क्षेत्र परस्पर व्यापी हो सकता है। सामूहिकताएँ और उप-सामूहिकताएँ ये दोनों सामाजिक प्रणाली के रूप में है। पारसन्स के अनुसार समाज एक पूर्ण सामाजिक प्रणाली है, जो आत्मपोषी है या आत्मनिर्भर है और वह किसी बाहरी सामाजिक प्रणाली पर आश्रित नहीं है, लेकिन सामाजिक प्रणाली और समाज में अंतर आपेक्षित और विश्लेषण पर आधारित है।

अब तक आपने सामाजिक प्रणाली की अवधारणात्मक इकाई के बारे में पढ़ा है, जिसके अंतर्गत भूमिकाएँ, भूमिकाओं का संस्थागत होना और सामाजिक प्रणाली के रूप में सामूहिकता शामिल है। सामाजिक प्रणाली के रूप में सामूहिकता में व्यक्तियों को उपलब्ध अपनी पसंद की क्रियाओं की

व्याख्या के लिए पारसन्स ने विन्यास प्रकारांतरों की अवधारणाओं का विकास किया। इन अवधारणाओं के बारे में आप अगले भाग में पढ़ेंगे।

3.3.13. विन्यास प्रकारांतर

सभी क्रिया प्रणालियों की विशेषताओं को प्रतिबिंबित करने वाली अवधारणओं के विकास के लिए पारसन्स ने अवधारणाओं के ऐसे समुच्चय का प्रतिपादन किया, जो इन प्रणालियों की परिवर्तनशील प्रकारांतर विशेषताओं को प्रदर्शित कर सकें। इन अवधारणाओं को विन्यास प्रकारांतर कहा गया।

भूमिका सामाजिक प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। इसके निष्पादन से तनाव (बल) पैदा होते हैं। तनाव की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि भूमिका-अपेक्षाओं को समाज में किस प्रकार संस्थागत किया गया है और यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि सामाजिक व्यक्तियों (पात्रों) द्वारा किस हद तक भूमिका-अपेक्षाओं के मूल्यों को आत्मसात् किया गया है। अभिप्रेरणात्मक उन्मुखता और मूल्यपरक उन्मुखता के संबंध में अपनी भूमिकाओं के निष्पादन में हर व्यक्ति को कई दुविधाओं का सामना करना पड़ता है। ये दुविधाएँ आवश्यकताओं और मूल्यों से संबंधित उन्मुखताओं के क्षेत्र में व्यक्ति की पसंद या अभिरुचि से होने वाले तनावों से पैदा होती है। यद्यपि इन दुविधाओं को द्विभाजित रूप में देखा जाता है। वास्तव में, उन्हें अविच्छिन्न रूप से रखा जाता है। लेकिन यहाँ सरलता को ध्यान में रखते हुए हम यह मानकर चलते हैं कि इन दुविधाओं का स्वरूप द्विभाजित यानी दो भागों में बंटा हुआ है। इससे पहले कि पात्र (व्यक्ति) स्थिति के संबंध में आगे कार्य करे, उसे दो विकल्पों में से एक को चुनना होता है। उदाहरण के लिए ऐसी स्थिति में जब व्यक्ति को सार्वभौम मूल्यों और विशिष्ट मूल्यों में से चुनाव करना हो तो व्यक्ति इनमें से किसी एक को ही चुन सकता है। हमारे पास कुल पाँच विन्यास प्रकारांतर है। इनमें से प्रत्येक विन्यास प्रकारांतर दूसरे का पूरी तरह से उलटा है। ये विन्यास प्रकारांतर है।

- भावात्मकता बनाम भावात्मक तटस्थता
- आत्म उन्मुखता बनाम सामूहिक उन्मुखता
- सार्वभौमवाद बनाम विशिष्टावाद
- प्रदत्त बनाम अर्जित
- विनिर्दिष्टता बनाम प्रसरणता

भावात्मकता बनाम भावात्मक तटस्थता

भावात्मकता बनाम भावात्मक तटस्थता का संबंध भूमिका-निष्पादन में होने वाली दुविधा से है जहाँ किसी विशिष्ट स्थिति के विषय में मूल्यांकन की अपेक्षा होती है। संवेगात्मक दृष्टि से या कुछ हद तक संवेगात्मक तटस्थता से स्थिति का किस सीमा तक मूल्यांकन किया जाए? समाज में जिन अधिकांश भूमिकाओं को करने की हमसे अपेक्षा की जाती है। इनमें चुनाव की हमारे सामने कठिन समस्या पैदा होती है। उदाहरण के लिए आप बच्चे और माँ के संबंधों को लें। इसमें अत्यधिक भावात्मक उन्मुखता होती है, लेकिन इसके साथ अनुशासन भी जरूरी है। इस प्रकार बहुत से अवसरों पर अपने बच्चे के

समाजीकरण के संदर्भ में माँ को भावात्मक-तटस्थता की भूमिका निभानी पड़ती है, लेकिन माँ और बच्चे के संबंध में अनिवार्य रूप में भावात्मकता भूमिका प्रधान है। इसकी तुलना में डॉक्टर और रोगी के संबंधों में भावात्मक तटस्थता दिखाई देती है। इसमें डॉक्टर की भूमिका की विशेषता है। सही डॉक्टरी उपचार के लिए भावात्मक तटस्थता आवश्यक है। यह बात विशेष रूप से वहाँ और भी जरूरी है। जहाँ शल्य क्रिया (चीर-फाड़) की जरूरत होती है, परंतु पारसन्स के अनुसार भूमिका-निष्पादन की सभी स्थितियों में चुनाव की दुविधा और इसकी अभिव्यक्ति या वचनबद्धता की मात्रा रहती है।

आत्म उन्मुखता बनाम सामूहिक उन्मुखता

इसी तरह आत्म उन्मुखता बनाम सामूहिक उन्मुखता विन्यास प्रकारांतर में मूल्यांकन प्रक्रिया में मुख्य बात नैतिक मानक की है। नैतिक मानक का प्रश्न इस बात से उठता है कि पात्र या व्यक्ति को सामूहिकता यानी व्यापक हितों को चुनाव करना पड़ता है। इसमें किसी-न-किसी रूप में परोपकार या त्याग की भावना निहित होती है। ऐसी विन्यास प्रकारांतर की दुविधा की स्थिति आदिम आर्थिक पद्धति और तत्कालीन समाज से आधुनिक सभ्यता के काल तक मानव जीवन में सदैव बनी रही है। हमारे सामने समाजवादी समाज और समाजवादी चेतना की धारणा एक अच्छा उदाहरण है जहाँ समग्र सामाजिक प्रणाली और इसकी सभ्याओं के विन्यास सामूहिकता उन्मुखता के अनुकूल महत्वपूर्ण चयन पर आधारित है, लेकिन जैसा कि पारसन्स ने सही संकेत किया है कि ऐसे मूल्यों का संस्थागत होना सदैव क्षणिक होता है। इसका कारण यह है कि पात्र की स्थिति की तरफ प्रतिक्रिया हमेशा ही दुविधा के रूप में होती है।

सार्वभौमवाद बनाम विशिष्टतावाद

सार्वभौमवाद बनाम विशिष्टतावाद एक विन्यास प्रकारांतर है, जो उस भूमिका स्थिति को निरूपित करता है। जहाँ व्यक्ति की दुविधा संज्ञानात्मक बनाम संवेगात्मक मानकों के मूल्यांकन के संबंध में होती है। मानव व्यवहार के सार्वभौमवादी मानकों के पालन की भूमिका का एक बहुत ही अच्छा उदाहरण भूमिका निष्पादनों का है, जो पूरी तरह से कानून सम्मत मानदंडों और कानूनी स्वीकृति के अनुसार है। अगर कोई व्यक्ति व्यक्तिगत रिश्तेदारी या मित्रता के संबंधों पर ध्यान दिए बिना कानून के नियमों का पालन करे, तो वह सार्वभौमवादी भूमिका निष्पादन प्रणाली का उदाहरण कहा जाएगा। अगर कोई व्यक्ति केवल इसलिए कानूनी मानदंडों का उल्लधन करे कि संबद्ध व्यक्ति उसका रिश्तेदार या दोस्त है, तो यह कहा जाएगा कि उस समय विशिष्टतावादी तक कार्यरत थे। पारसन्स का कहना है कि ऐसे समाजों में जहाँ नौकरशाही, औपचारिक संगठन और आधुनिक संस्थाओं की व्यापक भूमिका है वहाँ सार्वभौमवाद और विशिष्टतावाद के बीच दुविधा की स्थिति रोजमर्रा के जीवन में चुनाव के विषय बन गए है।

प्रदत्त बनाम अर्जित

प्रदत्त बनाम अर्जित विन्यास प्रकारांतर में व्यक्ति की दुविधा इस बात पर आधारित है कि क्या व्यक्ति अपनी भूमिका के विषय को गुणवत्ता या निष्पादन की दृष्टि से निरूपित करता है। भारत में इस विन्यास प्रकारांतर का बहुत अच्छा उदाहरण जाति व्यवस्था द्वारा नियंत्रित भूमिका निष्पादन है। जाति व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्तियों की प्रतिष्ठा का निर्धारण उनकी व्यक्तिगत उपलब्धि या व्यक्तिगत कौशल या ज्ञान के आधार पर न होकर उनके जन्म के आधार पर होता है। प्रदत्त का आधार किसी व्यक्ति में जन्म या आयु या लिंग या नातेदारी अथवा जाति के आधार पर उस पर योग्यता आरोपित करना है। उपलब्धि का आधार व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत प्रयास से कौशल अर्जित करके समाज में एक विशेष स्तर तक कार्य-निष्पादन के योग्य बनना है।

विनिर्दिष्टता बनाम प्रसरणता

विनिर्दिष्टता बनाम प्रसरणता विन्यास प्रकारांतर का संबंध भूमिका निष्पादन के विषय-क्षेत्र से है। इस संदर्भ में क्षेत्र का मतलब सामाजिक अन्योन्य क्रिया की प्रकृति से है। डॉक्टर और रोगी के बीच या बाजार में ग्राहक और सामान विक्रेता के बीच सामाजिक अन्योन्य क्रिया का एक बहुत ही विशिष्ट क्षेत्र है। इन अन्योन्य क्रियाओं की प्रकृति की व्याख्या अन्योन्य क्रियाओं के अत्यंत सीमित संदर्भ में की गई है। एक डॉक्टर को अपने रोगियों के इलाज के लिए तथा उन्हें दवा देने के लिए उनकी सामाजिक वित्तीय या राजनीतिक पृष्ठभूमि समझने के जरूरत नहीं होती। डॉक्टर का कार्य बहुत विशिष्ट प्रकार का है और यही बात बाजार में सामान के विक्रेता की है, जिसे अपने ग्राहकों के जीवन को सामान्य बातें जानने की कतई आवश्यकता नहीं होती। पात्रों के बीच प्रतिक्रिया के मानकों की दृष्टि से इन भूमिकाओं की विशिष्ट भूमिकाएँ कहा जाएगा।

इसके विपरीत कुछ भूमिका संबंध बहुत सामान्य और व्यापक प्रकृति के है। ऐसी भूमिकाओं में अन्योन्य क्रिया के कई पहलू होते हैं। इस प्रकार के भूमिका संबंधों के कुछ उदाहरण है- मित्रता संबंध पति-पत्नी के बीच दाम्पत्य संबंध विभिन्न स्तरों के रिश्तेदारों के बीच संबंध। ये सब संबंध ऐसे हैं, जहाँ व्यक्ति किसी रिश्तेदार आदि के साथ किसी विशिष्ट संवर्ग में उस रूप में अंतर किया नहीं करता, अपितु वह विसरित रूप में दो घनिष्ट मित्रों की तरह अतर्क्रिया करता है। यहाँ अन्योन्य क्रिया का क्षेत्र लचीला खुला और व्यापक प्रकृति का है।

पारसन्स के अनुसार विन्यास प्रकारांतर न केवल सामाजिक प्रणाली में भूमिका अंतर्क्रिया और भूमिका अपेक्षाओं को निरूपित करते हैं, बल्कि इसके साथ ही व्यापक निर्देश भी देते हैं, जिसमें सामाजिक प्रणाली के अधिकांश सदस्य अपनी भूमिकाएँ चुनते हैं। इससे हमें सामाजिक प्रणाली की प्रकृति की जानकारी भी मिलती है। उदाहरण के तौर पर सामाजिक प्रणाली के रूप में परिवार को ही लीजिए। एक परिवार में सदस्यों को भूमिका-अपेक्षाएँ मोटे तौर पर सामूहिकता उन्मुखता विशिष्टतावादी प्रदत्त परक और प्रसरणात्मक होगी। इसके विपरीत यदि आप किसी चिकित्सा संघ बार-संघ या छात्र संघ के सदस्य हों तो उसका उदाहरण लीजिए। यहाँ भूमिका-अपेक्षाएँ और भूमिका निष्पादन के मानक

अधिकांश रूप से भावात्मक तटस्थता, आत्म उन्मुखता (प्रतियोगिता के कारण) सार्वभौमिकता, उपलब्धि और विनिदिष्टता के विन्यास प्रकारांतर की ओर उन्मुख होंगे। परंतु ये सब अतिवादी उदाहरण है। वास्तविक जीवन में विन्यास प्रकारांतर की दृष्टि से चुनाव की दुविधा उपर्युक्त उदाहरणों की तुलना में कहीं अधिक अनिश्चित और तनावपूर्ण होती है।

अब तक आपने सामाजिक प्रणाली की विभिन्न विशेषताओं के बारे में पढ़ा। इससे अगले भाग में हम सामाजिक प्रणाली के उन पहलुओं पर विचार करेंगे, जिन्हें पारसन्स सामाजिक प्रणाली को सुचारू रूप से कार्य करने लायक बनाने के लिए पूर्व आवश्यकता मानता है।

प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाएँ

यह आप पढ़ चुके है कि पारसन्स के विचार में परिवार, अर्थव्यवस्था, शासन व्यवस्था आदि सभी व्यवस्थाओं की अपनी सीमाएँ है, जिसे वे अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए सदैव बनाए रखती है। इन व्यवस्थाओं का आत्म-अनुरक्षण तभी संभव है, जब सामाजिक प्राणी के रूप में मानव-पात्रों (व्यक्तियों) का समाज में समाजीकरण हो जाए और उनके अभिप्रेरणात्मक और मूल्यपरक उन्मुखताओं का प्रतिरूपण हो जाए। सामाजिक प्रणालियों को अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए अपने आंतरिक संगठन और बाहरी वातावरण के बीच कुछ अपरिहार्य व्यवस्थाएँ और समझौते करने पड़ते हैं। ये समझौते ठीक उसी तरह से है। जैसे कि मनुष्य के शरीर को बाहरी वातावरण के साथ और शरीर में निरंतर स्थिर तापमान बनाए रखकर करने पड़ते हैं। पारसन्स के विचार में सामाजिक प्रणालियों में भी ऐसी ही आत्म समन्वयकारी और अपने रख-रखाव की क्षमता है। ये जो समन्वयकारी प्रक्रियाएँ सामाजिक प्रणाली को आंतरिक रूप से और अपनी सीमा अवस्थाओं के द्वारा बनाए रखती है उन्हें प्रकार्य कहते हैं। प्रकार्य प्रणाली के आत्म-अनुरक्षण की प्रक्रियाएँ है।

कुछ ऐसे प्रकार्य भी है, जिनके बिना सामाजिक प्रणाली जीवित नहीं रह सकती। इसे टालकट पारसन्स ने (प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाएँ) कहा है। इस प्रकार की चार प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाएँ है।

- अनुकूलन
- लक्ष्य प्राप्ति
- एकीकरण
- विन्यास अनुरक्षण

इन प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाओं की कार्य पद्धति के क्षेत्र के बारे में आगे यह बताया गया है कि क्या ये पूर्वापेक्षाएँ प्रणाली की बाहरी प्रक्रियाओं से संबंध रखती है या आंतरिक। उनका अंतर्क्रिया की प्रकृति के रूप से भी विरूपण किया गया है जैसे ये अंतर्क्रियाएँ प्रयोजनात्मक है या नैमित्तिक प्रयोनात्मक अंतर्क्रिया से अभिप्राय यह है कि जहाँ किसी अभीष्ट लक्ष को प्राप्त करने पर बल हो और नैमित्तिक अंतर्क्रिया में अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने में साधनों के अधिग्रहण और समामेलन पर बल होता है।

अनुकूलन

प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षा के रूप में अनुकूलन का मतलब है प्रणालियों के बाहर से संसाधनों का उत्पादन और अधिग्रहण इसका बाहरी वातावरण और प्रणाली में वितरण करना। बाहरी वातावरण का मतलब है (जमीन, पानी) आदि। उदाहरण के लिए यहाँ हम आर्थिक प्रणाली को ले सकते हैं। जिसमें समाज में संसाधनों का उपयोग उत्पादन और वितरण शामिल है। अनुकूलन प्रणाली के बाहरी तत्वों की ओर उन्मुख होता है और यह नैमित्तिक प्रकृति का है।

लक्ष्य प्राप्ति

लक्ष्य प्राप्ति ऐसी प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षा है जिसमें एक तो लक्ष्य के निर्धारण का समावेश होता है। दूसरे लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सामाजिक प्रणाली के सदस्यों को अभिप्रेरित करने की आवश्यकता होती है। तीसरी बात, इन लक्ष्यों को पाने के लिए सदस्यों और उनकी शक्तियों को जुटाने की आवश्यकता होती है। इसकी प्रक्रियाएँ प्रयोजनात्मक होती है। हालॉकि इसमें बाहरी अंतरक्रिया सम्मिलित होती है।

सामाजिक प्रणाली में शक्ति और अधिकार संरचना का संगठन उस संस्था का उदाहरण है, जिसमें लक्ष्य प्राप्ति का जोरदार प्रयास होता है। राजनीतिक प्रक्रियाएँ इसके उदाहरण है। यहाँ यह याद रखना होगा कि लक्ष्य प्राप्ति सामाजिक प्रणाली के वैचारिक और संगठनात्मक ढाँचे से संबंधित है।

एकीकरण

एकीकरण ऐसी प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षा है, जिससे किसी प्रणाली में सुसंगति, एकात्मकता और समन्वय स्थापित करने में मदद मिलती है। सामाजिक प्रणाली में यह प्रकार्य मुख्य रूप से सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों द्वारा किया जाता है। इसलिए सांस्कृतिक प्रणाली और इससे संबंधित संस्थाएँ और आचरण एकीकरण करने वाले तत्व है। एकीकरण के द्वारा किसी प्रणाली में निरंतरता समन्वय और एकात्मता सुनिश्चित होती है तथा इससे प्रणाली को टूटने और बिखराव से बचाने में भी मदद मिलती है। यह प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षा व्यवस्था के लिए आंतरिक है, जो प्रयोजनात्मक प्रकृति की है।

विन्यास अनुरक्षण

विन्यास अनुरक्षण सामाजिक प्रणाली की उस प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षा को कहते हैं, जो सामाजिक प्रणाली में उसके तत्वों की अभिप्रेरणात्मक ऊर्जा का संग्रह संगठन और अनुरक्षण करती है। इसके मुख्य प्रकार्य प्रणाली के अंदर विन्यास अनुरक्षण और तनाव-प्रबंध है।

यह प्रकार्य सामाजिक प्रणाली के सदस्यों के समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। समाजीकरण की प्रक्रिया इस सामाजिक प्रणाली के विशिष्ट प्रतीकों, मूल्यों, रुचियों और आदतों को अपनाने में सहायता करती है। यहाँ यह जोड़ देना जरूरी प्रतीत होता है कि पारसन्स के मत में तनाव प्रबंधन सभी संस्थाओं में आभ्यंतर रूप में होना चाहिए। इस तरह से इसे (एकीकरण) के प्रकार्य से अलग किया जा सकता है। यहाँ एकीकरण का अभिप्राय समाज की विभिन्न प्रणालियों में एकीकरण से है।

विन्यास अनुरक्षण की प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षा का नैमित्तिक स्वरूप भी है। इससे पिछले भागों में हमने आपको सामाजिक प्रणाली की अवधारणा या परिचय कराया था। आइए, अब हम पारसन्स द्वारा दी गई सामाजिक प्रणाली की संरचनाओं के प्रकारों के अनुभाश्रित उदाहरणों को समझने की कोशिश करें।

3.3.14. सारांश

सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में प्रतिमानित विकल्पों के उल्लेख द्वारा पारसन्स ने यह स्पष्ट किया कि समाज में कोई भी क्रिया करते समय विभिन्न कत्र्ता दोनों तरह के प्रतिमानित विकल्पों के बीच दोलन करते रहते हैं। समाज का ढाँचा यदि परंपरागत होता है तो कत्र्ता का झुकाव उन क्रियाओं की ओर हो जाता है जिनमें व्यक्तिवादिता, प्रदत्त प्रस्थिति, रागात्मकता, मिश्रित प्रतिमानों तथा स्व-केंद्रता की विशेषताएँ होती हैं। सामाजिक व्यवस्था जब आधुनिक की ओर बढ़ने लगती है, तब सामाजिक क्रियाओं में सार्वभौमिकता, अर्जित प्रस्थिति, रागात्मक निष्पक्षता, विशिष्टता तथा समूह-केंद्रता के प्रतिमान प्रबल हो जाते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से पासंस ने प्रतिमानित विकल्पों की इस विवेचना के द्वारा परंपरागत तथा आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण लक्ष्यों की विवेचना करके सामाजिक व्यवस्था का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है।

पारसन्स के उपर्युक्त विचारों तथा सिद्धांतों से स्पष्ट होता है कि समाजशास्त्रीय विश्लेषण में पारसन्स का दृष्टिकोण अत्यधिक गहन और सूक्ष्म रहा है। उन्होंने सामाजिक क्रिया तथा सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को समाजशास्त्रीय विवेचना का मौलिक आधार मानते हुए इनके विभिन्न पक्षों की विवेचना की। यह सच है कि मैं ब्लैक तथा अनेक दूसरे विद्वानों ने पारसन्स के विचारों को बहुत विवादपूर्ण माना है लेकिन इसके बाद भी मानव व्यवहारों के विश्लेषण के लिए पारसन्स को आज भी एक प्रमुख विचारक के रूप में स्वीकार किया जाता है।

3.3.15. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

- पारसन्स के मॉडल इनमें से कौन नहीं है?

  (क) अनुकूलन (ख) लक्ष्य प्राप्ति (ग) एकीकरण (घ) व्यवस्था

- प्रतिमान विकल्प की अवधारणा किसने दी ?

  (क) पारसन्स (ख) दुर्खीम (ग) स्पेंसर (घ) वेबर

- इनमें से कौन प्रतिमान विकल्प है ?

  (क) अनुभावात्मक तटस्थता (ख) व्यापक विशिष्टता

  (ग) सार्वभौमिक विकल्प (घ) उपरोक्त सभी

लघु उत्तरी प्रश्न

- टालकट पारसन्स के प्रकार्यवाद की अवधारणा की व्याख्या कीजिए?
- टालकट पारसन्स के सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन क्या है इसकी व्याख्या कीजिए?
- सामाजिक प्रणाली के भीतर पैदा करने वालों कारकों की व्याख्या कीजिए?

दीर्घ उत्तरी प्रश्न

- उन कारकों का विवेचन कीजिए जो सामाजिक प्रणालियों पर उस दबाव का सृजन करते हैं। जिससे नया संतुलन उभरता है इसकी व्याख्या कीजिए?
- टालकर पारसन्स के समाजों का विकासात्मक विवरण दीजिए?
- पारसन्स के सामाजिक क्रिया के सिद्धांत का वर्णन कीजिए?

3.3.16. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- एरन, रेमंड. (1976). *मेन करेंटस इन सोशियोलॉजिकल थॉट*. लंदन: पेंगुइन बुक्स.
- कोजर, एल, (1977). *एः मास्टर्स ऑफ सोशियोलॉजिकल थाट*. न्यूयार्क: हाकोर्ट ब्रास जोवानोविच.
- गिडेंस, एंथनी. (1971). *कैपीटलिज्म एंड मार्डन सोशल थियरी*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- टर्नर, जोनाथन. (1991). *दि स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थियरी*. बेलमेट: बेडसवर्थ.
- डहरेनडार्फ, राल्फ. (1968). *एशेज ऑन थियरी ऑफ सोसायटी*. स्टान्फर्ड: यूनिवर्सिटी प्रेस.
- टालकट, पारसन्स. (1949). *दि स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन*. न्यूर्याक: मैकग्राहिल.
- टालकट, पारसन्स. (1975). *कोलन एस्सेज इन सोशियोलॉजिकल थियरी*. नई दिल्ली: लाइट एंड लाइफ पब्लिशर्स.
- बोटोमोर, टी. बी. (1978). *सोशियोलॉजी*. बंबई: ब्लेकी एंड संस.
- जार्ज, रीटजर. (1992). *सोशियोलॉजिकल थियरी*. न्यूयार्क: मैकग्राहिल.
- सोरोकिन, पी. ए. (1978). *कंटेमपोरेरी सोशियोलॉजिकल थियरीज*. नई दिल्ली: कल्याणी पब्लिशर्स.
- हैरालबोस, एम. एवं हीलबर्न, (1995). एम. *सोशियोलॉजी*. लंदन: कालीनस एजुकेशनल.

खंड-4 : रावर्ट के. मर्टन

इकाई-1 : जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई की रूपरेखा

4.1.1. उद्देश्य
4.1.2. प्रस्तावना
4.1.3. जीवन परिचय एवं कृतियाँ
4.1.4. सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि
4.1.5. तत्कालीन बौद्धिक पृष्ठभूमि
4.1.6. समाज एवं संरचना
4.1.7. समाज विज्ञान के पक्ष में विचार
4.1.8. प्रकार्यवाद क्या
4.1.9. समाजशास्त्र में प्रकार्यवाद की स्थान
4.1.10. सारांश
4.1.11. बोध प्रश्न
4.1.12. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.1.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप समझ पाएँगे कि -

- मर्टन की जीवन-परिचय एवं कृतियाँ।
- मर्टन की सामाजिक आर्थिक एवं तत्कालीन पृष्ठभूमि।
- मर्टन की समाज एवं संरचना तथा समाज विज्ञान के पक्ष में विचार।
- प्रकार्यवाद क्या है तथा समाजशास्त्र में प्रकार्यवाद का स्थान।

4.1.2. प्रस्तावना

राबर्ट किंग मर्टन प्रकार्यवादी समाजशास्त्रियों में संभवतः सबसे अधिक प्रगतिशील है। तमाम दबाओं के बावजूद 1950 के दशक में परिवर्तनवादी समाजशास्त्र का उदय हो गया। इन सब कारणों से मर्टन संघर्ष, हिंसा, क्रांति एवं गुणात्मक परिवर्तन की बात तो करने लगे, परंतु मर्टन प्रकार्यवाद के दायरे से बाहर नहीं आए।

उनके विचारों की प्रमुख विशेषता यह थी कि उन्होंने प्रकार्यवाद के यथास्थितिवादी और मशीनी चरित्र को बहुत जल्दी भाँप लिया इसलिए प्रकार्यवाद में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सुझाया।

मर्टन की विशेषता यह है कि वे हमेशा ही समाजशास्त्र की पद्धति के संबंध में चिंतित रहे। उन्होंने कहा कि यदि समाजशास्त्र अपने निष्कर्षों को अनुभावाश्रित दृष्टि से सिद्ध नहीं करता है और उन्हें अमूर्त सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत करता रहा तो उसकी स्थिति सामाजिक दर्शन से बेहतर नहीं होगी।

मर्टन ने न केवल प्रकार्यवाद में व्यापक संशोधन किया, बल्कि अमेरिकी समाजशास्त्र की उन्मुखता की आलोचना की।

मर्टन ने प्रकार्यात्मक विश्लेषण को नया रूप दिया और इसका अपना तरीका सामने रखा जो ज्यादा लचीला और दुराग्रहों से मुक्त है। मर्टन ने ऐसी सामाजिक गतिविधियों के छिपे अर्थ हमारे सामने उजागर किए जिसे हम सामान्य दृष्टि से नहीं देख पाते हैं।

मर्टन को हम ऐसा समाज वैज्ञानिक कहेंगे जो तथ्यों के अलावा किसी दूसरी बात पर निर्भर नहीं होना चाहता।

मर्टन को आधुनिक समाजशास्त्र के संस्थापक पिता के रूप में देखा जाता है।

मर्टन सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं और विज्ञान के बिना बातचीत और महत्त्व में रुचि रखते थे। पारसन्स ने मर्टन को काफी प्रभावित किया। ऐसा लगता है उनसे मर्टन के संबंध प्यार और नफरत दोनों के थे। मर्टन पारसन्स के आलोचकों में प्रमुख थे, परंतु उनकी मृत्यु के पश्चात् उन्होंने उनके काम की प्रशंसा की।

मर्टन को अमेरीकी व्यवस्था का समर्थन कुछ अंशों में था। रूसी समाजशास्त्री आएगर कॉन ने लिखा यदि मर्टन ने उस समय प्रकार्यवाद को छोड़ दिया होता तो उनकी रचनाओं में कहीं अधिक गहराई और विविधता आ जाती।

4.1.3. जीवन परिचय एवं कृतियाँ

अमेरिका के प्रसिद्ध समाजशास्त्री राबर्ट के. मर्टन का जन्म फिलाडेल्फिया, पेन्सिलवेनिया में 5 जुलाई, 1910 को हुआ। उनके माता-पिता पूर्वी यूरोप के मूल निवासी थे। वे पोलैंड के दक्षिणी हिस्से के रहने वाले थे। मर्टेन के पिता लंबे समय तक ट्रक ड्राइवर का कार्य करते रहे। कुछ समय तक उन्होंने बढ़ई का भी कार्य किया। मर्टन के आठ बहन-भाई थे। इनका बाल्यकाल दक्षिण फिलडेल्फिया की गंदी बस्तियों में बीता। वे अपनी बस्ती के युवा गिरोह के सदस्य थे तथा बस्ती में होने वाली लड़ाई-झगड़ों में शामिल रहते थे, लेकिन ज्ञान व अध्ययन की उन्हें आकांक्षा थी, जिसके लिए वह स्थानीय सार्वजनिक पुस्तकालय जाते थे। आठ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने कई विषयों में व्यापक अध्ययन किया विशेष रूप से जीवन कृतियाँ पढ़ने में उनकी काफी रुचि थी, कभी-कभी पैसा कमाने के उद्देश्य से बस्ती के सामाजिक समारोहों में वह जादू के खेल भी दिखाया करते थे।

मर्टन ने फरवरी, 1927 में साउथ फिलाडेल्फिया हाईस्कूल से परीक्षा पास की। वे मेधावी छात्र थे, एक छात्रवृत्ति के आधार पर टेंपलटन विश्वविद्यालय में अध्ययन करने का अवसर मिला। वह इस विश्वविद्यालय के कुशाग्र छात्र साबित हुए। पहले वर्ष उन्होंने दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया और उन्हें टेंपल युनिवर्सिटी के डीन व दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर जेम्स डनहम का संरक्षण मिला। बाद में उन्होंने अपने

अध्ययन का विषय बदलकर समाजशास्त्र किया। 1931 में वे स्नातक हो गए तथा हावर्ड विश्वविद्यालय आ गए, हावर्ड में स्नातक कार्य के लिए फेलोशिप से सम्मानित किया गया।

इसके पहले उन्होंने जार्ज ई. सिंपसन के साथ समाज की प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण की थी। बाद में वे सिंपसन के रिसर्च असिस्टेंट बन गए। हावर्ड विश्वविद्यालय में मर्टन को टॉलकट पारसन्स जार्ज सरटॉन, पितरिम सोरोकिन और एल. के. हैंडरसन जैसे उच्च कोटि के प्रोफेसरों के साथ अध्ययन करने का अवसर मिला जिसका उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया और अपने अध्ययन में श्रेष्ठता अर्जित की।

टेंपलटन में पढ़ते समय मर्टन की सुजैन एम. कारहट से मुलाकात हुई। वे एक सामाजिक कार्यकर्ता थीं। 8 सितबंर, 1934 को उन्होंने उनसे विवाह किया, विवाह के तुरंत बाद वे हार्वड में अध्यापक के पद पर नियुक्त हो गए। मर्टन एक पारिवारिक व्यक्ति रहे उनके दो पुत्रियाँ व एक पुत्र हैं। इनका जुड़ाव अपने परिवार के प्रति अधिक रहा, उनकी एक पुस्तक (On the Shoulders of Joints) (1965) अपने बच्चों को समर्पित की गई है।

1936 में उन्होंने पी.एच.डी. का सफल शोध पत्र प्रस्तुत किया। मर्टन बौद्धिक जीवन की गतिविधियों के कारण अपना पारिवारिक जीवन कभी भी बाधित नहीं किया।

एक समाजशास्त्री के रूप में इनकी सोंच अलग-अलग क्षेत्रों में रही है, जैसे विज्ञान और व्यवसाय का समाजशास्त्र, समाजशास्त्रीय सिद्धांत और लोक संचार आदि।

1939 से 1941 के बीच आर.के. मर्टन ने न्यू आर्लीन्स राज्य के टूलैन विश्वविद्यालय में संकाय सदस्य के रूप में कार्य किया। 1941 में वे कोलम्बिया विश्वविद्यालय में शिक्षक हो गए तथा 1947 में पूर्ण प्रोफेसर बने। 1963 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय में एफ.एच. गिडिंग्स चेयर के प्रोफेसर नियुक्त हुए। 1942 से 1971 तक उन्होंने (युनिवर्सिटी ब्यूरो ऑफ एप्लाइड सोशल रिसर्च) के एसोसिएट डायरेक्टर के रूप में कार्य किया।

कोलम्बिया में इनकी जोड़ी पाल.एफ. लजस फेस्ट के साथ खूब जमी, इसका प्रमुख कारण यह भी था कि दोनों ही अमेरिका में पूर्वी यूरोप मूल के बाहरी थे। लजस फेस्ट की तर्क स्पष्टता की अवधारणा और परिमाणात्मक तथा गुणात्मक अनुसंधान की उसकी विचार पद्धति ने मर्टन के ऐतिहासिक अध्ययन के दृष्टिकोण को प्रभावित किया।

इस सहयोग और बौद्धिक आदान-प्रदान से उन्होंने सामाजिक विज्ञानों का स्तर सुधारने के तरीके पर महत्वपूर्ण शोध कार्य किया तथा शोध लेख लिखे।

इस प्रकार मर्टन और लाजर्सफेल्ड ने लगभग 1941 से 1976 तक कोलम्बिया विश्वविद्यालय में एक प्रतिभाशाली टीम बनाई और बहुत से विद्यार्थियों को प्रेरणा दी। 23 फरवरी, 2003 में आर.के. मर्टन की मृत्यु हो गई।.

रचना एवं कृतियाँ

आर.के. मर्टन आरंभ से ही बड़ी पुस्तकें लिखने के बजाए छोटे-छोटे निबंध लिखे। इन्हीं निबंधों का संग्रह करके मर्टन 1949 में (Social Theory and Social Structure) नामक पुस्तक लिखी।

हावर्ड विश्वविद्यालय के विज्ञान के इतिहास विभाग के संकाय अध्यक्ष जार्ज सटिन को मर्टन ने अपना निकट का शिक्षक और निर्देशक कहा। इनकी प्रेरणा से मर्टन की विज्ञान के इतिहास में रुचि बढ़ी। मर्टन ने इस संबंध में, (साइंस, टेक्नोलॉजी एंड सोसाइटी इन सेवन्टीन्थ सेंचुरी इंग्लैंड) नामक अत्यंत प्रभावी पुस्तक लिखी। विज्ञान के इतिहास की चर्चा में एवं यूरोप के उद्योग के इतिहास की चर्चा में लगभग प्रत्येक विद्वान इस पुस्तक की चर्चा करता है। अमेरिकी सरकार की परियोजना के अंतर्गत जनसंचार के साधनों के प्रभाव का आकलन करने के बाद (फोकस्ड इंटरव्यू) नामक पुस्तक लिखी।

मर्टन ने इसके बाद भी अनेक समाजशास्त्रीय निबंध लिखें हैं। इनकी प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं -

- सोशल थ्योरी एंड सोशल रिसर्च (1949)
- साइंस, टेक्नोलॉजी एंड सोसाइटी इन सेवनटींथ सेंचुरी इंग्लैंड (1938)
- मार्स पर्सुएशन (1946)
- फोकस्ड इंटरव्यू (1956)
- कंटेंपोरेरी सोशल प्रॉब्लमस (1961)
- आन दि सोल्डर्स ऑफ जाएटंस (1965)
- आन थ्योरिकल सोशियोलॉजी (1967)
- सोशल थ्योरी एंड फंक्शनल एनालिसिस (1969)
- द सोशियोलॉजी ऑफ साइंस (1973)

  द सोशियोलॉजिकल एंबीवैलेंस (1976)

4.1.4. सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि

मर्टन के आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि में एक विशेष यह है कि एक मजदूर वर्ग परिवेश में पैदा होकर उन्होंने बौद्धिक सृजन किया, यह एक सामान्य बात नहीं है। आरंभिक जीवन गंदी बस्तियों में व आवारा बच्चों के साथ खेलने में बीता वे अमेरिकी समाज की मुख्याधारा के विरुद्ध पले-बढ़े मर्टन ने प्रकीयवाद के चौखटे में ही जो परिवर्तन का प्रारूप प्रस्तुत किया संघर्ष को अनिवार्य एवं नियमित प्रक्रिया माना, क्रांतिकारी परिवर्तनों को संभव कहा, उनके अनुसार संरचनाओं में सब कुछ एकीकृत नहीं होता निश्चित रूप से उनके आर्थिक और सामाजिक परिवेश के कारण ही था।

मर्टन के माता-पिता यूरोप के पूर्वी देश पोलैंड के दक्षिण से अमेरिका आए वहाँ से साथ में काफी लोग आए, लेकिन एक यहूदी अल्पसंख्यक समूह का एहसास मर्टन को अपने जीवन भर सताता रहा।

मर्टन ने अमेरिकी आँखों से दूसरे विश्वयुद्ध को देखा। उन्होंने विज्ञान के इतिहास को छोड़कर बाकी सभी रचनाएँ द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद लिखीं। आर.के. मर्टन ने 1950 में अमेरिकी समाजशास्त्र परिषद् के अध्यक्ष के रूप में अमेरिकी समाजशास्त्र की मुख्यधारा की जो आलोचना की एवं संघर्ष की प्रक्रिया को उन्होंने जितना नियमित एवं महत्वपूर्ण कहा, वह द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामों, चीन की क्रांति, भारत समेत अनेक देशों की स्वतंत्रता जैसे घटनाओं के प्रति मर्टन की संवेदनशीलता थी।

मर्टन ने जिस समय प्रकीयवाद में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक अवस्थाओं के कारण महत्वपूर्ण संशोधन का प्रस्ताव किया, लगभग उसी समय सी. राइट मिल्स ने परिवर्तनवादी की धारण को प्रस्तुत किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उन्होंने यह अनुभव किया कि यूरोप के सारे देश इस युद्ध के कारण तबाह हो गए, पर अमेरिका ने इस युद्ध से अपने को अलग कर लिया।

मर्टन इस बात के गवाह थे कि पश्चिम के देशों ने सामूहिक प्रयास से युद्ध की मार से अपने को उबार लिया। मर्टन 1956 में रूस गए। धर्म की घटती हुई भूमिका को देखा।

4.1.5. तत्कालीन बौद्धिक पृष्ठभूमि

मर्टन ने अपने बौद्धिक विकास के संबंध में लिखा, जिसे जार्ज रीजर ने अपनी पुस्तक (Sociological Theory) में उद्धृत किया, स्नातक स्तर पर पी.ए. सोरोकिन ने उन्हें प्रभावित किया।

मर्टन दर्शनशास्त्र छोड़कर समाजशास्त्र में आ गए इसलिए टेंपलटन के जार्ज जिसंपसन ने उन्हें अधिक प्रभावित किया। आगे चलकर मर्टन एक अन्य शिक्षक बॉब सिंपसन के अनुसंधान सहायक हुए और उनसे अनुसंधान की शैली सीखी।

हावर्ड में मर्टन सोरोकिन के छात्र थे। मर्टन ने लिखा अनेक विद्यार्थी सोरोकिन के विचित्र व्यवहार के कारण, सोरोकिन से अलग हो गए, किंतु मर्टन नहीं हो सके। मर्टन सोरोकिन के समान दृष्टि विकसित नहीं कर सके। सोरोकिन की प्रमुख पुस्तक (Sociocultural Dynamics) जो चार भागों में प्रकाशित हुई, उसकी सबसे अधिक सामग्री मर्टन ने ही जुटाई। हार्वड विश्वविद्यालय में मर्टन को पारसन्स ने बहुत अधिक प्रभावित किया, कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि इनका आपसी संबंध प्रेम और घृणा दोनों का था। सोरोकिन व पारसन्स दोनों की तुलना में मर्टन सोरोकिन के अधिक करीब थे, परंतु सैद्धांतिक दृष्टि के आधार पर देखा जाए तो मर्टन पारसन्स के अधिक करीब थे।

पारसन्स की तरह मर्टन ने भी संरचना प्रकार्यवाद के विश्लेषण को अपनाया। पारसन्स के साथ मिलकर उन्होंने कुछ लिखा नहीं, मर्टन ने पारसन्स के व्यापक, अमूर्त सामान्य सिद्धांत की काफी आलोचना की।

मर्टन ने लिखा कि एमिल दुर्खीम से उन्होंने समाजशास्त्र की दृष्टि विकसित की। एक समय मर्टन ने इनकी अनुपस्थिति में इनको अपना गुरु घोषित किया।

मर्टन एन.एस. निस्बेट से काफी प्रभावित थे, उनके साथ मिलकर उन्होंने (Social Problems) नामक पुस्तक का संपादन किया।

मर्टन ने लिखा कि 1950 के दशक में उन्होंने चिकित्सा शिक्षा का व्यापक सर्वेक्षण पैट्रीशिया केंडाल और एलिस रोसी के साथ मिलकर किया। 1956 में उन्होंने अमेरिकी समाज पर जनसंचार के साधनों और विशेष रूप से टेलीविजन के प्रभाव का आकलन करने की एक परियोजना सौंपी गई। अनेक सहयोगियों के साथ मिलकर उन्होंने इस परियोजना को पूरा किया।

4.1.6. समाज एवं संरचना

मर्टन के अनुसार समाज व्यवस्था की धारणा व्यापक समाज का बोध कराने में प्रभावी है। मर्टन ने कहा समाज में जीवों की तरह एकीकरण व एकजुट कसावट नहीं है। सामाजिक संरचना के संबंध में मर्टन ने कहा कि यह सामाजिक संबंधों का वह संगठित संकुल है, जिससे समाज के सदस्य व समूह अलग-अलग रूपों से जुड़े रहते हैं। मर्टन के अनुसार सामाजिक संरचना की महत्वपूर्ण इकाई सामाजिक संबंध है।

4.1.7. समाज विज्ञान के पक्ष में विचार

आर.के. मर्टन ने आरंभ से ही यह कहा कि सामविज्ञान के रूप में समाजशास्त्र अधिक लोकप्रिय हुआ है। यदि यह पुराने समय के समाज सामाजिक दर्शन की दृष्टि को अपना कर अमूर्त स्थापनाओं को प्रस्तुत करता रहेगा। इसलिए व्यावहारिक, वास्तविक एवं अनुभाव आश्रित अध्ययन एवं आंकलन होना चाहिए। समाजशास्त्र के निष्कर्षों को प्रमाणिक एवं अनुभव पर आधारित होना चाहिए।

4.1.8. प्रकार्यवाद क्या

प्रकार्यवाद (Functionalism) या संरचनात्मक-प्रकार्यवाद (Structural Functionalism) या प्रकार्यवादी सिद्धांत (Functional Theory) वह विचार या सिद्धांत है, जो संरचना (Structure) और प्रकार्य (Function) के प्रत्ययों के अंतसंबंधों की कुछ आधारभूत मान्यताओं पर आधारित है। प्रकार्यवादी विचार या सिद्धांत यह है कि समाज एक प्राणीशास्त्रीय सावयव के समान एक पूर्णता (Whole) है और सावयन के समान उसके विभिन्न अंग होते हैं। हर अंग का पूर्णता के प्रति कुद प्रकार्य होता है। अंग एक-दूसरे से परस्पर संबंधित हैं। किसी एक अंग या भाग की पूर्णता तथा अन्य अंगों के साथ पारस्परिक संबंधों के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। संपूर्ण सिद्धांत या विचार सामाजिक संरचना और उनके प्रकार्यों के अध्ययन पर केंद्रित है। प्रकार्य इसका केंद्रीय प्रत्यय है। इसी मुख्य विचार के आधार पर प्रकार्यवाद की कुछ प्रमुख प्रचलित मान्यताएँ (Prevailing Postulates) हैं –

(1) समाज की प्रकार्यात्मक एकता,

(2) सावभौमिक प्रकार्यवाद, और

(3) अपरिहार्यता।

मर्टन ने इनका इस प्रकार उल्लेख किया है –

(1) सामाजिक क्रियाएँ या सांस्कृतिक तथ्य संपूर्ण सामाजिक या सांस्कृतिक व्यवस्था के लिए प्रकार्यात्मक होते हैं (समाज की प्रकार्यात्मक एकता)।

(2) ऐसे सब सामाजिक या सांस्कृतिक तथ्य समाजशास्त्रीय प्रकार्यों को पूरा करते हैं (सार्वभौमिक प्रकार्यवाद)।

(3) ये तथ्य परिणामतः अनिवार्य और अपरिहार्य हैं (अपरिहार्य)। उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर ही प्रकार्यात्मक सिद्धांत आधारित है और प्रकार्यात्मक विश्लेषण एवं अध्ययन किए जाते हैं।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना उचित है कि उपरोक्त मान्यताएँ मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ-ब्राउन के विचारों पर आधारित हैं। आधुनिक प्रकार्यवाद इन मान्यताओं की मूल भावना कि समाज एक संपूर्णता है

और उसके अंग परस्पर संबंधित हैं और वे उसकी निरंतरता को बनाए रखने के लिए प्रकार्य करते हैं, पर अनिवार्य रूप से नहीं, तथ संरचना और प्रकार्यों के संदर्भ में समाज का अध्ययन किया जा सकता है, को ही मानता है। प्रचलित मान्यताओं को सिद्धांत के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। मर्टन ने विशेष रूप से पूर्ववर्ती प्रचलित मान्यताओं में अनेक संशोधन किए हैं और नए प्रत्यय विकसित किए हैं। अब समाज की प्रकार्यात्मक एकता को एक उपकल्पना के रूप में ही स्वीकार किया जाता है, सिद्धांत के रूप में नहीं। प्रकार्यात्मक एकता को प्रत्यक्षात्मक तथ्य (Empirical) होने के कारण समझा जा सकता है। अब यह भी स्वीकार नहीं किया जाता कि हर सांस्कृतिक तथ्य या क्रिया प्रकार्यात्मक ही होती है। क्रिया का बहुपरिणाम (Multiple Consequences) और नकार्य (Non-Function) के प्रत्ययों को निर्मित किया है जो कि आधुनिक समकालीन समाजशास्त्र में प्रस्थापित हो गए हैं। तथ्यों को अपरिहार्य (Indispensable) भी माना नहीं जाता है। एक तथ्य के स्थान पर उस प्रकार्य को अन्य प्रकार्यात्मक विकल्प (Functional Alternates) भी पूरा कर सकते हैं। इस दृष्टि से प्रकार्यात्मक विकल्प का प्रत्यय भी विकसित हो गया है। साथ ही, ये प्रकार्यात्मक विकल्प तभी स्वीकार किए जा सकते हैं जब वे संरचनात्मक संदर्भ (Structural Context) के अनुकूल हों। तथ्यों का स्वीकार किया जाना या न किया जाना संरचनात्मक संदर्भ पर निर्भर करता है। संरचनात्मक दबाव (Structural Constraint) भी प्रकार्यात्मक विकल्पों के चयन में सक्रिय भाग लेता है। इस प्रकार, आधुनिक प्रकार्यवाद ने संरचनात्मक कार्यात्मक विश्लेषण को अत्यधिक वैज्ञानिक बना दिया है। संक्षेप में, प्रकार्यवाद समाज की पूर्णता स्वीकार करता है। और उसके अंगों के प्रकार्यों के आधार पर सामाजिक संरचना की व्याख्या करता है।

4.1.9. समाजशास्त्र में प्रकार्यवाद का स्थान

समाजशास्त्र या आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांत में प्रकार्यवाद का बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यदि यह कहा जाए कि प्रकार्यवाद आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांत पर सर्वत्र छाया हुआ है और आज अपना अधिपत्य जमाया हुआ है, तो अनुचित न होगा। आधुनिक सिद्धांतकारों में अधिकांश प्रकार्यवादी हैं। मर्टन, पारसंस, शील्स, नडेल, होमंस (Homans), लेविन (Kurt Lewin), लेवी (Marion J. Levy), लिंटन (Ralph Linton), मरडॉक (G.P. Murdock), रूथ **बेनीडिक्स** (Ruth Benedict), कूले (Charles H. Coooley) आदि महत्वपूर्ण प्रकार्यवादी हैं।

आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांतों में सामाजिक क्रिया (Social Action), सामाजिक संरचना (Social Structure), सामाजिक व्यवस्था (Social System), प्रकार्य और अकार्य (Function and Dysfunction), नियमहीनता Anomie) आदि के सिद्धांत प्रमुख हैं। इन सभी सिद्धांतों में मुख्य योगदान प्रकार्यवादियों का है। सामाजिक संरचना और प्रकार्य एवं अकार्य तो प्रकार्यवादी का प्रमुख केंद्रीय विषय ही है। मर्टन ने इनको विशेष रूप से परिमार्जित किया है। सामाजिक क्रिया का सिद्धांत टालकट पारसन्स के द्वारा व्यवस्थित किया गया है, जो कि प्रकार्यवादी ही है। सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत भी पारसन्स द्वारा विशेष रूप से प्रतिपादित किया गया है। मर्टन ने भी सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत प्रतिपादित किया है। नियमहीनता के सिद्धांत को मुख्य रूप से मर्टन ने प्रतिपादित किया है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अधिकांश आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का प्रतिपादन प्रकार्यवादियों द्वारा ही किया गया है और वे इस क्षेत्र में बहुत महत्व पूर्ण है। इसलिए आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांत या समकालीन समाजशास्त्र में प्रकार्यवाद का महत्वपूर्ण एवं सबसे श्रेष्ठ स्थान है।

तुलनात्मक अभावबोध की अवधारणा (The concept of relative deprivation)

तुलनात्मक अभावबोध की अवधारणा प्रसंग-समूह व्यवहार का केंद्र-बिंदु है। व्यक्ति की यह प्रवृत्ति होती है कि वह अपनी स्थिति की तुलना दूसरे व्यक्ति की स्थिति से करता है। फकीर को देखकर राजा अपने को हीन समझता है। कहा जाता है कि अनिद्रा से बेचैन एक राजा रात में महल से बाहर निकला। उसने देखा कि चाँदनी रात में एक कुम्हार नंगी फर्श पर चैन की गहरी नींद सो रहा है। राजा ने जब अपनी स्थिति की तुलना उस कुम्हार से की तो अभावबोध से पीड़ित हो गया। कुम्हार के पास चैन की नींद थी, जो राजा के पास नहीं थी। मर्टन स्वयं मानता है कि तुलना करने की प्रवृत्ति सनातन है। यह कहानी इसी सनातन प्रवृत्ति को प्रकट करती है। व्यक्ति अपनी तुलना, अपने स्तर से ऊँचे, समान और निम्न स्तर वालों सें कर सकता है। राजा कुम्हार नहीं बनना चाहेगा, लेकिन कुम्हार राजा बनना चाहेगा। इसका उत्तर, समाज की प्रस्थितिशृंखला है। बहुत कम लोग उच्चप्रस्थिति से नीचे की प्रस्थिति में जाना चाहेंगे। मनुष्य की सामान्य प्रवृत्ति अधिक शक्ति, सम्मान और धन प्राप्त करने की होती है। अतः वह समाज के श्रेणीक्रम में नीचे से ऊपर की और बढ़ना चाहता है। उच्च-प्रस्थिति वाले समूह के सदस्य जीवन की अनेक सुविधाओं का भोग करते हैं। जिनसे निम्न प्रस्थिति के लोग वंचित रहते हैं। प्रसंग-समूह व्यवहार का दूसरा महत्वपूर्ण कारण सामाजिक स्तरीकरण है। ऊँचे-नीच का भेद है। मर्टन ने (द अमेरिकन सोल्जर) से कुछ उदाहरण दिए हैं-

- सेना का विवाहित सिपाही जब अपनी तुलना विवाहित असैनिक मित्रों से करता है, तो वह महसूस करता है कि असैनिक मित्र अपने परिवार के साथ मौत के मुँह में पड़ा हुआ है। ऐसे सैनिक को ऐसा लगता है कि असैनिक मित्रों की तुलना में उसे अधिक त्याग करना पड़ रहा है।
- सिपाही जब यह देखता है कि उससे कम शिक्षा और अनुभव प्राप्त लोग पदोन्नति कर रहे हैं। और वह जहाँ का तहाँ है, तो उसे तुलनात्मक अभाव बोध की पीड़ा होती है।
- सैनिक अपनी तुलना जब सेना के अफसरों से करता है तो पाता है कि अफसरों का जीवन अधिक सुविधा-संपन्न होते हुए कम खतरा वाला भी है। सिपाही को सुविधाएँ कम मिलती है, लेकिन उसका जान अधिक खतरें में होती है।
- उपरोक्त उदाहरण तुलनात्मक अभाव बोध की अवधारणा को स्पष्ट करते हैं। व्यक्ति जब अपनी प्रस्थिति में रहते हुए, अपना मनोवैज्ञानिक संबंध तुलनात्मक अभावबोध उत्पन्न करता है। तुलनात्मक अभाव-बोध के कुछ कारक निम्नलिखित है।

  अ. तुलनात्मक अभाव-बोध स्थापित करने से उत्पन्न होता है। यदि व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की प्रस्थिति से मनोवैज्ञानिक नर उत्पन्न करें तो सुखी रहेगा। हमारी समझ से यह नियम भी सनातन है।

ब. मनुष्य में तुलना करने की क्षमता होती है।

स. भूत, भविष्य और वर्तमान में, किसी वस्तु से मनोवैज्ञानिक नाता जोड़ने की क्षमता केवल मनुष्य में होती है।

उपर्युक्त मानवीय क्षमता के कारण तुलनात्मक अभाव-बोध संभव होता है। व्यक्ति अपनी स्थिति में रहते हुए, जिस दूसरे समूह का सदस्य बनना चाहता है। उस समूह को, उस व्यक्ति का, प्रसंग-समूह कहते हैं। व्यक्ति अपने समूह में रहता है, परंतु मनोवैज्ञानिक नाता प्रसंग-समूह से जोड़ता है। तुलनात्मक अभाव-बोध के कारण वह ऐसा करता है। व्यक्ति जब प्रसंग-समूह से जुड़ जाता है। जो कुछ परिणाम निकलते हैं।

अ. प्रसंग-समूह की सदस्यता प्राप्त करने के लिए वह पहले से तैयारी करने जाता है। मंच पर पात्र का अभिनय करने के लिए जिस प्रकार पूर्वाभ्यास किया जाता है। उसी प्रकार आने वाली भूमिका ग्रहण करने के लिए, पूर्व समाजीकरण किया जाता है।

ब. व्यक्ति "न घर का रहता है, न घाट का"। वह अपनी स्थिति से असंतुष्ट रहता है। अर्थात् अपने समूह में रहते हुए भी वह मनोवैज्ञानिक रीति से प्रसंग-समूह से जुड़ा रहता है। अपना समूह छोड़ना चाहता है और प्रसंग-समूह की सदस्यता उसे अभी तक प्राप्त नहीं हुई रहती है। वह दो समूहों के बीच त्रिशंकु के समान लटकता रहता है। अतः दो प्रस्थितियों के बीच अनिश्चित स्थिति में रहने वाले व्यक्ति को, सीमांत व्यक्ति कहते हैं। मनोवैज्ञानिक रूप से सीमांत स्थिति अत्यंत तनावपूर्ण होती है।

पूर्व-समाजीकरण (Anticipatory Socialization)

प्रसंग-समूह व्यवहार सिद्धांत की दूसरी आधारभूत अवधारणा पूर्व-समाजीकरण की अवधारणा है। भावी भूमिका के लिए अपने आपको पहले से तैयार करना पूर्व-समाजीकरण है। परंपरागत भारतीय परिवार की लड़कियाँ बचपन से ही गुड़िया-गुड्डे का खेल खेलती है। उनका विवाह रचाती है, अपनी गुड़िया की विदाई करती है और रोती है। खेल-खेल में वह भावी वैवाहिक भूमिका के लिए पूर्व-समाजीकृत होती है। यह सत्य भी समानत है। मर्टन को अपने इस सिद्धांत की नवीनता प्रमाणित करने के लिए अनेक अवधारणाएँ और शब्द रूपावलियों का सहारा लेना पड़ा है।

प्रसंग-समूह से मनोवैज्ञानिक नाता जोड़ लेने के बाद व्यक्ति अपनी भूमिका को परिवर्तित करता है और ऐसे योग्यताओं को अर्जित करता है। जिनमें वह प्रसंगसमूह का सदस्य सरलतापूर्वक हो जाए। प्रसंग-समूह के मूल्यों और लक्ष्यों को वह लगता है। यदि किसी किशोर का प्रसंग-समूह सेना में अफसर होना ही जाए तो वह पहले से उसके लिए अपने आपको समाजीकृत करना प्रारंभ कर देगा। महान सैनिक कमांडरों की जीवनी पढ़ेगा, अकड़ कर चलेगा, साहसिक कार्य करेगा और अवसर पाते ही सेना में कमीशन पाने का प्रयास करेगा क्योंकि वह पहले से तैयार है इसलिए वह अपने प्रसंग-समूह (सेना) में अच्छी तरह समायोजित हो जाएगा। बिल्कुल उसी तरह जैसे गुड़िया खेलने वाली बालिका, समय आने पर ससुराली नई भूमिका में समायोजित हो जाती है। पूर्व-समाजीकरण के निम्नलिखित लाभ है।

- भावी भूमिका की तैयारी होती है और प्रसंग-समूह में पहुँच कर समायोजन शीघ्र, सरल और सुगम होता है।

ब. पूर्व-समाजीकरण के कारण प्रसंग-समूह में जाने की प्रेरणा में कमी नहीं आने पाती।

अपनी प्रस्थिति से असंतुष्ट होकर, दूसरी प्रस्थिति में पहुँचने की प्रक्रिया, सामाजिक गत्यात्मकता के अंतर्गत रखा जा सकता है। सामाजिक श्रेणी क्रम में ऊपर चढ़ने के अवसर और नीचे उतरने की संभावनाएँ जितनी अधिक होंगी, सामाजिक गत्यात्मकता भी उतनी हो अधिक होगी। मर्टन इस सिद्धांत का व्यापक परिणाम यह भी हो सकता है कि सामाजिक असंतोष क्रांति का रूप नहीं लेगा। अगर अपने प्रसंग-समूह में पहुँचने के लिए असंतुष्ट लोगों को सुअवसर प्राप्त हो, तो लोग प्रसंग-समूह व्यवहार करना, क्रांति करने से सरल समझेंगे। इसलिए अमरीकी समाज मर्टन के प्रसंग-समूह व्यवहार सिद्धांत से अधिक आशाएँ रखता है।

सामूहिकता ह्रास और समूह हीनता (De-grouping and group lessness)

व्यक्ति जिस मात्रा में अपने समूह से अपने संबंध तोड़ता है। उसी भाषा में उसका समूह ह्रास होता है। प्रसंग-समूह तक पहुँचने की प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग यह भी है कि व्यक्ति के अपने समूह से संबंधों का ह्रास हो जाना। देहात के स्कूल से पढ़ा हुआ बालक जब नए शहरों वातावरण में विश्व-विद्यालय के छात्रावास में प्रवेश पा लेता है, तो यह समूहहीनता की स्थिति में होता है। अपने पूराने समूह से वह कट जाता है और शहर में नए समूह का सदस्य जब तक नहीं बना रहता, तब तक वह समूहहीनता की दुःखद स्थिति में रहता है। उसकी स्थिति सीमांत व्यक्ति की होती है। वह कभी अपने पुरानी देहाती मित्र-मण्डली की तरफ भागना चाहता है तथा कभी शहरी मित्रों की मंडली की ओर आकर्षित होता है। धीरे-धीरे पुराने सामूहिक संबंध टूटने लगते हैं और वह शहरी जीवन के प्रसंग-समूह में प्रवेश करने लगता है।

4.1.10. सारांश

प्रकार्यवाद और प्रकार्यात्मक विश्लेषण का अत्यधिक महत्त्व है। उसने निम्नलिखित दिशाओं में हमारा ध्यान दिलाया है और समाजशस्त्र को उपयोग पहुँचाया है -

(1) उसने मानव व्यवहार के वैयक्ति निश्चायकों के स्थान पर सामाजिक निश्चायकों पर दिला है।

(2) उसने व्यक्तियों की अभिप्रेरणाओं (motives) के संदर्भ में व्याख्या और सामाजिक तंत्रों की आवश्यकताओं के संदर्भ पर व्याख्या में स्पष्ट भेद किया है।

(3) उसने मानव अभिप्रेरणाओं के विषय में अनुमान (specolation) को समाप्त कर दिया है। सामाजिक व्यवहारवादियों (social behaviourusts) का यह सबसे बड़ा दोष है।

(4) इसने विषयक निश्चायक कारकों (objectively determinable factors) पर बल दिया है। इस प्रकार मूल्यों से समाजशास्त्र को रिक्त किया है।

(5) उसने इस बात पर बल दिया है कि सामजिक क्रियाओं के व्यवस्थित और लंबे समय तक परिणाम होते हैं।

(6) अंतर्हित प्रकार्यों के संबोध के द्वारा अध्ययन की गहराई बढ़ गई है।

(7) सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना के संबंधों के फलस्वरूप अध्ययन-वस्तु अधिक स्पष्ट हो गई है।

जॉनसन ने लिखा है - "संरचना एवं प्रकार्य के संबोध, सामाजिक-तंत्र, उनके स्थायित्य, उनके परिवर्तन विषयक विश्लेषण के लिए मूल्यवाद पद्धतियाँ हैं।

4.1.11. बोध प्रश्न

बहुविकल्पिय प्रश्न

1.मर्टन का जन्म कब हुआ था**?**

(क) **5** जुलाई **1910**

(ख) **6** जुलाई **1910**

(ग) **7** जुलाई **1910**

(घ) **8** जुलाई **1910**

2.सोशल थ्योरी एंड सोशल रिसर्च कब प्रकाशित हुई**?**

(क) **1949**

(ख) **1950**

(ग) **1951**

(घ) **1952**

3. कंटेम्पोरेरी सोशल प्रॉब्लमस किसकी पुस्तक है**?**

(क) मर्टन

(ख) जॉर्ज रिटजर

(ग) लिंटन

(घ) मरडॉक

4. मर्टन सबसे ज्यादा किससे प्रभावित थे**?**

(क) एन.एस. निस्बेट

(ख) नडेल

(ग) जॉर्ज होमंस

(घ) कूले

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मर्टन के जीवन परिचय एवं कृतियों का उल्लेख कीजिए।
2. मर्टन के सामाजिक, आर्थिक एवं तत्कालीन पृष्ठभूमि का उल्लेख कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मर्टन की समाज एवं संरचना तथा समाज विज्ञान के पक्ष में क्या विचार हैं इसका उल्लेख कीजिए।
2. समाजशास्त्र में प्रकार्यवाद का क्या स्थान है मर्टन के विचारों का उल्लेख कीजिए।

4.1.12. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- अब्राहम. (1977). *ओरिजिन एंड ग्रंथ ऑफ सोशिओलाजी*. न्यूयार्क: पेंगुइन बुक्स.
- एरन, रेमंड. (1976). *मेन करेंटस इन सोशिओलाजिकल थॉट*. लंदन: पेंगुइन बुक्स.
- कोजर, एल. (1977). *एः मास्टर्स ऑफ सोशिओलाजिकल थाट*. न्यूयार्क: हाकोर्ट ब्रास जोवानोविच.
- गिडेंस, एंथनी. (1971). *कैपीटलिज्म एंड मार्डन सोशल थियरी*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- मर्टन, आर.के. (1956). *फोकस्ड इंटरव्यू*. न्यूयार्क: फ्री प्रेस.
- मर्टन, आर. के. (1981). *शोशल थियरी एंड सोशल स्ट्रक्चर*. नई दिल्ली: अमेरिंड पब्लिकेशन
- बोटोमोर, टी. बी. (1978). *सोशियोलॉजी*. बंबई: ब्लेकी एंड संस.
- सोरोकिन, पी. ए. (1978). *कंटेमपोरेरी सोशियोलॉजिकल थियरीज*. नई दिल्ली: कल्याणी पब्लिशर्स.
- हैरालबोस, एम. एवं हीलबर्न, (1995). एम. *सोशियोलॉजी*. लंदन: कालीनस एजुकेशनल.

इकाई-2 : मिडिल रेंज (मध्य-सीमावर्ती) सिद्धांत (Middle Range Theory)

इकाई की रूपरेखा

4.2.1. उद्देश्य
4.2.2. प्रस्तावना
4.2.3. मिडिल रेंज सिद्धांत का अर्थ
4.2.4. मिडिल रेंज सिद्धांत का प्रकार्यवादी विश्लेषण
4.2.5. मध्य सीमावर्ती सिद्धांत में लघु एवं वृहद सिद्धांत
4.2.6. प्रकार्य एवं दुष्प्रकार्य
4.2.7. प्रकार्य का अर्थ
4.2.8. दुष्प्रकार्य की अवधारण
4.2.9. दुष्प्रकार्य के संबंध में मर्टन का दृष्टिकोण
4.2.10. प्रकार्य के संबंध में मर्टन के दृष्टिकोण
4.2.11. प्रकार्य तथा दुष्प्रकार्य में अंतर
4.2.12. सारांश
4.2.13. बोध प्रश्न
4.2.14. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.2.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप समझ पाएँगे-

- मर्टन का मिडिल रेंज सिद्धांत का अर्थ।
- मर्टन के मिडिल रेंज सिद्धांत का प्रकार्यवादी विशलेषण एवं लघु एवं वृहद् सिद्धांत।
- मर्टन के प्रकार्य एवं दुष्प्रकार्य की अवधारणा।
- प्रकार्य एवं दुष्प्रकार्य में अंतर एवं मर्टन का दृष्टिकोण।

4.2.2. प्रस्तावना

इकाई की रूपरेखा मध्यवर्ती सिद्धांत के विचार का प्रतिपादन समाजविज्ञानों में सर्वप्रथम प्रो. टी. एच. मार्सल ने सन् 1946 में लंदन विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता पद का कार्य-भार ग्रहण करते समय, अपने उद्बोधन में किया था। बाद में, इस विचार को आगे बढ़ाते हुए प्रो. आर.के. मर्टन ने कहा कि मध्यवर्ती सिद्धांत तार्किक रूप में अंतरसंबंधी ऐसी अवधारणाएँ हैं, जो व्यापक तथा महत् सीमित क्षेत्र से संबंधित होती है। इन सिद्धांतों का कार्य छोटी-छोटी प्राकल्पनाओं और वृहद अमूर्त सिद्धांतों (Grand Therories) के बीच की खाई को पाटना है।

सन् 1957 में (Social Theory and social Structure) नामक अपनी पुस्तक में आर.के. मर्टन ने मिलिस रेंज थियरीज को प्रस्तुत किया। मर्टन द्वारा लिखी गई यह पुस्तक वास्तव में टालकट पारसन्स की 1949 में Grand theories संबंधी विचारों को प्रस्तुत करने वाली उनकी कृति का प्रति उत्तर था।

कैसे तथा किस पद्धति से समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का निर्माण हो? इसे लेकर प्रारंभ से ही जद्दोजहद चलती रही है। प्रत्यक्षवादी दृष्टि के आधार पर समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के निर्माण की नई-नई प्रणालियाँ विकसित करने हेतु तमाम विद्वान क्रियाशील रहे हैं।

टालकट पारसन्स प्रकार्यवादी अभिगम के पोषक थे। पारसन्स ने वृहत या महत् सिद्धांत (Grand theories) निर्माण पर बल दिया। 1949 में सर्वप्रथम (Essays in Sociological theory) में उन्होनें अपने महत सिद्धांतों को अपनी इस पुस्तक के माध्यम से व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया। पारसन्स की दलील है कि ऐसे भव्य और वृहद सिद्धांत का निर्माण होना चाहिए, जो समाज की संपूर्ण विविधता को अपने में समेट ले। पारसन्स के वृहद या महत सिद्धांतों (Grand Sociological Therory) की जहाँ एक ओर खूब प्रशंसा हुई वहीं दूसरी ओर इसकी आलोचना भी खूब हुई। उनके इस सिद्धांत पर अपनी टिप्पणी करते हुए मर्टन कहते हैं कि - "कुछ समाजशास्त्री एक ऐसा एकीकृत सिद्धांत (Single Unified theory) बनाना चाहते हैं जो सामान्य स्पष्टीकरणों को आपस में जोड़कर बना हो। पारसन्स ऐसा ही करने जा रहे हैं और वे कुछ हद तक इसमें सफल भी हो रहे हैं, किंतु इससे हमारी शक्ति का अनावश्यक क्षय होगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम विशिष्ट सिद्धांतों (Special theories) का निर्माण करें, जिन्हें सीमित तथ्य-सामग्री पर लागू किया जा सके। इस प्रकार के सिद्धांतों के विवरण विचलित व्यवहार (Deviant Behaviour) या शक्ति का पीढ़ी-दर पीढ़ी हस्तांरण होने वाले मिडिल रेंज सिद्धांत है।" मर्टन की यह टिप्पणी इस बात का प्रमाण है कि वे पारसन्स के महत सिद्धांत (Grand Sociological Theory) को उपयोगी नहीं मानते हैं तथा नए बदले सामाजिक परिवेश के लिए उपयोगी के निर्माण पर विशेष बल दिया है। मर्टन की पुस्तक के प्रथम अध्याय में लिखित पंक्तियों को वहाँ उद्धृत करना प्रासंगिक है - "प्रस्तुत पुस्तक में लगभग हर जगह हमने समाजशास्त्रीय सिद्धांत उसे कहा है जिसका आशय तार्किक रूप से जुड़े हुए प्रस्थापनाओं (Propositions) से है, जिनके माध्यम से आनुभविक एकरूपता का निर्माण किया जाता है। मिडिल रेंज सिद्धांत वे सिद्धांत है जो कार्यकारी प्राकर्यवाद के विपरीत मर्टन ने प्रकार्यवाद को अपने ढंग से देखा, समझा और स्पष्ट किया है।

मर्टन ने पारसन्स सहित अन्य समस्त पूर्ववर्ती प्रकार्यवादियों की आलोचना करते हुए कुछ मौलिक प्रश्न उठाए है, जो मुख्य रूप से इस प्रकार हैं - क्या उनकी अवधारणाएँ प्रतिदिन के जीवन से मेल खाती है। क्या सामाजिक व्यवस्था वास्तव में एकीकरण (Propositions) का खंडन करते हुए अपनी ओर से इसमें कुछ पैराडाडम्स जोड़े हैं और मध्य-सीमावर्ती सिद्धांत (Middle Range Theory) का निर्माण किया है।

4.2.3. मिडिल रेंज सिद्धांत का अर्थ

छोटी-छोटी प्राकल्पनाओं में समान रूप से पाई जाने वाली अवधाराणाओं से जिन सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है, वे ही मिडिल रेंज सिद्धांत है। मर्टन ने इसे मिडिल रेंज इसलिए कहा है, क्योंकि इसके ऊपर वृहद अथवा महत सिद्धांत होते हैं तथा इसके-नीचे या लघु समुदाय जैसे अध्ययनों पर आधारित लघु सिद्धांत होते हैं। मेक्रो अध्ययन और माइक्रो अध्ययन के बीच में स्थिति ही मिडिल रेंज सिद्धांत है।

मर्टन की दलील है कि जब समाज विज्ञान की अनुसंधान-पद्धति अत्यधिक विकसित नहीं हो जाती, तब तक हमें मध्य सीमावर्ती सिद्धांत बनाना चाहिए। भौतिकी के मॉडल पर समाज वैज्ञानिक सिद्धांत अभी नहीं बनाए जा सकते। पारसन्स का ऐसा श्याम का निर्माण वास्तव में सच्चाई से मुँह मोड़ना है। मर्टन का मत है कि सिद्धांत ऐसे बनाने चाहिए जिनका निष्कर्ष उनसे भी व्यापक सैद्धांतिक निष्कर्षों से मेल खाता हो। प्रतिदिन की जीवन की समस्याओं पर मध्य सीमावर्ती सिद्धांतों का निर्माण करके उन्हें अति व्यापक सिद्धांतों के आलोक में देखा जा सकता है।

मध्य सीमावर्ती सिद्धांत क्या है? (What is middle-range Theory) समाज वैज्ञानिक सिद्धांतों के निर्माण के संदर्भ में मर्टन की एक स्पष्ट दृष्टि है। वे मानते हैं कि सिद्धांत वास्तव में तर्क वाक्यों अथवा प्रस्थापनाओं (Set of propositions) के तार्किक अंतरसंबंधों की ऐसी व्यवस्था है जिससे तथ्यगत एक समानताएँ (empirical uniformities) प्राप्त की जा सके। समाज वैज्ञानिक सिद्धांतों के निर्माण संबंधी मर्टन की दृष्टि को निम्नलिखित सूत्रों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

आधारित है
बनाए जाते हैं
तार्किक नियमानुसार सूत्रबद्ध करने पर

उक्त सूत्र (दृष्टिकोण) का अनुसरण करते हुए मर्टन ने मध्य सीमावर्ती सिद्धांत की व्यापार प्रस्तुत की है।

मर्टन के अनुसार समाज विज्ञान में अभी पूर्ण व्याप्त सिद्धांत का निर्माण संभव नहीं है। टालकट पारसन्स तथा सोरोकिन द्वारा दिए गए पूर्ण व्यवस्था के सिद्धांतों की आलोचना करते हुए मर्टन कहते हैं कि ऐसे सिद्धांत तथ्य और तर्क पर आधारित नहीं है। इसे दर्शन की पद्धति कहा जाना अधिक उचित है। मर्टन कहते हैं कि समाजविज्ञान में जब तक तर्कों और तथ्यों पर आधारित सिद्धांतों का व्यवस्थित ढंग से निर्माण की प्रणाली विकसित नहीं हो जाती है। तब तक मध्य-सीमावर्ती सिद्धांतों का निर्माण किया जाना उचित है।

मर्टन के अनुसार - "मध्य अभिसीमा के सिद्धांत सामाजिक घटनाओं के सीमित पक्षों से संबंधित होते हैं।" अर्थात् मध्य अभिसीमा के सिद्धांत एक ही समय में एक साथ सभी प्रकार के सामाजिक व्यवहार, सामाजिक संगठन और सामाजिक परिवर्तन को व्यक्त नहीं कर सकते हैं, बल्कि ये तो सिर्फ किसी सामाजिक घटना के निश्चित तथा सीमित पक्ष से ही संबंधित होते हैं।

भौतिक मॉडल की तर्ज पर समाज विज्ञान में संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांत की वकालत करने वाले टालकट पारसन्स की आलोचना करते हुए मर्टन कहते हैं कि प्रतिदिन के जीवन की समस्याओं की हम उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। प्रतिदिन जीवन में खड़ी होने वाली छोटी-छोटी किंतु महत्वपूर्ण समस्याएँ ही जिंदगी की कड़वी हकीकत है, इसकी उपेक्षा करके किसी सिद्धांत का निर्माण करना सच्चाई से मुह मोड़ना होगा, साथ ही उस सिद्धांत की उपयोगिता भी संदिग्ध ही होगी। पारसन्स पर ही मर्टन प्रश्न अथवा महत सिद्धांत के निर्माण की वकालत करते हैं। उसके औचित्य पर ही मर्टन प्रश्न अथवा तर्क उठाते हैं। इस कड़ी में मर्टन द्वारा उठाए गए प्रश्न अथवा तर्क निम्नलिखित हैं।

- सामान्यतया संपूर्ण व्यवस्था का सिद्धांत के निर्माण की वकालत करने वाले इस भ्रांति के शिकार है कि व्यापक आँकड़ों के बिना भी ऐसे सिद्धांत बन सकते हैं जबकि, वास्तविकता तो यह है कि प्राकृतिक विज्ञानों से भी पूर्ववर्ती आँकड़ों के बिना सिद्धांत का निर्माण नहीं हो सकता है। आँकड़ों के संकलन व संग्रह में समाज विज्ञान बहुत पीछे है।
- वे एक ओर इस भ्रांति के शिकार है कि समाज विज्ञान भी प्राकृतिक विज्ञानों के सदृश्य समुन्नत तथा परिपक्व हैं, जबकि हर विज्ञानों की परिपक्वता का स्तर भिन्न-भिन्न है। प्राकृतिक विज्ञानों की विकास-यात्रा लगभग 400 वर्षों से अधिक की अवधि का सफर तय कर चुकी है। इसमें पर्याप्त मात्रा में धन, जन और श्रम का विनियोग हो चुका है। इसकी तुलना में समाज विज्ञान की विकास यात्रा 150 वर्षों से अधिक की नहीं है तथा समाज विज्ञान में तुलनात्मक दृष्टि से धन, जन और श्रम का विनियोग भी बहुत कम हुआ है। इसलिए समाज विज्ञान प्राकृतिक विज्ञानों के समान परिपक्व नहीं हो सकता है।
- तीसरी भ्रांति यह समझना है कि भौतिक शास्त्र में सिर्फ संपूर्ण सिद्धांत ही होते हैं, जबकि सामान्यतया भौतिकशास्त्री यह मानते हैं कि संपूर्ण सिद्धांतों के निर्माण की संभावना निकट भविष्य में दिखलाई नहीं पड़ रही है।

उक्त तीनों प्रकार की भ्रांतियों से सजग करते हुए मर्टन ने मध्य सीमावर्ती सिद्धांत के निर्माण-विधि की विवेचना करते हुए कहा है कि प्रतिदिन की घटनाओं को परिसीमित करके सिद्धांतों का निर्माण करना चाहिए। सामान्यतया जब सामाजिक घटना को परिसीमित कर दिया जाता है, तो उसे कोई पदनाम दे दिया जाता है। यथा प्रसंग समूह व्यवहार, आदर्शशून्यता कर्मचारी तंत्र, आदि। प्रतिदिन की घटनाओं से जुड़े हुए सामाजिक व्यवहार में तथ्यगत एकरूपता स्थापित करना है। गुणवत्ता की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं, जो अतिसीमित भी न हो तथा अति व्यापक भी न हो। इसे ही मध्य सीमांवर्ती सिद्धांत कहते हैं।

मूल विचार से कुछ खास प्राकल्पनाएँ उत्पन्न होती है। इन प्राकल्पनाओं के परीक्षण की प्रणाली कुछ इस प्रकार की होती है, जिससे अनुमानों का परीक्षण प्रयोग सिद्ध रूप में होता है। इस तरह से स्वयं विचार की उपयोगिता के आधार पर उसका परीक्षण सैद्धांतिक समस्याओं तथा प्राकल्पनाओं की अभिसीमा को समझ कर दिया जाता है, जिसके आधार पर वायुमंडलीय दबाव की नूतन विशिष्टिताओं से हम अवगत होते हैं।"

मर्टन के अनुसार मध्य अभिसीमा सिद्धांतों की समाजशास्त्र में उपयोगिता मुख्यतः प्रयोगसिद्ध शोधी का दिशा-निर्धारण करना है। मध्य अभिसीमा का सिद्धांत जहाँ एक ओर सामाजिक व्यवहार, संघठन व परिवर्तन की विशिष्ट श्रेणियों से बहुत दूर जो कुछ निरीक्षण किया गया है। उसे बतलाने के लिए सामाजिक व्यवस्थाओं से जुड़े सामान्य सिद्धांतों तथा वहीं दूसरी ओर जिसका सामान्यीकरण नहीं किया गया है ऐसे विवरणों का विस्तृत क्रमबद्ध अध्ययन/वर्णन, इन दोनों के बीच का या मध्यवर्ती होता है।

मध्य अभिसीमा सिद्धांतों को संदर्भ-समूहों और सापेक्षिक वंचना जैसे उदाहरणों द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है। उसे जेम्स, वाल्डबिन आदि ने प्रस्तुत किया था हाइमन व स्टुफर ने विकसित किया था। इस विचार के अनुसार लोग दूसरे महत्वपूर्ण व्यक्तियों के स्तरों को अपने-अपने विषय में मूल्यांकन करने का आधार मानते हैं। सामान्यतया हम यह समझते हैं कि एक सामूहिक तबाही की अवस्था में एक परिवार को जितनी अधिक छति पहुँचेगी वह अपने आपको उतना ही अधिक वंचित महसूस करेगा, क्योंकि सामान्यतया प्रत्येक परिवार क्षति की मात्रा को अपनी वास्तविक क्षति के आधार पर ही आँकता है। जबकि सापेक्षित संरचना का सिद्धांत अत्यधिक विपरीत प्राकल्पना को प्रस्तुत करता है। जिसके अनुसार व्यक्ति अपनी परिस्थिति की तुलना दूसरों से करता है तथा तुलनात्मक आधार पर ही वह अपने बारे में निष्कर्ष निकालता है। अर्थात् दूसरों की तुलना में बहुत कम क्षति होने के कारण अपनी क्षति की महत्वहीन मानेगा। प्रयोग सिद्ध अनुसंधान से भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ऐसे लोग जिनकी सर्वाधिक क्षति हुई है। वे उन लोगों के लिए एक संदर्भ समूह बन जाएँगे जिनकी तुलनात्मक दृष्टि से कम क्षति हुई है। यदि इस अनुसंधान कार्य को और आगे बढ़ाया जाए तो यह भी स्पष्ट होगा कि इस प्रकार के आत्ममूल्यांकन की प्रणाली उस समुदाय के सदस्यों की नैतिकता तथा दूसरों की मदद करने की सोच की प्रभावित करता है। जिसकी हम निरीक्षण परीक्षण और प्रयोग के माध्यम से देख सकते हैं। इस निष्कर्ष को इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है - "जब कतिपय व्यक्ति समान रूप से क्षतिग्रस्त होते हैं तो उनका कष्ट और क्षति बहुत बड़े रूप में दिखाई पड़ता है, किंतु जब व्यापक पैमाने पर लोग क्षतिग्रस्त होते हैं तो बड़े कष्ट और बड़ी क्षति भी हुई होती है तथा उन दोनों की तुलना करने पर वह छोटी नजर आती है। यही सिद्धांत मध्य क्षेत्रीय सिद्धांत होगा।" इसका हर सिद्धांत सिर्फ एक ऐसे प्रयोग सिद्ध सामान्यीकरण से कही सिद्धांत विचारों के एक समुच्चय द्वारा निर्मित होता है। जिससे स्वयं प्रयोगसिद्ध सामान्यीकरणों को निकाला जाता है।

मर्टन का मानना है कि मध्य अभिसीमा सिद्धांतों को विकसित करके इसी के माध्यम से समाजशास्त्र का विकास सुनिश्चित किया जा सकता है। संभवतः इसीलिए टी.एच. मार्शल ने 1946 के मध्य दूरी में समाजशास्त्रीय कदम रखने अर्थात् मध्यवर्ती नीति को क्रमशः विकास का साधन मानने का सुझाव दिया था

4.2.4. मिडिल रेंज सिद्धांत और प्रकार्यवादी विश्लेषण

मर्टन के अनुसार दैनिक से संबंधित समस्याओं पर आधारित मिडिल रेंज सिद्धांतों को निर्मित करके उन्हें अतिव्यापक सिद्धांतों के आलोक में देखना बेहतर होगा। उदाहरण सहित अपनी इस बात को स्पष्ट करते हुए मर्टन कहते हैं कि सामाजिक विघटन की व्यापक प्रक्रिया (जिस पर अनेक सिद्धांतकारों ने विचार प्रस्तुत किए हैं) के अंतर्गत रखकर आदर्शशून्यता (Social anomic) के सिद्धांत की जाँच-पड़ताल की जा सकती है। ऐसा करने की पद्धति भी मर्टन ने प्रकार्यात्मक शब्द रूपावली (Functional paradigms) द्वारा बताया है। सामाजिक प्रक्रिया में जरूरी अथवा आवश्यक तथा गैरजरूरी अथवा अनाश्यक का अंतर करते हुए मर्टन ने मिडिल रेंज सिद्धांत के निर्माण का प्रयास किया है।

प्रकार्यवाद की निम्नलिखित तीन स्थापनाओं में मर्टन ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

- सामाजिक व्यवस्था की प्रकार्यात्मक एकता (The functional unity of social System) व्यवस्था में व्याप्त विविधता और विघटनकारी (शक्तियों) तत्वों का विश्लेषण संभव नहीं हो पाएगा। मर्टन मानते हैं कि सामाजिक व्यवस्था में एकता को देखना ही है तो उसे तथ्यगत प्रमाणों के आधार पर देखा जा सकता है।
- सामाजिक घटनाओं की प्रकार्यात्मक सार्वभौमिकता (The functional universality व social items) - मर्टन इस बात से पूर्णतया असहमत है कि समाज की सभी घटनाएँ व्यवस्था की एकता हेतु आवश्यक है। मर्टन दो बातों पर विशेष बल देते हैं। प्रथम यह कि घटनाएँ प्रकार्यात्मक (Functions) तथा अप्रकार्यात्मक (Manifest) और अप्रकट (Iatent) दोनों ही प्रकार के होते हैं।
- सामाजिक व्यवस्था हेतु प्रकार्यात्मक घटनाओं की अनिवार्यता (The indispensability व functional items for social system) - मर्टन के अनुसार किसी सामाजिक व्यवस्था हेतु अनिवार्य आवश्यकताएँ कौन-कौन सी है? इसे तथ्यों के आधार पर ही स्पष्ट किया जा सकता है।

4.2.5. मध्य सीमावर्ती सिद्धांत में लघु एवं वृहद सिद्धांत

मिडिल रेंज सिद्धांत मैक्रो व माइक्रो अध्ययनों के बीच की स्थिति है। इसे निम्नलिखित रूप में आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) वृहत (विस्तृत) अथवा महत् सिद्धांत-दृष्टि - इसमें अध्ययन इकाई के रूप में एक विस्तृत समाजशास्त्रीय समस्या अथवा अध्ययन विषय का चयन किया जाता है। उदाहारण स्वरूप हम देख सकते हैं कि जब किसी वृहत व्यवस्था या वृहत समूह या वृहद समुदाय अथवा सामाजिक परिवर्तन सामाजिक संगठन व मानव-व्यवहार जैसे किसी वृहद सामाजिक घटना का अध्ययन किया जाता है और इस अध्ययन के आधार पर समाजशास्त्रीय कहते हैं और इससे निर्मित होने वाले सिद्धांतों को वृहद अथवा महत् सिद्धांत कहा जाता है। इस प्रकार के सिद्धात संपूर्ण व्यवस्था पर लागू किए जाते हैं। टालकट पारसन्स जैसे समाजशास्त्री समाजशास्त्र में सार्वलौकिक तथा महत् सिद्धांतों के निर्माण पर अत्यधिक बल देते हैं।

(2) लघु या सूक्ष्म सिद्धांत दृष्टि - लघु या सूक्ष्म अध्ययनों में छोटे आकार की इकाई का चयन करके अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के तौर पर हम देख सकते हैं कि वैयक्तिक अध्ययन-पद्धति के अंतर्गत कतिपय व्यक्ति विशेष अथवा इकाई विशेष का चयन करके उसी का सूक्ष्म व गहन अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें छोटे समुदाय का भी अध्ययन किया जाता है। रेडफील्ड द्वारा लघु समुदाय पर प्रामाणिक अध्ययन किया जाता है।

उक्त दोनों बिंदुओं से स्पष्ट है कि समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के दो छोर हैं -

(क) वृहद या विस्तृत अध्ययन

(ख) लघु या सूक्ष्म अध्ययन

इन दोनों के बीच की स्थिति को मिडिल रेंज के अध्ययन तथा इसके आधार पर निर्मित होने वाले सिद्धांत को मिडिल रेंज थियरी (मध्य अभिसीमा सिद्धांत) कहते हैं।

4.2.6. प्रकार्य एवं दुष्प्रकार्य

प्रकार्य संरचना के ठीक विपरीत है। यह संस्कृति का गतिशील एवं परिवर्तनशील पहलू है। यह प्रक्रिया है जो सामाजिक संरचना को गतिशीलता प्रदान करती है तथा स्वयं संरचना से अलग न होते हुए उसका पोषण करती है। दोनों का संबंध अन्योन्याश्रित है। प्रकार्यावादियों ने स्पष्ट तौर पर स्वीकार किया है कि किसी सामाजिक संरचना की इकाई को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि किसी इकाई का समग्र समाज के हित में क्या प्रकार्य है**?** सामान्यतः प्रकार्य का आशय समाज या समूह द्वारा किए जाने वाले कार्यो या उनके योगदान से है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रकार्य का अर्थ संपूर्ण सामाजिक संरचना को व्यवस्थित बनाए रखने एवं अनुकूलन करने में उसकी इकाइयों द्वारा जो सकारात्मक योगदान किया जाता है**,** के रूप में समझा जाता है। समाज की विभिन्न निर्मायक इकाइयाँ संपूर्ण सामाजिक संरचना की क्रियाशील को बनाए रखने के लिए कुछ निश्चित भूमिकाएँ अदा करती है। इन भूमिकाओं को पूर्ण करने से समाज का अस्तित्व बना रहता है**,** व्यवस्था बनी रहती है। इन कार्यों की पूर्ति समाज की क्रियाशीलता एवं निरन्रता के लिए आवश्यक है।

इस प्रक्रिया का उदय 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तत्वज्ञान संबंधी तर्क-वितर्क के मध्य हुआ और क्रमशः इसमें स्पष्टता आती गई। इसका स्पष्ट रूप डार्विनवाद के बाद सामने आया। एल.एच. मार्गन (L.H.Morgan) की पुस्तक "Systems of consanguinity and affinity" सामाजिक संरचना का प्रथम मानवशास्त्रीय अध्ययन माना जाता है। सामाजशास्त्रीय साहित्य में संरचना तथा प्रकार्य जैसे शब्दों के प्रयोग का प्रथम श्रेय स्पेंसर को दिया जाता है। इस अवधारणा का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक जीवन में होने वाले निरंतर परिवर्तन तथा समाज व्यवस्था को प्राणिशास्त्रीय सत्यताओं पर परिभाषित करना था। इस अवधारणा के अनुसार सावयव की भाँति समाज भी एक अखंड व्यवस्था नहीं है। जिस प्रकार सावयव का निर्माण अनेक कोष्ठों के योग से होता है और उसकी स्थिरता**,** निरंतरत विभिन्न कोष्टों के मध्य पाए जाने वाले संगठनपर निर्भर करती है उसी प्रकार समाज का निर्माण भी अनेक इकाइयों के योग से होता है और समाज व्यवस्था इन इकाइयों के संगठन पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए जिस प्रकार

शरीर का प्रत्येक अंग शरीर के अस्तिव के लिए कोई निश्चत भूमिका अदा करता है, कोइ निश्चित कार्यों द्वारा समाजशास्त्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयता करते हैं। इस संदभ्र में रेडक्लिफ ब्राउन का यह उल्लेखनीय है कि - "मानव समाजों पर प्रयोग किए जाने वाले प्रकार्यों की सामाजिक जीवन तथा सावयवी जीवन में पाई जाने वाली समानता पर आधारित है। यह समरूपता और उसके कुछ परिणामों को दी जोन वाली मान्यता नई नहीं है। 19वीं शताब्दी में इस प्रकार की समरूपता, प्रकार्य की अवधारणा और स्वयं यह शब्द सामाजिक दर्शनशास्त्र तथा समाजशास्त्र में प्रायः देखने को मिलते थे। जहां तक मैं जानता हूँ समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए 1895 में दुर्खीम ने सर्वप्रथम इस अवधारणा को प्रतिपादित किया था।"

4.2.7. प्रकार्य का अर्थ

प्रकार्य का अर्थ संरचना की विभिन्न इकाइयों की उन भूमिकाओं से है, जिनके द्वारा सावयव या प्राणी का अस्तित्व बना रहता है। संरचचना की निरंतरता तथा क्रियाशीलता के लिए संरचना की प्रत्येक इकाई महत्वपूर्ण होती है। सावयव का अस्तित्व परिस्थितियों से अनुकमलन पर निर्भर करता है। विभिन्न इकाइयाँ अपनी जिन निश्चित और प्रतिमानित क्रियायों द्वारा संपूर्ण सावयव को अनुकमलन करने में सहायाता देती है, उन्हें उन इकाइयों का प्रकार्या कहते हैं। समाज की विभिन्न निर्मायक इकाइयाँ संपूर्ण सामाजिक संरचना की क्रियाशीलता को बनाए रखने के लिए कुछ निश्चित भूमिकाएँ अदा जिस प्रकार शरीर के अस्तित्व के लिए शरीर का प्रत्येक अंग कोई निश्चित भूमिका अदा करता है उसी प्रकार सामाजिक शरीर के विभिन्न अंग निश्चित कार्यों के द्वारा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करते हैं। प्रकार्य के अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए कुछ परिभाषाएँ द्रष्टव्य है -

रेडक्लिफ ब्राउन ने प्रकार्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि - "किसी सामाजिसक इसकाई का प्रकार्य उस इकाई का वह योगदान है जो सामाजिक व्यवस्था को क्रियाशीलता के रूप में सामाजिक जीवन देती है। इनकी दृष्टि में संरचना विभिन्न सांस्कृतिक लक्ष्यों की क्रमबद्ध प्रणाली है। प्रकार्य सामाजिक संरचना एवं सामाजिक जीवन में सन्निहित अंतः संबंधों की कड़ी है। प्रकार्य द्वारा सदस्यों की आवश्यकताएँ पूरी होती है। प्रकार्य सर्वदा स्वीकारमूलक नहीं होता बल्कि दुष्पिकार्यात्मक भी होता है।

ब्राउन की दृष्टि में सामाजिक इकाइयों की प्रकार्यात्मक अंतः निर्भरता और संबद्धता द्वारा सामाजिक संरचना में व्यवस्था एवं एकता बनी रहती है। इन्होंने जैविकीय सावयव की भाँति सामाजिक सावयव को मानकर प्रकार्य की व्याख्या की है। जिस प्रकार शरीरिक प्रक्रिया का प्रकार्य सावयव की आवश्यकताओं और प्रक्रिया के बीच निरंतर संबंध बताए रखना है। उसी प्रकार व्यक्ति संरचना की आवश्यक इकाइयाँ है जो सामाजिक संबंधों के जटिल जाल में एक संगठित संपूर्णता के रूप में बंधे रहते हैं। इस दृष्टि से प्रक्रिया की व्याख्या करते हुए लिखा है कि - "किसी भी निरंतर होने वाली क्रिया, जैसे अपराध, दंड या अंतिम संस्कार, का प्रकार्य वह भूमिका है जिसे वह संपूर्ण सामाजिक जीवन को पूर्ण करती है और इस आधार पर संरचनात्मक निरंतरता को बनाए रखने के लिए योगदान करती है।"

मेलीनासकी के अनुसार, (प्रकार्य शब्द का अर्थ है वह भूमिका जो संस्कृति की आतंरिक व्यवस्था के अंतर्गत निभाते हैं, वह पद्धति जिसके द्वारा व्यवस्था के अंतर्गत एक-दूसरे से संबंधित रहते हैं।(इनकी दृष्टि में प्रकार्य उस भूमिका की ओर संकेत करता है जो समाज में किसी सामाजिक या सांस्कृतिक तत्व द्वारा निभाई जाती है। यह भूमिका केवल सामाजिक संरचना या व्यवस्था के लिए ही नहीं वरन् व्यक्ति की जैविकीय आवश्यकताओं की पुर्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। दनके विचार से प्रथा, परंपरा, विचार, विश्वास, संस्था और भौतिक संस्कृति से संबंधित तत्व सामाजिक व्यवस्था तथा वैयक्तित जैविक व्यवस्था आवश्यकताओं की पुर्ति की दृष्टि से कुछ प्रकार्य करते हैं।

स्पेंसर की दृष्टि में प्रकार्य में परिवर्तन के बिना संरचना में परिवर्तन संभव नहीं है। समाज में कुछ ऐसे भी परिवर्तन होते हैं जो प्रत्यक्ष तो नहीं दखिलाई पड़ते किंतु उन्हें प्रकार्यो के परिवर्तन द्वारा अच्छी तरहज समझा जो सकता है। उदविकासीय क्रम में प्रकार्य की धारणा व्यापक बनती जाती है। छोटे समूहों में, चाहे वे वैयक्तिक हों या सामाजिक, अंगें के प्रकार्य परस्पर बहुत कम निर्भर होते हैं। इसके विपरीत विकसित समूहों में क्रियाओं का संयोजन इस प्रकार का होता है कि क्रियाएँ ही अंगों में गति उत्पन्न करती है। कोई भी अंग पृथक रहकर क्रिया नहीं कर सकता और न ही किसी के अंग के बिना पारस्परिक क्रिया में क्रियाशीलता आ सकती है। सामाजिक जीवन भी इसी प्रकार की क्रियाओं द्वारा संग्रहित है। संरचना एवं प्रकार्य का संबंध अपरिहार्य है। सामाजिक क्रियाओं में जितनी ही विशिष्टता आती जाती है, सामाजिक सरंचना में उतनी ही मात्रा में जीवन शक्ति की वृद्धि होती है।

यदि कोई संगठन समग्र रूप से ऐसे अंगों द्वारा निर्मित है, जो परस्पर निर्भर होकर ही क्रियाशील होते हैं तो ऐसे संगठन से किसी अंग को पृथक करना घातक सिद्ध हो सकता है। ऐसी दशा में सभी अंगों का साथ लगा रहना आवश्यक है। यह सत्य वैयक्तिक एवं सामाजिक सावयव दोनों पर खरा उतरता है।

दुर्खीम के अनुसार - "किसी सामाजिक अथ्य का प्रकार्य सदैव सामाजिक उद्देश्य के साथ उसके संबंध में खोजना चाहिए। दुर्खीम ने प्रकार्य की व्याख्या सामाजिक उद्देश्य के रूप में की है। इनकी दृष्टि में किसी सामाजिक तथ्य का प्रकार्य किसी सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति करना है। इनके अनुसार तब हम किसी सामाजिक घटना का स्पष्टीकरण करते हैं तो हमें उस सामाजिक घटना की उत्पत्ति के कारण तथा उसके प्रकार्यों का पृथक-पृथक अध्ययन करना चाहिए। प्रकार्य शब्द का प्रयोग हम लक्ष्य या प्रयोजन के बदले करते हैं क्योंकि सामाजिक घटना सामान्यतया अपने द्वारा उद्भूत एकमात्र सामाजिक परिणामों के द्वारा अस्तित्व में नहीं रहती। हमें सामाजिक तथ्य एवं सामाजिक आवश्यकता के बीच एक संबंध स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। इस संबंध में दुर्खीम ने लिखा है कि किसी सामाजिक तथ्य का प्रकार्य सदैव किसी सामाजिक उद्देश्य के साथ उसके संबंध में खोजना चाहिए।(दुर्खीम ने प्रकार्य शब्द का पर्यायवाची नहीं माना है। उनके अनुसार प्रकार्य के दो अर्थ होते हैं, प्रथम महत्वपूर्ण गतिविधियों की व्यवस्था जिसमें परिणामों पर ध्यान दिया जाता है और दुर्खीम ने दूसरे अर्थ में प्रकार्य की व्याख्या की है।

जॉनसन के अनुसार - "कोई भी आंशिर संरचना, उपसमूह का एक प्रारूप, एक भूमिका, एक सामाजिक आदर्श नियम या एक सांस्कृतिक मूल्य का वह योगदान जो एक सामाजिक व्यवस्था या उप व्यवस्था, एक या आधिक सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, उसको प्रकार्य कहा जाता है।"

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रकार्य तथा उद्देश्य में अंतर है। जॉनसन की दृष्टि में सामाजिक संरचना का कोई भाग मूल्य, आदर्श इत्यादि समाज की किसी आवश्यकता की पूर्ति करता है तो वह उसका प्रकार्य है।

मर्टन के अनुसार - "प्रकार्य वे अवलोकित परिणाम है जो सामाजिक व्यवस्था ने साथ अनुकूलन या सामंजस्य बढ़ाते हैं।" मर्टन की दृष्टि में प्रकार्य का संबंध क्रिया के परिणामों से हैं अध्ययन कर्ता के सम्मुख वे स्पष्ट परिणाम जो सामाजिक या व्यक्तिगत अनुकूलन में सहायता करते हैं, प्रकार्य कहलाते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रकार्य किसी सावयवी संरचनात्मक व्यवस्था से संबंधित है। सामाजिक संदर्भ में इसकी व्याख्या तभी सार्थक है जब समाज को एक सावयव के रूप में स्वीकार किया जाए जिसका निर्माण परस्पर संबद्ध इकाइयों के योग से होता है और जिसकी विभिन्न इकाइयाँ सामाजिक व्यवस्था के स्थायित्व एवं निरंतरता के लिए कुछ निश्चित भूमिकाएँ अदा करती है तथा इन भूमिकाओं के कारण संपूर्ण सावयव पर निर्भर रहती है तथा संपूर्ण संरचना एवं अन्य इकाइयों की क्रियाशीलता में सहायक होती है। विभिन्न इकाइयों की इन भूमिकाओं को ही सामाजिक विवेचन में प्रकार्य की संज्ञा दी जाती है।

4.2.8. दुष्प्रकार्य की अवधारणा

सामान्य तौर पर दुष्यकार्य की अवधारणा प्रकार्य का विपरीत रूप है। दुष्प्रकार्य से वे दृष्टिगोचर परिणाम हैं, जो सामाजिक व्यवस्था में स्वीकरण या अभियोजन की प्रक्रिया को कम करते हैं। किसी एक ही तथ्य के दो तरह के परिणाम हो सकते हैं। समाज व्यवस्था की विभिन्न इकाइयों से यह उम्मीद की जाती है कि वे सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में अपना यारेगदान इस प्रकार करें कि इन उद्देश्यों की अधिकतम पूर्ति हो सके तथा साथ ही साथ व्यवस्था एवं निरंतरता बनी रहे। किंतु ऐसी भी कुछ इकाइयाँ होती है जो आशा के प्रतिकूल कार्य करती है, परिणामस्वरूप सामाजिक व्यवस्था में बाधा उत्पन्न होती है। सामाजिक इकाइयों की जिन क्रियाओं द्वारा ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है उसे दुष्प्रकार्य कहते हैं।

जॉनसन के अनुसार - "कोई भी आंशिक संरचना उपसमूह का एक प्रारूप, एक भूमिका, एक सामाजिक आदर्श नियम या एक सांस्कृतिक मूल्य यदि एक सामाजिक व्यवस्था या उपव्यवस्था की एक या अधिक सामाजिक आवश्कताओं की पूर्ति में बाधा उत्पन्न करता है तो उसे दुष्प्रकार्य कहते हैं।"

मर्टन के अनुसार - "दुष्प्रकार्य वे निरीक्षित परिणाम है जो व्यवस्था के अनुकूलन या सामंजस्य को कम करते हैं।" अभिप्राय यह कि व्यवस्था की विभिन्न इकाइयाँ दो दिशाओं में क्रियाशील हो सकती है। प्रथम यह कि उनकी क्रियाशीलता ऐसे परिणामों को उत्पन्न करे जिनके कारण उस व्यवस्था विशेष का संतुलन दृढ़ हो जाए और उस व्यवस्था का अन्य व्यवस्थाओं के साथ या संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के साथ अनुकूलन करना, उनसे सामंजस्य स्थापित करना उनके लिए संभव एवं सरल हो जाए। इस प्रकार की क्रियाशीलता को प्रकार्य कहा जाता है। द्वितीय एक व्यवस्था विशेष की इकाइयों की क्रियाशीलता ऐसे परिणामों को उत्पन्न करे जिसके कारण उस व्यवस्था विशेष का संतुलन नष्ट हो जाए और उस

व्यवस्था का अन्य व्यवस्थाओं या संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के साथ अनुकूलन या सामंजस्य स्थापित करने की संभावनएँ कम हो जाए। इकाइयों की इस प्रकार की क्रियाशीलता को दुष्प्रकार्य कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर दुष्प्रकार्य की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है -

- संरचना की इकाई का परिणाम - दुष्प्रकार्य की अवधारणा सामाजिक संरचना एवं प्रकार्य से संबंधित है। अतः दुष्प्रकार्य के अर्थ को प्रकार्य के संदर्भ में समझा जा सकता है। जैसे प्रकार्य अनुकूलन एवं सांमजस्य की में वृद्धि करता है तथा दुष्प्रकार्य सामंजस्य एवं अनुकूलन की संभावना को कम करता है।
- संरचना की इकाई का परिणाम-दुष्प्रकार्य सामाजिक संरचना की किसी इकाई का परिणाम है। संरचना की इकाई गति प्रकार्य तथा दुष्प्रकार्य के लिए अत्तरदायी है।
- व्यवस्था की आवश्यकता से संबंधित अवधारणा-दुष्प्रकार्य का संबंध व्यवस्था की आवश्यकता से है। यदि कोई क्रिया ऐसा परिणाम उत्पन्न करती है जो सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति में बाधाक हो तब हम उसे दुष्प्रकार्य कहते हैं।
- सामाजिक जीवन का नकारात्मक पक्ष-दुष्प्रकार्य सामाजिक जीवन नकारात्मक पक्ष से संबंधित अवधारणा है। अर्थात् यह समाज व्यवस्था की निरंतर एवं संतुलन की दृष्टि से हानिकारक तत्व है।
- प्रत्यक्ष परिणाम-दुष्प्रकार्य के प्रत्यक्ष परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था की अनुकूलन करने को क्षमता को कम करते हैं। यह किसी इकाई की अंतरंग स्थिति से संबन्धित धारणा नहीं है अपितु अनुसंधानकर्ता के वैज्ञानिक अवलोकन से संबंधित घटना है।

4.2.9. प्रकार्य तथा दुष्प्रकार्य में अंतर

प्रकार्य एवं दुष्प्रकार्य की अवधारणा के विश्लेषण के आधार पर उनके अंतर को निम्नलिखित बिंदुओं पर स्पष्ट किया जा सकता है -

- प्रकार्य वे दृष्टिगोचर परिणाम हैं जो किसी व्यवस्था में अभियोजन की प्रक्रिया को कम करते हैं।
- प्रकार्य सामाजिक संरचना की विभिन्न इकाइयों की स्वीकृति भूमिका है इसके विपरीत दुष्प्रकार्य सामाजिक इकाई की अवांछित और अस्वीकृति भूमिका है।
- प्रकार्य द्वारा सामान्य सामाजिक आवश्यकताओं एवं लक्ष्यों की पूर्ति होती है जबकि दुष्प्रकार्य द्वारा सामान्य सामाजिक हितों का हनन होता है।
- प्रकार्य उन कार्यों का प्रतिनिधित्व करता है जो समाज द्वारा मान्य होते हैं जबकि दुष्प्रकार्य उन कार्यो का प्रतिनिधित्व करता है जो समाज द्वारा मान्य नहीं होते।
- प्रकार्य की प्रकृति सकारात्मक होती है जबकि दुष्प्रकार्य की प्रकृति नकारात्मक होती है।

- प्रकार्य का संबंध सामाजिक एकीकरण, संगठन, संतुलन एवं व्यवस्था से है जबकि दुष्प्रकार्य का संबंध सामाजिक विघटन, असंतुलन तथा अव्यवस्था से है।
- दुर्खीम ने सामाजिक श्रम विभाजन के दौरान प्रकार्य तथा दुष्प्रकार्य का भेद स्पष्ट किया है। उनकी दृष्टि में प्रकार्यत्मक प्रक्रियाए समाज में एकता को बढ़ाती है जबकि दुष्प्रकार्यात्मक प्रक्रियाए समाज की एकात को घटाती हैं।

4.2.10. प्रकार्य के संबंध में मर्टन के दृष्टिकोण

समाजशास्त्र में संरचनात्मक प्रकार्यवाद को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का श्रेय आ. के. मर्टन को दिया जाता है। मर्टन के प्रकार्यवादी विचारों पर मानवशास्त्री मेलीनास्की तथा रेडक्लिफ ब्राउन के विचारों का स्पष्ट प्रकभाव है। इस संदर्भ में गिडिंग्स का यह कथन उल्लेखनीय है कि ब्राउन एवं मेलोलास्की ने प्रकार्यवाद का प्रयोग जहाँ आदिम जातियों के लिए किया था वहीं आर. के. मर्टन ने इस सिद्धांत का प्रयोग विकसित एवं औद्योगिक समाज मेलीनास्की की तुलना में अधिक समृद्ध बताया है।

मर्टन ने पुराने प्रकार्यवादियों की आधारभूत मान्यताओं का उल्लेख करते हुए आलोचना की है। ये मान्यताएँ थीं - रेडक्लिफ ब्राउन के प्रकार्यात्मक एकता के सिद्धांत के अनुसार एक सामाजिक व्यवस्था एक विशेष प्रकार की एकता रखती है, जिसे हम प्रकार्यात्मक एकता कह सकते हैं। मर्टन के अनुसार प्रकार्यात्मक विश्लेषण में इन बातों का पीक्षण आवश्यक है कि सांस्कृतिक तथ्य संपूर्ण व्यवस्था के लिए तथा समाज के प्रत्येक सदस्यों के लिए प्रकार्यात्मक होते हैं। मर्टन ने प्राकार्यात्मक विश्लेषण की इस मान्यता से असहमति प्रगट की तथा इसके तथ्यात्मक परीक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। एकता की मात्रा भिन्न-भिन्न समाजों में तथा एक ही समाज में भिन्न-भिन्न समयों में एक जैसी नहीं रहती। एक ही समाज में सामाजिक रीति-रिवाज व भावनाएँ कुछ समूहों के लिए प्रकार्यात्मक हो सकती है और दूसरों के लिए अप्रकार्यात्मक। मर्टन ने धर्म की प्रकार्यात्मक व्याख्या की आलोचना करते हुए कहा है कि धर्म का मूख्य प्रकार्य एकता स्थापित करना है। सामान्य मूल्य एवं लक्ष्य लोगों को एकता के सूत्र से बाँधे रहते हैं। मर्टन की दृष्टि में यह जरुरी नहीं है कि धर्म समाज में सदैव एकता ही स्थापित करें। कुछ सामाजिक संरचनाओं के लिए यह अप्रकार्यात्मक भी होता है।

सार्वभौमिक प्रकार्यात्मक के सिद्धांत की आलोचना करते हुए काहा कि परंपरा को जीवित रखना तो किसी न किसी मात्रा में प्रत्येक सांस्कृतिक तत्व का कार्य है। अतः इस प्रकार्य को किसी एक तत्व के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। इसका प्रकार्य यह भी हो सकता है कि व्यक्ति परंपरा का पालन समूह की अभिमति की रक्षा के लिए करता है। मर्टन का कथन है कि वास्तव में प्रचलित सांस्कृतिक तत्व उन समाजों या उपसमूहों के लिए प्रकार्यात्मक परिणामों का मूल शेष प्रकट करते हैं, जो दबाव से उन्हें बनाए रखते हैं।

मर्टन ने पुरानी मान्यताओं की कमियों को दूर करने के लिए कुछ नई मान्यताओं को रखा जो निम्नलिखित हैं -

- प्रकार्यात्मक एकता प्रयोग सिद्ध होती है।
- सामाजिक रीतियाँ या घटनाएँ एक समूह के लिए प्रकार्यात्मक हो सकती हैं तो दूसरे के लिए दुष्प्रकार्यात्मक।
- सार्वभौमिक प्रकार्यावाद की अवधारणा में संशोधन आवश्यक है, क्योंकि एक समाज या समूह के प्रकायात्मक परिणाम दूसरे समाजों एवं समूहों पर लागू नहीं भी हो सकते।
- इस मान्यता में संशोधन की जरुरत है कि प्रकार्यात्मक रूप में समाज के सभी तत्व या इकाई नीतांत आवश्यक हैं। एक इकाई का एक में अधिक प्रकार्य है तथा एक प्रकार्य की पूर्ति विकल्पों द्वारा भी संभव है। कुछ इकाइयों के एक से अधिक प्रकार्य हो सकते हैं, जिसमें कुछ परिणाम दुष्प्रकार्यात्मक हो सकते हैं।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बाद मर्टन ने प्रकार्य के पाँच प्रचलित अर्थों की चर्चा की है, जो इस प्रकार हैं -

- सार्वजनिक उत्सव या समारोह के अर्थ में प्रकार्य,
- प्रस्थिति से संबंधित क्रियाओं के अर्थ में प्रकार्य,
- व्यवसाय के अर्थ में प्रकार्य,
- गणितीय अर्थ में प्रकार्य,
- प्रणिशास्त्रीय या सामाजिक प्रक्रियाओं के अर्थ में प्रकार्य।

यद्यपि मर्टन ने उपयुक्त पाँच प्रकार के प्रकार्यो की चर्चा की है किंतु वह स्वयं प्रकार्य के इतने पर्यायों के विरूद्ध है। उनकी दृष्टि में हमें इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि प्रकार्य के सिर्फ यही पाँच अर्थ हैं। इन पाँच अर्थों के भिन्न प्रायः उद्देश्य, प्रेरणा, प्राथमिक हित, लक्ष्य आदि के अर्थ में प्रकार्य का प्रयोग किया जाता है। मर्टन ने प्रकार्य के आत्मगत अनुभवों के रूप में समझना गलत माना हैं। नके अनुसार दृष्टिगोचर वस्तुगत परिणाम को ही प्रकार्य कहा जाता है। उक्त पाँच अर्थों में मर्टन ने पाँचवे प्रकार्य के प्रति सहमति दिखलाई है। मर्टन के अनुसार प्रकार्य को प्रातीतिक अर्थ में समझना उचित नहीं है। प्रकार्य एक अवधारणा है जिसमें कई समानार्थी शब्द व्यवहार में लाये जाते हैं।

उपर्युक्त व्यख्या से स्पष्ट है कि प्रकार्य किसी तत्व की क्रिया का परिणाम है। संरचना के अस्तित्व के लिए क्रिया का परिणाम महत्वपुर्ण है। यही कारण है कि मर्टन ने प्रकार्य को आतंरिक स्थिति नहीं माना है। मर्टन ने स्पष्ट लिखा है कि - "प्रकार्य प्रत्यक्ष वैषयिक परिणामों की ओर संकेत करता है, आतंरिक स्थितियों की ओर नहीं।"

प्रकट या गोचर तथा अप्रकट या अगोचर प्रकार्य

संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण में प्रकार्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण शब्द है। गोचर एवं अगोचर प्रकार्य की अवधारणा को मर्टन ने फ्रायड से लिया है। प्रकार्य को मर्टन ने वैषयिक परिणाम कहा है जिसका संबंध प्रकार्य की अंतरंग स्थितियों से नहीं होता। मर्टन ने गोचर तथा मकार्य को परिभाषित करते हुए कहता है कि - "प्रगट प्रकार्य या गोचर प्रकार्य वे निरीक्षित परिणाम हैं जो व्यवस्था के अनुकूलन या सामंजस्य में अपना योगदान देते हैं और जो व्यवस्था के अंश ग्रहण करने वालों के द्वारा मान्य एवं इच्छित होते हैं।" अप्रगट या अगोचर प्रकार्य को परिभाषित करते हुए मर्टन कहता है - "अगोचर प्रकार्य वे सहमसंबंधी परिणाम होते हैं जो न तो मान्य होते हैं और न ही इच्छित।" दूसरे शब्दों में अगोचर प्रकार्य ऐसी स्थिति तथा परिणाम को उत्पन्न करता है जिसके विषय में उसके करने वालों ने न कभी सोचा था और न ही उनकी इन्छा थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अगोचर प्रकार्य किसी न किसी गोचर प्रकार्य का परिणाम होता है।

गोचर एवं अगोचर प्रकार्य की परिभाषा से स्पष्ट है कि अगोचर प्रकार्य प्रकार्यों के सहगामी परिणाम हैं। गोचर प्रकार्यों के साथ कुछ ऐसे प्रकार्य भी स्पष्ट हो जाते हैं जो वैषयिक होते हैं किंतु उनका पहले से ध्यान नहीं होता। ऐसे परिणामों की पहले से अपेक्षा भी नहीं। यहाँ यह स्मरणीय है कि अगोचर प्रकार्य ही हैं, दुष्प्रकार्य नहीं। अतः उन्हें अस्वीकृत या अवांछनीय नहीं कहा जा सकता।

ज्ञातव्य है कि गोचर एवं अगोचर प्रकार्य की अवधारणा को मर्टन फ्रायड से लिया है। यद्यपि फ्रांसिस बेकन ने बहुत पहले ही परोक्ष प्रक्रिया की चर्चा की थी। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग उस प्रक्रिया को समझने क लिए किया था जो कि अवलोकन में नहीं आ सकती थी। समाजशास्त्रीयों ने प्रत्यक्ष उद्देश्य तथा क्रिया के प्रकार्यात्मक परिणाम में भेद करने का प्रयत्न किया है। मीड ने स्पष्ट किया कि कानून तोड़ने वाले व्यक्ति के प्रति समूह के सदस्यों का विरोधी भाव समूदाय में एकता उत्पन्न कर देता है। दुर्खीम ने भी दंड का प्रकार्य सामूहिक भावना के संदर्भ में समूह की एकता को बताया है। वास्तव में दोनों प्रकार्य ही हैं क्योंकि कानून तोड़ने वालों का विरोध तथा दंड का उद्देश्य सामूहिक एकता ही है। इसी प्रकार समनर, मैकाइवर तथा थामस नैनिकी ने भी इस अंतर की ओर संकेत किया है। मर्टन गोचर तथा अगोचर प्रकार्य के अंतर के संबंध में कहा है कि - "गोचर तथा अगोचर प्रकार्यों के मध्य अंतर का तार्किक आधार यह है कि पहले किसी विशेष इकाई (व्यक्ति, उपसमूह, सामाजिक या सांस्कृतिक व्यवस्था) के लिए उन वैषयिक परिणामों की ओर संकेत करते हैं जो सामंजस्य और अनुकूलन में योगदान करते हैं और जिनसे वैसी ही अपेक्षा थी, दूसरी उसी प्रकार के अनपेक्षित और अस्वीकृत परिणामों की ओर संकेत करते हैं।" मर्टन ने गोचर तथा अगोचर प्रकार्यों के मध्य अंतर में चार निम्नलिखित उद्देश्यों की चर्चा की है -

आतार्किक दिखाई देने वाले सामाजिक प्रतिमानों के विश्लेषण का स्पष्टीकरण ऐसे बहुत से व्यवहार प्रतिमान हैं जो वाह्य दृष्टि से व्यर्थ, अतार्किक तथा रूढ़िमात्र दिखालाई पड़ते हैं। मर्टन ने गोचर तथा अगोचर प्रकार्य के बीच अंतर स्पष्ट करने के लिए न्यू मैक्सिकों के होपी इण्डियन सूखे के समय वर्षा के लिए एक साथ एकत्रित होकर नृत्य करते हैं। इससे वर्षा हो न हो उन लोगों में सामाजिक एकता की

भावना अवश्य ही बलवती होती है। यह अगोचर प्रकार्य है। मर्टन की दृष्टि में ऐसे प्रकार्य इच्छित समूह द्वारा मान्य होते हैं।

सैद्धांतिक दृष्टि से अध्ययन के लिए उपयोगी क्षेत्रों की ओर आकर्षक गोचर तथा अगोचर प्रकार्य के बीच पाए जाने वाले अंतर के प्रति जागरूकता अनुसंधान विषय के ऊपरी सतह तक ही सीमित नहीं रहती अपितु एक सामाजिक तथ्य के अंतर्निहित प्रकार्यों से उत्पन्न उन विभिन्न क्षेत्रों में भी प्रवेश कर सकती है जिन्हें हम प्रायः छोड़ देते हैं। उदाहरण के लिए यदि उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से वेतन वृद्धि की गई है तो उसके अनुरूप उत्पादन बढ़ा है या नहीं। इस प्रकार समाजशास्त्रीय सिद्धांत के विकास की दृष्टि से उपयोगी विषयों का अध्ययन करने में यह अंतर सहायक है।

समाजशास्त्रीय ज्ञान में महत्वपूर्ण वृद्धि अगोचर प्रकार्यों का विश्लेषण यह प्रकट करता है कि सामाजिक जीवन इतना सरल नहीं है जितना कि वह बाहर से दिखलाई देता है। गोचर प्रकार्यों के आधार पर हमारा नैतिक मूल्यांकन हमाने किसी व्यवहार को अच्छा कह देता है या बुरा किंतु जब हम अगोचर प्रकार्यों का विश्लेषण करते हैं तो वह मूल्यांकन थोढा प्रतीत होता है और जीवन की जटिलता स्पष्ट होने लगती है।

- नैतिक मूल्यांकन का निषेध
- समाजशास्त्रीय विश्लेषण में नैतिक मूल्यांकन से बचना आवश्यक है। समाज में प्रायः नैतिक मूल्यांकन गोचर परिणामों के आधार पर किया जाता है। किसी व्यवहार का मूल्यांकन उसके प्रत्यक्ष परिणामों से निश्चित होता है। अतः अगोचर या अप्रकट प्रकार्यों के आधार पर यदि मूल्यांकन किया जाए तो नैतिक मूल्यांकन को स्थान नहीं मिलता। इस प्रकार शुद्ध वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से अगोचर प्रकार्यों की अवधारणा बहुत सहायक है। इस संबंध में मर्टन ने अमेरिकी राजनीतिक संस्था का उदाहरण दिया है, जिसकी अत्यधिक आलोचना की जाती है। इन संस्थाओं पर गोचर परिणामों के आधार पर उल्लंघन, पक्षपातपूर्ण नियुक्तियाँ तथा नियमों का उल्लंघन संबन्धि आरोप लगाये जाते हैं। किंतु यदि अगोचर प्रकार्यों पर विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि राजनीतिक संस्था, सामाजिक संरचना एवं व्यवस्था की दृष्टि से क्या भूमिका अदा करती है। मर्टन की दृष्टि में राजनैतिक तंत्र के अगोचर प्रकार्यों को निम्नलिखित दो समाजशास्त्रीय आधारों पर समझा जा सकता है।

(अ) असंरचनात्मक संदर्भ

किसी भी सामाजिक इकाई या संगठन के गोचर एवं अगोचर प्रकार्यों को जान लेने से उसकी संरचना की प्रकृति भी हमारे लिए उसी तरह स्पष्ट हो जाती है जिस तरह की संरचना की प्रकृति जान लेने से प्रकार्यों को प्रभावशालिता को जानना सरल हो जाता है। इसे स्पष्ट करने के लिए मर्टन ने राजनैतिक संरचना का उदाहरण लिया है। यदि इस संरचना की विभिन्न इकाइयों के गोचर तथा अगोचर प्रकार्यों को हम ठीक से विश्लेषण कर ले तो उस राजनैतिक संरचना की प्रकृति स्पतः ही उभरकर सामने आ जाएगी।

(ब) विभिन्न उप-समूहों के लिए राजनीतिक संस्था के प्रकार्य

राजनीतिक संस्था की शक्ति समुदाय और पड़ोस पर निर्भर करती है। सामान्य जनता से संबंधित समस्याएं अमूर्त होती हैं लेकिन लोगों की व्यक्तिगत समस्याएँ मूर्त और तात्कालिक होती है। राजनैतिक संस्था जनता से वोट के लिए अपील नहीं करती बल्कि समूदाय में रहने वाले लोगों के माध्यम से, व्यक्तिगत संबंधों से वोट प्राप्त किए जाते हैं। मर्टन के शब्दों में - "राजनीति व्यक्तिगत बन्धनों में परिवर्तित हो जाती है।" मर्टन ने कुछ ऐसे उपसमूहों की चर्चा की है जिनके लिए राजरीतिक संस्था प्रकार्यों की पूर्ति करती है जितनी पूर्ति स्वीकृत सामाजिक संरचना नहीं कर पाती। ऐसे वर्गों को मर्टन ने उपेक्षित वर्ग का नाम दिया है।

उपर्युक्त आधार पर गोचर एवं अगोचर प्रकार्यों के अंतर को निम्नलिखित आधार पर समझा जा सकता है -

- गोचर प्रकार्य वे परिणाम हैं जो बाहरी तौर पर दिखाई पड़ते हैं इसके विपरीत अगोचर प्रकार्य वे परिणाम हैं जो अंदर ही अंदर क्रियाशील रहते हैं।
- गोचर प्रकार्य में कर्ता उस कार्य के संभावित परिणाम के संबंध में सचेत रहता है जबकि अगोचर प्रकार्य में कर्ता कार्य सचेत नहीं रहता।
- गोचर या प्रकट प्रकार्य कर्ता द्वारा इच्छित होता है जबकि अगोचर या अप्रकट प्रकार्य इच्छित नहीं होता।
- गोचर प्रकार्य में प्रेरणा परिस्थिति तथा परिणाम कर्ता का जाना पहचाना होता है जबकि अगोचर प्रकार्य में प्रेरणा, परिस्थिति तथा परिणाम के संबंध में कर्ता को कोई पूर्वज्ञान नहीं होता।

4.2.11. दुष्प्रकार्य के संबंध में मर्टन का दृष्टिकोण

मर्टन ने इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया कि सामाजिक संरचना की सभी इकाइयाँ मात्र सकारात्मक प्रकार्य ही करती हैं तथा सामाजिक संरचनाएं हमेशा व्यवस्था को बनाए रखने में अपना योगदान करती हैं। मर्टन की दृष्टि में ऐसा संभव है कि कुछ इकाइयाँ प्रकार्य के स्थान पर दुष्प्रकार्य करें। दूसरे शब्दों में कुछ इाकइयाँ सामाजिक संरचना एवं व्यवस्था को संगठित न करने का प्रयास करती हैं। मर्टन के अनुसार कुछ इकाइयाँ प्रकार्यत्मक होती हैं, तो कुछ आंशिक रूप से दुष्प्रकार्यात्मक, कुछ अप्रकार्यात्मक और कुछ पूर्णरूपेण दुष्प्रकार्यात्मक भी। यह स्पष्ट है कि संरचना की कुछ इकइयाँ अप्रकार्यात्मक होते हुए भी सामाजिक संरचना में बनी रहें। इस तरह स्पष्ट है कि सभी इकाइयों के प्रकार्य सामाजिक संचना एवं व्यवस्था के अस्तित्व तथा निनंतरता के लिए अनिवार्य नहीं होते।

दुष्प्रकार्य के संबंध में मर्टन का विचार है कि इसके द्वारा सामाजिक एकता को खतरा पैदा होता है और इससे समाज में सामाजिक परिवर्तन की प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलता है। दूसरे शब्दों में मर्टन के दुष्प्रकार्या द्वारा सामाजिक परिवर्तन बढ़ावा मिलता है। दुर्खीम की भाँति मर्टन यह नहीं मानते कि धर्म हमेशा समाज की एकता में सकारात्मक योगदान देता है। धार्मिक आधार पर समाज में धर्म काफी द्वंद एवं निषेध पाया जाता है। यदि धर्म सजाम को जोड़ता है तो वह उतना ही दो समुदायों के बीच संबंध विच्छेद

भी करता है। अतः यह कहना कि प्रकार्यवादी सिद्धांत से मात्र सामाजिक स्थिरता या नियंत्रण का ज्ञान होता है, ठीक नहीं है बल्कि इसके अंतर्गत दुष्प्रकार्य की अवधारणा है जिसके द्वारा सामाजिक परिवर्तन का ज्ञान होता है।

दुष्प्रकार्य भी प्रकार्य की भाँति दो प्रकार के होते हैं। प्रथम गोचर दुष्प्रकार्य तथा द्वितीय अगोचर दुष्प्रकार्य। धार्मिक आधार पर दो धार्मिक समुदायों के मध्य संघर्ष गोचर दुष्प्रकार्य है लेकिन इस संदर्भ का प्रभाव राष्ट्रीय अस्मिता पर पड़ता है तो यह अगोचर दुष्प्रकार्य है।

उपर्युक्त संपूर्ण विश्लेक्षण से स्पष्ट है कि प्रकार्य गतिविधि के वे परिणाम हैं जो अपने से संबद्ध व्यवस्था के साथ सामंजस्य या अनुमूलन स्थापित करते हैं। दुष्प्रकार्य उन गतिविधियों के परिणाम हैं जो अपने से संबद्ध व्यवस्था के साथ अनुकूलन नहीं करते तथा इस प्रक्रिया के परिणाम व्यवस्था के लिए ये हानिकारक होते हैं। मर्टन का कहना है कि इकाइयों के कुछ प्रकार्य इच्छित तथा कुछ अनिश्चित होते हैं जिन्हें उसने क्रमशः गोचर एवं अगोचर प्रकार्य कहा है। गोचर प्रकार्य वे प्रकार्य है जो व्यवस्था के साथ अनुकूलन या सामंजस्य स्थापित करते हैं तथा ये व्यवस्था द्वारा निर्दिष्ट होते हैं। कुछ इकाइयाँ ऐसे प्रकार्यों को अन्जाम देती है जो अनिर्दिष्ट होते हैं, इन्हें अगोचर प्रकार्य कहा जाता है। ये न तो निर्दिष्ट होते होते हैं और न ही व्यवस्था द्वारा स्वीकृत। उदाहरण के लिए ताजिए के जुलूस का निर्दिष्ट प्रकार्य श्रद्धा एवं उपासन की अभिव्यक्ति है किंतु यदि उस जुलूस के कारण दंगे का होना अगोचर प्रकार्य हैं।

4.2.12. सारांश

मध्य श्रेणी सिद्धांत उन घटनाओं की सीमा के संदर्भ में (मध्य(होते हैं, जिन्हें वे समझाने के लिए और उनके स्पष्टीकरणों में शामिल कारकों के सेट के संदर्भ में है। एक मध्यम श्रेणी का सिद्धांत है जो अलग-अलग सामाजिक डोमेन में देखी गई घटनाओं को आंशिक रूप से समझाता है और यह एक सिद्धांत होने के अर्थ में एक सरल प्रकार का सिद्धांत है जो पूर्ण कहानी की बजाए एक कारण कहानी के दिल को बताना चाहता है। मध्य-श्रेणी सिद्धांतों मे सामाजिक हित के सभी घटनाओं को समझाने में सक्षम होने का कोई झगड़ा नहीं होता है और उनकी व्याख्याओं के संदर्भ में उन्हें कम करने के किसी भी चरम रूप में स्थापित नहीं किया जाता है।

जैसा कि उपरोक्त दिया गया है। मध्यम श्रेणी के सिद्धांतों के बीच काफी विषमता है और बहुत अलग के समाजशास्त्रियों ने अपने विशेष उपयोग के लिए इस शब्द को लागू किया है। इस अध्याय को समाप्त करने में हम संक्षेप में सामने आते हैं कि एक स्पष्टीकरण बिंदु से क्या एक-दूसरे से मध्य-श्रेणी सिद्धांत का अलग करने वाला सबसे महत्वपूर्ण विशेषता प्रतीत होता है?

मध्य-श्रेणी सिद्धांतों सभी व्याख्यात्मक सिद्धांतों की तरह दो प्रकार के घटकों की शामिल किया जा सकता है। कुछ समझाने के लिए सूचना प्रदान करना है। जो इस तरह के दावों को न्यायसंगत बनाने के लिए पर्याप्त जानकारी पर विचार करते हैं। सामाजिक और दार्शनिक साहित्य में कोई ऐसे दावों को न्यायसंगत बनाने के लिए उपयोग किए जाने वाले चार अलग-अलग प्रकार के रिश्तों पर जानकारी की पहचान कर सकता है।

- कारण कानून
- सांख्यिकीय संघ
- निर्भरता तथा
- कारण तंत्र।

पहली और सबसे मजबूत आवश्यकता यह है कि संबंध सामान्य कारण कानून का एक उदाहरण होना चाहिए। यद्यपि यह विचार हेमपेल जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा निम्नलिखित तरीके से एक की मूल विचार तैयार किया गया था। एक व्यक्तिगत तथ्य को इसके कारणों को इंगित करके समझाया जा सकता हैं, यानी कानून के कानून या बताते हुए जिसका उत्पादन है एक उदाहरण (1874 : 332) यह स्पष्ट है कि कारण कानून से क्या मतलब होना चाहिए? पांरपरिक दार्शानिक दृष्टिकोण यह है कि कानूनों में निम्नलिखित में से कई या सभी विशेषताएँ है वे सार्वभौमिक रूप से सशर्त बयान है, जो असाधारण नियमितताओं का वर्णन करते हैं।

तीसरे विकल्प के पीछे मूल विचार यह है की इनवेरिएंट काउंटर फैक्चुअल निर्भरताओं की जानकारी इस तरह के दावों की गारंटी देती है। जेम्स वुडवर्ड के शब्दों में स्पष्टीकरण हमें यह देखने में सक्षम होना चाहिए कि स्पष्टीकरण के लिए यहाँ किस प्रकार का अंतर होगा यदि स्पष्टीकरण में उद्धृत कारक विभिन्न संभावित तरीकों से अलग थे यह दूसरे विकल्प पर एक सुधार है, जिसमें यह उचित रूप से दार्शनिक साहित्य में संदर्भित फ्लैगपोल उदाहरण जैसे मामलों को सही तरीके से संभालता है। यही है अलग ध्वज एक छाया का कारण बनता है तो हम झंडे की ऊँचाई जैसे तथ्यों को अपील करके छाया की लंबाई को समझा सकते हैं, लेकिन सांख्यिकीय-एसोसिएशन विकल्प के परिप्रेक्ष्य से ऐसा कुछ भी नहीं है, जो हमें समझाए जाने से रोकता है अपनी छाया की लंबाई के संदर्भ में फ्लैगपोल की ऊँचाई हालाँकि हम सभी सहमत है कि यह अनजान होगा काउंटरफैक्चुअल दृष्टिकोण इस समस्या से बचाता है। क्योंकि एक आदर्श हस्तक्षेप जो छाया की लंबाई को बदलता है, का ध्वज की लंबाई पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

4.2.13. बोध प्रश्न

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. मिडिल रेंज सिद्धांत किसने दिया?
   (क) मर्टन
   (ख) पारसंस
   (ग) कोहेन
   (घ) टी.एच. मार्शल
2. मर्टन ने अपनी किस पुस्तक में मध्यवर्ती सिद्धांत को दिया?
   (क) सोशल थ्योरी एंड सोशल स्ट्रक्चर
   (ख) फोकस्ड इंटरव्यू
   (ग) कंटेंपोरेरी सोशल प्रोब्लम्स

(घ) द सोशियोलाजी ऑफ साइंस

3. प्रकार्य एवं दुष्प्रकार्य की अवधारणा से कौन संबंधित है**?**

(क) मर्टन

(ख) पारसंस

(ग) मॉर्गन

(घ) ब्राउन

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आर.के. मर्टन की मध्य सीमावर्ती सिद्धांत की व्याख्या कीजिए?
2. आर.के. मर्टन की मध्य सीमावर्ती सिद्धांत का अर्थ बताइए?
3. आर.के. मर्टन के मध्य सीमावर्ती सिद्धांत के प्रकार्यवादी विश्लेषण के महत्व को बताइए?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आर.के. मर्टन के 11 बिंदुओं के पैराडाइम को बताइए?
2. आर.के. मर्टन के मध्य सीमावर्ती सिद्धांत में लघु एवं वृहद सिद्धांतों को बताइए?

4.2.14. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- अब्राहम. (1977). *ओरिजिन एंड ग्रंथ ऑफ सोशिओलाजी*. न्यूयार्क: पेंगुइन बुक्स.
- एरन, रेमंड. (1976). *मेन करेंटस इन सोशिओलाजिकल थॉट*. लंदन: पेंगुइन बुक्स.
- कोजर, एल. (1977). *एः मास्टर्स ऑफ सोशिओलाजिकल थाट*. न्यूयार्क: हाकोर्ट ब्रास जोवानोविच.
- गिडेंस, एंथनी. (1971). *कैपीटलिज्म एंड मार्डन सोशल थियरी*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- मर्टन, आर.के. (1956). *फोकस्ड इंटरव्यू*. न्यूयार्क: फ्री प्रेस.
- मर्टन, आर. के. (1981). *शोशल थियरी एंड सोशल स्ट्रक्चर*. नई दिल्ली: अमेरिंड पब्लिकेशन
- बोटोमोर, टी. बी. (1978). *सोशियोलॉजी*. बंबई: ब्लेकी एंड संस.
- सोरोकिन, पी. ए. (1978). *कंटेमपोरेरी सोशियोलॉजिकल थियरीज*. नई दिल्ली: कल्याणी पब्लिशर्स.
- हैरालबोस, एम. एवं हीलबर्न, (1995). एम. *सोशियोलॉजी*. लंदन: कालीनस एजुकेशनल.

इकाई-3 : संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण का पेराडिम

इकाई की रूपरेखा

4.3.1. उद्देश्य
4.3.2. प्रस्तावना
4.3.3. मर्टन का प्रकार्यवाद में योगदान
4.3.4. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण या पद्धति
4.3.5. प्रकार्यात्मक विश्लेषण में प्रचलित मान्यताएँ
4.3.6. प्रकार्यात्मक विश्लेषण के प्रमुख चरण
4.3.7. प्रकार्यात्मक विश्लेषण की अध्ययन-वस्तु
4.3.8. प्रकार्यात्मक विश्लेशण की कुछ पद्धतिशास्त्रीय समस्याएँ
4.3.9. प्रकार्यवाद या प्रकार्यात्मक विश्लेषण की समालोचना
4.3.10. आलोचनाओं के समाधान
4.3.11. सारांश
4.3.12. बोध प्रश्न
4.3.13. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.3.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप समझ पाएँगे -

- मर्टन के संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक विश्लेषण या पद्धति।
- प्रकार्यात्मक विश्लेषण में प्रचलित मान्यताएँ।
- प्रकार्यात्मक विश्लेषण के प्रमुख चरण तथा अध्ययन-वस्तु।
- प्रकार्यात्मक विश्लेषण की पद्धतिशास्त्र समस्याएँ तथा समाधान।

4.3.2. प्रस्तावना

संरचनात्क-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण पद्धति या सिद्धांत (Structural-Functional theory) को प्रायः प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण पद्धति या सिद्धांत (Functional approach or method or functional theory) कहते हैं। यह केवल सुविधा की दृष्टि से नाम का संक्षिप्तिकरण है। प्रकार्यात्मक पद्धति या प्रकार्शत्मक सिद्धांत में संरचना और प्रकार्य दोनों प्रत्ययों का ही प्रयोग किया जाता है। एक संरचना के प्रकार्य होते हैं। प्रकार्य का संरचना के बिना कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। संरचना प्रकार्य के बिना अर्थहीन है। इस प्रकार, संरचना और प्रकार्य के संबोध एक-दूसरे से इतने अधिक संबद्ध एवं जुड़े हुए हैं कि उन्हें एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। किसी भी विश्लेषण में जहाँ एक है, वहाँ दूसरा भी है।

इसलिए जहाँ भी प्रकार्यात्मक पद्धति या सिद्धांत या विश्लेषण (Analysis) शब्द का प्रयोग किया जाता है। उसका अभिप्राय संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति, सिद्धांत या विश्लेषण से ही होता है। प्रकार्यवाद (Functionalism) इसी संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सिद्धांत, पद्धति, विश्लेषण आतदि से संबंधित विचरों के पुंज को कहते हैं। संरचनात्म-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण या पद्धति या विश्लेषण या सिद्धांत या प्रकार्यवाद का बीजारोपण समाजशास्त्रीय प्रणीवाद (Sociological organism) से हुआ है। इसका आधार प्राणीवादी संप्रदाय ही है। मारटिनडेल (Martindale) ने उचित ही लिखा है - "प्रकार्यात्मक व्याख्या का प्राथमिक प्रारूप (मॉडल) प्राणीशास्त्रीय प्रकार की व्यवस्था है। ...प्रकार्यवादी संप्रदाय के सच्चे जन्मदाता पोजिटिविस्टिक प्राणीवादी थे। हरबर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) और अलबर्ट शैफिल (Albert Schaffle) प्रकार्यवादी संप्रदाय के अग्रदूत माने जा सकते हैं। स्पेंसर (Herbert Spencer) ने अपनी पुस्तक (First Principles), जोकि सन् 1862 में प्रकाशित हुई, में डार्विन (Darwin) के प्राणीशास्त्रीय उद्विकास के सिद्धांत को आधार मानकर प्रकार्य आदि के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए और सामाजिक उद्विकास को समझाने का प्रयत्न किया। स्पेंसर समाज को एक प्राणी या सावयन (Organism) के रूप में मानता था। लेस्टर एफ.वार्ड (Ward), स्माल Albion W. Small) ए पेरेटो, दुर्खीम, वानविज़े डेवी, कर्ट लेविन (Kart Lewin) आदि ने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के निर्माण में प्रयत्न किए हैं, पर मैलिनोवस्की(Bronislaw Malinowski) और रेडक्लिफ-ब्राउन (Radcliffe-Brown) ने इस दृष्टिकोण को विशेष रूप से विकसित किया है। राबर्ट के. मर्टन (Robert K. Merton) ने इस दृष्टिकोण को आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांतों में प्रस्थापित किया है और वैज्ञानिक कसौटियों पर कस कर उसके रूप को निखारा है।

4.3.3. मर्टन का प्रकार्यवाद में योगदान

मर्टन ने पूर्ववर्ती विचारकों (Peceding thinkers) के विचारों, सिद्धांतों, पद्धतियों आदि का व्यवस्थित ऐतहासिक सिंहावलोकन किया है और उनका सूक्ष्म विवेचन करके वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त उसने कुछ आवश्यक नए तथ्य जोड़े हैं, जैसे अंतर्निहित प्रकार्य (latent functions), प्रत्यक्ष प्रकार्य (Manifest Functions), अकार्य (Dysfunction) के प्रत्ययों का विकास किया है। मर्टन ने प्रकार्यात्म विश्लेषण के प्रारूप (Paradigm for functional analysis) का निर्माण किया है, जो कि प्रकार्यात्मक विश्लेषण में अति अधिक सहायक सिद्ध हुआ।

4.3.4. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण या पद्धति

प्रकार्यात्मक विश्लेषण (Functional analysis) या प्रकार्यात्मक पद्धति (Functional Method) या संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण (Structural-Functional Analysis) या संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति (Structural-Functional Method) समाजशास्त्र और समाजविज्ञानों की वह अध्ययन-पद्धति है जो प्रकार्यवाद (Functionalism) के सिद्धांतों एवं मान्यताओं पर आधारित है। प्रकार्यात्मक विश्लेषण अन्य सभी विश्लेशणों के समान सैद्धांतिक विवेचन

(Theoretical Discussion), तथ्य संकलन (Data Collection) और पद्धति-शास्त्रीय व्याख्या (Methodological Interpretation) को सन्निहित करता है। मर्टन ने लिखा है - "प्रकार्यात्मक विश्लेषण अन्य सभी व्याख्यात्मक योजनाओं के समान सिद्धांत, पद्धति और तथ्य के त्रिसंबंधों पर आश्रित है।"

प्रकार्यात्मक विश्लेषण प्रकार्यवादी व्याख्या एवं मान्यताओं पर आधारित है। प्रकार्यवादी व्याख्या यह है कि समाज एक पूर्णता है और सावयव (Organism) के ही समान उसके विभिन्न अंग होते हैं। हर अग के पूर्णता (Whole) के प्रति कुछ प्रकार्य होते हैं। अंग एक-दूसरे से पारस्परिक रूप से संबंधित एवं आश्रित हैं। एक अंग को समझने के लिए अन्य अंगों के प्रकार्यो को समझना आवश्यक है या एक अंग का अध्ययन संपूर्णता के संदर्भ में ही किया जा सकता है। संपूर्णता में एक प्रकार्यात्मक एकता पाई जाती है और इसी प्रकार्यात्मक अध्ययन के द्वारा संभव है। इसलिए किसी समाज या सामाजिक संरचना या सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण या अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि आंशिक सामाजिक संरचना (Partial Social Structure) या सामाजिक संरचना के भाग के प्रकार्यों (Functions) का अध्ययन किया जाए। अतः संपूर्ण अध्ययन सामाजिक संरचना (Social Structure) और उसके प्रकार्यों (Functions) पर केंद्रित रहता है। इसीलिए इसे संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण कहते हैं। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण में दो प्रत्यय प्रमुख हैं –

(1) संरचना (Structure), और

(2) प्रकार्य (Function)।

संरचना "परस्पर-संबंधित संस्थाओं, ऐजंसियों और सामाजिक प्रतिमानों तथा साथ ही समूह में प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण की गई स्थितियों और भूमिकाओं की विशिष्ट क्रमबद्धता (Particular Arrangement) को कहते हैं। संरचना की परिभाषा से स्पष्ट है कि - "अपेक्षाकृत स्थाई प्रतिमानों की व्यवस्था बताया है। अतः संरचना एक क्रमबद्धता या व्यवस्था (Order or System) है जो समाज के विभिन्न अंगों के बीच पाई जाती है। व्यवस्था या क्रमबद्धता स्वयं इकाइयाँ न होकर केवल उनके बीच पाई जाने वाली क्रमबद्धता है। इसलिए सामाजिक संरचना अमूर्त होती है। सामाजिक संरचना देखी नहीं जा सकती, उसे तो इकाइयों या अंगों या भागों के प्रकार्यों (Functions) के द्वारा समझा जा सकता है। इसीलिए संरचनात्मम-प्रकार्यात्मक विश्लेषण को केवल प्रकार्यात्मक विश्लेषण (Functional Analysis) ही कहते हैं, क्योंकि संरचना को प्रकार्यों के संदर्भ में ही समझा या अध्ययन किया जा सकता है। प्रकार्य इस विवेचन का केंद्रीय प्रत्यय है। कोजर तथा रोजनबर्ग ने प्रकार्य को "किसी सामाजिक क्रिया का परिणाम कहा है जो किसी एक संरचना अथवा उसके निर्माणक भाग के अनुकूलन या सामंजस्य कमें सहायक होता है। रेडक्लिफ-ब्राउन ने प्रकार्य की परिभाषा करते हुए लिखा है - "प्रकार्य वह योग है जो एक अंश या भागी की क्रिया, जिसका कि वह भाग है, के लिए रकती है।" इससे स्पष्ट हैं कि प्रकार्य क्रिया नहीं है, अपितु क्रिया से उत्पन्न परिणाम है। प्रकार्यात्मक विश्लेषण में अब प्रकार्य का ही अध्ययन नहीं होता, अपितु अकार्य (Dysfunction) का भी अध्ययन होता है। मर्टन ने इस प्रत्यय को विकसित किया

है और इसके अध्ययन पर बल दिया है। इसी प्रकार, उसने प्रकार्य के दोनों रूपों-अंतर्निहित (Latent) और प्रत्यक्ष (Manifest) के अध्ययन पर बल दिया है।

प्रकार्यात्मक विश्लेषण की कुछ प्रचलित मान्यताएँ (Prevailing Postulates) हैं, जिन्हें पहले से ही मानकर या आधार बनाकर अध्ययन किया जाता है, अब हम उन पर प्रकाश डालेंगे।

4.3.5. प्रकार्यात्मक विश्लेषण में प्रचलित मान्यताएँ

मर्टन ने निम्न तीन मान्यताओं का उल्लेख किया है:

(1) सामाजिक क्रियाएँ या सांस्कृतिक तथ्य संपूर्ण सामाजिक या सांस्कृतिक तंत्र के लिए प्रकार्यात्मक होते हैं

(2) ऐसे सब सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथ्य समाजशास्त्रीय प्रकार्यो को पूरा करते हैं और

(3) ये तथ्य परिणामतः अनिवार्य और अपरिहार्य हैं।

ऐमट ने भी इसी प्रकार की मान्यताओं का विवरण दिया है:

(1) अध्ययन की वस्तु संपूर्ण इकाई के रूप में एक तंत्र का हिस्सा होता है

(2) यह एक अंतरिक जटिल के रूप में होता है, जिसमें कि भाग एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रिम होते हैं

(3) भाग संपूर्ण को बनो रखने में योग देते हैं। अब हम इन पर एक-एक करके विचार करेंगे:

(1) समाज की प्रकार्यात्मक एकता (Functional Unity of Society) - इसके अंतर्गत मर्टन की पहली मान्यता एवं ऐमट की पहली एवं दूसरी मान्यताएँ आ जाती हैं। इसका अभिप्राय स्पष्ट है कि प्रकार्य की दृष्टि से समाज में एकता पाई जाती है। सब भाग एक-दूसरे से संबंधित होते हैं। रेडक्लिफ-ब्राउन ने इस मान्यता को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया था। उसने लिखा है - "एक विशिष्ट सामाजिक प्रथा का प्रकार्य वह योग है जो वह संपूर्ण सामाजिक तंत्र के रूप में कार्य करने वाले संपूर्ण सामाजिक जीवन को देती है। एक प्रकार का विचार यह अर्थ निहित रखता है कि एक सामाजिक तंत्र के रूप में कार्य करने वाले संपूर्ण सामाजिक जीवन को देती है। इस प्रकार का विचार यह अर्थ निहित रखता है कि एक सामाजिक तंत्र (संपूर्ण सामाजिक ढाँचा, कुल सामाजिक प्रथाओं के सहित, जिसमें कि ढाँचा स्पष्ट होता है जिस पर निरंतर अस्तित्व के लिए निर्भर है)। एक प्रकार की एकता, है जिसे हम प्रकार्यात्मक एकता कह सकते हैं। प्रकार्यात्मक एकता की परिभाषा हम एक दशा के रूप में कर सकते हैं, जिसमें सामाजिक तंत्र के समस्त भाग पर्याप्त संतुलन में कार्य करते हैं और ऐसे संघर्ष उत्पन्न नहीं करते, जो नियंत्रित न किए जा सकते हों(।" रेडक्लिफ-ब्राउन ने इसे एक उपकल्पना (Hypothesis) के ही रूप में माना है। मैलिनोवस्की ने तो पहले इसका विरोध किया, पर स्थान-स्थान पर उसने इसका ही बोध दिया है। मैलिनोवस्कीने इस मान्यता की इस आधार पर आलोचना की है कि रेडक्लिफ-ब्राउन ने इस मान्यता को आदिम जातियों के लघु समुदायों के अध्ययनों के आधार पर प्रतिपादित किया है। लघु समुदायों में सावयवी एकता पाई जाती है, इसलिए प्रकार्यात्मक एकता झलकती है, पर जटिल एवं वृहद् समुदायों में एक मान्यता से कठिनाई आएगी क्योंकि उनमें विभिन्न प्रकार के समूह एवं वर्ग पाए जाते हैं। मैलिनोवस्कीकी आलोचना का दूसरा

आधार यह था कि इस मान्यता को मान लेने से व्यक्ति (Individual) की उपेक्षा होती है। इसका कहना है कि ये प्रकार्यात्मक एकता समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति के लिए भी हो सकती है। उसका कहना है कि इस मान्यता को सावधानी के साथ स्वीकार करना चाहिए।

बटेसन ने बताया है कि परिवार का गर्व बढ़ जाने से समुदाय की एकता कम पड़ने लगती है। अधिक जटिल और अधिक स्तरित समाजों में प्रकार्यात्मक एकता, यह विलकुल सत्य नहीं है। धर्म का उदाहरण लीजिए, धर्म समाज में एकता स्थापित करता है। पर उन समाजें में क्या होता है? जहाँ कई धर्म होते हैं। भारतीय सामाजिक तंत्र को ही लीजिए। एक कार्य हिंदुओं के लिए अच्छा हो सकता है, पर वहीं अन्य धर्मों के समूहों के लिए हानिप्रद हो सकता है। पृथक-पृथक धर्म अपने अपने अनुयायियों में एकता स्थापित करते हैं, पर संपूर्ण समाज में तो एकता नहीं स्थापित करते। फिर संपूर्ण सामाजिक तंत्र में प्रकार्यात्मक एकता का प्रश्न कहाँ उठता है। दुर्खीम ने भी इस प्रकार की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। मर्टन ने भी इसकी व्याख्या की है। मर्टन ने इस मान्यता को एक सिद्धांत के रूप में स्वीकार नहीं किया है। उसका कहना है कि एक ही समाज में एक प्रथा समाज के कुछ समूहों के लिए प्रकार्यात्मक हो सकती है और एकता उत्पन्न कर सकती है, पर अन्य कुछ समूहों के लिए वहीं प्रथा अकार्यात्मक हो सकती है। मर्टन ने धर्म को लेकर इस मान्यता को अस्वीकार किया है। धर्म का मुख्य प्रकार्य एकता स्थापित करना बताया गया है। पर सदैव ऐसा नहीं होता। मर्टन ने निम्नलिखित तर्क दिए हैं –

(1) धार्मिक समूहों में संषर्घ स्पष्ट तथ्य है, इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। बहुधार्मिक समाजों में धर्म एकता नहीं उत्पन्न करता है, अपितु विभिन्न धार्मिक समूहों के बीच संषर्घ एवं घृणा उत्पन्न करता है।

(2) प्रायः माना जाता है कि धर्म के द्वारा समाज के सामान्य मूल्यों और लक्ष्यों के प्रति लोग अधिक सजग रहते हैं, यह सत्य नहीं है। धर्म कई बार कर्मकांड तक ही सीमित हो जाता है और सामाजिक मूल्यों के प्रति लोगों को सजग नहीं रखा जाता है। धर्म को न मानने वाले भी सामाजिक मूल्यों एवं लक्ष्यों के प्रति सजग रहते हैं। वैज्ञानिक प्रायः धर्म को नहीं मानते, पर सामाजिक मूल्यों एवं लक्ष्यों के प्रति अधिक सजग रहते हैं। वैज्ञानिक प्रायः धर्म को नहीं मानते, पर सामाजिक मूल्यों एवं लक्ष्यों के प्रति अधिक सजग रहते हैं।

(3) सामाजिक मूल्यों के विषय में समान विचार न होने पर धर्म अप्रभावी रहता है।

(4) धर्म के आधार पर एकता स्थापित होने केी बात आधुनिक समाजों पर लागू नहीं होती है।

इससे स्पष्ट होता है कि इस प्रकार की प्रकार्यात्मक एकता को मानकर नहीं चलना चाहिए, अपितु इनका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। मर्टन ने इस मान्तयता को निरपेक्ष सत्य नहीं माना है, इसीलिए उसने इसे सिद्धांत के रूप में स्वीकार नहीं किया है। उसका मत है कि किसी भी समाज के सभी तत्त्व समान रूप से प्रकार्यात्मक नहीं होते, उनमें से कुछ अकार्यात्मक भी हो सकते हैं। यह मान्यता ऐसी है जो कि तथ्यों के आधार पर जानी जा सकती है, क्योंकि प्रकार्यात्मक एकता प्रत्यक्षात्मक तथ्य (Empirical Fact) है।

(2) सार्वभौमिक प्रकार्यावादिता (Universal Functionalism) मर्टन की दूसरी और ऐमट की तीसरी मान्यता यही है कि प्रत्येक सामाजिक तथ्य का एक प्रकार्य होता है। यह मान्यता विशेष रूप से मैलिनोवस्कीपर आधारित है। मैलिनोवस्कीने लिखा है - "संस्कृति का प्रकार्यात्मक विचार इस सिद्धांत पर बल देता है कि हर प्रकार की सभ्यता में, प्रत्येक प्रथा, भौतिक वस्तु, विचार और विश्वास कोई न कोई आवश्यक प्रकार्य पूरा करता है। क्लकहान ने भी इसकी पुष्टि करते हुए लिखा है - "यही मेरी मौलिक मान्यता है कि कोई संस्कृति का प्रकार जीवित नहीं रहता, यदि कुछ अर्थों में, ऐसे प्रतिउत्तर न रखता हो, जो सामंजस्य या अनुकूलन को उत्पन्न करते हों।"

क्लकहान ने इसको बहुत ही सामान्य रूप से देखने का प्रयत्न किया है। परंपरा से संबंध रखने की बात को सामान्य रूप से कहा जा सकता है, पर इसका कोई अर्थ नहीं होता। इसको मान लेने से, एक यही भी हानि होती है कि हम कुछ ऐसी प्रथाओं को जो अब (अवशेष(मात्र (Survivals) ही रह गई हैं, उनके लिए भी कोई न कोई प्रकार्य ढूँढ़ने लगते हैं।

(3) अपरिहार्यता (Indispensability) - कुछ (प्रकार्य) (Functions) ऐसे हैं जो अपरिहार्य हैं। वे इस संदर्भ में अपरिहार्य हैं कि जब तक उन्हें न किया जाए, समाज जीवित नहीं रह सकता। मर्टन ने सुझाव दिया है कि इन्हें प्रकार्यात्मक पूर्वआवश्यकताएँ (Functional pre-requisites) या एक समाज के लिए प्रकार्यात्मक दृष्टि से अनिवार्य पूर्व-दशाएँ (Pre-Conditions Functionally Necessary) कहना चाहिए।

दूसरा यह है कि इन प्रकार्यों को पूरा करने के लिए कुछ निश्चित सांस्कृतिक या सामाजिक स्वरूप की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है। प्रकार्यात्मक आवश्यकताएँ अनिवार्य हैं, निश्चायक नहीं। इनका यही अभिप्राय है उन प्रकार्यों को पूरा करने के लिए यह अनिवार्य है कि सामाजिक संरचना होनी चाहिए, पर कौन-सी होनी चाहिए का निश्चय बहुत-कुद तत्वों पर भी आधारित है? मर्टन ने कहा है - "जिस प्रकार एक इकाई के कई प्रकार के प्रकार्य होते हैं, इसी प्रकार एक समान प्रकार्य को कई वैकल्पिक इकाईयों से पूरा किया हा सकता है।"

जब एक अनिवार्य प्रकार्य कई वैकल्पिक वस्तुओं से पूरा किया जा सकता है, तो अपरिहार्य इकाई (Functional item) के स्थान पर प्रकार्यात्मक विकल्प (Functional alternatives) या प्रकार्यात्मक समानतत्व (Functional equivalents) या प्रकार्यात्मक विकल्प (Functional substitutes) के संबोध (Concepts) विकसित हो जाते हैं।

मर्टन ने दो भागों में सामाजिक घटनाओं को विश्लेषण के लिए बाँटा है:

(1) वे घटनाएँ जिनके कार्यों की खोज करना चाहिए - उन घटनाओं को करना चाहिए जो प्रतिमानित हों और बार-बार घटती हों जैसे सामाजिक कार्य (Social roles), संस्थात्मक प्रतिमान (Institutional Patterns), सामाजिक प्रक्रियाएँ, सांस्कृतिक प्रतिमान, सांस्कृतिक प्रतिमानित उद्वेग (Culturally Patterned emotions), सामाजिक नियम (Social Norms), सामाजिक संगठन, सामाजिक संरचना, सामाजिक नियंत्रण की पद्धतियाँ इत्यादि।

(2) उद्देश्य, हेतु इत्यादि लिए हुए घटनाएँ - इनके लिए विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग करना चाहिए।

प्रकार्यात्मक विकल्प या समवस्तुएँ - (Functional Alternates or Equivalents)

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं कि प्रकार्यात्मक विकल्प या समवस्तुएँ एक कार्य को पूरा करने के लिए हो सकते हैं, इसलिए हम यह नहीं कहते कि कोई भी तथ्य अपरिहार्य हैं। जॉनसन ने भी इसका समर्थन किया है।

प्रकार्यात्मक विकल्प के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, समाज में एक राजनीतिक सरदास होना चाहिए। यह पैतृक पूर्ण-सत्ताधारी राजाशाही हो सकती है, तो पैतृक सीमित-सत्ताधारी राजाशाही भी हो सकता है। दूसरा उदाहरण जजों का है - ये निर्वाचित भी हो सकते हैं और नियुक्त किए हुए भी।

यहाँ पर एक बात ध्यान में रखना चाहिए कि दो वस्तुओं या तंत्रों का एकसा ही प्रकार्य नहीं होता। उनमें कुछ न कुछ अंतर अवश्य होता है।

4.3.6. प्रकार्यात्मक विश्लेशण के प्रमुख चरण

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण की पद्धति के प्रमुख चरण समाजशास्त्र में प्राणीशास्त्र के आधार पर विकसित हुई है। प्राणीशास्त्री कैनन (Cannon) के अनुसार प्रथमतः शरीर की निरंतरता और स्थायित्व की दशाओं का यथार्थ एव विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना चाहिए। इसके उपरांत उन यंत्रों एवं तत्वों की व्याख्या करना चाहिए जो निरंतरता और स्थायित्व की दशाओं की पूर्ति करते हैं। मर्टन ने इसी आधार पर प्रकार्यात्मक विश्लेषण के प्रमुख चरणों का समाज के अध्ययन के लिए प्रतिपादन किया है, जो निम्नलिखित हैं :

(1) प्रकार्यात्मक आवश्यकाओं की प्रस्थापना (Establishment of Functional Requirements)

सर्वप्रथम, सावयव अर्थात् समाज के अस्तित्व समाज के अस्तित्व एवं निरंतरता के लिए प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं की स्थापना की जाती हैं।

(2) संरचना और प्रक्रियाओं की व्याख्या (Explanation of Structure and Processes)

फिर उन संरचनाओं और प्रक्रियाओं की व्याख्या तैयार की जाती है जो इन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

(3) पूरक यंत्रों की खोज (Search of Compensationg Mechanisms or Structure of Functional Alternates)

यदि कुछ प्रकार्यों की पूर्ति करने वाली संरचनाएँ या प्रक्रियाएँ स्पष्ट नहीं होती हैं, तो यह प्रयत्न किया जाता है कि पूरक यंत्रों या प्रकार्यात्मक विकल्पों (Functional Alternates) की खोज की जाए।

(4) संरचना का विस्तृत विवरण (Detailed Description of the Structure)

उस संरचना का विस्तृत विवरण भी तैयार किया जाता है, जिसका अध्ययन किया जा रहा है। उसके हर पक्ष का वर्णन आवश्यक है।

(5) प्रकार्यात्मक व्यवस्थाओं का विस्तृत विवरण (Detailed Description of the Functional Systems)

उन प्रकार्यात्मक व्यवस्थाओं, जो कि उन आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, का भी विस्तृत विवरण तैयार करना होता है।

4.3.7. प्रकार्यात्मक विश्लेषण की अध्ययन-वस्तु

मर्टन के अनुसार सामाजिक तथ्यों के प्रकार्यात्मक विश्लेशण के लिए निम्नलिखित अध्ययन वस्तुओं पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

(1) सामाजिक संरचना में भाग लेने वाले व्यक्तियों की स्थिति (Location of Statuses of Participants in the Social Structure)

प्रकार्यात्मक विश्लेषण में सामाजिक संरचना में भाग लेने वाले व्यक्तियों की स्थितियों उनसे संबंधित भूमिकाओं समूह के साथ संबंधों के प्रति पारस्परिक संबंधों आदि का प्रकार्यात्मक वर्णन किया जाना चाहिए।

(2) व्यावहारिक के वैकल्पिक प्रतिमान (Alternative Modes of Behaviour)

प्रकार्यात्मक विश्लेषण में जिस समस्या का अध्ययन करना है उसका वर्णन तो करना ही चाहिए, पर यह विश्लेषण के लिए पर्याप्त नहीं है। इसके लिए अन्य व्यवहार के वैकल्पिक प्रतिमानों, जो कि उस प्रकार्य को कर सकते हैं, का भी वर्णन करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, भारत में हिंदू विवाह का अध्ययन करते समय विवाह संस्कार (परंपरात्मत विवहा) का ही वर्णन पर्याप्त नहीं है, अपितु हिंदू के लिए अन्य विवाह के वैकल्पिक प्रतिमानों(जैसे - सिविल मैरिज, प्रेम विवाह, कोर्ट मैरिज, आदि का भी वर्णन आवश्यक है।

(3) प्रतिमान के प्रति दृष्टिकोण का वर्णन (Description of the Attitude Towards the Pattern)

प्रतिमान, जोकि प्रचलित है, के प्रति समाज के सदस्यों का दृष्टिकोण का भी वर्णन करना चाहिए। इससे प्रतिमान का भावात्मक और ज्ञानात्मक अर्थों का ज्ञान स्पष्ट होता है।

(4) प्रतिमान को अपनाने में सहायक प्रेरणाएँ (Motivations for Participating in the Pattern)

कोई प्रतिमान क्यों स्वीकार किया जाता है या क्यों अस्वीकार किया जाता है, इसके पीछे कुछ न कुछ कारण होते हैं इन कारणों के पीछे जो प्रेरणाएँ होती हैं, उनका वर्णन एवं खोज प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए आवश्यक है। ये प्रेरणाएँ व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक प्रकार्यों से संबंधित होती है।

(5) व्यवहार की संलग्न अमान्यता प्राप्त अभिव्यक्तियाँ Associated Unrecognised Regularities of Behaviour)

कुछ ऐसे बार-बार होने वाले नियमित व्यवहार होते हैं जिन्हें व्यवहार करने वाले नहीं जानते हैं कि वह वैसा व्यवहार करते हैं। अनभिज्ञ रहते हुए भी वैसा व्यवहार स्वभावगत होता रहता है। प्रकार्यात्मक विश्लेषण में ऐसे व्यवहारों के अध्ययन का बहुत अधिक लाभ है, क्योंकि ये उन तत्वों के प्रकार्यों पर प्रकाश डालते हैं।

4.3.8. प्रकार्यात्मक विश्लेशण की कुछ पद्धतिशास्त्रीय समस्याए

प्रकार्यात्मक विश्लेषण प्राणीशास्त्र में प्रयोग किए जाने वाले प्रारूप के आधार पर विकसित हुआ है, परंतु प्राणीशास्त्रीय प्रारूप की सब बातों का उपयोग समाज के अध्ययन में नहीं है और कुछ बातें समाज की ऐसी हैं कि उनके अध्ययन की व्यवस्था प्राणीशास्त्रीय पद्धति में नहीं है। सर्वप्रथम, प्रकार्यात्मक विश्लेषण की यह कठिनाई है कि वह प्रयोगों (Ecpriments) का प्रयोग नहीं कर सकता जैसा कि प्राणीशास्त्र में किया जाता है। प्राणीशास्त्र में निश्चित प्रत्यय एवं अवधारणाएँ (Techniques), अनुसंधान प्रारूप (Research Design), प्रमाणीकरण के यंत्र (Instruments of Validation) आदि हैं। पर प्रकार्यात्मक विश्लेषण के पास अभी ऐसा कुछ नहीं है। इसका परिणाम हयह हुआ कि लोगों ने मनमाने प्रयोग किए हैं और जिसकी जो समझ में आया किया है। कुछ लोग समाज के अंगों का तथ्यात्मक अध्ययन करते हैं, तो कुछ प्रतिमानित व्यवहार का समाज के लिए मूल्य निर्धारित करते हैं, तो कुछ परंपरात्मक सामाजिक संगठनों का वर्णन मात्र ही करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अभी तक प्रकार्यात्मक विश्लेषण के नाम पर कोई भी काम किया जा सकता है। कोई सर्वसम्मत अनुसंधान प्रारूप नहीं निश्चित हुआ है। इसके कारण यह पद्धति भ्रमित हो गई है। मर्टन ने एक अनुसंधान प्रारूप तैयार किया है जो इस दिशा में पहला कदम है।

4.3.9. प्रकार्यवाद या प्रकार्यात्मक विश्लेषण की समालोचना

प्रकार्यवाद और प्रकार्यात्मक विश्लेषण की अनेक दृष्टियों से आलोचना की गई है, उनमें से प्रमुध निम्नलिखित हैः

(1) घटना के समकालीन स्परूप परहीबल के कारण अध्ययन अपूर्ण Study Incomplete Due to Emphasis on Contemporary Form of Social Phenimena - प्रकार्यवाद केवल घटना का समकालीन या वर्तमान स्वरूप ही अध्ययन करता है और उनके इतिहास का कोई प्रभाव घटना पर होगा तो वर्तमान स्वरूप में ही लक्षित हो जाएगा। यह मान्यता उचित नहीं है क्योंकि हर घटना उद्विकास का परिणाम है और उसका वर्तमान स्वरूप अतीत पर आधारित है। वर्तमान को पूर्ण रूप से समझने के लिए अतीत का ज्ञान अनिवार्य है। इतिहसा की इस उपेक्षा के कारण प्रकार्यात्मक अध्ययन अपूर्ण ही होते हैं क्योंकि वे घटना की उत्पत्ति, विकास और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर कोई प्रकाश नहीं डालते। हर वैयक्तिक-अध्ययन के लिए पूर्ण का ज्ञान आवश्यक होता है। सामाजिक घटनाएँ इसका

अपवाद नहीं है। प्रत्येक सामाजिक घटना ऐतिहासिक घटनाक्रम की कड़ी होती है। प्रकार्यवाद अतीत और वर्तमान के बीच के संबंध की व्याख्या नहीं कर पाता।

(2) परिणाम का अध्ययन, कारण का नहीं Study of Consequences but not of Causes - प्रकार्यवादी परिणाम अर्थात् प्रकार्यों का अध्ययन तो करते हैं परंतु कारण का अध्ययन नहीं करते। प्रकार्यवाद सामाजिक घटना के योगदान पर प्रकाश डालता है, पर यह व्याख्या नहीं करता कि किस कारण सामाजिक घटना योगदान करती या किस कारण योगदान नहीं करती।

(3) संतुलन को पूर्वनिश्चित मानते हैं (Accept Equilibrium as Precertain) - प्रकार्यवादी यह मानकर चलते हैं कि समाज में संतुलन निश्चित रूप से है ही। इसी आधार पर वे विश्लेषण करते हैं। पर वह यह सिद्ध नहीं कर पाते कि समाज में संतुलन निश्चित रूप से है ही।

(4) पद्धतिशास्त्रीय दोष (Methodological Defects) -अर्नेस्ट नगेल (Ernest Nagel) ने अनेक दोष प्रकार्यवाद की पद्धतियों में निकाले हैं। उसका मत है कि प्रकार्यात्मक विश्लेषण और अप्रकार्यात्मक विश्लेषण (non-functiona analysis) में कोई विशेष अंतर नहीं है। उसने इसे एक उदाहरण के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। निम्न कथनों पर विचार कीजिए - धर्म का प्रकार्य एक समूह में चिंता से मूक्त करना है (The function of religion is to relieve anxoety in a group), समूह में चिंता से मूक्ति हो जाती है यदि वह धर्म का उपयोग करता है (Anziety in a grtoup is relieved of it practices religion.)। एक समूह में चिंता से मूक्ति की शर्त है धर्म का उपयोग (A condition for reloef of anxiety in a group is the practice of relogion.)। प्रथम कथन प्रकार्यात्मक है और शेष दोनों अप्रकार्यात्मक। इनमें किसी में भी मूल तथ्य में कोई अंतर नहीं है, केवल कथन का अंतर है। इससे स्पष्ट है कि प्रकार्यवाद कुछ विशेष ऐसा योगदान नहीं करता, जो कि अन्य पद्धतियाँ या सिद्धांत न करते हों।

(5) प्रकार्यवाद में प्रयुक्त किए जाने वाले प्रत्यय (Concwppts used in Functionalosm are Unclear) - प्रकार्यवाद में पुयुक्त किए जाने वाले प्रत्यय अस्पष्ट है जैसे- अस्तित्व (suvival), (निरंतरता) (continuity) आदि। इनके कारण विश्लेषण दोषपुर्ण होता है।

(6) केवल संरचना और प्रकार्यों का अध्ययन (Study of only Structure and Furnction) - यह केवल संरचना और उसके प्रकार्यों का ही अध्ययन करता हैं, जोकि सीमित क्षेत्र है।

(7) रूढ़िवादी विचारधारा (Conservatiove Ideology) - प्रकार्यवाद समस्थिति (status quo) का समर्थ माना जाता है। प्रकार्यवाद की प्रचलित मान्यताएँ यह मानती हैं कि हर तथ्य प्रकार्यात्मक है, इसलिए वह अपरिहार्य है। इसके कारण लोग इन तथ्यों को रखना चाहेंगे और उनके प्रति सहानुभूति रखेंगे। इस प्रकार वे रूढ़िवादिता से चिपके रहेंगे। मिरडल (Myrdal) का कहना है कि प्रत्येक तत्व को प्रकार्यात्मक मान लेने का अभिप्राय है कि वह अच्छा ही है, क्योंकि वह प्रकार्य करता है। यह मान्यता रूढ़िवादिता की पोषक एवं प्रेरक है। उसने लिखा है - "प्रकार्यों के आधार पर सामाजिक संस्थाओं का वर्णन अवश्य ही रूढ़िवादी विचारधारा की ओर ले जाएगी।"

(8) प्रगतिवादी विचारधारा (Radical Ideology) - कुछ लोग जहाँ प्रकार्यवाद को रूढ़िवादी मानते हैं, वहीं कुछ लोग इसे प्रगतिवादी विचारधारा मानते हैं। लेपियर (Lapiere) का मत है कि प्रकार्यवाद प्रकृति से ही प्रगतिवादी है, क्योंकि यह प्रकार्य पर भी बल देता है और केवल संचना के आधार पर व्याख्या नहीं करता। संरचना स्थिर तत्त्व है, परंतु प्रकार्य गतिमान। प्रकार्यवाद अपनी पद्धति में आलोचना को महत्त्व देता है, इसलिए यह प्रगतिवाद का चिन्ह है।

(9) प्रकार्यवाद की प्रचलित मान्यताओं की आलोचना (Ceiticism of the Prevailing Postulates of Functionalism) - प्रकार्यवाद की प्रचलित मान्यताओं की भी तीव्र आलोचना ही गई है।

4.3.10. आलोचनाओं के समाधान

प्रकार्यवाद ऐतिहासिक अध्ययन पर बल नहीं देता है, इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वह इस दिशा में ध्यान नहीं **दतस** है। जहाँ आवश्यक होता है, वह उस दृष्टि से देखने का प्रयत्न करता है। कोई भी पद्धति स्वयं में पूर्ण नहीं है।

प्रकार्यवाद परिणामों के अध्ययन पर अधिक बल देता है। कारणों का अध्ययन अन्य पद्धतियों से किया जाना चाहिए। दुर्खीम ने स्वयं कारक पद्धतियों (causal methods) पर भी बल दिया है। यह आलोचना निराधार है।

संतुलन को पूर्व निश्चित मानना, पद्धतिशास्त्रीय दोष, प्रकार्यवाद में प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययों का अस्पष्ट होना, केवल संरचना और प्रकार्यों का अध्ययन आदि पुराने प्रकार्यवाद की आलोचना हो सकती है, पर आधुनिक प्रकार्यवाद बहुत आगे बढ़ गया है और उसने इन कमियों एवं दोषों को स्वयं ही दूर कर लिया है।

प्रकार्यवाद को रूढ़िवादी विचारणारा या प्रगतिवादी विचारणारा मानना उचित नहीं है। मर्टन ने इन सबका खंडन किया है। प्रकार्यवाद ने स्वयं प्रचलित लिखा है - "एक बार यदि यह (प्रकार्यवाद) इस मान्यता को अपना लेता है कि समस्त प्रचलित सामाजिक संरचनाएँ मुख्य प्रकार्यात्मक विश्लेषण निरर्थकता के रूप में गिर गया होता। ये मान्यताएँ तो इतिहास की बातें हो गई है।

मर्टन का कहना है कि प्रकार्यवाद तो एक तटस्थ (neutral) विचार, सिद्धांत और पद्धति है। यह न तो रूढ़िवादी है और न ही प्रगतिवादी। वह लिखता है - "एक तो अध्ययन की एक पद्धति (method of study) है जो न रूढ़िवादिता का समर्थन करती है न ही उसे प्रगतिवाद से कोई आकर्षण है। सामान्यतः प्रत्येक समाज विज्ञान और समाजदर्शन की सैद्धांतिक मान्यताओं को विभिन्न विचारधाराओं से संबद्ध करने को प्रवृत्ति प्रकार्यत्मक विश्लेषण की भी रूढ़िवादी या प्रगतिवादी विचारधारा मानने के लिए उत्तरदाई है।" आगे अपने विचार को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए उसने लिखा है - "और ये मूल्यांकन है जो प्रकार्यवाद की बोतलों में विचारधारात्मक अंतर्वस्तु भरने की आज्ञा देते हैं। बोतले स्वयं अपनी अंतर्वस्तुओं के प्रति तटस्थ है और वे समान रूप से विचारधारात्मक विष या विचारधारात्मक अमृत के पात्रों के रूप में काम दे सकती हैं।"

मर्टन ने इस आलोचना का उत्तर देते हुए कहा है - "यह तथ्य कि कुछ लोगों की प्रकार्यात्मक विश्लेषण प्रकृति से दोनों में से कोई नहीं हो सकता।"

4.3.11. सारांश

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण (Structural-Functional approach) संरचनात्मक-प्रकार्यवाद (Structural-functionalism) पर आधारित है। इसका प्रमुख दृष्टिकोण यह है कि समाज एक सावयव है और सावयव की ही भाति वह एक खंडात्मक व्यवस्था है, जिसके अनेक अंग होते हैं। हर अंग का संपूर्ण के लिए कुछ न कुछ प्रकायर्य होता है। इसलिए हर अंग का अध्ययन दूसरे अंगों एवं संपूर्ण के संदर्भ में ही किया जा सकता है। वैसे तो प्रकार्यवाद बहुत प्राचीन दृष्टिकोण है, पर समाजशास्त्र में इसे स्पेंसर एवं अलबर्ट शैफिल ने स्थान दिया। बहुत से अन्य समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने स्पेंसर का अनुसरण किया परंतु मैलिनोवस्कीऔर रेडक्लिफ-ब्राउन ने व्यवस्थित रूप से इस दृष्टिकोण को विकसित किया। राबर्ट के मर्टन ने दसे वैज्ञानिक आधार पर आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांतों में प्रस्थापित किया। प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण या सिद्धांतों सिद्धांत की कुछ स्वयं सिद्धियाँ (axioms) या प्रचलित मान्यताएँ (prevailing postulates) हैं - पद्ध समाज की प्रकार्यात्मक विश्लेषण में प्रकार्य, अकार्य, नकार्य, अंतर्निहित प्रकार्य, प्रत्यष प्रकार्य, सामाजिक संरचना, सामाजिक व्यवस्था आदि की प्रमुख अवधारणाएँ उपयोग में लाई जाती है। मर्टन ने प्रकार्यात्मक विश्लेषण का प्रारूप (model) प्रस्तुत किया है। समाजशास्त्र एवं आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांत में इसका विशेष स्थान है। इस दृष्टिकोण ने सामाजिक निश्चायकों पर अधिक बल दिया है और मूल्यों के संदर्भ से समाजशास्त्र को निकालकर वैषयिक (objective) आधार पर खड़ा कर दिया है। समाजशास्त्र को इस दृष्टिकोण के महत्त्वपूर्ण योगदान हैं।

4.3.12. बोध प्रश्न

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. प्रकार्यवादी संप्रदाय के सच्चे जन्मदाता कौन थे?
   (क) स्पेंसर एवं अल्बर्ट शैफिल
   (ख) पैरेटो एवं दुर्खीम
   (ग) वानविज एवं डेवी
   (घ) एल.एफ वार्ड
2. प्रकार्यवाद को आधुनिक संदर्भ में वैज्ञानिक कसौटियों पर किसने निखारा?
   (क) मर्टन
   (ख) ब्राउन
   (ग) मैलिनोवस्की
   (घ) एल्विन स्माल

3. प्रकार्यात्मक विशलेषण का सिद्धांत किसने दिया?

(क) मर्टन

(ख) स्पेंसर

(ग) एल्विन स्माल

(घ) कोहेन

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मर्टन के संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक विश्लेषण या पद्धति का वर्णन कीजिए।
2. मर्टन के संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक विश्लेषण या पद्धति की प्रचलित कौन-कौन सी मान्यताएँ हैं।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मर्टन के संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक विश्लेषण या पद्धति की अध्ययन वस्तु का वर्णन कीजिए।
2. मर्टन के संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक विश्लेषण या पद्धति की समस्याएँ एवं उनके समाधान का वर्णन कीजिए।

4.3.13. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- अब्राहम. (1977). *ओरिजिन एंड ग्रंथ ऑफ सोशिओलाजी*. न्यूयार्क: पेंगुइन बुक्स.
- एरन, रेमंड. (1976). *मेन करेंटस इन सोशिओलाजिकल थॉट*. लंदन: पेंगुइन बुक्स.
- कोजर, एल. (1977). *एः मास्टर्स ऑफ सोशिओलाजिकल थाट*. न्यूयार्क: हाकोर्ट ब्रास जोवानोविच.
- गिडेंस, एंथनी. (1971). *कैपीटलिज्म एंड मार्डन सोशल थियरी*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- मर्टन, आर.के. (1956). *फोकस्ड इंटरव्यू*. न्यूयार्क: फ्री प्रेस.
- मर्टन, आर. के. (1981). *शोशल थियरी एंड सोशल स्ट्रक्चर*. नई दिल्ली: अमेरिंड पब्लिकेशन
- बोटोमोर, टी. बी. (1978). *सोशियोलॉजी*. बंबई: ब्लेकी एंड संस.
- सोरोकिन, पी. ए. (1978). *कंटेमपोरेरी सोशियोलॉजिकल थियरीज*. नई दिल्ली: कल्याणी पब्लिशर्स.
- हैरालबोस, एम. एवं हीलबर्न, (1995). एम. *सोशियोलॉजी*. लंदन: कालीनस एजुकेशनल.

इकाई-4 : मर्टन : प्रसंग-समूह व्यवहार सिद्धांत
(MERTON : THEORY OF REFERENCE GROUP-BEHAVIOUR)

इकाई की रूपरेखा

4.4.1. उद्देश्य
4.4.2. प्रस्तावना
4.4.3. प्रसंग-समूह (Reference-group)
4.4.4. प्रसंग-समूह और सामाजिक संरचना (Reference group and social structure)
4.4.5. प्रसंग-समूह की दृष्टिगोचरता (Visibility of role-performance)
4.4.6. प्रसंग-समूह के परिणाम (Consequences of reference-group behaviour)
4.4.7. मर्टन: सामाजिक संरचना और आदर्श-शून्यता का सिद्धांत (Merton: Theory Of Social Structure & Anomie)
4.4.8. मर्टन का नियमहीनता-संबंधी सिद्धांत और विचार
4.4.9. नियमहीनता के सिद्धांत का मूल्यांकन
4.4.10. नियमहीनता के सिद्धांत की आलोचना
4.4.11. अनुकूलन के प्रारूप या प्रकार
4.4.12. सारांश
4.4.13. बोध प्रश्न
4.4.14. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ सूची

4.4.1. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप समझ पाएँगे-

- मर्टन की तुलनात्मक अभावबोध की अवधारणा एवं पूर्व सामाजिकरण।
- सामूहिकता ह्रास और समूह हीनता।
- प्रसंग समूह एवं सामाजिक संरचना तथा उसकी दृष्टिगोचरता।
- सामाजिक संरचना एवं एनोमी का सिद्धांत तथा अनुकूलन के प्रारूप।

4.4.2. प्रस्तावना

अमरीका के फौजी जीवन पर आधारित (द अमेरिका सोल्जर) अनुसंधान कार्य के निष्कर्षों का सहारा लेते हुए, मर्टन ने प्रसंग-समूह व्यवहार सिद्धांत की रचना की है। लोग अपनी तुलना अपने समूह के दूसरे लोगों से करते हैं। यह सत्य सनातन है। इस संदर्भ में कोई नई बात नहीं कही जा सकती, परंतु मर्टन ने प्रसंग-समूह व्यवहार सिद्धांत में एक नई अवधारणा प्रस्तावित की है। लोग केवल अपनी स्थिति की तुलना ही दूसरों से नहीं करते, बल्कि तुलना करने के कारण अभाव-बोध से पीड़ित भी होते हैं। "उसके पास कुछ है" जोकि "मेरे पास नहीं है" यह केवल तुलना नहीं है। इस तुलना का एक मनोवैज्ञानिक परिणाम भी निकलता है। अपनी स्थिति की तुलना करने वाला व्यक्ति मनोवैज्ञानिक अभावबोध का अनुभव करता है। अभावबोध के अनुभव से एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक तनाव उत्पन्न होता है। यहीं तनाव प्रसंग-समूह व्यवहार का स्रोत है।

4.4.3. प्रसंग-समूह (Reference-group)

मध्य अभिसीमा सिद्धांतों (Middle Range Theories) की विवेचना में मर्टन द्वारा प्रस्तुत संदर्भ-समूह की अवधारणा का विशेष स्थान है। मर्टन ने स्पष्ट किया कि प्रकार्यात्मक समाजशास्त्र के अंतर्गत व्यक्ति के उन व्यवहारों को समझना आवश्यक है कि जो समाज से उसकी समानुरूपता (Conformity) को स्पष्ट करते हैं। समाजशास्त्र की शब्दावली में (समानुरूपता(का तात्पर्य एक एसी दशा से है जिसमें व्यक्ति अपने समूह की प्रत्याशाओं और सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार व्यपहार करके समूह से अपना एकीकरण स्थापित कर लेता है। मर्टन का कथन है कि अनेक परिस्थितियों में यह समानुरूपना केवल व्यक्ति के अपने समूह तक ही सीमित नहीं होती बल्किइसका विस्तार कुछ ऐसे समूहों में भी देखने को मिलता है जो उसके अंतः समूह से भिन्न हेाते हैं। मर्टन यह संपूर्ण विवेचना सन् 1950 में प्रकाशित अपनी पुस्तक (द अमेरिकन सोल्जर) (The American Soldier) में प्रस्तुत ही। मर्टन के विचारों को समझने के लिए आवश्यक है कि उनसे पहले (Hymain) द्वार प्रस्तुत संदर्भ-समूह के सामान्य अर्थ को समझ लिया जाए।

हाइर्मन ने मनोवैज्ञातिक आधार पर दो प्रकार के समूहों का उल्लेख किया था

(1) सदस्यता समूह, तथा

(2) संदर्भ-समूह।

व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से जिस समुह में रहकर जीवन व्यतित करता है और उसकी गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेकर उसके सदस्यों से प्रभावित होता है, उसे हम व्यक्ति का सदस्यता-समूह (Membership Group) कहते हैं। दूसरी ओर, कुछ समूह ऐसे होते हैं। सदस्य न होने के बाद भी व्यक्ति उन्हें अपना आदर्श मानता है तथा उसनके आचरण और मूल्यों से अपना एकीकरण करने का प्रयत्न करता है। ऐसे समूह व्यक्ति का संदर्भ-समूह बन जाते हैं क्योंकि इन्हीं के संदर्भ में व्यक्ति के विचारों के विचारों और मनोवृत्तियों का निर्माण होता है तथा मानसिक रूप से भी व्यक्ति अपने आप को उनके समीप

समझता है। इस प्रकार हाईमैन के अनुसार व्यक्ति का संदर्भ समूह उसके सदस्यता समूह से भिन्न होता है। मर्टन ने समानुरूपता की प्रकृति को स्पष्ट करने के बाद भी इसे संशोधित रूप में प्रस्तुत किया।

संदर्भ-समूह की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए मर्टन ने बतलाया कि एक व्यक्ति के संदर्भ-समूह के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह उसके सदस्यता समूह से भिन्न ही हो। व्यक्ति जिस अंतःसमूह (In-group) का सदस्य होता है वह अंतः समूह भी व्यक्ति का संदर्भ समूह हो सकता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब व्यक्ति का संदर्भ समूह ही अपने सदस्य को व्यवहार के निर्देश देता है तब उसका सदस्यता समूह ही उसका संदर्भ बन जाता है जबकि किसी बाहरी समूह द्वारा मानसिक रूप से निर्देश ग्रहण करने की दशा में एक बाह्य समूह व्यक्ति का संदर्भ-समूह होता है। इसे स्पष्ट करने के लिए मर्टन ने अनेक ऐसे समूहों का उल्लेख किया जिन्हें विभिन्न दशाओं में व्यक्ति का संदर्भ समूह कहा जा सकता है।

(1) सदस्यता समूह संदर्भ समूह के रूप में (Membership Group as a Reference Group)

अमरीकी सैनिकों के अध्ययन के आधार पर मर्टन ने यह पया कि अक्सर एक व्यक्ति अपने ही समूह के कुछ ऐसे व्यक्तियों को अपने आचनण का आदर्श अथवा संदर्भ मानने लगता है जिनकी उपलब्धिया अधिक होती है अथवा जिन्होंने अपने जीवन में अधिक सफलता प्राप्त कर लेती है। इसका उदाहरण देते हुए मर्टन ने बतलाया कि एक बटेलियन के कुछ सैनिक जब अपने ही टुकड़ी के उन सैनिकों को अपने व्यवहारों का आदर्श मानते लगते हैं जिन्हे विशेष कार्यों के लिए पुरस्कार प्राप्त हुआ हो, तब उनके सदस्यता - समूह से ही संबंधित एक उप-समूह (अंतःसमूह) उनका संदर्भ समूह बन जाता है।

(2) बहुल संदर्भ समूह (Multiple Reference Group) – व्यक्ति के आचरणों का संदर्भ अक्सर कोई एक समूह ही नहीं होता बल्कि व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रों में अनेक समूहों को अपने व्यवहार का आदर्श मान सकता है। उदारहण के लिए यदि अनुशासन में रहने वाली विभिन्न सैनिक टुकड़ियों को पुरस्कार प्रदानर किए गए एक सामान्य सैनिक के सामने यह समस्या उत्पन्न हो सकती है कि वह किस सैनिक टुकड़ी को अपना आदर्श माने। मर्टन के अनुसार ऐसी दशा में व्यक्ति दो प्रमुख आधारों पर संदर्भ का चुनाव करता है - परिस्थिति की समानता के आधार पर तथा संपर्क की निरंतरता के आधार पर। इसका तात्पर्य है कि जो समूह व्यक्ति के शैक्षणिक स्तर सांस्कृतिक विशेषताओं अथवा भौगोलिक दशाओं के अधिक समान होता है, उसे सरलता से संदर्भ-समूह के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। दूसरी ओर विभिन्न समूहों में से व्यक्ति का जिस समूह से निरंतर संपर्क बना रहता है उसे संदर्भ-समूह के रूप में स्वीकार करने की संभावना अधिक होती है।

(3) विशिष्ट व्यक्तियों के समूह (Significant Others) - मर्टन के अनुसार, कोई व्यक्ति जिन दूसरे व्यक्तियों को अधिक प्रतिष्ठित समझता है, उनकी उसके मन में एक विशेष प्रतिमा बन जाती है। इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों को ही मर्टन ने (विशिष्ट व्यक्ति((Significant Others) कहा है। यह विशिष्ट व्यक्ति सामान्य लोगों की निगाह में न केवल आदर्श होते हैं बल्कि वे स्वयं भी उन्हीं के व्यवहारों, मूल्यों और आदर्शो को ग्रहण करके उन्हीं के अनुसार बनना चाहते हैं। इस स्थिति में यह विशेष व्यक्ति सामान्य लोगों के लिए उनका संदर्भ समूह बन जाते हैं। यह विशिष्ट व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के अंतःसमूह से इस अर्थ में

भिन्न होते हैं कि उनकी प्रस्थिति साधारणतया सामान्य लोगों की प्रस्थिति से उच्च होती है। इसका उदाहरण देते हुए मर्टन ने बतलाय कि जबे सामान्य सैनिक अपने सैनिक अधिकारियों के मूल्यों और व्यवहार के तरीकों का अनुकरण करते हैं तब ऐसे अधिकारियों के समूह को सामान्य सैनिकों का संदर्भ समूह कहा जा सकता है।

(4) गैर-सदस्यता समूह (Non-membership Group) - मर्टन ने यह स्पष्ट किया कि यह आवश्यक नहीं है कि कोई मानसिक आधार पर केवल उसी समूह का सदस्य हो जिसके बीच वह रहता हो। एक व्यक्ति उस समूह का भी सदस्य हो सकता है जिसके बीच वह वास्तव में जीवन व्यतीत नहीं करता। इसका तात्पर्य है कि हम किसी समूह के बीच रहकर प्रत्यक्ष रूप से उसके अन्य सदस्यों के साथ अंतक्रिया नहीं करते तो भी हम उस समूह के इस अर्थ में सदस्य हो सकते हैं कि उसका हमारे व्यवहारों, मूल्य और विचारों पर स्पष्ट प्रभाव होता है। इससे स्पष्ट होता है कि जिस समूह को हम मानसिक आधार पर अपने निकट देखते हैं, वह हमारे लिए गैर-सदस्यता समूह होता है।

(5) नकारात्मक संदर्भ-समूह (Negative Reference Group) - संदर्भ-समूह की विवेचना में मर्टन ने इस तथ्य को भी स्पष्ट किया कि संदर्भ-समूह का सदैव सकारात्मक होना जरूरी नहीं होता, यह समूह नकारात्मक भी हो सकते हैं। इसका तात्पर्य है कि व्यक्ति जिस समूह को समूह को अपने संदर्भ-समूह के रूप में देखता है, यह आवश्यक नहीं है कि वह व्यक्ति को सदैव स्वस्थ रूप में ही प्राभावित करें। कोई अस्वस्थ हो। यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि नकारात्मक संदर्भ-समूह का तात्पर्य केवल समाज-विरोधी प्रकृती के समूह से ही नहीं होता बल्कि यदि किसी संदर्भ-समूह के मूल्यों अथवा आदर्शों को ग्रहण करने से व्यक्ति अपने सदस्यता-समूह से अनुकूलन करने में असफल होने लगे तो इस स्थिति में भी उस संदर्भ-समूह को नकारात्मक संदर्भ-समूह ही माना जाएँगा।

मर्टन ने संदर्भ-समूह के विभिन्न के विभिन्न प्रकारों तथा इनकी विशेषताओं को स्पष्ट करने के साथ संदर्भ-समूह के प्रकार्यात्मक और अकार्यात्मक पक्ष को भी स्पष्ट किया। इस संबंध में संदर्भ-समूह का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकार्य व्यक्ति का प्रत्याशित समाजीकरण (Anticipatory Socialization) करता है। जब एक व्यक्ति किसी संदर्भ-समूह से अपनी एकरूपता स्थापित करने का प्रयत्न करता है तब उसके व्यक्तित्व में बहुत से नए मूल्यों, विचारों, व्यवहार-प्रतिमानों तथा आदर्शों का समावेश होने लगता है। इसके फलस्परूप व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति पहले की तुलना में अधिक ऊँची हो जाने की संभावना हो जाती है। इसके बाद भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि संदर्भ-समूह की सहायता से व्यक्ति का प्रत्याशित समाजीकरण उसी सामाजिक संरचना में अधिक संभव होता है जिसकी प्रकृति खुली (Open) हुई होती है। बंद प्रकृति के समाजों में इस प्रकार के समाजीकरण की अधिक संभावना नहीं होती। इसके पश्चात् भी संदर्भ-समूह के द्वारा व्यक्ति के प्रत्याशित समाजीकरण की अपनी एक सीमा है। इसका तात्पर्य है कि व्यक्ति किसी संदर्भ-समूह से अपनी जो एकरूपता स्थापित करने का प्रयत्न करता है,उसे उसके सदस्यता समूह द्वारा उसी सीमा तक अनुमति दी जाती है। जिसक सीमा तक इससे उसके सदस्यता समूह पर कोई प्रतिकुल प्रभाव न पड़ता हो। उदाहरण के लिए यदि व्यक्ति द्वारा किसी संदर्भ-समूह के आचरणों

अथवा मूल्यों को ग्रहण करने से उसके सदस्याता-समूह के अंदर विघटन के तत्व उत्पन्न होने की संभावना होने लगे, तब व्यक्ति का अपने सदस्यता समूह द्वारा विरोध करना आरंभ हो जाता है।

संदर्भ-समूह के अकार्यात्मक पक्ष को स्पष्ट करते हुए मर्टन ने लिखा कि "एक मूक्त सामाजिक व्यवस्था में संदर्भ-समूह द्वारा किया जाने वाला प्रस्याशित समाजिकरण व्यक्ति के लिए प्रकार्यात्मक हो सकता है लेकिन स्वयं उस समूह अथवा स्तर (Stratum) के लिए अकार्यात्मक होता है जिसका कि वह व्यक्ति सदस्य होता है। इसका तात्पर्य है कि कोई व्यक्ति संदर्भ समूह के आचरणों, मूल्यों और आदर्शों से अपनी जितनी अधिक समानुरूपता स्थापित करता है, वह अपने समूह के आचरणों और मूल्यों से उतना ही दूर हटता जाता है। इसके फलस्परूप आरंभ में व्यक्ति और उसकी सदस्यता समूह के बीच विरोध की दशा उत्पन्न होती है तथा बाद में इसका परिणाम वैयक्तिक स्तर पर अलगाव (Alienation) के रूप में तथा सामाजिक स्तर पर संघर्ष के रूप में सामने आ सकता है। इस दृष्टिकोण से संदर्भ-समूहों का मूल्यांकन व्यक्ति तथा समाज पर उनके प्रकार्यात्मक तथा अकार्यात्मक पक्ष को रखते हुए ही किया जाता चाहिए।

4.4.4. प्रसंग-समूह और सामाजिक संरचना (Reference group and social structure)

प्रसंग-समूह की अवधारणा का विकास सर्वप्रथम समाज मनोविज्ञान से प्रारंभ हुआ। बाद में इसे समाजवैज्ञानिक सिद्धांतों से पृथक स्थान प्राप्त हुआ। समाज मनोवैज्ञानिक और समाजवैज्ञानिक सिद्धांतों में प्रसंग-समूह की अवधारणा में विशेष भिन्नता नहीं है, परंतु मर्टन ने प्रसंग-समूह के कुछ ऐसी बुनियादी अवधारणाएँ प्रस्तावित की है, जिनसे इस सिद्धांत की उपयोगिता बढ़ गई है। समाज सरचना के विश्लेषण में इस बुनियादी अवधारणाओं से विशेष सहायता मिलती है। यहाँ पर केवल कुछ महत्वपूर्ण बुनियादी अवधारणाओं का हम विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे।

4.4.5. प्रसंग-समूह की दृष्टिगोचरता (Visibility of role-performance)

प्रसंग-समूह और प्रसंग-व्यक्ति दो अलग-अलग अवधारणाएँ है। जिस व्यक्ति की भूमिका-प्रारूप मानकर अनुकरण किया जाता है। उसे प्रसंग-व्यक्ति कहा जाता है। व्यक्ति किसी की भूमिका का अनुसरण तभी कर सकता है, जब दूसरे की भूमिका उसे दृष्टिगोचर हो।

प्रसंग समूह के सदस्यों की भूमिका का दृष्टिगोचर होना आवश्यक है। जब उसकी भूमिका को दूसरे लोग देखेंगे तभी प्रसंग-समूह की ओर झुकेंगे। अनेक सामाजिक कारणों से दूसरों की भूमिका दृष्टिगोचर नहीं हो पातीं, जैसे- प्राचीन भारत में मंदिर में पुजारी की भूमिका को कष्ट सामाजिक कारणों से, अछूत व्यक्ति नहीं देख सकता था। अनेक ऐसे समूह होते हैं। जो अ-सदस्य को अपनी कार्यकारिता देखने की अनुमति नहीं देते हैं।

4.4.6. प्रसंग-समूह के परिणाम (Consequences of reference-group behaviour)

मर्टन ने प्रसंग-समूह के परिणामों को पूर्व-तैयारी की अवधारणा से देखा है। व्यक्ति जब प्रसंग-समूह की सदस्यता ग्रहण करने का इच्छुक होता है तो उसके क्या परिणाम निकलते हैं। भविष्य में

सामाजिक स्तर प्राप्त करने के लिए व्यक्ति सचेत होकर पहले से तैयारी करने लगता है। जो सदस्यता अभी नहीं मिली है उसकी तैयारी पहले से ही करने लगना, प्रसंग-समूह व्यवहार का परिणाम है।

मर्टन ने प्रसंग-समूह व्यवहार के एक और परिणाम की व्याख्या तकनीकी ढंग से की है। प्रत्येक व्यक्ति की एक मुख्य भूमिका होता है, जैसे - कोई व्यक्ति डाक्टर है। डाक्टर की भूमिका के साथ कुछ अन्य भूमिकाओं की शृंखला जुड़ी हुई है। जब वह कक्षा में पढ़ाता है तो वह अध्यापक की भूमिका में होता है। जब नर्स और दूसरे मातहतों से मिलता है, तो वह आफिसर की भूमिका में होता है। मरीज को देखते समय वह चिकित्सक की भूमिका में होता है। दवा-विक्रेता एजेंट से बातीचत करते समय वह ग्राहक की भूमिका में होता है। यहाँ समझने की बात यह है कि ये भूमिकाएँ उसकी मुख्य भूमिका के साथ जुड़ी हुई है। इसलिए यह भूमिकाओं का सेट है। प्रसंग-समूह में आने के इच्छुक व्यक्ति की भूमिका शृंखला दूसरे व्यक्तियों के भूमिका-शृंखला से जुड़ी हुई होती है। अतः दूसरे प्रसंग समूह में जाने के लिए या तो प्रोत्साहित करेंगे या हतोत्साहित करेंगे, जैसे - कोई किसी संगठन में, समय से पहले, प्रोत्साहित करेंगे या हतोत्साहित करेंगे। जैसे, किसी संगठन में, समय से पहले, अपने सहयोगियों को पार करता हुआ कोई व्यक्ति उच्च पद पर पहुँचना चाहता है, तो उसके सहयोगी उसकी टाँग पकड़कर खीच सकते हैं या उसे समर्थन देकर प्रोत्साहित कर सकते हैं। यह व्यक्ति का भाग्य है कि किस प्रकार के भूमिका-शृंखलाओं के जाल में फँसता है।

पूर्व-तैयारी के आधार पर मर्टन ने जीवन-क्रम की विवेचना की है। समय के अंतर्गत, व्यक्ति तीन दिशाओं में भूमिका ग्रहण कर सकता है, समय की भूमिका, वर्तमान की भूमिका और भविष्य की भूमिका। यदि वह प्रतिगामी है तो अतीत की भूमिका की ओर झुकेगा। जैसे, कुछ बूढ़े लोग अपने अतीत के मोह रखते हैं। अतीत के सांस्कृतिक गौरव में रुचि रखते हैं। युवक वर्तमान की भूमिका के साथ-साथ भविष्य की भूमिका की भी तैयारी करते रहते हैं। अधेड़ उम्र वाले व्यक्ति का प्रसंग-समूह भविष्य में बुढ़ापे की प्रसंग-समूह होता है। अतः बुढ़ापे की भूमिका में सफल होने के लिए वह पहले से अपना समाजीकरण प्रारंभ कर देता है। मर्टन के प्रसंग-समूह व्यवहार के अपनाने का मुख्य परिणाम पूर्व-तैयारी में प्रकट होता है।

4.4.7. मर्टन : सामाजिक संरचना और आदर्श-शून्यता का सिद्धांत (MERTON : THEORY OF SOCIAL STRUCTURE & ANOMIE)

नियमहीनता के संबंध में दुर्खीम ने सर्वप्रथम अपने विचार प्रकट किए है। मर्टन ने विशेष रूप से नियमहीनता के प्रत्यय पर कार्य किया है। इनके अतिरिक्त पारसंस, क्ल ेवार्ड, डीन, **सिण्डर** आदि ने नियमहीनता पर प्रकाश डाला है। अब हम इन प्रमुख विद्वान के नियमहीनता के सिद्धांत का विवेचन करेंगे।

4.4.8. मर्टन का नियमहीनता-संबंधी सिद्धांत और विचार

मर्टन का नियमहीनता-संबंधी सिद्धांत दुर्खीम के इस विषय पर विचार पर आधारित है। मर्टन ने सर्वप्रथम समाजवैज्ञानिक के सम्मुख यह तथ्य विशष रूप से स्पष्ट किया कि सामाजिक संरचना का मानव-व्यवहार पर विपरीत एवं अस्वस्थ प्रभाव भी पड़ता है। मर्टन के नियमहीनता के सिद्धांत के प्रमुख पक्ष का हम निम्नलिखित उपलब्ध में समझ सकते हैं :

प्राणशास्त्रीय प्रवृत्तिया और सामाजिक नियम के प्राकृतिक संघर्ष का सिद्धांत, अमान्य- प्रायः अभी तक यह धारणा रही है कि मनुष्य की प्राणीशास्त्रीय प्रवृत्तियाँ और सामाजिक नियमों में प्राकृतिक संघर्ष पाया जाता है और यह संघर्ष सतत् चलता रहता है। लोगों का मत रहा है कि प्राणीशास्त्रीय प्रवृत्तियाँ या मूल प्रवृत्तियाँ स्वतंत्र रूप से स्वछंदतापूर्वक पूर्ण अभिव्यक्ति चाहती है, परंतु सामाजिक नियमों की व्यवस्था या सामाजिक संरचना इनकों नियंत्रित एवं नियमित करने का प्रयत्न करती है और इन दोनों का यह संघर्ष सदैव रहता है। इसके आधार पर यह मान्यता थी कि समाज-विरोधी व्यवहार या नियमहीनता इस संघर्ष का परिणाम है। परंतु मर्टन का कहना है कि यदि यह सत्य होता तो प्रत्येक समाज में समाज-विरोधी व्यवहार या नियमहीनता की प्रकृति एवां मात्रा समान होती। पर आधुनिक समाजशास्त्रीय अध्ययनों ने स्पष्ट कर दिया है कि प्रत्येक समाज में समाज-विरोधी व्यवहार का प्रतिमान, मात्रा भिन्न होती है। अतः यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि समाज-विरोधी व्यवहार या नियमहीनता मानव की प्राणीशास्त्रीय प्रवृत्तियाँ और सामाजिक नियमों के प्राकृतिक संघर्ष का परिणाम है। मर्टन ने मनोवैज्ञानिक सिद्धांत को अमान्य सिद्ध किया है।

समाज-विरोधी व्यवहार या नियमहीनता सामाजिक-सांस्कृतिक दशाओं या संरचना का परिणाम- मर्टन इस तथ्य परविशेष बल दिया है कि समाज-विरोधी व्यवहार या नियमहनता सामाजिक-सांस्कृतिक दशाओं या संरचना का परिणाम है। इस सामान्य तथ्य के संदर्भ में ही मर्टन ने अपनी उपकल्पना का निर्माण किया है और नियमहीनता की व्याख्या एवं परिभाषा की है।

मर्टन की निमयहीनता-संबंधों उपकल्पना- मर्टन ने अपनी उपकल्पना को स्पष्ट रूप से इस प्रकार व्यक्त किया है - "हमारा प्राथमिक उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि किस प्रकार कुछ सामाजिक संरचनाएँ समाज में मान्य व्यवहार की उपेक्षा अमान्य व्यवहार करने के लिए कुछ व्यक्तियों पर निश्चित दबाव डालती है।"

सामाजिक संरचना के संदर्भ में नियमहीनता की व्याख्या-मर्टन ने निमयहीनता की व्याख्या सामाजिक संरचना के संदर्भ में की है। मर्टन के अनुसार सामाजिक तथा सांस्कृतिक संरचनाओं के विभिन्न आवश्यक तत्वों में तत्त्व अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। ये दो आवश्यक तत्त्व है - (अ) सांस्कृतिक लक्ष्य, और (ब) संस्थागत नियम। सांस्कृतिक लक्ष्य वे लक्ष्य होते हैं जिनका निर्धारण संस्कृति या सामाजिक संरचना करती है। व्यक्तियों के सम्मुख समाज के सदस्यों के रूप में ये सांस्कृतिक लक्ष्य रहते हैं। समाज सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा समाज के सदस्यों में इन सांस्कृतिक लक्ष्यों का आंतरिकरण करता है जिसके फलस्वरूप वे व्यक्तियों के भी महत्वपूर्ण लक्ष्यों के रूप में प्रस्थापित हो जाते हैं। ये सांस्कृतिक लक्ष्य इस प्रकार के होते हैं कि इनके लिए चाह करना उत्तम है। मर्टन ने लिखा है - "वे प्राप्त

करने योग्य वस्तुएँ होती है।" ये सांस्कृतिक लक्ष्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं और व्यक्तियों को जीवित रहने एवं श्रम करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। इनकी प्राप्ति समाज के सभी सदस्यों का इष्ट होते हैं। ये एक प्रकार से सामाजिक व्यक्तियों के साख्य होते हैं, जिन्हें प्राप्त करना उनका मुख्य ध्येय रहता है। इन सांस्कृतिक लक्ष्यों के द्वारा मानव की भावनाओं तथा अभिवृत्तियों का प्रतिनिधित्व होता है। लिंटन ने इनको सामूहिक जीवन के प्रतिमान कहकर पुकारा है। संस्थागत नियम वे नियम होते हैं जो सांस्कृति लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समाज द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। ये नियम साधन के रूप में होते हैं जिनके द्वारा सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है। मर्टन ने लिखा है - "प्रत्येक सामाजिक समूह में अनिवार्य रूप से उसके सांस्कृतिक लक्ष्यों के साथ इन लक्ष्यों की और लों जाने वाली स्वीकार करने योग्य पद्धतियों के नियम विद्यमान रहते हैं जिनकी जड़ें रूढ़ियों या संस्थाओं में होती है।" ये नियम वे साधन हैं, जो समाज द्वारा मान्यता प्राप्त हैं। इन्हीं निश्चित या अन्य प्रणालियों को संस्थाएँ कहते हैं। ये संस्थाएँ या संस्थागत नियम सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिए अपनाये जाने वालों तरीकों, पद्धति एवं प्रणालियों को परिभाषित, निर्धारित एवं नियंत्रित करते हैं। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के साधन संस्थागत नियमों द्वारा सीमित होते हैं। संस्थागत नियम समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं और इनके अनुसार व्यवहार करना उचित माना जाता है।

मर्टन के अनुसार सांस्कृतिक लक्ष्य और संस्थागत नियम मिलकर मानवीय व्यवहार की रूपरेखा निश्चित एवं निर्धारित करते हैं। मर्टन से यहाँ पर यह चेतावनी भी दी है कि यह आवश्यक नहीं कि सांस्कृतिक लक्ष्य और संस्थागत नियम सदैव पारस्परिक संबंध बनाए ही रखेगें। मर्टन के अनुसार जब तक सांस्कृतिक लक्ष्य और संस्थागत नियम संबंधों का यह पारस्परिक सामंजस्य बनाएं रखते हैं, तब तक नियमबद्धता या नियम व्यवस्था बना रहता है। अनेक प्रकार की ऐसी स्थितियाँ होती हैं, जिनमें सांस्कृतिक लक्ष्यों एवं संस्थागत नियमों में यह पारस्परिक सामंजस्य नहीं रहता है। ये मुख्य स्थितियाँ निम्न प्रकार से हैं :

(अ) कुछ सांस्कृतिक लक्ष्यों पर अधिक बल दिया जाता हो, पर उनके प्राप्त करने के संस्थागत नियमों या साधनों का अभाव हो या उपलब्ध न हो। ऐसी स्थिति में उस समाज के व्यक्ति उन सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति संस्थागत नियमों से न करके मनमाने ढंग से करेगें। इस स्थिति में सांस्कृतिक लक्ष्यों और संस्थागत नियमों में सामंजस्य नहीं रहेगा। कुछ समाज ऐसे होते हैं जिनमें कुछ सांस्कृतिक लक्ष्यों पर अत्यधिक बल दिया जात है और उनमें इनके प्रति अत्यधिक उद्वेग उद्वेलित किए जाते हैं, पर उसी मात्रा में संस्थागत नियमों पर बल नहीं दिया जाता है। मर्टन ने लिखा है कि इस प्रकार की संस्कृतियों में तीन स्वयंसिद्ध सिद्धांत पर बल दिया जात है - (अ) सब व्यक्तियों को ऊँचे लक्ष्य या महत्त्वाकांक्षाएँ रखनी चाहिए। (ब) असफलता की कोई चिंता नहीं करनी चाहिए और इन्हें अंतिम सफलता तक पहुँचने के लिए मार्ग का स्टेशन मानना चाहिए। (स) आकांक्षा को छोढ़ देना या कम कर देना ही वास्तव में असफलता है। इन सिद्धांत के कारण व्यक्ति की आकांक्षाएँ बढ़ती जाती है और वह पागल बनकर इनके पीछे भागता रहता है। पाश्चात्य संस्कृतियों और विशेष रूप से अमरीकी संस्कृति के ये लक्षण है। साधनों पर इतना बल नहीं

दिया गया है। इसलिए सांस्कृतिक लक्ष्यों और संस्थागत नियमों का सामंजस्य समाप्त हो जाता है, जिनके परिणामस्वरूप नियमहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(ब) प्रमुख स्थितियों की अनिश्चित परिभाषाओं की स्थिति-प्रत्येक समाज या सामाजिक संरचना में कुछ निश्चित स्थितियाँ होती है और उन स्थितियों से संबंधित कार्य की परिभाषा होती है। इनके अनुसार ही व्यक्ति कार्य एवं व्यवहार करते हैं। परंतु कभी-कभी कुछ समाजों में प्रमुख स्थितियों की निश्चित परिभाषा नहीं होती है, तो ऐसी स्थिति में नियमहीनता पनप जाती है।

(स) किसी एक सांस्कृतिक लक्ष्य पर अधिक बल को स्थिति-कई बार कुछ सस्कृतियों में किसी एक सांस्कृति लक्ष्य पर अधिक बल दिया जाता है। उसके कारण भी नियमहीनता पनपती है।

मर्टन की नियमहीनता के संबंध में मुख्य विचार या परिकल्पना अथवा नियमहीनता सांस्कृतिक लक्ष्यों और संस्थागत नियमों के असामंजस्य की स्थिति-मर्टन ने नियमहीनता को सांस्कृतिक लक्ष्यों और संस्थागत नियमों के असामंजस्य की स्थिति माना है और उसने इसे अपनी मुख्य परिकल्पना कहा है। वह लिखता है - "वास्तव में यह मेरी केंद्रीय परिकल्पना है कि समाजशास्त्रीय दृष्टि से नियमहीन व्यवहार को संस्कृति द्वारा निर्धारित आकांक्षाओं और इन आकांक्षाओं को प्राप्त करने के लिए सामाजिक संरचित साधनों के बीच असंबद्धता के रूप में माना जाता है।

नियमहीनता की परिभाषा - मर्टन ने अपनी केंद्रीय परिकल्पना के आधार पर ही नियमहीनता की परिभाषा की है। वह लिखता है - "नियमहीनता सांस्कृतिक संरचना के टूट जने के रूप में समझी जाती है, जो कि विशेषतया उस समय हाती है जबकि सांस्कृतिक नियमों और लक्ष्यों तथा समूह के सदस्यों को सामाजिक संरचनात्मक क्षमताओं के बीच अत्यधिक असंबद्धता हो जाती है।

नियमहीनता के प्रकार - मर्टन ने नियम हीनता के दो प्रमुख कारणों का उल्लेख किया है - (अ) साधारण नियमहीनता, और (ब) तीव्र नियमहीनता।

(अ) साधारण नियमहीनता-साधारण नियमहीनता वह स्थिति है जिसमें समाज में अनिश्चितता की दशा होती है और मूल्यों के बीच संघर्ष पाया जाता है। मर्टन ने लिखा है - "साधारण नियमहीनता किसी समूह या समाज के अनिश्चितता की स्थिति की और संकेत करती है जो कि मूल्य-व्यवस्थाओं के बीच संघर्ष होने के परिणामस्वरूप कुछ अंशों में व्याकुलता और समूह से पृथकता की भावना को अनुभव करती है।"

(ब) तीव्र नियमहीनता-तीव्र नियमहीनता वह स्थिति है जबकि मूल्य-व्यवस्थाएँ टूटने लगती है, मानव व्यवहार को निर्देशित करने वालों आदर्श प्रतिमानों का अस्तित्व समाप्त समाप्त होने लगता है, संस्थात्मक नियम प्रभावशाली नहीं रहते हैं, सामाजिक जीवन भयंकर रूप से अस्त-व्यस्त होने लगता है, आदि। तीव्र नियमहीनता की स्थिति में केवल मानव की आकांक्षाएँ ही सब कुछ होती हैं और मानव उन्हें मनमाने ढंग से संतुष्ट करने लगात है।

नियमहीनता के लक्षण - मर्टन का मत है कि नियमहीनता के वैयक्तिक और वैषयिक दोनों लक्षणों पर ही बल देना चाहिए।

4.4.9. अनुकूलन के प्रारूप या प्रकार

मर्टन का मत है कि जब सांस्कृतिक लक्ष्यों और संस्थागत नियमों में असामंजस्य की स्थिति रहती है या जिसे हम नियमहीनता की स्थिति कहते हैं, तो व्यक्ति संस्थागत-नियमों के विपरीत भी किसी भी प्रकार सांस्कृतिमक लक्ष्यों की प्राप्ति करने का प्रायास करता है। विभिन्न व्यक्ति अपनी-अपनी परिस्थितियों के संदर्भ में भिन्न-भिन्न प्रकार के अमान्य और अस्वीकृत साधनों का प्रयोग करते हैं और सामाजिक पर्यावरण के साथ अनुकूलन करते हैं। मर्टन के अनुसार अनुकूलन के ये प्रकार वैयक्तिक अनुकूलन है। इस प्रकार के अनुकूलन के उसने पाँच प्रकार बताए हैं –

(अ) अनुरूपना

(ब) प्रवर्तन

(स) कर्मकांडीयता

(द) प्रत्यावर्तन

(य) विद्रोह।

(अ) अनुरूपता - अनुरूपता वह अनुकूलन है जो व्यक्ति समाज के सांस्कृतिक लक्ष्यों और संस्थागत नियमों से करता है। जब समाज में नियमबद्धता पाई जाती है और उसके सांस्कृतिक लक्ष्यों एवं संस्थागत नियमों में सामंजस्य पाया जाता है, तो व्यक्ति इनके अनुरूप व्यवहार करते हैं। व्यक्ति सांस्कृतिक लक्ष्यों को अपने उद्देश्य मानते हैं और संस्थागत नियमों के द्वारा उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। अनुरूपता आदर्श व्यवहार का लक्षण है।

(ब) प्रवर्तन - अनुरूपता तो आदर्श व्यवहार है। प्रवर्तन को ही मर्टन नियमहीनता की स्थिति सांस्कृतिक लक्षें को तो मानते एवं अपनाते हैं, परंतु उनको प्राप्त करने के लिए निर्धारित संस्थागत नियमों को नहीं अपनाते हैं, अपतु उनके स्थान पर नए संस्थागत नियम नहीं स्वीकार किए जाते हैं।

जब लक्ष्य मुख्य हो जाते हैं और साधन गौण, तो लक्ष्यों की प्राप्ति में किसी भी प्रकार के साधन प्रयोग किए जा सकते हैं। लक्ष्य है धन कमाना चाहिए या अर्जित करना चाहिए। यदि साधनों को गौण रखा गया, तो फिर धन किसी भी प्रकार कमाया जा सकता है। डाका डालना, चोरी करना, गबन करना, जालसाजी करना, धोखा देना, जेबकाटी करना, चोरी-बाजारी करना, रिश्वत लोंना आदि भी धन कमाने के साधन हैं। श्वेत-वस्त्रों अपराध इसी नियमहीनता के कारण पनपते हैं। ये नए मार्ग हैं जो व्यक्ति अपनाते हैं।

मर्टन के अनुसार प्रवर्तन की दो प्रमुख विशेषताएँ है –

(1) सांस्कृतिक लक्ष्य एवं मूल्य सफलता की प्रेरणा प्रदान करते हैं, और

(2) कुछ वर्ग के लिए सामाजिक संरचनाएँ इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधनों को सीमित कर देती हैं। ऐसी स्थिति में नियमहीनता बड़े पैमाने पर पनपती है।

(स) कर्मकांडीयता - कर्मकंडीयता, प्रवर्तन की विरोधी स्थिति है। कर्मकांडीयता में व्यक्ति सांस्कृतिक लक्ष्यों को नहीं स्वीकार करता, परंतु संस्थागत नियमों का कठोंरता से पालन करता है और उन्हें स्वीकार करता है। व्यक्ति (संसार में आगे बढ़ने(के लक्ष्यों को स्वीकार करता हैं। पर संस्थागत नियमों को स्वीकार करता है। कर्मकांडीयता खतरों से बचने की एक सुरक्षा-पद्धति है। व्यक्ति केवल उतना करता है जितना

अनिवार्य है। इसमें प्रदर्शन की मात्रा अधिक रहती है। इसमें व्यक्ति उतना ही कार्य करता है जितना कि उसे अपने असित्व के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। वह महत्त्वाकांक्षी नहीं होता है।

(द) प्रत्यावर्तन - प्रत्यावर्तन वह अनुकूलन है जिसमें व्यक्ति सांस्कृतिक लक्ष्यों को स्वीकार नहीं करता है और संस्थागत नियमों को भी स्वीकार नहीं करता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह पूर्ण अलगाव की स्थिति है। प्रत्यावर्तन में व्यक्ति केवल नाममात्रा के लिए ही समाज का सदस्य होता है। मानसिक विक्षप्त, वेश्याएँ, आवारा, पक्का पियक्कड़ आदि इसी के अंतर्गत आते हैं।

(य) विद्रोह - विद्रोह वह स्थिति है जिसमें न तो संस्कृतिक लक्ष्यों और न ही संस्थागत निगम के प्रति आस्था रहित है और व्यक्ति नए सांस्कृतिक लक्ष्यों और संस्थागत नियमों की खोंज प्रारंभ कर देता है। इसके अंतर्गत प्रचलित व्यवस्था को परिवर्तित करने की भावना रहती है। विद्रोह के अनुकूलन को कल्पना एवं भविष्य के प्रति आशा जन्म देती है। यह नवनिर्माण की ओर अग्रसर करती है।

मर्टन ने इन वैयक्तिक अनुकूलन के प्रकारों को स्वीकृति, अस्वीकृति आदि के आधार पर प्रारूपित किया है -

वैयक्तिक अनुकूलन के प्रकारों का प्रारूप

अनूकूलन के प्रकार अथवा विधि सांस्कृतिक संस्थागत नियम

अनुरूपता

प्रवर्तन

कर्मकांडीयता

प्रत्यावर्तन

विद्रोह

उपरोक्त तालिका में चिन्हों को निम्नलिखित अर्थ में प्रयोग किया गया हैः

(1) स्वीकार अथवा अपमान।

(2) अस्वीकरण अथ्ज्ञवा न अपमान।

(3) अस्वीकारण तथा नवीन की स्थापना करना।

दुर्खीम के नियमहीनता संबंधी विचार या सिद्धांत

(एनामी) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम दुर्खीम ने अपनी पुस्तक में "The Divisoon of Labour in Society" किया। यह पुस्तक सन् 1893 में प्रकासित हुई थी। इस प्रत्यय का प्रयोग दुर्खीम ने उस स्थल पर किया है जहाँ पर उन्होंने श्रम-विभाजन के सामान्य और व्याधिकीय परिणामों का विश्लेषण किया है। श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण के कारण सामाजिक एकता की समस्या उत्पन्न हो जाती है और सदस्य¨ के बीच संबंधों का उचित नियमन एवं नियंत्रण कठिन हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप समाज के सदस्य सामाजिक नियमों का उल्लंघन करने लगते हैं और नियमहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। दुर्खीम ने अपने दूसरे ग्रंथ (Le Suicide) में भी इस प्रत्यय पर प्रकाश डाला है। उसने आत्महत्या के

प्रकारों में एक प्रकार (anomique suicide) भी बताया है। इस प्रकार की आत्महत्या व्यक्ति नियमहीनता के परिणामस्वरूप करता है।

दुर्खीम ने नियमहीनता का कारण स्वयं समाज या सामाजिक संरचना को माना है। उसके अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह इस रूप में समाज से संबंधित एवं आश्रित है। हर मनुष्य की कुद आवश्यकताएँ होती है और समाज का उत्तरदायित्व है कि सामिजिक संरचना के द्वारा समाज के अधिकांश व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो। जब व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति सामाजिक नियमों से स्वीकृत साधनों द्वारा पूरी नहीं होती है, तो उसमें निराशा, असन्त¨ष, प्रतिश¨ध, विद्रोह आदि की भावनाएँ विकसित होती है। ऐसी दशा में उसे सामाजिक आदर्श, मूल्य, नियम आदि थे लगते हैं और उसका उनके प्रति विश्वास डिग जाता है। व्यक्ति ऐसी स्थिति में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने ढंग से, जो सामाजिक नियमों के अनुसार नहीं होते, करने लगता है। यह स्थिति नियमहीनता की है। इस स्थिति का उत्तरदायित्व भी सामाजिक संरचना या समाज पर ही है। इसीलिए दुर्खीम का कहना है कि नियमहीनता का कारण स्वयं समाज या सामाजिक संरचना है।

ने श्रम-विभाजन के परिणामस्वरूप भी नियमहीनता हो दर्शाता है। उनके अनुसार श्रम-विभाजन के कारण समाज के सदस्य एक-दूसरे पर अत्यधिक आश्रित हो जाते हैं और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक-दूसरे पर अत्यधिक निर्भर रहते हैं। इसका इसका परिणाम यह है कि व्यक्ति तब दुसरों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति होते नहीं देखता है, तो स्वयं मनमाने ढंग से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगता है। वह सामाजिक नियमों का भी उल्लंघन करने लगता है। इससे नियमहीनता बढ़ती है। दुर्खीम का कहना है कि कई बाद ऐसा भी होता है कि समाज के कुछ लक्ष्य या उद्देश्य या आदर्श ऐसे होते हैं जो अप्राप्य होते हैं। इन्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके कारण भी व्यक्ति को निराशा ही निराशा मिलती है और वह मनमाने ढंग से व्यवहार करने लगता है। दुर्खीम ने लिखा है - "ऐसी लक्ष्यों, जो परिभाषा से ही अप्राप्य हैं, को प्राप्त करने का प्रयास करना अपने को निरंतर दुख की अवस्था का दंड देना है।" इस प्रकार के लक्ष्य के पीछे भागना दुःख एवं निराशा के अंधकार में फँसते जाना है और नियमहीनता की और बढ़ना है। जब नियमहीनता विकसित हो जाती है, तो उन्हें केवल सामाजिक नियमों के पुनर्स्थापन के द्वारा ही रोका जा सकता है।

दुर्खीम का विचार है कि नियमहीनता की स्थिति छूत की बीमारी के समान समाज में फैलती है। एक बाद यदि नियमहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाए, तो उसे रोकना कठिन हो जाता है और वह पूरे समाज को ग्रस्त कर लेती है। नियमहीनता की यह स्थिति उस समय तक बनी रहती है जब तक कि नियमों की व्यवस्था अपने को पुनः स्थापित नहीं कर लोंती।

दुर्खीम ने नियमहीनता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि इसके प्रमुख कारण है - सामूहिक शक्ति का दुर्बल हो जाना, अचानक महत्वपूर्ण तकनीकि परिवर्तन, भयंकर आर्थिक या सामाजिक संकट, प्राकृतिक विपदा आदि, जिनके कारण एकाएक नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है। दुर्खीम का मत है कि यह कहना कि समाज का व्यक्ति पर स्वस्थ प्रभाव ही पड़ता है, गलत है। उसके अनुसार व्यक्ति पर समाज या सामाजिक संरचना का अस्वस्था प्रभाव या दबाव भी पड़ता है। व्यक्ति के

द्वारा अस्वाभाविक व्यवहार या सामाजिक नियमों के विरुद्ध व्यवहार इस अस्वस्थ दबाव का परिणाम होता है। व्यक्ति समाज का सदस्य है और वह समाज के नियमों का पालन करना चाहता है, पर कई बार समाज ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है कि व्यक्ति समाज के साथ सामंजस्य नहीं कर पाता है और समाज से उसके पैर उखड़ जाते हैं। व्यक्ति अकेलापन, निराशा एवं दुख का अनुभव करता है। कई बार समाज व्यक्ति के व्यक्तित्व को अपने में इतना लोंता है कि उसका पृथक अस्तित्व ही नहीं रह जाता। इन अवस्थाओं में व्यक्ति की समाज के प्रति आस्था एवं विश्वास समाप्त हो जाता है और वह मनमाने ढंग से व्यवहार करने लगता है। यह व्यक्ति को नियमहीनता की और धकेलती है।

पारसन्स का नियमहीनता संबंधी सिद्धांत एवं विचार

पारसन्स ने नियमहीनता की अवधारणा का विश्लेषण सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत किया है। सामाजिक नियंत्रण सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख आधार है। सामाजिक नियंत्रण के यंत्र (Mechanisms of Social Control) के रूप में सामाजिक संस्थाओं को पारसन्स ने अत्यधिक महत्त्व दिया है। सामाजिक संस्थाएँ सामाजिक व्यवस्था (Social System) में संतुलन, अनुरूपता एवं नियमबद्धता स्थापित रखती हैं। मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति भी सामाजिक संस्थाएँ करती हैं। संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था सामाजिक संस्थाओं में विभाजित हो जाती है और उन पर आधारित रहती है। पारसन्स ने सामाजिक संस्थाओं के निर्माण एवं विकास की प्रक्रिया को संस्थाकरण (Institutionalization) से संब धित किया है।

संस्थाकरण ही सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखता है और व्यक्तियों के व्यवहारों को निर्देशित, प्रतिमानित, संचालित एवं नियंत्रित करता है। संस्थाकरण का अभिप्राय है नियमबद्धता। पारसन्स के अनुसार संस्थाकरण की विरोधी है नियमहीनता (anomic) जब संस्थाकरण का अभाव रहता है, तो नियमहीनता पनपती है और व्यक्ति मनमाना व्यवहार रकने लगता है और किसी नियंत्रण को स्वीकार नहीं करता है। पारसन्स ने नियमहीनता की परिभाषा करते हुए लिखा है - "संस्थाकरण की ध्रुवीय-विरोधी धारणा नियमहीनता है - अंतः क्रियात्मक प्रक्रिया की संरचनात्मक पूरकता का अभाव या जो कि एक ही वस्तु है - आदर्शात्मक व्यवस्था का पूर्ण से खंडित हो जाना, नियमहीनता है।" पारसन्स के अनुसार प्रत्येक समाज के व्यक्तियों की आवश्यकताओं, लक्ष्यों एवं आदर्शों की प्राप्ति एवं पूर्ति के लिए संस्थाएँ होती है जो समाज-स्वीकृत नियमों की स्थापना से है। जब ये समाज-स्वीकृति नियमों का पुंज होती हैं। संस्थाकरण (Institutionalization) का अभिप्राय समाज-स्वीकृत नियमों की स्थापना से है। जब ये समाज-स्वीकृत नियम या पद्धतियाँ नहीं होती हैं या अप्रभावी हो जाती हैं, जो नियमहीनता (एनामी) की स्थिति रहती है। इसीलिए पारसन्स से कहा है कि नियमहीनता संस्थाकरण की ध्रुवीय-विरोधी (polar anti-thesis) धारणा है। एक और नियम-व्यवस्था (संस्थारण) है, तो उसकी विरोधी नियमहीनता है। इसी स्थिति को स्पष्ट करते हुए उसने कहा है, (अंतःक्रियात्मक प्रक्रिया की संरचनात्मक पूरकता का अभाव(नियमहीनता है और भी अधिक सरल शब्द में, प्रत्यय को स्पष्ट करते हुए पारसन्स ने अपनी परिभाषा में कहा है-(आदर्शात्मक व्यवस्था (Normative Order) का पूर्णरूप से खंडित हो जाना नियमहीनता

एनामी है।(जब आदर्शात्मक व्यवस्था अर्थात् संस्थाकरण या नियम-व्यवस्था पूर्णरूप से खंडित हो जाती है या बिखर जाती है या अप्रभावी हो जाती है, तो उस स्थिति को नियमहीनता या एनामी कहते हैं।

नियमहीनता को पारसन्स ने संस्थात्मक प्राथमिकताओं (Institutional Priorities) के संदर्भ में भी व्याख्या की है। पारसन्स का कहना है कि एक व्यक्ति की समाज में अनेक विभिन्न प्रकार की स्थितियाँ एवं उनसे संबंधित भूमिकाएँ होती है। एक व्यक्ति की व्यावसायिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, पारिवारिक स्थिति, राजनैतिक स्थिति आदि होती है और उसे सब स्थितियों की भूमिकाओं को निभाना पड़ता है। ऐसी दशा में कई बार एक व्यक्ति की विभिन्न स्थितियों में टकराव उत्पन्न हो जाता है और व्यक्ति यह निश्चय नहीं कर पाता है कि उसे क्या करना चाहिए? किस भूमिका को (Role) को प्राथमिकता देनी चाहिए। भूमिकाओं की प्रथमिकताओं के अभाव में नियमहीनता पनप सकती है। पारसन्स ने इसे एक उदाहरण के द्वारा समझाया है। एक डॉक्टर है। एक डॉक्टर को अपनी व्यावसायिक स्थिति (Professional Status) है और उस स्थिति से संबंधित निश्चित भूमिका है जो कि व्यावसायिक आचरण के नियमों (Rule of Professional Conduct) से प्रतिमानित एवं निर्धारित होती है। पर एक डॉक्टर पति भी है, पिता भी है और भी अनेक पारिवारिक स्थितियाँ हैं। मान लीजिए किसी समय उसे किसी पारिवारिक भूमिका को निभाना है और उसी समय कोई गम्भीर रूप से बीमार मरीज को देखने के लिए उसे कोई बुलाने आता है। ऐसी स्थिति में डॉक्टर क्या करे? ऐसी स्थितियों में संस्थात्मक प्राथमिकताएँ उसे मार्ग निर्देशत करती है और उनके अनुसार वह व्यवहार करता है। यदि संस्थात्मक प्राथमिकताएँ न हों, तो आये दिन इस प्रकार के संघर्ष उत्पन्न होते रहेंगे और व्यक्ति मनमाना व्यवहार करने के लिए बाध्य होगा। कुछ लोग इस अनिश्चितता का लाभ उठाकर भी मनमाना व्यवहार कर सकते हैं, पर संस्थात्मक प्राथमिकताएँ हर वस्तु एवं भूमिका की निश्चित परिभाषा करती है और स्वीकृत व्यवहार करने के लिए निर्देशित करती हैं। इसीलिए, पारसन्स ने लिखा है कि संस्थात्मक प्राथमिकताओं (Institutional Priorities) का अभाव ही नियमहीनता है।

नियमहीनता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए पारसन्स ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कारण का उल्लेख किया है। पारसन्स ने लिखा है कि सामाजिक व्यवस्था के दो पक्ष होते हैं –

1. सकारात्मक (Positive) और
2. नकारात्मक (Negative)।

नकारात्मक पक्ष कुछ कार्य को न करने का निर्देश देता है। नकारात्मक पक्ष तभी प्रभावी रह सकता है जबकि समाज के अधिकतम व्यक्तियों की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति एवं संतुष्टि नियम व्यवस्था के अंतर्गत ही हो जाए। यह अनिवार्य नहीं है कि सब व्यक्तियों की सब आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाएँ। पर यह अपरिहार्य है कि अधिकांश व्यक्तियों को न्यूनतम आवश्यकताएँ अवश्य पूरी हो जाएँ। जिस समाज व्यवस्था में अधिकतम व्यक्तियों की न्यूनतम अनिवार्य आवश्यकताएँ जैसे- भोजन, वस्त्र, रहने-सहने का स्थान, सुरक्षा आदि की पूर्ति होती है। उस समाज में आदर्शात्मक व्यवस्था (Normative Order or Norms) बनी रहती है, पर जिस सामाजिक व्यवस्था में न्यूनतम अनिवार्य आवश्यकताओं की भी पूर्ति नियम व्यवस्था के अंतर्गत नहीं हो पाती है, उसमें नियमों की व्यवस्था अप्रभावी हो जाती है

और व्यक्ति मनमाने ढंग से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगने हैं और नियमहीनता पनपने लगती है।

पारसन्स ने भी मर्टन की इस व्याख्या को स्वीकार किया है कि नियमहीनता का आधार सामाजिक संरचना में ही है और उस आधार पर उसने नियमहीनता का विश्लेषण किया है। पारसन्स ने भी नियमहीनता के कारणों की खोंज सामाजिक संरचना एवं सामाजिक व्यवस्था में की है। पारसन्स ने नियमहीनता के संदर्भ में संस्कार (Rituals), धर्म और मूल्य व्यवस्था (Religion and Value System) आदि का भी उल्लेख किया है।

4. क्लवर्ड का नियमहीनता संबंधी सिद्धांत एवं विचार

क्लवर्ड ने मर्टन की व्याख्या में कुछ संशोधन प्रस्तुत किए है और उसकी व्याख्या को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उचित साधनों की उपलब्धि में अंतरण नियमहीनता के विस्तार के प्रमाण का माप- क्लवर्ड का सिद्धांत है कि सांस्कृतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के उचित साधनों या संस्थागत नियमों की उपलब्धि पर ही नियमहीनता आश्रित होती है। यदि उचित साधनों का वितरण समाज के सब वर्गों एवं समूहों के लिए समान है, तो नियमहीनता नहीं पनप सकती। पर प्रायः सामाजिक संरचनाओं में उचित साधनों का वितरण समान नहीं होता है और कुछ वर्ग एवं समूह उचित साधनों की उपलब्धि नहीं कर पाते हैं। बाध्य होकर ये वर्ग और समूह अनुचितसाधनों का प्रयोग करने लगते हैं। जिस मात्रा में उचित साधनों की उपलब्धि का वितरण समान न होगा, उसी मात्रा में नियमहीनता पाई जाएगी। उसने अपनी परिकल्पना को इस प्रकार व्यक्त किया है। "नियमहीन व्यवहार (विचलित व्यवहार) के ऐसे अवसर उसी प्रकार भिन्न होंगे, जिस रूप में उचित साधनों की उपलब्धि में अंतर भिन्न होगा।"

अनुचित साधनों के प्रयोग के अवसर भी समान रूप से सबको उपलब्ध नहीं - क्लवर्ड का कहना है कि जहाँ सब व्यक्तियों, वर्गों एवं समूहों को उचित साधनों की उपलब्धि का वितरण समान नहीं होता है। वहाँ यह भी है कि अनुचित साधनों के प्रयोग के अवसर भी समान रूप से सबको उपलब्ध नहीं होते हैं। नियमहीनता इस तथ्य पर भी आधारित है कि अनुचित साधन कहाँ तक किस समूह को उपलब्ध है। इस संदर्भ में उसने बाल-अपराध, आत्महत्या आदि विचलित व्यवहारों की व्याख्या की है। हर व्यक्ति या समूह ही नियमहीन व्यवहार नहीं करने लगता है। नियमहीन व्यवहार वही करते हैं जिन्हें अनुचित साधन उपलब्ध होते हैं।

प्रत्यावर्तन की व्याख्या:

क्लवर्ड ने मर्टन के अनुकूलन के प्रकारों में प्रत्यावर्तन की विशेष चर्चा की है। प्रत्यावर्तन में व्यक्ति न तो सांस्कृतिक लक्ष्यों को स्वीकार करता है और न ही संस्थागत नियमों को स्वीकार करता है। मर्टन ने इसे अनुकूलन माना है, पर क्ल॰वर्ड का कहना है कि प्रत्यावर्तन अनुकूलन नहीं है। उसके अनुसार प्रत्यावर्तन दोहरी असफलता है, निराशा है, अंधकार में भ्रमण है, अनुकूलन नहीं है। प्रत्यावर्तन में व्यक्ति

उचित साधनों में तो असफल होता ही है, अनुचित साधनों में भी असफल होता है। वह निराश्रित है, जो किसी प्रकार जीवित है।

4.4.11. नियमहीनता के सिद्धांत का मूल्यांकन:

नियमहीनता का सिद्धांत, यद्यपि अभी पूर्ण नहीं है और उसकी अनेक आलोचनाएँ की जा सकती है और की गई है जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं, समाजशास्त्र के क्षेत्रा में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि इसने इस तथ्य पर बल दिया है कि नियमहीनता भी नियम-व्यवस्था के ही समान सामाजिक घटना है और उसकी उत्पत्ति, विकास एवं विस्तार के कारणों एवं कारकों की खोंज सामाजिक संरचना या सामाजिक व्यवस्था या समाज में ही करना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि समाज ही नियमहीनता के लिए उत्तरदाई है। अन्य प्रकार के विभिन्न समाज-विरोधी व्यवहार के सिद्धांत जो मूल प्रवृत्तियाँ, वंशानुसंक्रमण आदि पर बल देते थे निर्बल हो गए हैं और सही दिशा में कारणों की खोज प्रारंभ होना संभव हो सका है। समाजशास्त्रीय कारकों पर इस सिद्धांत के कारण बल दिया जाने लगा है। इस सिद्धांत का प्रभाव सुधारात्मक एवं पुनर्निर्माण की प्रक्रियाओं पर भी हुआ है। समाज व्यवस्था में सुधार और पुनर्निर्माण की गतिविधियों को बल मिला है और सामाजिक संरचना का गंभीरता से विश्लेषण प्रारंभ हुआ है। विचलित व्यवहार के समाजशास्त्र के क्षेत्रा में तो इस सिद्धांत का और भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कोहेन ने उचित ही लिखा है - "इसमें संदेह नहीं है कि विचारों का वह पुंज जिसे नियमहीनता का सिद्धांत कहा जाता है पिछलों पच्चीस वर्षों में विचलन के समाजशास्त्र में सर्वाधिक प्रभावशाली एवं महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन है।"

नियमहीनता के लक्षण:

लियो स्त्रोल का पैमाना - नियमहीनता के लक्षण क्या है, इस विषय पर लियो स्त्रोल ने सबसे प्रथम कार्य किया है। उसने नियमहीनता के पैमाने का निर्माण करने का प्रयास किया है। स्त्रोल ने नियमहीनता के पैमाने को निर्मित करने में व्यक्तियों के वैयक्तिक प्रत्यक्षीकरणों को आधार बनाया है। यह आतंरिक अनुभूतियों पर आधारित है। उसने इस पैमाने के लिए निम्न पाँच लक्षणों को आधार माना है-

1. समुदाय के नेताओं का किसी सदस्य की आवश्यकताओं पर ध्यान न देना अथवा उसकी आवश्यकताओं के प्रति तटस्थ भाव ग्रहण कर लोंना।
2. उपलब्धि की आशा का कम हो जाना।
3. सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति की संभावनाओं की अपेक्षा उनके मिटने का आभास होना।
4. निरर्थकता, निराशा, असफलता के भाव लक्षित होना।
5. इस धारणा का बलवती होना कि सहयोग के लिए किसी साथी पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

बर्नार्ड लोंडर के लक्षणों की व्याख्या - लोंडर ने नियमहीनता के लक्षणों की व्याख्या वैषयिक रूप से की है। उसने एक अमरीकन नगर का (कारक विश्लेषण) किया है और उस आधार पर नियमहीनता के कारक का वर्णन किया है। उसने नियमहीनता के कारक के अंतर्गत

1. अपराध की ऊँची दर,

2. मकानों में कालों (नीग्र¨) व्यक्तियों की अधिक संख्या,

3. मकान-मालिक का स्वयं न रहना आदि को लिया है और नियमहीनता का लक्षण बताया है।

नियमहीनता और विचलित व्यवहार:

नियमहीनता एक दशा या स्थिति है और विचलित व्यवहार उस दशा या स्थिति (नियमहीनता) की व्यवहार में अभिव्यक्ति है। नियमहीनता का परिणाम विचलित व्यवहार है। नियमहीनता ही विचलित व्यवहार की प्रेरणा है। नियमहीनता और विचलित व्यवहार एक-दूसरे से अत्यधिक संबंधित है। जब सामाजिक संरचना में नियमहीनता पनपती है, तभी व्यक्ति विचलित व्यवहार करते हैं। नियमहीनता और विचलित व्यवहार एक ही प्रक्रिया के दो अंग है - नियमहीनता आतंरिक है और विचलित व्यवहार वैषयिक है।

नियमहीनता और आत्महत्या:

आत्महत्या वैयक्तिक विघटन की अंतिम परिणाम या स्थिति है, जब व्यक्ति अपनी हत्या करता है। आत्महत्या को प्रायः एक व्यक्तिगत घटना माना जाता था, जो कि व्यक्ति की निजी बात है। पर दुर्खीम ने आत्महत्या को एक सामाजिक घटना माना है और उसके कारणों को भी सामाजिक ही दर्शाया है। आत्महत्या उस स्थिति में होती है जब व्यक्ति की अलगाव की भावना चरम बिंदु पर पहुँच जाती है। व्यक्ति न केवल समाज या अन्य व्यक्तियों से पितु अपने स्वयं से भी अलगाव अनुभव करने लगता है। आत्महत्या उस स्थिति में व्यक्ति करता है जब उसे जीवन सारहीन लगता है। नियमहीनता के अर्थ पर हम प्रारंभ में ही प्रकाश डाल चुके हैं। नियमहीनता ही व्यक्तियों में समाज से अलगाव की स्थिति को उत्पन्न करती है जिसके कारण व्यक्ति आत्महत्या करता है। नियमहीनता ही अंततः आत्महत्या के लिए उत्तरदाई है। प्रायः देखा गया है कि जिन समाजों में सामाजिक एकता अधिक पाई जाती है उन समाजों में आत्महत्याएँ कम होती हैं और जिन समाजों में नियमहीनता अधिक पाई है उनमें आत्महत्याएँ अधिक होती हैं। औद्योगिक समाजों में आत्महत्याएँ अधिक होती हैं, कृषि समाजों में आत्महत्याएँ कम होती हैं। प्रायः परंपरात्मक समाजों में सामाजिक एकता अधिक पाई जाती है इसलिए आत्महत्याएँ कम होती है। आधुनिक अप्रतिबंधित समाजों में आत्महत्याएँ अधिक होती हैं, क्योंकि इनमें नियमहीनता अधिक पाई जाती है। दुर्खीम ने अस्वाभाविक या आकस्मिक आत्महत्या को आत्महत्या का एक प्रकार बताया है। यह आत्महत्या तभी होती है जब समाज में आकस्मिक या अस्वाभाविक परिवर्तन इस प्रकार के होते हैं कि व्यक्ति उनके साथ अनुकूलन नहीं कर पाता है। यह ही नियमहीनता (तीव्र नियमहीनता) की स्थिति भी होती है। दुर्खीम के अनुसार अहम्वादी आत्महत्या व्यक्ति तब करता है जबकि वह समाज से अलगाव का अनुभव करता है और व्यक्ति और समाज का सामंजस्य नहीं होता। यह स्थिति भी नियमहीनता का ही परिणाम होती है। उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि नियमहीनता और आत्महत्या में गहरा संबंध है। नियमहीनता ही व्यक्तियों को अधिकांशतः आत्महत्या करने को विवश करती है।

4.4.12. सारांश

नियमहीनता(शब्द आधुनिक समाजशास्त्र में विशेष स्थान रखता है। नियमहीनता अमान्य व्यवहारों की स्थिति को अभिव्यक्त करता है। मर्टन ने नियमहीनता को सांस्कृतिक संरचना के टूट जाने के रूप में व्यक्त किया है। पारसन्स ने इसे (संस्थाकरण की ध्रुवीर्य-विरोधी) धारणा कहा है। नियमहीनता पूर्ण नियमविहीनता की स्थिति की और संकेत नहीं करती है। हम समाज में नियम व्यवस्था और नियमहीनता किसी न किसी अंश में अवश्य पाई जाती है। नियमहीनता सामाजिक संरचना का ही परिणाम होती है। इसके कारण सामाजिक संरचना में ही ढूँढने चाहिए। दुर्खीम ने इन ही तथ्यों पर प्रकाश डाला है। मर्टन ने मनोवैज्ञानिक सिद्धांत को नहीं माना है और यह सिद्ध किया है कि नियमहीनता सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना का ही परिणाम है। उसके अनुसार सांसकृतिक लक्ष्य और संस्थागत नियम होते हैं। सांस्कृतिक लक्ष्यों को संस्थागत नियमों के द्वारा प्राप्त करना चाहिए। जब यह स्थिति रहती है, तो समरूपता या व्यवस्था रहती है। जब सांस्कृतिक लक्ष्य तो स्वीकार किए जाते हैं, संस्थागत नियम नहीं, तो यह स्थिति प्रवतन की होती है। जब सांस्कृतिक लक्ष्य नहीं स्वीकार किए जाते और केवल संस्थागत नियम स्वीकार किए जाते हैं, तो यह स्थिति कर्म-कांडीयता की होती है। जब दोनों नहीं स्वीकार किए जाते, तो प्रत्यावर्तन की स्थिति होती है। जब दोनों ही नहीं स्वीकार किए जाते और ये सांस्कृतिक लक्ष्यों एवं संस्थागत नियमों की कल्पना की जाती है, तो यह विद्रोह कहलाता है। क्लवर्ड ने मर्टन के विचारों में पूरक विचार जोड़े है। नियमहीनता की अवधारणा विचलन के समाजशास्त्र की महत्त्वपूर्ण धारणा है।

4.4.13. बोध प्रश्न

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. प्रसंग-समूह सिद्धांत की अवधारणा को मर्टन ने अपनी किस पुस्तक में दिया?

(क) द अमेरिकन सॉलिड

(ख) फोकस्ड इंटरव्यू

(ग) कंटेंपोरेरी सोशल प्रॉब्लम

(घ) सोशल थ्योरी एंड सोशल रिसर्च

2.अंतःसमूह एवं वाह्य समूह की अवधारणा किसने दी है?

(क) मर्टन

(ख) जॉर्ज सिमेल

(ग) हरबर्ट हाइमन

(घ) पारसंस

3. इनमें से कौन मर्टन के वैयक्तिक अनुकूलन का प्रकार नहीं है?

(क) अनूरूपता

(ख) प्रवर्तन

(ग) विद्रोह

(घ) सांस्कृतिक लक्ष्य

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आर. के. मर्टन के संदर्भ समूह सिदांत की विवेचना कीजिए।
2. आर. के. मर्टन के संदर्भ समूह सिद्धांत में दृष्टिगोचरता के सिद्धांत को बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आर. के. मर्टन के संदर्भ समूह की सिद्धांत की बुनियादी अवधारणा की व्याख्या कीजिएघ्
2. आर. के. मर्टन के आदर्श शून्यता के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

4.4.14. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ सूची

- अब्राहम. (1977). *ओरिजिन एंड ग्रंथ ऑफ सोशिओलाजी*. न्यूयार्क: पेंगुइन बुक्स.
- एरन, रेमंड. (1976). *मेन करेंटस इन सोशिओलाजिकल थॉट*. लंदन: पेंगुइन बुक्स.
- कोजर, एल. (1977). *एः मास्टर्स ऑफ सोशिओलाजिकल थाट*. न्यूयार्क: हाकोर्ट ब्रास जोवानोविच.
- गिडेंस, एंथनी. (1971). *कैपीटलिज्म एंड मार्डन सोशल थियरी*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- मर्टन, आर.के. (1956). *फोकस्ड इंटरव्यू*. न्यूयार्क: फ्री प्रेस.
- मर्टन, आर. के. (1981). *शोशल थियरी एंड सोशल स्ट्रक्चर*. नई दिल्ली: अमेरिंड पब्लिकेशन
- बोटोमोर, टी. बी. (1978). *सोशियोलॉजी*. बंबई: ब्लेकी एंड संस.
- सोरोकिन, पी. ए. (1978). *कंटेमपोरेरी सोशियोलॉजिकल थियरीज*. नई दिल्ली: कल्याणी पब्लिशर्स.
- हैरालबोस, एम. एवं हीलबर्न, (1995). एम. *सोशियोलॉजी*. लंदन: कालीनस एजुकेशनल.

नोट – इस कृति का कोई भी अंश विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लिए बिना पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

पाठ्यपुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन रूप से प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। संयोगवश यदि इसमें कोई भी कमी या त्रुटि रह गई हो तो इसके लिए संपादक, संयोजक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। अवगत कराए जाने पर सुधार करने का प्रयास किया जाएगा।